आज की राजनीति

राहुल सांकृत्यायन

आधुनिक पुस्तक भवन
३०।३१, कलाकर स्ट्रीट
कलकत्ता

दो शब्द

पहिले संस्करणको बिना परिशिष्टके छापकर उसके प्रकाशकने पुस्तकके साथ बहुत अन्याय किया था, अब परिशिष्ट-सहित इस दूसरे संस्करण द्वारा पूर्व प्रकाशककी भूलका मार्जन करना पड़ रहा है। इस संस्करणमें परिशिष्टके अतिरिक्त अनेक स्थानों में संशोधन और परिवर्धन भी कर दिया गया है।

हैपीवेली, मसूरी
२७–११–५१

राहुल सांकृत्यायन

विषय-सूची

परिशिष्ट

आज की राजनीति

१

स्वतंत्र-भारत

काशी भारत की सात पुरियों में एक है, किन्तु आजकल दूसरी कोई पुरी उसका मुकाबला नहीं कर सकती। हाँ, इसमें संदेह है, कि ऐतिहासिक काल अथवा पिछली सात शताब्दियों में काशी ने कभी देश और राष्ट्र की तत्कालीन या भावी महत्वपूर्ण समस्याओं पर माथापच्ची की हो। काशी ने देश को हमेशा पीछे की तरफ खींचने की कोशिश की। एक-से-एक प्रतिगामी पंडित और परिव्राजकों को उसने प्रदान किया। लेकिन, जान पड़ता है, शंकर के त्रिशूल पर खड़ी काशी भी अब हिलने लगी है। इसके और भी कितने ही उदाहरण मिलते हैं, लेकिन हमें यहाँ उन पाँचों सयानों की मंडली की बात पाठकों के सामने रखनी है, जो "काजी जी दुबले शहर के अंदेशे" की कहावत के अनुसार केवल अपने नगर की ही चिन्ता में दुबले नहीं हो रहे हैं, बल्कि सारे देश की सभी तरह की समस्याएं उनकी चिन्ता का कारण बन रही हैं। उनके वार्त्तालाप को उतारने के लिए किसी गौरीसुत गणेश की आवश्यकता थी, किंतु द्रुतलेखन और डिक्टोफोन के जमाने में वार्त्तालाप का उतारना कठिन नहीं है।

आइये, नीची-बाग के एक कोने में कितने ही दिनों तक अपने वार्त्तालाप में सरगर्म पाँचों पंचों पर एक दृष्टि दौड़ाएं। उनमें आयु में कोई न पच्चीस से कम है, और न तीस से अधिक; औसत आयु निकालने पर वह सत्ताईस ही पड़ती है। पाँचों पंचों में पहले महिला से शुरू करें। आपका नाम रामी है, किसी समय रमादेवी द्विवेदी थीं, लेकिन अब वह अपने को रामी कहती हैं। वह काशी के एक कन्या-महाविद्यालय की प्रधान-अध्यापिका हैं, साहित्य में डाक्टर हैं और कुछ कविता भी करती हैं, जिसे बुरी नहीं कहा जा सकता। स्त्रियों के अधिकार के लिए वह हमेशा लड़ने को तैयार रहती हैं। उनके पति डाक्टर खोजीराम एक कुशल सर्जन हैं। घर में पैसे की कमी नहीं है, किन्तु रामीजी तब भी महाविद्यालय की नौकरी छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। उनका सिद्धान्त है—आर्थिक-स्वतंत्रता नारी के स्वतंत्र होने की पहली शर्त है। रामीजी की सामाजिक उदारता के बारे में इतना ही कहना है, कि हिन्दुओं की जाति-व्यवस्था में सबसे ऊपर होने पर भी उन्होंने सबसे नीचे की सीढ़ी वाले को अपना हृदय दिया।

दूसरे पंच डा० खोजीराम शिक्षित और संस्कृत अट्ठाईस साल के तरुण हैं। उन्होंने किसी सरकार या बड़ी जाति के दाताओं की सहायता से शिक्षा नहीं प्राप्त की। मेधावी छात्र थे; आत्म-सम्मान का भाव मात्रा से अधिक था। छात्रवृत्ति के लिए गिड़गिड़ाने की जगह उन्होंने स्वयं ट्यूशन करके अपनी शिक्षा समाप्त की। मेडिकल कालेज से बाईस साल की आयु में निकले, लेकिन उससे पहले ही लोगों ने जान लिया था, कि वह जन्मजात चिकित्सक हैं। उन्होंने एक-डेढ़ साल के भीतर इतना पैसा जमा कर लिया, कि वीना में जाकर विशेष शिक्षा और अनुभव प्राप्त कर आये। डा० खोजीराम एक जाति में जन्म लेने के कारण उसके पक्षपाती नहीं हैं, बल्कि अपनी जाति वालों जैसे जितने भी शोषित और दलित हैं, उन सबके उत्थान के प्रयत्न को उसी तरह अपना कर्त्तव्य मानते हैं, जैसे व्याधि-पीड़ितों की तन-मन-धन से सेवा को। उनका स्वभाव अत्यन्त शान्त, विनम्र है; यद्यपि अपने पक्ष का समर्थन करते समय उनका मुंह अधिक आरक्त हो जाता है।

मंडली में तीसरे पंच महीप सबसे तरुण हैं। यदि अपने कुल की परिपाटी चलाते, तो उनका नाम एक लाठी नहीं, तो कम-से-कम हमारी मासिक पत्रिकाओं के पूरे पृष्ठ की एक पंक्ति में जरूर आता। वह समाजवाद के समर्थक हैं, उन्हें पंचों में सबसे गर्म स्वभाव का कहा जा सकता है। वह जिस समाजवाद को चाहते हैं, वह किसी एक पार्टी के भीतर सीमित नहीं है। उनका कहना है—जो भी ईमानदारी से समाजवाद की स्थापना के लिए क्रियात्मकरूपेण प्रयत्न कर रहे हैं, उनको एक होकर काम करना चाहिए। युनिवर्सिटी से निकले अभी एक ही साल हुआ है, इसलिए उन्हें दुधमुंहा बच्चा न समझ लें। उन्होंने सारा समय देश की समस्याओं पर गंभीरतापूर्वक अध्ययन करने और समझने में लगाया है।

चौथे पंच श्री भगवानदास जी आयु में सारी मंडली में दूसरे नंबर पर हैं। सादगी के तो मानो अवतार हैं। मंडली में और लोग कुरता-पायजामा को भी सह्य कर लेते हैं, लेकिन भगवानदास जी पंचकच्छी धोती और वृन्दावनी चौबन्दी पहनते हैं। उनके सिर पर शिखा भी गाय के खुर से थोड़ी ही कम है। ललाट पर भस्म-त्रिपुंड और ऊपर से वल्लभशाही सूक्ष्म लाल उर्ध्व-पुण्ड्र भी लगा है। वह समन्वय की साक्षात मूर्ति हैं। उनका कहना है—काशी विश्वनाथपुरी में रहने के नाते "नदी में रह मगरमच्छ से बैर" करना अच्छा नहीं, सोच भस्म का त्रिपुण्ड्र धारण करना जरूरी है; लेकिन, सात पीढ़ी से खानदान वल्लभकुल का शिष्य रहा है; गोपाल-मन्दिर में लगाई उनके परदादा की देवोत्तर-संपत्ति से आज भी वहाँ मनों मेवा-पक्वान्नों का भोग लगता है। इसीलिए वल्लभकुल का

तिलक लगाना भी आवश्यक है। भक्ति और धर्म-प्रेम तो उनके वंश में चला आया है, और हम कह सकते हैं कि देशाचार में ग्राहक को छोड़कर बेईमानी से वह बहुत दूर रहते हैं। पिता ने अपने पुत्र को पक्का धर्मात्मा बनाना चाहा, इसीलिए अंगरेजी या दूसरी शिक्षा न दिलवा घर पर ही पंडित रख के बेटे को संस्कृत पढ़ाना आरंभ कराया। भगवानदास अभी तरुण हैं, लेकिन उसी काशी के निवासी पितामह डा० भगवानदास को उन्होंने विद्याव्यसन के सम्बन्ध में अपना आदर्श बना लिया है। व्याकरण और साहित्य का अध्ययन उन्होंने एक पंडित की तरह किया है। महाभारत पुराण, धर्मशास्त्र का परायण तो उनके जीवन का एक अंग हो गया है। वैसे होता तो बाकी के चारों की चौकड़ी में उनका होना आश्चर्य की बात होती, लेकिन भगवानदास जी दम्भी नहीं हैं। सेवाग्राम की यात्राओं और महात्माजी के संपर्क ने उनकी धार्मिक-भावना को उदार बना दिया है, यद्यपि आज भी वह ऋषियों की त्रिकालदर्शिता पर संदेह करने को तैयार नहीं हैं। करोड़पति सेठ के लड़के हैं, फिर दुनिया के कड़वे-मीठे का तजरबा उन्हें कैसे होता ? परन्तु सहृदयता और ईमानदारी उनमें पूरी मात्रा में है, यह उनके चारों साथी स्वीकार करने के लिए तैयार हैं।

पाँचवें पंच हैं, सबमें वयोवृद्ध किंतु अभी तीसवें साल में ही पैर रखते युधि-स्थिर या युधिष्ठिर। शिक्षा में वह किसी से पीछे नहीं हैं, साथ ही देशाटन ने उनके दृष्टिकोण को और विशाल बना दिया है। सिर्फ आयु के कारण ही दूसरे पंचों ने उन्हें अपना प्रधान या सरपंच नहीं बनाया, बल्कि उनमें सरपंच होने के गुण भी हैं। वह सबसे अधिक शांत हैं।

पहले दिन प्रधान हो जाने के बाद युधिष्ठिर ने कहा—आप लोगों के विश्वास के लिए मैं धन्यवाद देने क्यों जाऊँ, जब कि मैं अपने को आपका प्रधान नहीं मानता ? हममें से हरेक को अपने ज्ञान से अज्ञान का भान अधिक है। हम अपने देश की वर्तमान समस्याओं पर अलग-अलग विचार करते रहे हैं। कभी-कभी एक या दूसरे से मिलकर भी चर्चा करते रहे। आज हम पाँचों जने मिलकर उन पर विचार करेंगे, इससे शायद समस्याएं और साफ मालूम हों—

भगवानदास जी ने बीच में ही बोल दिया—'वादे-वादे जायते तत्त्व-बोधः'।

युधिष्ठिर ने अपनी बात जारी रखते कहा—हम वाद तो नहीं करने जा रहे हैं, यदि यहाँ कुछ है तो इसे संवाद कह सकते हैं। तत्त्व को खोज निकालना केवल पाँच मस्तिष्कों के लिए बड़े साहस की बात है, तो भी हम उन समस्याओं को मिलकर विचार करके उन्हें कुछ अधिक स्पष्ट अवश्य जान सकेंगे। लेकिन, हमारा संवाद बिलकुल स्नेह और मित्रतापूर्ण होना चाहिए।

खोजीराम—यदि हम स्नेह और मित्रता के साथ संवाद न करेंगे, तो हमारे पास उसी तरह दर्शकों की भीड़ लग जायगी, जैसे झाँव-झाँव करनेवाले पंडितों के शास्त्रार्थ में।

महीप—नहीं डाक्टर साहब, मैं युधिष्ठिर भाई की बात का मूल्य समझता हूँ। मुझे हृदय से विश्वास है, कि मेरे चारों साथी पूरी ईमानदारी के साथ समस्याओं पर सोचते हैं और किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए उतावले भी हैं; तो भी मुझे अपनी निर्बलता स्वीकार करने में उजुर नहीं है। मैं कभी-कभी जोश में आगे बढ़ जाता हूँ। यदि हमारे संवाद में वैसी नौबत आये, तो मैं आप लोगों से आशा रखता हूँ—विशेषकर युधिष्ठिर भाई से—कि मुझे रोक देंगे।

सामने बैठी रामी ने हँसते हुए कहा—इसकी चिन्ता न करें, युधिष्ठिर भाई को रोकने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

भगवानदास ने मुस्कुराते हुए कहा—रामीजी का एक संकेत तुम्हें चुप कराने के लिए काफी होगा।

महीप—मेरे लिए तो वह काफी होगा, लेकिन मुझे डर है कि कहीं आप न सारे शास्त्रों और वेदों को यहाँ उड़ेलने लग जायँ।

भगवानदास—शास्त्रों और वेदों से इतनी चिढ़ क्यों? क्या शास्त्रों और वेदों में कोई काम की बात नहीं है? क्या वहाँ कोई भी अकल की बात नहीं कही गई है? और फिर हमारा तो सिद्धान्त होना चाहिए, कि सत्य जहाँ मिले, वहाँ से उसे स्वीकार कर लेना चाहिए।

महीप—मुझे आशा है भगवान भाई, अपने इस सिद्धान्त को स्मरण रखेंगे और सभी तरह के पक्षपातों को छोड़कर सत्य को कहीं से भी ग्रहण करने के लिए तैयार रहेंगे।

खोजीराम—महीप, यदि भगवान भाई यह न समझ पाये होते, तो वह यहाँ न होते। उनके बाहर के आकार-प्राकार को देखकर भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। उनका नाम तो भगवानदास की जगह सत्यखोजी रखा जाता, तो अधिक ठीक होता।

युधिष्ठिर—अर्थात् आप हमारी मंडली में एक नहीं दो खोजी रखना चाहते हैं। अच्छा, तो आज हम अपने संवाद को आरंभ करते हुए कौनसी बात पहले लें?

रामी—स्वतंत्र-भारत के सामने आज बहुत-सी समस्याएं हैं।

महीप—क्षमा करना रामी बहन, यदि मैं आपके "स्वतंत्र" शब्द पर आपत्ति करूँ। मेरी समझ में भारत स्वतंत्र नहीं है; अब भी वह ब्रिटिश-साम्राज्य का,

जिसे चाहे राष्ट्रमंडल या कोई भी दूसरा नाम दे दिया जाय, एक अंग है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भारत को खुशी-खुशी नहीं छोड़ा, बल्कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ऐसी मजबूरियाँ उसके सामने आईं, जिनके कारण उसे भारत छोड़कर भागना पड़ा।--युद्ध समाप्त होते-होते अंगरेज आर्थिक तौर से दिवालिया हो गए।

खोजीराम---दिवालिया हो गए, यह बात ठीक है। विलायत की मजूर-पार्टी ने समाजवाद की बड़ी-बड़ी बातें और ऊँचे-ऊँचे प्रोग्राम रखे, लेकिन चुनाव के समाप्त होने के बाद जैसे ही मजूर-पार्टी ने बागडोर संभाली, ट्रूमन ने उधार-पट्टा में कोई चीज देने से इनकार कर दिया। प्रधानमंत्री एटली दौड़े-दौड़े अमेरिका पहुँचे, डालर-देवता के सामने नाक रगड़, कान पकड़कर उठे-बैठे।

भगवानदास---यदि कान पकड़कर न उठते-बैठते और मजूर-सरकार अपनी धुन पर चली जाती, तो क्या होता ?

महीप---क्या होता की बात पूछ रहे हैं ? दूसरे हफ्ते ही सारे इंगलैंड में त्राहि-त्राहि मच जाती। अमेरिका के मांस, अमेरिका के मक्खन पर भोग लग रहा था। अमेरिका की देन पर इंगलैंड कितने ही वर्षों तक जीता रहा। अमेरिका का उसके ऊपर इतना कर्जा है, जिसे आशा नहीं है, अब वह कभी चुका सकेगा। उस वक्त पैसा कहाँ था कि कहीं से खाने-पीने की चीजें मंगा के लोगों को खिलाता, कच्चा माल मंगवा के अपने कारखानों को चलाता ?

भगवानदास---अर्थात् अमेरिका की एक घुड़की पर इंगलैंड की मजूर-सरकार को सारा समाजवाद भूल गया।

महीप---मुझे यही कहना था, कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इंगलैंड ऐसी स्थिति में नहीं था, कि मनमानी कर सके। चर्चिल ने तो खुल्लम-खुल्ला इंगलैंड को युक्तराष्ट्र की उंचासवीं रियासत बना देने का प्रस्ताव रखा था। एटली ने भी कार्यरूप में वही किया। इंगलैंड वस्तुतः अब अमेरिका की एक रियासत-मात्र है। इंगलैंड ही नहीं, ब्रिटिश साम्राज्य---जिसे आँख में धूल झोंकने के लिए राष्ट्र-मंडल कहा जा रहा है---अमेरिका का एक अधीन देश है। भारत इसी ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का एक मेम्बर है।

भगवानदास---महीपजी, आप भूले जा रहे हैं, कि हम तुरन्त अपने देश को प्रजातंत्र घोषित करने वाले हैं।

✓महीप---मैं भूलता नहीं हूँ। कैसा अच्छा प्रजातंत्र है, जिसके राष्ट्रमंडल का प्रधान इंगलैंड का राजा है ! भारत का राजा नहीं, किंतु भारत और दूसरे राज्यों से मिलाकर जो राष्ट्रमंडल बना है, उसका प्रधान इंगलैंड का राजा। यह सब किसकी आँख में धूल झोंकने के लिए किया जा रहा है ?

भगवानदास—आशा है, आप किसी की नियत पर आक्रमण नहीं करेंगे, पढ़ा तो होगा कि हमने भारतवर्ष को "सर्वप्रभुत्वसंपन्न गणराज्य" घोषित कर दिया है। जल्दी ही हमारे देश में कहीं भी इंगलैंड के राजा का कोई भी चिह्न देखने में नहीं आयेगा। न हमारे सिक्के पर, न हमारे टिकटों पर उसकी मूर्ति रहेगी और न नोट या स्टाम्प-कागजों पर ही। हम अशोक-चक्र को राज्य-लांछन बना चुके हैं, अशोक-सिंह हमारी राज-मुद्रा पर आ चुका है।

महीप—यह सब होते हुए भी जिस राष्ट्रमंडल का भारत अंग है, उसका सब काम-काज इंगलैंड के राजा के नाम से होगा। भगवानदास जी, भोलेपन की बात छोड़ें। छोड़ दीजिये मूर्तियों और मुद्राओं की बात; ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का सदस्य बनकर भारत ने एशिया की स्वतंत्रता की लड़ाई में भाग लेना छोड़ दिया। मलाया के रबर और टिन को अपने हाथ में रखने के लिए जापानियों के सामने पतलून छोड़कर भागने वाले अंगरेजों ने आज फिर वही तानाशाही कायम करनी चाही है। वहाँ के लोग स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं, और अंगरेज कम्युनिस्ट कहकर उन पर गोले-गोलियों की वर्षा कर रहे हैं। वहाँ के बारे में भारत ने क्रूर मौन धारण कर रखा है।

खोजीराम—क्रूर मौन तो नहीं रह सकते महीप जी, मलाया में गणपति की फांसी पर भारत-सरकार ने अपना विरोध प्रकट किया था।

महीप—विरोध प्रकट किया, किन्तु उसे बचा नहीं पाये। अंगरेजों ने किसी शिखंडी का नाम लेकर छुट्टी पा ली। लेकिन, वहाँ एक गणपति नहीं, एशिया के हजारों गणपति अंगरेजी शासन की क्रूरता के शिकार हो रहे हैं; वहाँ कितने ही जलियाँवाला बाग रचे जा रहे हैं। क्या हमारे नेताओं ने अंगरेजों से दो टूक कहा, कि मलाया के स्वदेश-प्रेमी हमारे एशियाई भाई हैं, उनके खून से हाथ लाल करने वालों के साथ हम हाथ नहीं मिला सकते।

भगवानदास—यह मैं मानता हूँ कि मलाया में अंगरेज पहले ही जैसा अत्याचार कर रहे हैं, किंतु दुनिया में जहाँ-जहाँ अत्याचार हो रहा हो, सभी जगह हम ढाल बनने के लिए तो पहुँच नहीं सकते।

महीप—एक मलाया की ही बात नहीं है भगवान भाई, बर्मा में अंगरेजों के अपने तेल के कूएँ, खानें और क्या-क्या स्वार्थ हैं। वह नहीं चाहते कि बर्मा उनके प्रभाव से मुक्त हो जाय। बर्मा में इसी की लड़ाई है। एक पक्ष अंगरेजों के स्वार्थ को अक्षुण्ण रखने की कोशिश कर रहा है और दूसरा बर्मा को वास्तविक रूप में स्वतंत्र बनाना चाहता है। आज तक दुनिया की राजनीति में यह सदाचार माना जाता था, कम-से-कम कहने के लिए, कि गृहयुद्ध में बाहर की शक्तियों को हस्त-

क्षेप नहीं करना चाहिए। यूरोपीय साम्राज्यवादियों ने इसे कभी नहीं स्वीकार किया, यह बात ठीक है। यदि इसे स्वीकार किया होता तो एशिया में उनका प्रभुत्व नहीं बढ़ता। उन्होंने गृहयुद्धों में भाग लेकर अपना स्वार्थ सिद्ध किया। लेकिन सदियों तक दासता के मजे को चखे हमारे देश को तो यह शोभा नहीं देता, कि वह बर्मा के गृहयुद्ध में एक पक्ष को खुल्लमखुल्ला मौखिक ही नहीं बल्कि ठोस मदद देने जाय। आप किस तरह हमारी सरकार के बर्मा में हस्तक्षेप करने की नीति का औचित्य सिद्ध कर सकते हैं?

सोजीराम—लेकिन हस्तक्षेप तो तब कहते, जब सरकार यहाँ से सेना भेजती।

महीप—माफ कीजिये डाक्टर साहब, भारत के ही एक भाग नेपाल के सिपाही वहाँ लड़ने के लिए पहुँच चुके हैं।

युधिष्ठिर—आपको यह सिद्ध करना होगा, कि नेपाल भारत का एक अंग है।

महीप—क्या प्रथम विश्वयुद्ध के बाद अंगरेजों ने नेपाल के राजाधिराज को "हिज़ हाइनेस" की जगह "हिज़ मैजेस्टी" का कागजी खिताब दे दिया, इसीलिए नेपाल भारत से अलग हो गया? खैर, इसके बारे में फिर कहूँगा, लेकिन जानते हैं न, बर्मा में लड़ने के लिए भेजे गए नेपाली सैनिकों में से कितने ही दूसरी तरफ जा मिले। हमारी सरकार बुद्धिमानी कर रही है, जो सेना नहीं भेज रही है। लेकिन रुपये और हथियारों की सहायता क्या कम अपराध की बात है? मैं आपको ऐसे बहुत से उदाहरण दे सकता हूँ, जहाँ ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ हमारा गठबंधन बहुत बुरा हुआ है। एशिया के लोग भला हमारे देश से कौनसी आशा रख सकते हैं? खासकर कोरिया पर एंग्लो-अमेरिकन साम्राज्यवाद के आक्रामक युद्ध पर "सत्य वचन" कहकर तो हमने लुटिया डुबो दी। इसी से मैं कहता हूँ, अब भी हमारा देश अंगरेजों के पंजे से छूटा नहीं है। अभी भी उसे स्वतंत्र नहीं कहा जा सकता।

रामी—मैं एक बात कहूँ महीप भाई?

युधिष्ठिर—यहाँ कहने के लिए ही तो हम एकत्रित हुए हैं, इसमें क्या किसी को संदेह है?

रामी—हरेक चीज सापेक्ष हुआ करती है। कोई आदमी सुखी है, तो इसका अर्थ यह नहीं, कि उसके जीवन में दुःख, चिन्ता का लेश नहीं है। इसी तरह स्वतंत्रता को भी हमें सापेक्ष अर्थ में ही लेना चाहिए।

भगवानदास—ठीक कहा रामी बहन, हमें हरेक चीज को सापेक्ष अर्थ में लेना चाहिए।

महीप—रामी बहन को ही कहने दीजिये भगवान भाई, आप अपनी बारी में तो कुछ नहीं कह सके, केवल सरकार का ही अंधाधुंध समर्थन करते रहे।

युधिष्ठिर—आप लोग यदि इस तरह बात-में-बात निकालकर बोलते रहेंगे, तो हम विषय से दूर चले जायंगे। हमें आज की बैठक में इस बात पर विचार करना है, कि देश स्वतंत्र हुआ या नहीं।

रामी—मैं मानती हूँ कि पहले से १५ अगस्त १९४७ के बाद के भारत में भारी भेद है। मैं महीप भाई से इस बात में सहमत हूँ, कि अंगरेजों के साथ का यह गठबंधन हमारे लिए कलंक की चीज है। यदि हम आज भी दासता की कुछ कड़ियों को रखे हैं, तो अमेरिका के मुक्त हुए उस दास की तरह ही, जो मुक्त होने पर भी अपने स्वामी के अस्तबल को छोड़ना नहीं चाहता था।

महीप—तो यह तो रामी बहन, तुमने स्वीकार किया, कि हम अभी अस्तबल में जगह ढूंढ़नेवाले उसी दास की तरह हैं।

रामी—हाँ, मैं स्वीकार करती हूँ, किन्तु स्वेच्छा से स्वीकार करना और मजबूर होके स्वीकार करने में कुछ अन्तर तो अवश्य है। यह तो तुम मानोगे महीप, कि हमारे देश के उत्पीड़ित, दलित लोगों को न उठने देने के लिए, उन्हें पीस डालने के लिए दो-दो वज्र चक्की के पाट थे—एक हमारे देश के स्वार्थी शोषक राजा, जमींदार आदि और दूसरे अंगरेज। अंगरेज शिकंजे में हमें जकड़े हुए थे। उनकी सेना और सेनानायक ही नहीं, उनके साधारण नागरिक शासक और व्यापारियों तक को हम प्रभावित नहीं कर सकते थे, लेकिन आज हमारे देश के भीतर हमारा भाग्य हमारे हाथों में है।

महीप—ऐसा न कहो रामी बहन, हमारी सेना का महासेनापति कुछ ही महीने पहले तक अंगरेज था, और हैदराबाद के मामले में ऐन मौके पर उसने ऐसी चाल चली थी, कि यदि सफल हो गया होता, तो हम भारी विपदा में पड़ जाते। अभी भी सेना के कई बड़े-बड़े पदों पर अंगरेज मौजूद हैं। हमारे सारे सैनिक-रहस्य उन्हें ज्ञात हैं। वह हमारे तरुणों की सैनिक-शिक्षा के जिम्मेवार हैं और अब भी स्वतंत्रचेता तरुणों को चहारदीवारी के भीतर जाने का अवकाश नहीं है। मैं कम्युनिस्ट तरुणों की बात नहीं कर रहा हूँ, बल्कि एक होनहार नवतरुण को केवल इसलिए सैनिक-विद्यालय से अलग कर दिया गया, कि अंगेरेजों के समय सी० आई० डी० ने उसके बारे में सूचना दे दी थी, कि उस तरुण का सम्बन्ध किसी समय किसी दूसरी उग्र संस्था के साथ था।

रामी—मैं मानती हूँ, अभी भी अनावश्यक तौर से बहुत-से महत्वपूर्ण पदों-

स्थानों पर अंगरेजों को रखा गया है, शायद यह भी देश को खींचकर ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में ले जाने का कारण हुआ।

महीप—या यह कह सकते हैं, कि अभी भी हमारे राष्ट्र के कर्णधारों की आँखें अंगरेजों के प्रताप से चकाचौंध में हैं, अब भी वह दुनिया को उतना ही देख पाते हैं, जितना अंगरेजों ने हमें दिखलाया था। युधिष्ठिर भाई, इतना कहने के लिए मैं क्षमा चाहूँगा, कि हमारे नेताओं ने पुरानी दास-मनोवृत्ति को जरा भी अपने हृदय से नहीं हटाया है। उनके लिए दुनिया अंगरेज और अंगरेज दुनिया है; सारी विद्या, बुद्धि, शिष्टाचार-सदाचार के आदर्श अंगरेज हैं।

युधिष्ठिर—मैं समझता हूँ, रामी बहन को अपनी सापेक्ष स्वतंत्रता की बात समाप्त करने का मौका देना चाहिए।

रामी—मैं इतना ही कहना चाहती हूँ, कि १५ अगस्त सन् १९४७ और अब में अन्तर अवश्य है। आपने पतीले में पके भात को तो देखा होगा ?

सब हँस पड़े। रानी ने फिर अपनी बात जारी रखी—आप स्त्री और पतीले के सम्बन्ध का खयाल करके हंस रहे हैं।

युधिष्ठिर—हम हर्ष प्रकट करने के लिए ही हंसे। रामी बहन, हम यही चाहते हैं कि नारी और पतीली का यह सुन्दर सम्बन्ध सदा अक्षुण्ण बना रहे। इन पतली अंगुलियों के नीरस पतीली से लगते ही उसमें अमृत भर जाता है। मेरा भगवान् पर बिलकुल विश्वास नहीं है, लेकिन नारी और पतीली के इस मधुर सम्बन्ध को स्मरण कर किसी-किसी समय विश्वास करने का लोभ हो आता है।

भगवानदास—सो क्यों ?

युधिष्ठिर—इसीलिए कि कम-से-कम दुनिया में और जगह नहीं तो नारी और पतीली के सम्बन्ध में तो उसका हाथ दिखलाई पड़ता है, और हमारे वास्ते यह अच्छा ही है। लेकिन अब रामी बहन को बात खत्म करने देना चाहिए।

रामी—सूखे पके भात को यदि पतीली से अलग कर दिया जाय या पतीली उससे हटा दी जाय, तो भी भात उसी आकार में थक्का बाँधे रह जाता है, और जब तक सड़ने न लगे, तब तक उसे उसी आकार में रखा जा सकता है। पहले वैसे आकार में रखने की जिम्मेदारी पीतल की पतीली को थी, और अब वह काम भात की जाति-बिरादरी वाले किनारे के चावल कर रहे हैं। इसी तरह हमारा देश १५ अगस्त सन् १९४७ से पहले पीतल की पतीली जैसे अंगरेज शासकों और सैनिकों की जकड़बंदी में था, अब वह हमारी सीमा के भीतर प्रभुता नहीं रखते, या कम-से-कम साक्षात् दखल देने का अवसर नहीं रखते, लेकिन उसी तरह का

काम यदि हमारे अपने देशभाई करना चाहेंगे तो उन्हें देर तक सफलता नहीं मिल सकती।

भगवानदास—पतीले के कठोर बंधन के हटने के बाद राष्ट्र के कर्णधारों ने यदि देश की आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने का काम नहीं किया, तो उन्हें याद रखना चाहिए, कि किनारे के चावल अभेद्य दुर्ग नहीं हैं।

खोजीराम—मुझे तो अपने गाँव की कहानी याद आती है—"जो शालिग्राम को भूंज-भांजकर खा गया, उसे बैंगन भूनते कितनी देर लगेगी?"

युधिष्ठिर—अर्थात् देश की आर्थिक समस्याओं को हल करना होगा, उनके साथ खिलवाड़ नहीं करना होगा; नहीं तो चाहे हमें सापेक्ष, स्वतन्त्रता जितनी भी कम मिली हो, वह इतनी अवश्य है, कि निकम्मे शासक निकाल बाहर किये जा सकें।

२

विश्व-राजनीति

अगले दिन फिर सायंकाल को नीचीबाग के एक कोने में पाँचों पंचों की सभा जुरी। कल स्वतंत्र-भारत कहने पर विवाद उठ खड़ा हुआ था, और उसका निर्णय दो टूक नहीं हो सका। आज प्रश्न उठा कि राजनीति में पहले विश्व-राजनीति को लिया जाय या भारत की भीतरी राजनीति को। राजनीति की व्याख्या करते हुए युधिष्ठिर ने स्वयं कह दिया था, और जिससे सभी सहमत थे। राजनीति बहुत व्यापक चीज है, उसके निराकार नहीं, बहुत-से साकार रूप हैं, जिनमें देश की अर्थनीति या आर्थिक ढांचा विशेष महत्व रखता है।

महीप ने आज की बात के सम्बन्ध में कहा—हमें आज राजनीति को पहले लेना चाहिए, और विश्व के राजनीतिक-मंच पर भारत जो पार्ट अदा कर रहा है उस पर विचार करना चाहिए।

भगवानदास हिन्दू-कोड-बिल और अम्बेडकर की आलोचना कर डालना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने पूछ दिया—विश्व-राजनीति को पहले लेने का क्या काम है? दीपक पहले घर में जलाके मस्जिद में जलाया जाता है।

महीप—कभी-कभी मस्जिद के मीनार पर बिना दीपक जलाये घर को प्रकाश नहीं मिलता। यह भी हमारे लिए कम दिलचस्प बात नहीं रहेगी। हमारे राष्ट्रकर्णधारों में विश्व-राजनीति की सर्वज्ञता सुनी जाती है। हमें अपने राष्ट्र को विश्व-राजनीति के प्रकाश में देखना चाहिए, और राष्ट्र-कर्णधारों की बुद्धि को भी।

सबकी राय हुई कि राजनीति पर आज विचार किया जाय। महीप ने बड़े उत्साह के साथ कहना शुरू किया—कितने ही लोग समझते हैं, कि विश्व या अन्तर्राष्ट्रीय-राजनीति कचहरी में वकीलों के अखाड़ा जैसी है, जहाँ बहस और नजीर के बल पर विजय प्राप्त की जा सकती है। इसका उदाहरण वह इंगलैंड को देते हैं। वह समझते हैं कि इंगलैंड के वाग्मी और वकील राजनीतिज्ञों ने हर जगह अपनी पैनी सूझ और वक्तृत्वकला से पासा पलट दिया।

रामी—तो तुम समझते हो, प्रत्युत्पन्न-बुद्धिता तथा वाग्मिता ऐसी जगहों पर कोई काम नहीं करतीं?

महीप—मैं उन्हें बेकार नहीं समझता। कोई भी काम सिर्फ एक कारण से

नहीं होता, चाहे वह कारण कितना ही बड़ा हो। बहुत से कारण मिलकर एक कार्य को करते हैं। उन कारणों में जो छोटे भी हैं, वह भी अपना महत्त्व रखते हैं, क्योंकि उनके बिना कार्य नहीं हो सकता। लेकिन, कारणों में कुछ को प्रधान या बड़ा कहा जाता है और कुछ को छोटा। इंगलैंड हो या अमेरिका, रूस हो या जर्मनी सभी जगह अंतर्राष्ट्रीय-पंचायतों में उसी की बात मानी जाती है, जिसके पास ठोस सामरिक शक्ति है। चीन में अफीम-युद्ध या बाक्सर-युद्ध में अंगरेज वाग्मिता के बल पर नहीं, बल्कि अपने सैनिक जहाजों, उनकी महान् तोपों और अग्निबोटों के बल पर हमेशा स्वार्थ-साधन करने में सफल होते रहे।

युधिष्ठिर—मैं तो यह भी कहूँगा, कि अन्तर्राष्ट्रीय-रंगमंच पर वाग्मिता की दुहाई ही फजूल है, क्योंकि वहाँ वक्ता अपनी भाषा में अपनी वक्तृत्व-कला भले ही दिखाये, लेकिन श्रोताओं में बहुतेरे ऐसे होते हैं, विरोधियों में विशेषकर, जिनके लिए वह सारी वक्तृत्व-कला है भैंस के आगे बीन बजाना। वह तो उसे तब समझते हैं, जब उनके लिए दुभाषिया उल्था कर देता है। उल्था अगर पहले से किया रहता है, तो संदेह नहीं, भाषा अच्छी होती है, किन्तु उसमें वक्ता की वक्तृत्व-कला का कहाँ पता होता है?

खोजीराम—और ऐसी बैठकों में सदा ही पहले से तैयार किये गए भाषणों को तो दिया नहीं जा सकता। कितनी ही बार वहाँ भाषण नहीं संवाद या विवाद होता है, जिसका सारा काम दुभाषियों के जरिये होता है। इसलिए सिर्फ बात के भरोसे जीत की बात कहनी ठीक नहीं है।

रामी—लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध या विदेशी राज्यों के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए तो ऐसे ही प्रतिनिधि भेजे जाते हैं, जिनको वहाँ की भाषा, संस्कृति, इतिहास का परिचय हो—कम-से-कम उनका उस देश की भाषा से अवश्य परिचय हो, जहाँ उन्हें भेजा गया है।

महीप—रामी बहन, तुम भी बहुत भोली हो।

भगवानदास—मैं ऐसे अपार्लमेंट्री शब्द के प्रयोग का विरोध करता हूँ।

महीप—यदि ऐसा है, तो मैं नौ बार दसों नखों से हाथ जोड़कर रामी बहन से क्षमा माँगता हूँ।

रामी—क्षमा माँगने की आवश्यकता नहीं है महीप भाई, मैं समझती हूँ, कोई बात ऐसी होगी, जिसको जाने बिना मैंने कहा और इसीलिए तुमने मुझे भोली बनाया।

महीप—हाँ, बहन और देश में चाहे न हो, लेकिन हमारे देश में तो "स्वतंत्र" होने के बाद से ही वैसा नियम-सा बन गया है, और हमारे वही दूत या प्रतिनिधि

कहीं भेजे जाने के योग्य समझे जाते हैं, जो कि वहाँ की भाषा, देश के इतिहास, संस्कृति, रीति-रिवाज आदि से बिलकुल अपरिचित हैं। हाँ, यह ध्यान अवश्य रखा जाता है, कि वह अंगरेजी अच्छी तरह से बोल सकें। आखिर हमारे देश की स्वतंत्रता का यह भी कितना अच्छा प्रमाण है, कि हमारे दूतावासों का सारा काम-काज अंगरेजी में चलता है, और हमारे दूत या प्रतिनिधि अपने पद के प्रमाण-पत्र को भी अंगरेजी में पेश करते हैं, हस्ताक्षर भी उनके अंगरेजी में होते हैं।

खोजीराम—सचमुच ही यह लज्जा से गड़ जाने की बात है, इससे बढ़कर जातीय-अपमान क्या हो सकता है?

महीप—लज्जा की बात छोड़िये डाक्टर साहब! लज्जा की क्या बात है, जब हम ब्रिटिश-राष्ट्रमंडल के भीतर हैं, और कौरवों-पांडवों की भाँति भीतर के लिए पाँच और सौ होते हुए बाहर के लिए १०५ हैं, तब ब्रिटिश-राष्ट्रमंडल की भाषा अंगरेजी का अन्तर्राष्ट्रीय-क्षेत्र में व्यवहार करना कौन सा अपराध है?

रामी—इतना व्यंग न करो महीप, हमारी तत्कालीन राजदूता ने मास्को में हिन्दी में अपना दौत्य-प्रमाण-पत्र पेश किया था और हमारे प्रधान-मंत्री ने स्तालिन के पास हिन्दी में तार द्वारा अभिनन्दन भेजा था।

महीप—यह सब अपनी खुशी से नहीं रामी बहन, इसके लिए रूसियों ने ही मजबूर किया, तब ऐसा हुआ। उन्होंने हमारी दूता से कहा कि न अंगरेजी हमारी सात पीढ़ी की मातृभाषा और न आपकी ही; अंगरेजी में भी पेश करने पर हमें रूसी में अनुवाद करना पड़ेगा, तो क्यों न हिन्दी से ही अनुवाद करें।

भगवानदास—यहाँ महीप जी, मैं आपसे सहमत हूँ। मैंने तो यह भी सुना था, कि मास्को के भारतीय-दूतावास में भेजे जाने वाले लोगों को इस तरह चुना गया था, कि हिन्दी बोलने-जानने में वह साहबों से थोड़े अधिक हों। प्रमाण-पत्र में सोवियत् के राष्ट्रपति को "सभापति" कह के सम्बोधित किया गया था, जिस पर रूसियों की तरफ से एतराज हुआ और उनके सुझाव के अनुसार "राष्ट्रपति" बनाया गया।

रामी—विजयलक्ष्मी जी की दौत्य-योग्यता से तो आप सभी सहमत होंगे। वह स्त्री-जाति के लिए अभिमान की चीज हैं। वह पहली स्त्री हैं, भारत की ही नहीं, विश्व की, जिन्हें इतना दायित्वपूर्ण पद मिला। मैं समझती हूँ, किसी पुरुष से कम योग्यतापूर्वक उन्होंने अपने दायित्व का निर्वाह नहीं किया।

भगवानदास—मैं तो रामी बहन, विजयलक्ष्मी जी को आधुनिक काल की पंच-कन्याओं में मानता हूँ। फिर उनकी योग्यता के बारे में संदेह करने की गुंजाइश कहाँ है?

सब लोग हँस पड़े और रामी जी ने पूछ दिया—पंच-कन्याओं का नाम तो प्रातः स्मरणीय पाँच यशस्विनी महिलाओं के लिए सुना था। पिताजी सवेरे उठकर जहाँ "अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्चीह्यवन्तिका। पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिका:।" का पाठ करते, वहाँ साथ ही यह भी—

"अहल्या, द्रौपदी, तारा, कुन्ती, मन्दोदरी तथा।
पंचकन्या स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनी:॥"

भला हम भी सुनें, आज की वह कौनसी स्त्री-समाज की आदर्शभूता पाँचों कन्यायें हैं ?

भगवानदास—सुनिये; श्लोक ही आपको सुनाये देता हूँ—

"सरोजिन्यमृते चैव विजया कमलारुणे।
पंचकन्या: स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनी:।"

खोजीराम—भाई चुनाव तो बहुत अच्छा हुआ है, और मैं समझता हूँ, आज के भारत में इनसे बढ़कर प्रातःस्मरणीया महिलाएं नहीं हो सकतीं।

महीप—मैं समझता हूँ, भगवानदास जी ने जो यह पाँच कन्यायें आविष्कृत की हैं, इनकी योग्यता के बारे में कुछ कहना छोटे मुंह बड़ी बात होगी। किन्तु, मैं इतना अवश्य कहूँगा, कि यह देश के भीतर ही प्रातःस्मरणीया रहें। विजयलक्ष्मी सासानीबम्बिश्नानूबम्बिश्न (रानियों की रानी) से कम दिमाग वाली नहीं है, और उनको भेज दिया गया मास्को, जहाँ के लिए वह बिलकुल अनफिट स्थल में पानी की मछली जैसी थीं। दो साल वहाँ रहकर वह एक जौ-भर भी तो मास्को को दिल्ली के नजदीक नहीं ला सकीं। लेकिन उनको क्या दोष दिया जाय, जब कि बड़े भैया की सारी शक्ति दूसरी ओर लगी थी। यदि उन्होंने कुछ किया है, तो यही कि मास्को के भारतीय दूतावास को इंगलैंड और अमेरिका के टक्कर का बना दिया।

खोजीराम—यह मत कहो महीप, इतनी बेदर्दी से भारत के गरीबों की कमाई में आग लगाना सहृदयता का परिचय नहीं देता[1]।

१—भारतीय दूतों का खर्च (१९४८ में) था—

वाशिंगटन	२२,८६,८००	मास्को	८,४१,३००
पेरिस	४,१६,०००	चीन	६,८०,१००
ब्रुसेल्स	३,९८,९००	मिस्र	७,२३,०००
ईरान	६,५२,१००	नेपाल	२,१३,२००
अफगानिस्तान	४,५४,४००	ब्राजील	४,३७,९००

महीप—सहृदयता जाय चूल्हे-भाड़ में डाक्टर साहब, वहाँ तो भारतवर्ष के मान को ऊपर रखना था। सेवाग्राम की फूस की झोंपड़ी में गाँधी भले ही विलायती लार्डों का आतिथ्य करके अपने देश के मान को कायम रख सकें, लेकिन मास्को सेवाग्राम नहीं है। हमारी राजदूता को मास्को के बने फर्नीचर पसन्द नहीं आये, वह स्वयं विमान से उड़कर फर्नीचर खरीदने स्वीडन पहुँचीं। अपनी कलात्मक सुरुचि के अनुसार ही उन्होंने भारतीय-दूतावास को सजाया होगा।

भगवानदास—और इस पर भी आप उन्हें अनफिट और असफल कहना चाहते हैं?

युधिष्ठिर—नहीं, असफल क्यों? डाक्टर राधाकृष्णन् के लिए वह पहले से ऐसा दूतावास तैयार कर आई हैं, जिसे देखकर इन्द्रभवन भी सिहाता होगा।

महीप—मैं अपनी भूल को मानता हूँ, और अनफिट शब्द को वापस लेता हूँ। मैं समझता हूँ, वह सबसे फिट राजदूता हैं, यदि किसी और दूत को भेजने से पहले उन्हीं को हमारे सभी बड़े-बड़े दूतावासों में भेज दिया जाय, निश्चय ही उनकी कायापलट हो जायगी, और वह सजकर ऐसे जगमग-जगमग करने लगेंगे, कि दुनिया दाँत तले ऊंगली काटने के लिए तैयार हो जायगी। लेकिन छोड़िये ये बाहरी बातें, हमें यहाँ चिरतरुणी श्रीमती विजयलक्ष्मी की बात तो नहीं करनी है।

खोजीराम—श्रीमती नहीं मैडम, अब हमारे अखबारों के कोई-कोई विदेशी संवाददाता उन्हें मैडम कहने लगे हैं।

महीप—अच्छी बात है मैडम ही सही। दूसरा राजदूत चीन का ले लीजिये। श्री पनिक्कर की योग्यता यही है कि वह अंगरेजी के बड़े लेखक और वक्ता हैं, लेकिन चीन के राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री और उनके अधिकांश मन्त्रियों का अंगरेजी से उतना ही वास्ता है, जितना खरगोश का सींग से।

भगवानदास—तो वह काम कैसे चलाते होंगे? क्या सब काम दुभाषिया के ही भरोसे चलता है?

तुर्की	६,७४,१००	परागाय	१,९५,१००
रंगून	४,३८,९००	बेर्न (स्विजरलैंड)	४,९३,७००
स्टाकहाम	१,३१,४००	लंदन (हाईकमिश्नर)	४५,४०,०००
आस्ट्रेलिया	२,१२,६००	कोलम्बो	२,०८,५००
कराची	५,३८,०००	जोहानेसबर्ग	१,३४,२००
लाहौर	२,९३,३००	ढाका	१,४२,८००
तोक्यो (जापान)	३,३६,९००		

महीप–हाँ, दुभाषिया के भरोसे। लेकिन दुभाषिया किसी भारतीय भाषा से चीनी भाषा में अनुवाद नहीं करता, बल्कि अंगरेजी से–पनिक्कर साहब अंगरेजी में बोलते हैं, उसका चीनी में अनुवाद करके चो-अन्-लाई को सुनाया जाता है, फिर उनकी चीनी को अंगरेजी में करके पनिक्कर साहब के सामने रखा जात है।

भगवानदास–कितना भारी अपमान! चीन के लोग क्या समझते होंगे?

युधिष्ठिर–चीन के लोग भारत को अच्छी तरह समझते हैं। उनका और हमारा सम्बन्ध दो हजार वर्षों का है, और ऊपर-ऊपर का नहीं। उन्हें भारत के बारे में कोई गलतफहमी नहीं हो सकती।

भगवानदास–गलतफहमी नहीं हो, किन्तु हमारा पुराना सम्बन्ध दोनों देशों को और नजदीक लाने में बहुत सहायक हो सकता था।

युधिष्ठिर–आप तो दूसरी ही बात बीच में डाल रहे हैं। लेकिन, अभी तो हमारे पास वस्तुतः उपयुक्त दूतों का एक तरह अभाव है। हमारे दूत यदि कुछ थोड़ा-बहुत काम कर सकते हैं, तो इंगलैंड और अमेरिका में ही।

भगवानदास–आज यदि इञ्जीनियरी या मेडिकल कालेज में किसी छात्र को भेजें तो चार-पाँच वर्ष बाद वह तैयार होकर निकलता है, फिर व्यावहारिक शिक्षा भी आवश्यक होती है। लेकिन क्या भावी राजदूतों के तैयार करने का भी कोई आयोजन दिखाई दे रहा है?

खोजीराम–आयोजन की बात पूछ रहे हो? आयोजन यही है कि भाई-भतीजे-भांजे यदि कहीं तीन-चार सौ मासिक पा रहे हों, तो चट उन्हें किसी दूतावास में दो हजार की जगह पर भेज दिया जाये। बस अंगरेजी बोलना आना चाहिए और पोशाक में टिपटाप हों। हाँ, विशेष अवसर पर राष्ट्रीय-पोशाक लगाने का भी अभ्यास जरूर होना चाहिए।

रामी–राष्ट्रीय पोशाक! कौनसी राष्ट्रीय पोशाक?

महीप–राष्ट्रीय पोशाक आपको मालूम नहीं? वही जिसे महामान्य नेहरू जी मौके-बेमौके धारण करते हैं।

रामी–मुझे तो सचमुच नेहरू जी की बुद्धि पर तरस आता है। उससे भद्दी रूप बिगाड़ने वाली तो कोई पोशाक न होगी।

महीप–धन्यवाद रामी बहिन, तुम्हारे फैसले पर। यह राष्ट्रीय पोशाक का चूड़ीदार पायाजामा! यदि कहीं आदमी के पैर दुबले-पतले हुए तो 'शंकर' का कार्टून बन जाता है। और वह घुटनों तक लटकता अचकन, जिसे काट-छाँटकर शेरवानी का रूप दे दिया गया है। दोनों के बाद सिर्फ पटे के बाल और बगल में

सिर्फ एक चीज की कमी रह जाती है। भला इसमें कौनसी सुरुचि का परिचय मिलता है ?

युधिष्ठिर—सुरुचि की बात कह रहे हो, यह तो बड़ी ही अरुचिपूर्ण पोशाक है। सन् १९३५ ई० में तोकियो में एक दक्षिण भारतीय सज्जन इसी राष्ट्रीय पोशाक का प्रदर्शन कर रहे थे। एक जापानी दोस्त ने मुझसे कहा था कि मैं उन्हें पोषाक के दोष समझा दूं। मैंने धृष्टता की, लेकिन भारतीय दोस्त—तारीफ यह कि वह मद्रासी थे—ने एकदम कह डाला, हमें जापानियों की रुचि की परवाह नहीं।

रामी—आप जानते हैं युधिष्ठिर भाई, भारतीय मुसलमान महिलाएं इस चूड़ीदार पाजामे को राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और धार्मिक पोशाक मानती थीं, लेकिन जब उन्होंने अपने को शीशे में देखा, तो बात समझ में आ गई, और देखते हैं न पक्की पाकिस्तानियों तक ने भी उसे छोड़कर साड़ी को अपना रखा है।

खोजीराम—यहाँ न संस्कृति की बात है न सुरुचि की ही, यदि है तो दुराग्रह मात्र। भला यह राष्ट्रीय पोशाक कैसे हुई। यदि राष्ट्रीय पोशाक है, तो पहले राजाजी और सरदार पटेल को इसे पहनना चाहिए। मुगलों के वक्त की यह नकल है। यदि राष्ट्रीय संस्कृति का ही ध्यान रखना है, तो फिर धोती और अङ्ग-रखा होना चाहिए। मैं समझता हूँ, वह इस बेहूदी पोशाक से हजार गुना सुन्दर होगा। यदि यह नहीं पसन्द है, तो कोट-पतलून रहने दीजिये। आखिर कोट-पतलून अठारहवीं शताब्दी के यूरोप में नहीं पहना जाता था, वह तो आधुनिक पोशाक है, और हमारे देश की गर्मियों को छोड़कर काम के लिए भी अच्छा है।

युधिष्ठिर—हम लोग फिर बहकने लगे। हमें विश्व-राजनीति पर विचार करना है।

भगवानदास—यह तो स्पष्ट हो गया, कि विदेशों में हम जिनको भेज रहे हैं, वे पक्के गोइयाँ नहीं हैं।

महीप—और न पक्के गोइयों को तैयार करने की हम कोशिश कर रहे हैं। दिल्ली विश्व-विद्यालय में हमें एक फेकल्टी खोलनी चाहिए, जिसमें सभी स्वतंत्र देशों की भाषाओं के ही पढ़ाने का प्रबंध न हो, बल्कि ४-५ साल में उन देशों की संस्कृति, इतिहास आदि सभी के सम्बन्ध में विशेषज्ञ तैयार किये जा सकें। किन्तु हमारे कर्णधारों को समझाये कौन ?

खोजीराम—लेकिन महीप भाई, १५ अगस्त सन् १९४७ ई० को तीन साल ही तो बीते हैं, जन्मभर का कोढ़ क्या एक एतवार से कहीं दूर हुआ है ?

महीप—लेकिन एक एतवार भी तो शुरू होना चाहिए। हम तो कोई एतवार नहीं देख रहे हैं। जान पड़ता है, जहाँ तक बाहरी दौत्य-सम्बन्ध स्थापित करने

की बात है, उन्हीं पुराने नौकरशाहों को दस वर्ष तक इधर-से-उधर घुमाया जायगा— सुनते हैं अब भूतपूर्व राजाओं तथा राजपुत्रों को भी राजप्रमुख और प्रान्तों के गवर्नर तक ही न रखके दूत बनाने की बात हो रही है।

खोजीराम—और महीप भाई, पुराने मुकुटधारियों में एक तो हीरा हमारे हाथ में बेकार जा रहा है।

महीप—सो कौन ?

खोजीराम—काश्मीर और जम्मू के महाराज सर हरीसिंह जी० सी० आई० ई०, जी० सी० एस० आई०, जिनकी शाहखर्ची की दुनिया दाद दे चुकी है। फिर तुर्की के दूत को लौटाने की क्या जरूरत थी ?

महीप—मैं तो समझता हूँ, हमारे बूढ़े कर्णधारों से कोई भी सन् १९६० ई० से आगे रहने की आशा नहीं रखता और इस दस साल तक तो अभी पुराने तर्कश के तीर उनके पास मौजूद हैं ही।

खोजीराम—चाहे वह तर्कश के तीर मोर्चा खाकर बेकार ही क्यों न हो गए हों ?

युधिष्ठिर—तो क्या राजदूतों और राज-प्रतिनिधियों तक ही हमारी आज की बैठक सीमित रहेगी ?

महीप—नहीं, हम यही बतलाना चाहते थे, कि जहाँ भविष्य की वैदेशिक राज नीति की इमारत की हमें ठोस नींव डालने की आवश्यकता थी, वहाँ कोसी, दामोदर महानदी, नर्मदा, कावेरी की कागजी घोषणाओं तक भी वह नहीं पहुँची है। वैदेशिक राजनीति की सर्वज्ञता की बात कुछ मत कहिए। अभी तक तो उसमें सभी जगह नौसिखियापन ही देखा जाता है। ले लीजिए कश्मीर के ही झगड़े को। जब कश्मीर भारत में सम्मिलित हो गया, तो उसके मामले को राष्ट्रसंघ में ले जाने की क्या आवश्यकता थी ? राष्ट्रसंघ को नचाने वाले एंग्लो-अमेरिकन गुट की रुझान का क्या पहले से पता नहीं था ? कौन नहीं जानता था, कि यह दोनों साम्राज्यवादी देश सोवियत् के सीमान्त पर अवस्थित गिलगित के इलाके को ऐसे राज्य के हाथ में रखना चाहते हैं, जो सदा उनके मुंह की ओर देखनेवाला हो, और ऐसा राज्य पाकिस्तान ही हो सकता है।

खोजीराम—उस वक्त न सही महीप जी, किन्तु अब तो भारत अपने को आप्रलय न्यायावतार, जनतंत्रता-समर्थक, समता-प्रसारक, परद्रव्ये-लोष्ठवत्-दर्शी पवित्र ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का अंग बना चुका है। अब तो कोई डर नहीं।

युधिष्ठिर—बकरे की जान गई, खाने वाले को स्वाद नहीं आया। सब करने पर भी कश्मीर का मामला हमारी इच्छानुसार हल होता दिखाई नहीं पड़ता

खोजीराम—क्या कश्मीर का बंटवारा हो जायगा, या सब बात वोट पर रख दी जायगी ?

महीप—मैं तो कहूँगा, कश्मीर के बारे में हमारे राजनीति-सर्वज्ञ ने अपने राजनीतिक-दिवालियेपन का परिचय दिया है ।

युधिष्ठिर—ये बड़े कठोर शब्द हैं । मैं समझता हूँ, इसी भाव को नरम शब्दों में भी कहा जा सकता है ।

महीप—अच्छा, मैं कहूँगा कश्मीर के बारे में जो कदम उठाया गया, वह बहुत भूल का था । यह राजनीतिक चाल नहीं जुआ खेला जा रहा है और बहुत बुरी तरह का जुआ । सर्वज्ञ देवता कहते हैं, कश्मीर के बारे में निष्पक्ष राय ले ली जाय । यहाँ तक तो कोई बात नहीं, किन्तु साथ ही वह यह भी कहते हैं, कि यदि लोगों का बहुमत वैसी राय दे दे, तो सारा कश्मीर भारत में आ जाय, यदि ५१ प्रतिशत वोट पाकिस्तान के पक्ष में हों, तो सारा जम्मू-कश्मीर पाकिस्तान को मिल जाय ।

भगवानदास—अनर्थ, अनर्थ ! क्या वे इलाके भी पाकिस्तान को दे दिये जायँ, जहाँ के ७०-८० फीसदी लोग भारत में रहना चाहते हैं, और पाकिस्तान में जाने के बाद हिन्दू और बौद्ध होने के कारण जिन्हें पंजाब-सिंध के भाइयों की भांति सब कुछ छोड़कर शरणार्थी बन भारत की ओर भागना पड़े ?

युधिष्ठिर—नेहरूजी को विश्वास है, कि उनके सात पीढ़ी पहले के पूर्वजों के उत्तराधिकारी उनकी ओर हैं, बहुमत उन्हें मिलेगा । वहाँ बहुमत का अर्थ है, दो-तिहाई मुसलमानों का बहुमत, वह हिन्दुस्तान के पक्ष में वोट देगा, इसलिए गिलगित तक और शायद चित्राल तक भारत की ध्वजा फहराने लगेगी ।

भगवानदास—चौबेजी भी छब्बे बनने चले थे, जानते हैं न ?

महीप—और दूबे ही रह गए । वह तो दूबे रह भी गए, यहाँ तो सरासर जुआ खेला जा रहा है और जम्मू वालों के मत्थे ।

युधिष्ठिर—जम्मू वालों के ही मत्थे नहीं, लद्दाख के बौद्ध 'त्राहि', 'त्राहि' कर रहे हैं । वहाँ कोई नहीं चाहता कि लद्दाख पाकिस्तान में जाय, लेकिन यदि मीरपुर, पुंछ, कश्मीर-उपत्यका, दरदिस्तान, बालतिस्तान अपने बहुमत को पाकिस्तान के पक्ष में दे दें, तो 'लौटें राम सिया मैं हारी' कहते नेहरूजी सबको पाकिस्तान में ढकेलने के लिए तैयार हैं—जब कश्मीर नहीं मिला, तो दूसरों को लेकर क्या करना है !

महीप—इसीलिए मैं इसे जुआ कहता हूँ । कश्मीर-जम्मू रियासत में मतदान का सवाल ही क्यों उठाया गया ? अंग्रेजों ने चलते समय मान ही लिया था, कि रियासत जहाँ जाना चाहे, जा सकती है । जब कश्मीर ने भारत में आना स्वीकार

कर लिया, तो द्रौपदी को दाव पर लगाने की क्या आवश्यकता थी ? यदि पाकिस्तान झगड़ा करता, तो एक बार सारी शक्ति लगाके वहाँ की भूमि को अरिविहीन कर दिया जाता। यदि मतदान ही मानना था, तो भाषा की दृष्टि से डोगरी, पंजाबी, दरदी, बाल्ती, कश्मीरी और तिब्बती (लद्दाखी) के छ भाषा क्षेत्र हैं। एक-एक क्षेत्र को एक-एक इकाई मानते, और प्रत्येक इकाई का वोट उसी के भाग्य के निपटारे के लिए माना जाना चाहिए। निश्चय ही पंजाबी भाषा-भाषी क्षेत्र में नेहरूजी बहुमत क्या दस सैकड़ा भी वोट पाने की आशा नहीं रख सकते। वही बात दरद और बाल्ती-क्षेत्र की है।

भगवानदास–अब भी क्यों नहीं अकल आती। इसे साफ-साफ कहने में क्यों लज्जा आती है ?

महीप–हमारे अद्वितीय राजनीतिज्ञ एकबोला बनना चाहते हैं। पाकिस्तान इससे कहीं होशियार है। पहले वह कश्मीर में अपने दखल देने की बात को स्वीकार नहीं करता था, लेकिन अन्त में उसने साफ मान लिया–शायद उसके गुरु अंगरेजों का भी इसमें हाथ है। भारत भी साफ कह सकता है, कि वैधानिक तौर से कश्मीर भारत के भीतर है, इसलिए हम किसी पंच-पंचायत को नहीं चाहते। यदि मत लेना हो, तो उसके प्रभाव को एक-एक भाषा-क्षेत्र के भीतर सीमित करके रखना चाहिए।

खोजीराम–मुश्किल यह है, कि युक्त राष्ट्रसंघ को ऐसी बातों में बिलकुल पंगु देखते हुए भी हम अपनी अदूरदर्शिता का परिचय देते हैं। क्या देखा नहीं, फिलिस्तीन में यहूदियों ने राष्ट्रसंघ के बल पर सफलता नहीं पाई।

महीप–और दूसरी बात लीजिए। रियासतों के बारे में आगे चर्चा करेंगे, किन्तु नेपाल को हमारे महान् राजनीतिज्ञ भारत के भीतर नहीं बल्कि बिलकुल सर्व-प्रभुत्वसंपन्न महान् राष्ट्र मानते हैं। ब्रिटेन-अमेरिका अपने-अपने राजदूत वहाँ भेज रहे हैं, अपने यहाँ नेपाल के दूतावास स्थापित कर रहे हैं, नेपाल को सैनिक अड्डा बनाने की बात है। तो भी हमारी सरकार अपने बड़े भाइयों से पीछे नहीं रहना चाहती, बल्कि वह भी नेपाल को भारत से बिलकुल दूर चन्द्रलोक के पास का कोई राष्ट्र मानकर अपने शिष्टमंडल और राजदूत भेज रही है। कौन नेपाल ? दुनिया में सबसे निकृष्ट प्रतिगामी, सामन्तशाही क्रूरशासन रखने वाला नेपाल–जहाँ जनता को कोई अधिकार नहीं है, असली राजा को भी कोई अधिकार नहीं है। जहाँ खूनी काण्ड के बल पर पुश्तैनी मन्त्री राणाखान्दान के पचास-साठ परिवार सारे देश और वहाँ की जनता को अपनी वैयक्तिक सम्पत्ति बनाये हुए हैं। नेपाल की तराई में हमारे वही भाई बसते हैं, जो बगल के हमारे जिलों में; लेकिन

हम उन्हें चन्द्रलोक की प्रजा समझना चाहते हैं। नेपाल जानता है, किसी भी समय जनता का रुख विरोधी होने पर भारत-सरकार को अपना रुख बदलना पड़ेगा, इसलिए वह चाहता है कि जल्दी राष्ट्रसंघ का मेम्बर बन जाय, जिससे पड़ोसी भारत उसके भीतर दखल देने लायक न रह जाय। सचमुच ही हमारे यहाँ राजनीति का अजीर्ण हो गया है। नेपाल के राष्ट्रसंघ का सदस्य होने में सबसे पहले भारत को विरोध करना चाहिए था, लेकिन विरोध किया है रूस ने।

भगवानदास—भाई, मैं तो शास्त्र-वेद का विद्यार्थी था। गाँधीजी में श्रद्धा बढ़ी, तो कुछ राजनीतिक बातें भी सुनने लगा। पिता ने नहीं चाहा था, कि मैं म्लेच्छ-भाषा में हाथ लगाऊँ, लेकिन देखा कि उसके बिना राजनीति समझना मुश्किल है, फिर चोरी छिपके कुछ अंगरेजी भी पढ़ ली और अब तुम्हारे पास भी आया। लेकिन, मैं तो देखता हूँ, हमारे प्रधान-मन्त्री की सूझ की धाक आज सारी दुनिया में है।

महीप—क्योंकि हमारी दुनिया रूटर और अंगरेजी अखबारों तक ही सीमित है। बड़े-बड़े अखबार पूंजीपतियों के हाथ में हैं, और वह नेताओं के गुणगान में कालम-के-कालम काले कर रहे हैं, वैसे ही जैसे कुछ साल पहले चीन के अखबार करते थे। हमारे प्रधान-मंत्री ने तो पीछे जाकर भारत को ब्रिटिश राष्ट्रसंघ में ढकेला, किंतु ब्रिटिश समाचार-साम्राज्य को तो हमारे पत्रस्वामी पूंजीपतियों ने पहले ही स्वीकार कर लिया है। रूटर की आँखों से अब भी हम दुनिया को देखते हैं। इंगलैंड, अमेरिका के अखबार तो बड़ों-बड़ों को बुद्धू बनाने में होशियार हैं, बेचारे हमारे प्रधान-मंत्री उन्हीं की तान पर नाचते हैं। उसी तान का एक रूप यह अखबारी तारीफ का पुल भी है। रोटी मुंह में दाबे कौवे को देखकर बिल्ली ने "अहो रूपं, अहो ध्वनिः" कहना शुरू किया। फुल-फुला होकर कौवे ने अपने मुंह की रोटी गँवा दी। इन अखबारी तारीफों से राजनीतिज्ञता की परीक्षा नहीं होती, परीक्षा होती है परिणाम से। और अभी तक कहीं पर भी हमारे राजनीतिज्ञ कोई सफलता नहीं दिखला पाये। मैंने पहले ही कहा था, कि राजनीति की बाजी बात के बल पर नहीं जीती जा सकती। विदेश-मंत्री की शक्ति सेना-मंत्री के बल पर अवलंबित है। यदि सेना-मंत्री के हाथ मजबूत हैं, तो विदेश-मंत्री अपने काम में जरूर सफल होगा, उसकी बात को लोग बड़े ध्यान से सुनेंगे—"बिनु भय होय न प्रीति।"

भगवानदास—इसका अर्थ तो यह हुआ, कि हमें अपनी सैनिक शक्ति मजबूत करनी चाहिए, तभी हमारी बात बाहर सुनी जायगी। किन्तु, यह तो गाँधीजी की शिक्षा और सिद्धान्त के विरुद्ध जाना होगा।

युधिष्ठिर–गाँधीजी के सिद्धान्त के बारे में कहने का आपको पूरा मौका मिलेगा भगवान भाई, किन्तु यह तो मानेंगे ही कि अभी परम-गाँधीवादी भी पुलिस और सेना की गोलियों से मदद लेने से इन्कारी नहीं करते, और न पुलिस और सेना पर तिगुना-चौगुना व्यय करने से बाज आते हैं।

भगवानदास–लेकिन, भारत को इस समय तटस्थ रखना क्या हमारी राजनीतिक दूरदर्शिता को नहीं प्रदर्शित करता।

महीप–कौन है तटस्थ ? यदि तटस्थ रहा जाता, तो कोई बात भी थी[1]। मुंह में कुछ और करनी कुछ। देखा नहीं कितनी शीघ्रता से हमारी सरकार ने कोरिया पर अमेरिकन भेड़ियों के टूट पड़ने को न्यायोचित ठहराया[2] ? इसे न्याय और एसिया के हित दोनों की दृष्टि से देखने पर भूल ही नहीं भारी अनाचार कहना पड़ेगा। कोरिया को पश्चिमी साम्राज्यवादी आज बड़ी निर्ममता से अपना ग्रास बना रहे हैं, किंतु हमें उसमें हाथ बँटाने की क्या आवश्यकता थी ?

युधिष्ठिर—आज अब यहीं कथा समाप्त।

३

सैनिक-शक्ति

आज युधिष्ठिर ने गोष्ठी आरम्भ करते कहा—हमारे कितने ही भाइयों की इस मिथ्या धारणा के बारे में हम पहले कह आये है, कि लच्छेदार व्याख्यानों से अन्त-र्राष्ट्रीय क्षेत्र में वारा-न्यारा नहीं किया जा सकता । जिस कूटनीति के पीछे प्रबल सेना रहती है, उसी का दुनिया में मोल है । चाहे बोली कितनी ही टूटी-फूटी हो, लेकिन जिस राष्ट्र के पीछे शस्त्रबल है, उसी की बात कान लगाकर लोग सुनते हैं । हमारे लोग पाँच सवारों में नाम लिखाना चाहते हैं, किन्तु जहाँ सैनिक-शक्ति को मजबूत करने की बात है, वहाँ वह समझते हैं, कि इंगलैंड और अमेरिका से तृतीय श्रेणी के कुछ सैनिक विमानों, कुछ पुराने घिसे-टूटे सैनिक-पोतों और इसी तरह के कबाड़ियों के टैंकों और तोपों से हम बलवान बन जायंगे । हमारा संख्या-बल कितना ही हो, हमारी सैनिक सूझ, सैनिक अनुशासन, सैनिक वीरता चाहे कितनी ही हो, किन्तु उतने से हम देश को सैनिक तौर से सबल नहीं बना सकते ।

भगवानदास—कहते हैं इसी कमजोरी से बचने के लिए भारत को ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में रहने की आवश्यकता पड़ी ।

युधिष्ठिर—ब्रिटिश-साम्राज्य—(राष्ट्रमण्डल) के भीतर भारत का रहना सैनिक दृष्टि से और भी बुरा हुआ है । ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के दूसरे देश—जो छोटा होने पर भी उद्योग में हमसे आगे बढ़े हुए हैं—यही चाहते हैं, कि हमारा संख्या-बल ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा का काम करे । अभी तक नेपाल के शासक अपने निरीह तरुणों को अंगरेजों के युद्धों में तोपों का चारा बनने के लिए बेचते रहे, किन्तु अब वही बात चुपचाप भारत ने करना स्वीकार कर लिया है । द-गाल फ्रांस के प्रतिगामियों का आजकल नेतृत्व कर रहा है, और यूरोप में वह फिर से एक नया फासिस्तवादी राज्य फ्रांस में स्थापित करना चाहता है । रूस को वह फूटी आँखों भी नहीं देख सकता । लेकिन, रूस के विरुद्ध किये गए अतलांतिक-समझौते से वह प्रसन्न नहीं हुआ । उसने ठीक ही कहा—इस समझौते का मतलब है, रूस के विरुद्ध लड़ी जाने वाली लड़ाई में फ्रांसीसी सिपाहियों को भारी संख्या में मौत के मुंह में झोंका जाय । अमेरिका अतलांतिक पार से जहाजों में भर के सारे सैनिक नहीं ला सकेगा । इंगलैंड के पास भी कुछ हद तक बहाना है, किन्तु फ्रांस के पास

क्या बहाना है ? इसलिए तृतीय महायुद्ध में फ्रांस को तीन-चौथाई सैनिक देने होंगे । द-गाल ने समझ लिया, कि फ्रांसीसी तरुणों के मत्थे अतलांतिक समझौता किया जा रहा है, इसीलिए वह प्रसन्न नहीं हो सकता था ।

रामी—तब तो हमें भारी बुद्धू बनाया गया ।

युधिष्ठिर—पश्चिमी यूरोप में जो काम फ्रांस पर डाला जा रहा है, वही खेल एशिया में भारत के मत्थे खेला जा रहा है । यहाँ किसी अतलाँतिक समझौते की भी आवश्यकता नहीं, ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में रहना किसी समझौते से कहीं बढ़कर है । ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के किसी राज्य के विरुद्ध यदि आक्रामक या रक्षात्मक युद्ध हुए, तो भारत को उसमें कूदना पड़ेगा । इसे साफ न कहकर तरह-तरह की बहानेबाजियाँ जो हमारे राजनीति-सर्वज्ञ कर रहे हैं, वह बच्चों को भुलवाने की बातें हैं । भविष्य के रुख में यदि कोई सन्देह था, तो कोरिया के गृह-युद्ध में दखल देने का समर्थन करके भारत ने साफ कर दिया । भावी युद्ध में ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का सदस्य भारत कैसे तटस्थ रह सकता है ? अकल बेच नहीं खाई है, कि लोग विश्वास कर लेंगे, कि अंगरेज राजा के मुकुट के नीचे संगठित ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का एक अभिन्न अंग भारत न अंगरेजों की ओर है और न रूस की ओर । स्वीकार क्यों नहीं करते कि एशिया में युगों के बाद जो नया आमूल परिवर्त्तन हो रहा है, उससे हमारा होश-हवास खतम हो गया है और जो बलिष्ठ-से-बलिष्ठ गुट हमारी प्रतिगामिता का सहायक हो सकता है, हम उसके साथ हैं । यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि इंगलैंड अपने सारे साम्राज्य के साथ अमेरिका की उनचासवीं रियासत-मात्र है । दक्षिण-पूर्व-एशिया के लिए किसी अलग समझौते की आवश्यकता नहीं, भारत की गैया को ब्रिटिश साम्राज्य के खूंटे के साथ मजबूती से बाँध दिया गया है । यदि तृतीय विश्वयुद्ध हुआ, तो संख्या के कारण यूरोप में फ्रांस पर जिस काम का भार है, वही एशिया में भारत पर है । इसमें सन्देह नहीं, अमेरिकन हिन्दुस्तान में कुछ हवाई अड्डे बना देंगे, कुछ सैनिक विमान भी दे देंगे, कितने ही अमेरिकन सैनिक परामर्शदाता भी आ जायंगे, कुछ हथियार भी मिलेंगे, लेकिन अगले युद्ध में पच्चीस-तीस नहीं, पचासों लाख की संख्या में हमारे नौजवानों को रूस के विरुद्ध लड़ना होगा—लड़ने जाना नहीं होगा, क्योंकि युद्ध भारत में ही होगा । वस्तुतः तटस्थता का ढोंग रच के न हम रूस की आँख में धूल झोंक सकते हैं, न अपने लोगों की ही आँखों में । हमारे बहन-भाई राजनीतिज्ञ "चोर की दाढ़ी में तिनका" के अनुसार गला फाड़-फाड़कर मौके-बेमौके बेकार ही तटस्थता की बात करते हैं, रूस विश्वास नहीं करता और बेविन तथा ट्रूमन के मुख पर उससे हल्की-सी मुस्कुराहट-भर आ जाती है ।

महीप—हम इसीके पात्र हैं।

युधिष्ठिर—किसीको भ्रम न होना चाहिए, कि जब तृतीय युद्ध की तैयारी हो रही है, जिसमें भारत को विशेष भाग लेना है, तो अमेरिका अवश्य भारत को सैनिक दृष्टि से मजबूत बनायेगा। यह खयाल गलत होगा। उन्हें आपके सिपाही चाहिए। उनकी दृष्टि में आपके सेना-संचालक निकम्मे हैं, क्योंकि वह इंगलैंड के चेले हैं। इंगलैंड दुनिया-भर की सेनाओं के सेना-संचालकों की योग्यता आ अपने को सबसे बड़ा निर्णायक समझता था; उसकी दृष्टि में रूसी सेनापति सबसे अयोग्य थे। लेकिन इंगलैंड के सेनापति युद्ध में एक के बाद एक निकम्मे निकलते गए। सिंगापुर में दो महान् सैनिक पोतों को मुफ्त में खो देना अंगरेज सेनापतियों की रण-चातुरी का दिवाला था। जिस तरह उनकी सारी भविष्यवाणियाँ गलत साबित हुईं, उससे साफ हो गया कि इंगलैंड के सेनापति सबसे निकम्मे हैं। हाँ, हमारे लिए अवश्य वह आज भी भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य हैं। कुछ भी हो, अमेरिकन साम्राज्यवाद, जहाँ तक सेना-संचालकों का संबंध है, हमें कभी स्वावलम्बी नहीं होने देगा। उसकी कोशिश यही रहेगी, कि हम हरेक आधुनिक हथियार के लिए उसके मुंह की ओर देखते रहें, उसके हाथ में रहें।

महीप—कैसी बेबसी!

युधिष्ठिर—हमारे राष्ट्रकर्णधार पाताल की ओर नेह लगाये हैं, कि अमेरिका सभी तरह के यंत्रों को लाकर भारतवर्ष को उद्योग-प्रधान बना देगा और फिर हम टैंक, सैनिक-पोत, सैनिक-विमान सभी चीजें अपने यहाँ बनाने लगेंगे। प्रतीक्षा करने वाले करके देख लें। आँख पोंछने के लिए छोटी-मोटी चीजें छोड़कर अमेरिका कुछ नहीं देने वाला है। नफील्ड ने बिड़ला से मिलकर विलायत में बने पुर्जों को इकट्ठा करके "हिन्दुस्तान" नाम की मोटर बनाने का कारखाना खोल दिया है। ऐसे ही कोई अमेरिकन कम्पनी भी किसी दूसरी चीज के पुर्जों को बाहर से लाकर जमा करने का कारखाना खोल सकती है। इसी को हम बुद्धू समझने लगेंगे, कि हमारे यहाँ मोटरें, हवाई जहाज बनने लगे। अमेरिकन साम्राज्यवाद को केवल आपके सैनिक चाहिएं, और दूसरी कोई चीज वह आपसे लेना नहीं चाहता। वह और किसी चीज के लिए आपको तैयार नहीं करना चाहेगा। आप १९५९ में चीन में बहुत तरह की मशीनें बनते देखेंगे, औद्योगिक दृष्टि से चीन तब तक अपने पैरों पर खड़ा हो गया रहेगा, लेकिन तब तक भी ये बूढ़े राजनीतिज्ञ—यदि जीवित रह सके—आँखों पर हाथ की छाया किये अमेरिका की ओर टकटकी लगाये रहेंगे।

महीप—हमारे सैनिक-बजट की रकम को देखकर अवश्य मालूम होगा कि बजट[1] की भांति हमारा सैनिक बल भी कई गुना बढ़ गया है।

१—१२१०८ लाख (२५७३७ लाख (१९४८-४९ ई०)

युधिष्ठिर—लेकिन तुम जानते ही हो, हमारे देश में सेना का कोई शक्तिशाली हथियार नहीं बनता। हमारी सभी चीजें मंगनी की हैं। मोटर छोड़ पूरी बाइसिकल भी यहाँ नहीं बनती, फिर टैंक का क्या सवाल हो सकता है ? अभी तो अच्छी किस्म की तोप वाला इस्पात भी नहीं तैयार होता, फिर शक्तिशाली तोपें कहाँ से बन सकती हैं। विशाखपट्टन में जहाज बनाने का स्वदेशी कारखाना खुला। सभी सरदारों ने बालचंद-हीराचंद के पास अभिनन्दन और मंगल-कामनाएँ भेजीं, लेकिन अब इस स्वदेशी पोत-निर्माण-कम्पनी का कहना है, कि भारतवर्ष में जिस पोत के बनाने पर ४० लाख लगता है, वह इंगलैंड से २० लाख में खरीदा जा सकता है। पोत-निर्माण बन्द कर दो सस्ता जहाज जो लेना है; चाहे उसके कारण हम विदेशियों के हाथ में क्यों न चले जायं! यह कोई नई बात नहीं है। मुगल बादशाहों के भले दिनों में भी सैनिक-पोतों के बारे में यही नीति बरती जाती थी; पैसा दिल्ली के खजाने से दिया जाता था, और सैनिक-पोतों के रखने और संचालन करने का काम पुर्तगाली करते थे। मराठों ने पीछे यह भार फ्रांसीसियों और दूसरों पर छोड़ा था। जान पड़ता है, हम भी अपने इन पूर्वजों से आगे बढ़ना नहीं चाहते। यदि उद्योगों की नकेल हमारे देश के अदूरदर्शी पूंजीपतियों के हाथों में रही, तो वह बंटाढार करके ही छोड़ेंगे। यदि हमारे राजनीतिक नेता एशिया के परिवर्तन को देखकर आठ आना बदहवास हो चुके हैं, तो पूंजीपति होश-हवास का दिवाला निकाल चुके हैं।

रामी—आखिर हम किधर जा रहे हैं ?

युधिष्ठिर—हमारा रास्ता जिधर लिये जा रहा है, उससे कभी हम आशा नहीं रख सकते, कि सैनिक दृष्टि से हम अपने पैरों पर खड़े हो सकेंगे। हमारे लिए यह बहुत सस्ती बात है, हम अपने अखबारों में व्याख्यान दे-देकर छपवाते रहें, कि बापू ने सारे संसार को सत्य और अहिंसा का रास्ता दिखलाया, और उसीसे दुनिया का उद्धार हो सकता है। लेकिन, दुनिया इतनी बुद्धू नहीं है, कि चिराग-तले अंधेरा देखकर भी इन बातों पर विश्वास करती फिरेगी। काम रत्ती-भर न होने पर भी कागजी घोड़ा दौड़ाने में हमारे नेता किसीसे पीछे नहीं रहना चाहते। आशा-पर-आशा दिलाते चले जा रहे हैं। वह जानते हैं, कि आशा रबर से भी अधिक बढ़ने वाली चीज है, लोगों को इसी के बल पर एक पीढ़ी तक भुलवाया जा सकता है। इसमें शक नहीं, इन प्रचारों से लोग धोखे में भी आ जाते हैं। अखबारों में निकला, कि बंगलोर में सिर्फ बाहर से लाये पुर्जों को ही विमानों के रूप में नहीं जोड़ा जायगा, बल्कि अब वहाँ से विमान निकला करेंगे। निकलने में कहीं लोग कलियुग की समाप्ति का समय समझ उतावले न होने लगें, इसलिए

कहा गया, कि १९५२ में बगलोर के बने विमानों पर हमारे तरुण विमान चलाना सीखेंगे। कितनी सफलता और इतनी शीघ्रता के साथ ! और विमान भी वह बनेंगे, जिनसे लोग विमान चलाना सीखेंगे। अर्थात् न जिनसे सवारी का काम लिया जा सकेगा न माल ढोने का, सैनिक कार्य की तो बात ही अलग।[२]

महीप–यह तो लोगों की आँखों में धूल झोंकना है।

युधिष्ठिर–भोले लोग समझ रहे हैं, कि ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल में रहने पर भारत को हथियारों का टोटा नहीं रहेगा। टोटा क्यों रहेगा, यदि आप एक की जगह सौ दाम चुका सकें। [३]लेकिन साथ ही इंगलैंड को यह भी देखना है, कि ऐसा न हो कि हिन्द और पाकिस्तान को दो आँखों से देखने की भूल करनी पड़े।[४] इसीलिए हथियारों को देने में न्यायतुला का पूरा खयाल रखा जायगा।[५] अगर भारत को जेट-संचालित विमान दिया जाय, तो पाकिस्तान को भी वह जरूर मिलना चाहिए। अंगरेजों ने पाकिस्तान को १९४९ में ४० सैनिक विमान, ३५ हेलिफैक्स बमवर्षक, ५० टैंक, १३० भारी मशीनगनें, ५० ज्वालावर्षक यन्त्र, ४५००० रायफलों की सहायता दी। हाँ, यह हथियार अफगानिस्तान के विरुद्ध सहायता के रूप में मिले हैं। किन्तु उनको कश्मीर में या भारत के विरुद्ध इस्तेमाल करने से कैसे रोका जा सकता है? मालूम नहीं, इस सहायता के समय भारत को कितना मिला। यह न्याय इसीलिए किया जाता है, कि भारत कहीं शस्त्रों में पाकिस्तान से बढ़ न जाय, पाकिस्तान से अधिक सबल न हो जाय। विमानों का उपयोग यदि भारत पाकिस्तान के विरुद्ध करेगा, तो पाकिस्तान दिल्ली, बम्बई, और कलकत्ता पर बमवर्षा करेगा। "नंगी नहायेगी क्या, निचोड़ेगी क्या ?" पाकिस्तान के पास औद्योगिक केन्द्र नहीं हैं, इसलिए अंग्रेजों से मिले बमवर्षकों द्वारा हमारे औद्योगिक केन्द्र ही ध्वस्त होंगे। इसके लिए ब्रिटेन के भावी प्रधान-मंत्री चर्चिल को क्यों दुख होने लगा ?

भगवानदास–सभी बातों में बादल देख घड़ा फोड़ देने की नीति हमारे देश में बरती जा रही है।

युधिष्ठिर–ऐंग्लो-अमेरिकन श्रावणघन आकाश में मंडरा रहे हैं, फिर किस बात की चिन्ता ? भारतवर्ष के प्रथम श्रेणी के मस्तिष्क महा-महान् प्रोफेसर रंगा ने जाकर ट्रूमन से भेंट की–भेंट क्या की जग जीत लिया, और प्रेजिडेंट को बतलाया कि भारत को सिर्फ दो अरब डालरों की आवश्यकता है, जिसमें एक अरब स्वयं भारतवर्ष जमा कर सकता है। अमेरिका एक अरब के लिए हिम्मत कर दे, तो भारत की सभी बड़ी-बड़ी योजनाएँ और बड़े-बड़े कारखानों के संकल्प साकार रूप धारण कर लेंगे। फिर भारत अपने पैरों ही पर खड़ा नहीं हो जायगा और न

केवल अपने देश से ही कम्युनिज्म का नामोनिशान मिटा देगा, बल्कि एशिया की भूमि में एक भी जगह कम्युनिज्म नहीं रहने पायगा। भारतवाहिनी कम्युनिज्म-विरोधी झंडा हाथ में लिए बर्मा से ही इन लाल गुंडों का सफाया नहीं करेगी, बल्कि मलाया, जावा, स्याम और इंडोचीन को भी कम्युनिस्ट-विहीन करना उसके बायें हाथ का खेल होगा। उसके सामने न माउ-चे-तुंग टिक सकेगा और न स्वयं स्तालिन। कितना बड़ा काम भारत को करना है और सिर्फ एक अरब डालर की बात है!

महीप—अमेरिका में डालरों का क्या टोटा?

युधिष्ठिर—लेकिन अमेरिकन डालरशाही उतनी उदार नहीं है, जितना कि हमारे महा-महान् प्रोफेसर साहब सोचते हैं। उसने ढाई अरब डालर चीनके दलदल में डाले, यदि किसी वास्तविक दलदल में भी इतने चाँदी के डालर डाल दिये जाते, तो वहाँ ठोस जमीन बन जाती, जिस पर रेलवे लाइन बिछ जाती, इंजन दौड़ने लगते; लेकिन चीनी दलदल में पता नहीं लगा, कि ढाई अरब डालर कहाँ गये। प्रोफेसर रंगा ढाई अरब की जगह उसी भूत को भागने के लिए सिर्फ एक अरब माँगते अपने को बहुत संयत साबित करना चाहते हैं, लेकिन दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंककर पीता है। चाङ्-कैशक ने भी रंगा की भांति ही डोरा डाला था। अमेरिका को विचारना होगा, कि यह एक अरब डालर भी चीन की भांति अतल दलदल में गड़ाप तो नहीं हो जायगा। आखिर चीनी पूंजीपतियों की भांति ही हमारे करोड़पति उद्योगपतियों को अब दो सौ-तीन सौ सैकड़े नफे से कम पर संतोष नहीं होता। चाँदी और अफीम के सटोरियेमल दस-बीस सैकड़ा नफे को कुछ नहीं समझते।

महीप—आजकल तो—"रामनाम की लूट है लूट सके सो लूट। अन्तकाल पछताओगे जब तन जैहें छूट।"

खोजीराम—यही सूत्र आज से बीस बरस पहले चीन के पूंजीपतियों की जबान पर भी था और इसी ने उनका, चाँग का, और अमेरिकन पीठ ठोंकने वालों का बंटाढार कर दिया।

युधिष्ठिर—चाहे शेष की मृदुल शय्या पर पौढ़े, लक्ष्मी के कोमल करों के धीरे-धीरे सम्मर्दन से तंद्रित भगवान आँख नहीं खोल रहे हैं, तो भी भक्त देवगण उनकी शरण में गौरूपी पृथ्वी को आगे करके पहुँच ही रहे हैं। प्रोफेसर रंगा ने सस्ते में काम बनाने की युक्ति भगवान ट्रूमन के सामने रखी और साथ ही धमकी भी दे दी—यदि तुम डालर वर्षा के लिए तैयार नहीं हुए, तो चीन की हालत हमारे यहाँ भी

होने वाली है । ट्रूमन भला रंगा की धमकी क्या समझते, जो कि पहले ही से अपने आपको अनन्यगतिक हो समर्पण कर चुका है ।

महीप—रंगा ने अपना जन्म तो सफल कर लिया ?

युधिष्ठिर—रंगा को अखबारों द्वारा इस खबर को भारत के पत्रों में छपवाकर वाहवाही लेनी थी, इसलिए उसने जो कुछ भी वहाँ कहा, सबको भारत में पहुँचा दिया । उधर बिड़लादेव भी शेषशायी भगवान् के पास पहुँचे । उन्होंने क्या-क्या विनती की, यह अखबारों में पूरी नहीं आई । उनको ऐसे प्रचार की आवश्यकता नहीं थी । रंगा को बहुत कुछ उछलने-कूदने पर जहाँ कभी-कभी अखबारों में जरा-सी जगह पाने का सौभाग्य मिलता, वहाँ बिड़ला अखबारों के परमेश्वर हैं । एकछत्र सम्राट् न सही, लेकिन इसमें क्या संदेह है, कि भारत के बहुत बड़े भाग में वही बातें पढ़ी जाती हैं, जिन पर बिड़लादेव की भौंहें तनी नहीं । बिड़ला को अपने प्रचार के लिए रंगा की तरह उतावला होने की क्या आवश्यकता ? सहायता देने के बारे में ट्रूमन भगवान् कह चुके हैं—अमेरिकन सरकार टेकनिकल या विज्ञान-सम्बन्धी परामर्श द्वारा सहायता देगी । बाकी पूंजी लगाने की बात, अमेरिकन पूंजीपति जानें ।

महीप—तो शेषशायी भगवान् नाम के ही हैं ?

युधिष्ठिर—अमेरिका के शेषशायी भगवान् भी बहुत कम शक्ति रखते हैं, अंतिम फैसला वहाँ के पूंजीपतियों के ही हाथ में है । और "एक जाति" के कारण उन पर जितना प्रभाव बिड़ला का पड़ सकता है, उतना और का नहीं पड़ सकता । हाँ, किसी का नहीं । हमारी श्वेतकेशा, चिरतरुणी, मधुर भाषिणी, मंजु-स्वभावा आजेया श्री राजदूता भी शेषशायी भगवान् की स्तुति में पीछे नहीं हैं । उनके ज्येष्ठ सहोदर भी शेष शायी के दरबार में पहुँचे चुके हैं । लेकिन क्या इससे ट्रूमन का भाव बदल जायगा ? फिर वही बात कहेंगे—"विशेषज्ञों द्वारा परामर्शदान अमेरिकन सरकार कर सकती है ।" अमेरिकन सरकार भारत को दो-चार अरब डालर की सहायता देगी, इसकी आशा नहीं रखनी चाहिए । अन्त में फैसला वहाँ के पूंजीपतियों के ही हाथ में रहेगा, और अमेरिकन अपनी शर्तों पर ही कुछ करने के लिए तैयार होंगे । वह वही मानेंगे, जिससे कि हमारे देश के उद्योगपति सेठ सहमत होंगे—दोनों एक नाव में हैं । लोग पूछेंगे, कि जब चीन के सम्बन्ध में अमेरिकन सरकार इतनी शाहखर्च रही, तो भारत के बारे में इतनी मक्खीचूसी क्यों ? प्रश्न करना आसान है, किंतु यदि आप भी ढाई अरब डालर (१० अरब रुपया) चीन में गंवाकर हाथ-पर-हाथ रखे झंखते होते, तो समझ पाते ।

रामी—तो वहाँ के पूंजीपतियों का क्या रुख है ?

युधिष्ठिर—इसका कुछ पता आगे मालूम होगा। भारत उद्योग-प्रधान होने से ही सैनिक तौर से सबल हो सकता है। और देश के उद्योगीकरण के संबंध में एकमात्र आशा लगी है, अमेरिका पर; और अमेरिका चीन में मार खाके अब फिर कोई बड़ी बेवकूफी नहीं करना चाहता। विशेषकर जब आपके पत्र रोज ही भारत में कम्युनिस्टों के उपद्रव छापकर उन्हें शंकित कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में लम्बी-लम्बी बातें करना केवल घर बैठ के गाल बजाना है

महीप—अब भी तो हमारे कितने ही बंधु भारत के एशिया का नेता होने की बात कहते हैं?

युधिष्ठिर—शायद इसीलिए कि बर्मा में अंग्रेजी हित की रक्षा के लिए वहाँ की जनता के अधिकाँश की इच्छा के विरुद्ध भारत थाकिन-नू की सरकार को मदद पहुँचा रहा है। थाकिन-नू की सरकार में सबसे अधिक संख्या रखने वाले समाजवादीदल ने भी चीन में कम्युनिस्टों की विजय पर अपनी प्रसन्नता प्रकट की है, जिससे हवा का रुख किधर है, यह स्पष्ट हो जाता है। मलाया के लोग अवश्य भारत को अपना नेता मानेंगे, क्योंकि अंग्रेजी सेना स्वतन्त्रता-प्रेमियों के साथ जैसे अमानुषिक अत्याचार कर रही है, उसमें हम भी सहमत मालूम होते हैं; और हमारे पत्र भी वहाँ के देशभक्तों को चोर-डाकू कहकर अपना कर्त्तव्य पालन कर रहे हैं। हमारे नेता वहाँ की किसी बात में दखल न देने की शपथ खा चुके हैं, और तिस पर भी हम दावा करते हैं, कि एशिया का नेतृत्व भारत कर रहा है। नेतृत्व कौन कर रहा है, वह अब किसीसे छिपा नहीं है। एशिया का नेतृत्व वह कर रहा है, जिसके भय से हांगकांग डगमग हो रहा है, जिससे एशिया पर सदियों से शासन करने वाले घबड़ा उठे हैं। दक्षिणी अफ्रीका, इंगलैंड, आस्ट्रेलिया सभी जगह हाय-तोबा मचने लगी है। एशिया के एक बड़े भाग को जिन्होंने अपाहिज बना रखा था, अब उसी चीन में एक नयी शक्ति को देखकर युगों के स्वेच्छाचारियों की नींद हराम हो गई है। हमारे नेताओं को ईर्ष्या करने से क्या फायदा? एशिया की लड़ाई की जगह उन्होंने पश्चिमी साम्राज्यवादियों से गठबंधन जोड़ना मदद करना अपना कर्त्तव्य समझा।—कोरिया के संबंध का हमारा आचरण ऐसा ही हुआ।

महीप—दुनिया के लोग बड़े बेवकूफ होंगे, जो आपको दोनों ओर मजा उड़ाने देंगे—साम्राज्यवादियों से भी वाहवाही लूटना और उत्पीड़ित एशियाइयों का नेतृत्व भी करना।

युधिष्ठिर—जैसा कि मैंने पहले ही कहा, मदद न जबानी जमा खर्च से हुआ करती है और न अंग्रेजी में लच्छेदार व्याख्यानों से। चू-ते, चो-अन्-लाई और

माउ-चे-तुंग चाहे अंग्रेजी का एक शब्द भी न बोल सकते हों, चाहे बड़े वक्ता भी न हों; किंतु उनकी एक-एक बात की ओर दुनिया के साम्राज्यवादी शत्रु भी ध्यान देंगे। एशिया का नेतृत्व करना अब भारत के लिए दूर का स्वप्न है। एशिया के बड़े भाग पर अब भी भारत की संस्कृति और विचारधारा की गाढ़ी छाप है, लेकिन अपनी संस्कृति से कोरे अंग्रेजों के नक्कालची हमारे हर्ता-कर्ता उसके महत्व को समझ नहीं सकते, चाहे जबान से भले ही जब-तब उसकी दुहाई दें। एशिया के नेतृत्व के लिए किसी समय भारत और चीन की होड़ थी, जो पूरी तरह लगने भी नहीं पाई थी, कि हमारी बेवकूफी से फैसला हमारे खिलाफ हो गया। एशिया में शक्तिशाली राष्ट्र होने के सम्बन्ध में बड़ी गंभीरता से कहा जाता था—भारत ही ऐसा देश है, जहाँ न गृहयुद्ध है, न क्रान्तिकारियों का कोई उपद्रव; चीन तो आपसी लड़ाई के कारण तीन दशाब्दियों से किसी गिनती में नहीं रह गया। उस समय यह सोचने की कोई तकलीफ नहीं करता था, कि चीन को निर्बल रखनेवालों के खिलाफ ही संघर्ष चल रहा है, जिसका अंत पेपिंग, नानकिंग शंघाई और कान्तन से प्रतिगामी शक्तियों के निष्कासन के साथ हो गया। इसी संघर्ष के भीतर चीन अपने सैनिक बल को पहले से बहुत अधिक मजबूत कर चुका है। अब तो निर्माणकारिणी शक्ति की विजय के बाद चीन का तेजी से नवनिर्माण होगा। शंघाई में मोटरों का दाम पाँच गुना कम हो गया, शौकीनी चीजों का दाम और भी कम हो गया है; चोर-बाजारियों का वहाँ पता नहीं है, शहर की सुव्यवस्था की प्रशंसा दुश्मन भी कर रहे हैं। जितनी गन्दगी, जितनी निर्बलताएँ चीन में थीं, वह चाङ्.कैशक के साथ विदा हो गई। अब चीन एक उद्योग-प्रधान देश होने जा रहा है; उद्योग-प्रधानता का ही दूसरा नाम सैनिक-शक्ति की प्रबलता है। चीन उद्योग-प्रधान बनने के लिए किसी अमेरिका की ओर टकटकी लगाये नहीं रहेगा और न ही वहाँ वाले शेषशायी भगवान् से वरदान माँगने अमेरिका पहुँचेंगे। चीन अपनी प्राकृतिक संपत्ति, अपने लोगों के बाहुबल और मस्तिष्क-शक्ति का पूरे तौर से उपयोग करेगा, जिसके बल पर वह सब तरह से एक सबल राज्य हो जायगा—१९६४ ई० में रूस और अमेरिका के समान ही वह एक तीसरी महान् शक्ति बनके रहेगा।

महीप—देखें हम तब तक ब्रिटिश साम्राज्य के साथ ही बंधे डूबते हैं या बचते हैं।

———

४

देश का उद्योगीकरण

युधिष्ठिर–किसी भी दृष्टि से देखने से देश को उद्योगप्रधान बनाना हमारा सबसे प्रथम और आवश्यक कर्त्तव्य है। किसी भी समृद्ध देश के लिए यह आवश्यक है, कि उसकी राष्ट्रीय आय का तीन-चौथाई भाग उद्योग-धंधे से आये, और जो देश भारत की तरह बहुत घना बसा है, उसके लिए तो यह और भी आवश्यक है।

भगवानदास–सरकार सावधान है।

युधिष्ठिर–भारतवर्ष ने विश्वबंक से एक भारी रकम, १५ करोड़ डालर, उधार लेना चाहा था। महाजन किसी को ऋण देने से पहले लेने वाले की क्षमता को देखना चाहता है, इसीलिए विश्वबंक ने एक जाँच-कमीशन भेजा था, जिसके नेता श्री स्टेनली होर ने अपने वक्तव्यमें कहा था–"भारतवर्ष की निहित महान् प्राकृतिक संपत्ति को देखकर कोई भी दर्शक प्रभावित हुए विना नहीं रहेगा; साथ ही यह भी जानते हुए, कि इस संपत्ति के विकास करने के लिए लोगों में शक्ति और दृढ़ संकल्प है।" आगे होर ने यह भी कहा–"भारत में जीवनतल को लगातार और दृढ़तापूर्वक ऊपर उठाने के लिए उपज बढ़ानी आवश्यक होगी, और प्राप्य सभी स्रोतों की सावधानी के साथ जाँच-पड़ताल करनी होगी, तथा यह भी देखना होगा, कि कैसे एक दूसरे के साथ सुसम्बद्ध रीति से कृषि, उद्योग-धंधे, शक्ति बिजली और यातायात को विकसित किया जा सकता है। वैसा करते समय इन चीजों के विकास के उत्तरोत्तर रूप की प्रत्येक अवस्था का ऐसा आधार बनाना होगा, जिस पर आगे के विकास को आधारित किया जा सके।" मिशन ने अपनी जाँच के आधार पर भारतवर्ष की प्राकृतिक संपत्ति और मानवीशक्ति का बखान तो किया, किंतु मालूम नहीं उनकी जाँच ने उनके ऊपर दूसरे किस तरह के प्रभाव डाले। हमारा देश अपरिमित प्राकृतिक संपत्ति का धनी है, किंतु प्रश्न यह है, धरती के भीतर छिपी निधि को कैसे ऊपर निकालकर उसे मनुष्य के उपयोग में लाया जाय। सारी संपत्ति के रहते भी हमारे देश की साधारण जनता का जीवन-तल जितना नीचा है, उतना विश्व में शायद ही कहीं हो।

विश्व की सारी आय ५०३.६ अरब डालर कूती गई है, जिसमें २४० अरब (४५ प्रतिशत) उत्तरी अमेरिका की है, और शेष है सोवियत् से भिन्न

यूरोप १४० (२६ प्रतिशत), सोवियत् संघ ५२ (१० प्रतिशत), एशिया ५८ (११ प्रतिशत), मध्य तथा दक्षिणी अमेरिका १७.१ (३.५ प्रतिशत), अफ्रीका १५ (३ प्रतिशत), सामुद्रिक देश ८.५ प्रतिशत डालर (१.५ प्रतिशत)।

पिछली शताब्दी में सन् १८७५ में अटकिन्सन और १८५५ में विलियम डिग्बी ने भारत की राष्ट्रीय आय पता लगाने का प्रयत्न किया था। बर्तमान शताब्दी में दादाभाई नौरोजी ने कुछ अंदाज लगाया था। राष्ट्रीय आय बढ़ी है, लेकिन वह वृद्धि उसी परिमाण में हुई है, जिस परिमाण में कि हमारी जनसंख्या बढ़ी है, इसमें संदेह है। अब हमारी सरकार का ध्यान इसकी ओर गया है और राष्ट्रीय आय का पता लगाने के लिए उसने एक कमीशन नियुक्त किया है।

भगवानदास–सरकारी आय से भी तो राष्ट्रीय-आय का पता लग सकता है।

महीप–कर से बचने के लिए कितना जाल-फरेब किया जाता है, यह क्या मालूम नहीं है? कुछ लाख नहीं करोड़-करोड़ का हिसाब कागज पर नहीं आने पाता। "मिस्ट्री आफ बिड़ला हाउस पढ़ा है न?"

युधिष्ठिर–राष्ट्रीय आय का कितना भाग सरकारी आय है, इसे बतलाना मुश्किल है, लेकिन सालाना बजट से सरकारी आय-व्यय का पता लगता रहता है। १९४८-४९ का बजट निम्न प्रकार रहा है–

आय–	२३०.५२ करोड़
व्यय–	२५७.३७ करोड़

व्यय में १२१.०८ करोड़ अर्थात् आय का आधे से अधिक सिर्फ सेना का खर्च है। १९.९१ करोड़ खाद्य-वस्तुओं की कीमत सस्ता करने के लिए है तथा शरणार्थियों को बसाने के लिए १४.०४ करोड़। २६.८५ करोड़ के घाटे को नये करों की वृद्धि और दूसरे तरीके से १.०९ करोड़ कर दिया गया। पूंजीपतियों को संतोष और विश्वास दिलाने के लिए लाभकर कम कर दिया गया, महाकर से मुक्त रकम की सीमा को बढ़ा दिया गया, कंपनियों के कर को भी हल्का किया गया। उस समय लियाकतअली के बजट को समाजवादी बजट कहा गया था, १९४८-४९ का बजट पूंजीपतियों का बजट है।

रामी–और प्रान्तों की भी तो आय है?

युधिष्ठिर–प्रान्तों के बजट को देखने से पता लगता है, कि बिहार छोड़ सारे ही प्रान्तों में आय से व्यय अधिक रखा गया। जैसे कि–

प्रान्त	**आय**	**व्यय**	**हाथ में**
मद्रास	५०.३२	५५.९४	–५.६२
युक्त (उत्तर) प्रदेश	४५.८७	५०.५७	–४.७०

प्रान्त	आय	व्यय	हाथ में
बम्बई	४१.३८	४४.०२	–२.६४
पच्छिमी बंगाल	३१.१८	३१.९६	–.७८
बिहार	२१.५७	२०.०९	+१.०४८
मध्य प्रदेश	१५.२९	१५.७४	–.४५
आसाम	१३.१२	१४.६१	–१.४९
पूर्वी पंजाब	११.१३	१७.८२	–६.७९
उड़ीसा	६.२८	७०.५१	–१.२३

खोजीराम–इससे तो मालूम होगा कि सभी प्रान्तों के पास अपने वर्तमान व्यय के लिए भी पैसा नहीं है। बिहार इसका अपवाद है, किंतु उसमें हो सकता है, वहाँ के मंत्रियों की आवश्यकता से अधिक मितव्ययिता कारण हो। प्रान्तीय बजट के देखने से यह भी पता लगता है, कि पुलिस और प्रबंध-विभाग का खर्च बहुत बढ़ा दिया गया है।

महीप–सेना से भी पुलिस का व्यय अधिक बढ़ना ही चाहिए।

युधिष्ठिर–प्रांतों की कुछ आय केन्द्र द्वारा लौटाये आयकर से भी होती है, जो सारे आयकर के प्रतिशत के हिसाब से होती है। १९४८ में वह सबसे अधिक अर्थात् २१ प्रतिशत बम्बई को मिला और सबसे कम आसाम और उड़ीसा को (तीन-तीन प्रतिशत)।

रामी–स्वयं फाके-मस्त प्रांत कहाँ से उद्योग-धंधे के लिए पैसा दे सकेंगे?

युधिष्ठिर–बजट देखने से केन्द्र और राज्यों की जो आर्थिक अवस्था मालूम होती है, उसे यदि आर्थिक योजनाओं से मिलाएं, तो मालूम होगा, कि रास्ते में कितनी भारी-भारी कठिनाइयाँ हैं। जहाँ अमेरिका का प्रेजिडेन्ट दूसरे देशों को फिर से बसाने तथा आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए कर लगाकर धन जमा कर सकता है, वहाँ भारत को अपना खर्च चलाने में भी कठिनाई है। यदि हम केवल नदियों की ही योजनाओं को ले लें, तो वही कितनी विशाल हैं। आजकल भारतबर्ष में पाँच लाख किलोवाट पनबिजली पैदा की जाती है, जो हमारी सारी क्षमता का १।। सैकड़ा है। यदि सावधानी के साथ बड़ी पनबिजली योजनाओं को कार्यरूप में परिणत किया जाय, तो एक करोड़ चालीस लाख किलोबाट बिजली प्रतिवर्ष हमारी नदियों से पैदा की जा सकती है। भारत में सबसे पहले पनबिजली स्टेशन दोर्जेलिड्. में १८९७-१८९८ में बना। अमेरिका में उससे १५ वर्ष पहले १८८२ में और कनाडा में हमसे तीन साल बाद १९०० ई० में प्रथम पनबिजली स्टेशन स्थापित हुए। कनाडा ने हमसे तीन साल बाद यह काम शुरू किया था, लेकिन

आज वह ७७ लाख किलोबाट अर्थात् भारत से १५ गुना अधिक बिजली तैयार कर रहा है। हमारे देश से अमेरिका २९ गुना और सोवियत् रूस ४५ गुना अधिक बिजली पैदा करता है। जो बिजली हमारे यहाँ पैदा की भी जाती है, वह केवल शहरों के लिए ही। कलकत्ता और बम्बई की जनसंख्या सारे देश की जनसंख्या की १ प्रतिशत से अधिक नहीं है. लेकिन देश की सारी बिजली का आधा इन्हीं दोनों शहरों में खर्च होता है। हमारी बिजली की योजनाओं को यदि पूरी तरह कार्यरूप में परिणत किया जाय, तो रूस और अमेरिका के बाद तीसरा नंबर भारत का होगा। बिजली की क्षमता का अंदाजा इसी से लग सकता है, कि केवल कोसी-योजना को पूरा करके हम इतनी बिजली पैदा कर सकते हैं कि वह देश की सारी रेलों को चलाने के लिए पर्याप्त होगी। हमारे कोयले की सालाना उपज का एक-तिहाई अर्थात् ७० लाख टन रेलों की भेंट होता है। यह ऐसी क्षति है, कि यदि रोक-थाम नहीं की गई, तो लोहा आदि धातुओं के कारखानों को चलाना मुश्किल हो जायगा।

भगवानदास—जो चीज नहीं है, उसे बाहर से मंगायेंगे।

युधिष्ठिर—लेकिन क्या हम बिजली के सामान के उद्योग के बिना बिजली-उद्योग को विकसित कर सकते हैं? इस भारी बिजली के प्रयोग के लिए करोड़ों बल्ब और लाखों टन खंभे, तार, परिवर्त्तक, इन्सुलेटर, स्विच, गियर, मोटर, तापक, संचयक, पम्प, मीटर आदि की आवश्यकता होगी, क्या उनको बाहर से मंगाने को हमारे पास पैसा होगा? इससे साफ है कि पनबिजली की योजना दूसरे उद्योग-धंधों के विकास के साथ नत्थी है। १७० नदी-उपत्यकाओं की बिजली-योजनाएँ हमारे पास तैयार हैं, जिनको कार्यरूप में परिणत करने के लिए १२ अरब रुपये या तीन अरब डालर की आवश्यकता होगी। प्रोफेसर रंगा दो अरब में पनबिजली ही नहीं सभी कारखानों के काम को निपटा देना चाहते हैं! १२ अरब रुपया का अर्थ है, यदि केन्द्रीय सरकार चार सालों तक अपनी सारी आमदनी को इसी में खर्च करे, तब भी पूरा नहीं कर सकती। कलकत्ता के एक पूंजीपति ने अपने भाषण में कहा था—योजनाएँ तो सभी बन सकती हैं, लेकिन सवाल है, उनके लिए पैसा और योग्य आदमी कहाँ से मिलेंगे। उन्होंने यह भी कहा, कि जिस तरह उद्योगधंधे पर नियंत्रण करने के लिए कानून बनाया जा रहा है, कारखानों के राष्ट्रीयेकरण की तलवार सिर पर लटक रही है, उससे कैसे पूंजीपति अपने पैसे को काम में लगायेंगे।

महीप-शाबाश!

युधिष्ठिर—इसीलिए हमारे प्रधानमंत्री ने पूंजीपतियों को खुल खेलने की छुट्टी दे दी। दिसम्बर (१९४८) में प्रधानमंत्री ने पुरानी सारी बातों को तिलां-

जलि देकर घोषित कर दिया[1]—"(१) केवल सुरक्षा, रेलवे, परमाणुशक्ति आदि के उद्योग-धंधे को ही राज्य के हाथ में रखा जायगा। (२) राष्ट्रीय महत्व के उद्योग-धंधे जैसे—कोयला, लोहा, इस्पात, विमान-निर्माण आदि का काम करने वाली कम्पनियों को छुआ नहीं जायगा। हाँ, आगे से इस सम्बन्ध के नये कारखाने सरकार की ओर से भी खुलेंगे। (३) नमक, बिजली, इंजीनियरी, मोटरकार, भारी रसायन आदि जैसे आधारभूत उद्योग-धंधों का नियन्त्रण और नियमन राज्य की ओर से होगा और (४) बाकी सारा औद्योगिक क्षेत्र व्यक्तिगत प्रबन्ध में रहेगा।" इस वक्तव्य को समाजवाद और पूंजीवाद के बीच में समझौते का प्रयत्न बतलाया गया है, लेकिन सूची देखने से ही पता लग जायगा, कि जितने अधिक लाभ के धंधे हैं, उन्हें पूंजीपतियों के लिए छोड़ दिया गया, और जो घाटे का सौदा है, उसके राष्ट्रीयकरण की बात की जा रही है; या यों कहिये, जिसमें लगा रुपया जल्दी वसूल होने वाला नहीं है, उसे सरकार ने लिया और जिसमें जल्दी लौट आने वाला है, वह पूंजीपतियों के हाथ में छोड़ दिया गया। हमारे पूंजीपति कोई ऐसा काम करना भी नहीं चाहते, जिसमें लगे रुपये से आमदनी कई वर्षों बाद होवे। दिल्ली के श्री ओम्‌प्रकाश ने पूंजीपतियों की मनोवृत्ति के बारे में लिखा है—"बहुत-सी कम्पनियाँ खड़ी कर दी गईं और लोगों ने उतावले होकर आवश्यकता से अधिक पूंजी लगा दी। लेकिन उद्योग-धंधों से रुपया पाँच-सात साल बाद लौटा करता है। उधर बाहर से कारखानों का सामान मिलना मुश्किल हो गया, इसके कारण नई कम्पनियों में फंसा रुपया बिना नफा के कई सालों के लिए रुक गया। इसके कारण शेयर का भाव गिर गया। और नये शेयर खरीदने वालों का उत्साह मंद हो गया।"

महीप—लेकिन हमारी सरकार तो हर तरह से अनुनय-विनय करके पूंजीपतियों को अपने साथ रखना चाहती है, वह उनके हर पाप को क्षमा करने के लिए तैयार है। कपड़े से कंट्रोल हटते ही कपड़े के सेठों ने तीन महीने में एक अरब रुपया मारके रख लिया। सरकार इस पर पहले आगबगूला होकर चाहती थी कि कपड़े के व्यापार के अतिरिक्त-लाभ पर भी कर बढ़ाया जाय। लेकिन अंत में सरकार ने यह खयाल छोड़ दिया, क्योंकि, पूंजी जिनके पास है उन्हें नाराज करने से काम नहीं चलेगा।

युधिष्ठिर—एक तरफ अपने देश के पूंजीपतियों को खुश रखने के लिए रियायत दी गई है, दूसरी तरफ विदेशी पूंजीपतियों के लिए भी ऐसी रियायतें दी जा रही हैं, जिनमें वह अपनी लगी पूंजी को निकाल न ले जायं तथा दूसरे विदेशी पूंजी-

१—परिशिष्ट अ० ५।१।५

पति यहाँ आके पूंजी लगाने में नहीं हिचकें। भारत में उद्योग-धंधा रखने वाले अंगरेजों के सामने दिसम्बर में प्रधान मंत्री ने जो भाषण दिया था वह उन्हें कितना पसंद आया, इसे यूरोपीय व्यापारी-सभा के सभापति एटकिन्स के शब्दों में सुन लीजिये--"हममें से जो लोग भारत में विदेशी पूंजी के लगाने में सरकार की नीति के बारे में शंकित हो गए थे, वे प्रधान-मंत्री के भाषण का स्वागत करेंगे। विदेशी पूंजी इससे अधिक और कुछ नहीं चाहती, कि उसे भी भारतीय आवश्यकताओं में सेवा करने के लिए भारतीय पूंजी के समान ही अवसर दिया जाय।" भारत सरकार विदेशी पूंजी को हर तरह की रियायत से संतुष्ट ही नहीं करना चाहती, बल्कि विदेशी पूंजी को भी वही सुभीते दे रही है।

महीप--इस पर भी सरकार पूंजीपतियों से निर्लेप रहने की कसम खाती है।

युधिष्ठिर--हमारे देश के उद्योगीकरण में जितने पैसों की आवश्यकता है, वह देश के पूंजीपतियों और पहले से लगी विदेशी पूंजी के द्वारा नहीं पूरी की जा सकती, इसीलिए दूसरे तरीकों से भी पूंजी जमा करने की कोशिश की जा रही है। अन्त-र्राष्ट्रीय बंक से १५ करोड़ डालर कर्ज लिया गया है। इसके अतिरिक्त पिछले युद्ध में १२० करोड़ पौंड-पावना जो इंग्लैंड के ऊपर हो गया था, उससे भी मदद मिली है, लेकिन खाद्य-सामग्री जैसी अत्यावश्यक चीजों के लिए करोड़ों रुपये निकल गए। इस साल तो पौंड-पावने में से जितना डालर इंग्लैंड ने दिया था, उससे दस करोड़ डालर अधिक की चीजें हमें खरीदनी पड़ीं। पौंड-पावने का पैसा जिस तरह से खर्च होता जा रहा है, उससे आशा नहीं है, कि उससे देश के उद्योगीकरण में अधिक सहायता मिल सकेगी।

भगवानदास--अब और कौनसा रास्ता है, जिससे भारत के उद्योगीकरण के प्रोग्राम को आगे बढ़ाया जा सके?

युधिष्ठिर--इसका एक ही रास्ता है, कि विश्व के धनकुबेर का दरवाजा खटखटाया जाय। अमेरिका के राष्ट्रपति ट्रूमन ने अपने भाषण में जो बात इस विषय में कही थी, उससे असंतोष प्रकट करते हुए रा० सक्सेना ने कहा--"राष्ट्र-पति ट्रूमन ने अपने भाषण में अविकसित देशों को टेकनिकल सहायता देने की बात की है। टेकनिकल सहायता का महत्व है, इसमें संदेह नहीं, किंतु जब तक अवि-कसित देशों में पूंजी लगाने का काम भी साथ-साथ नहीं होता, तब तक वह बेकार होगा।" सक्सेना ने और आगे कहा--"इन देशों में पूंजी के लगातार लगाने और टेकनिकल साधनों से संयुक्त करने पर उपज का मान और ऊँचा होता जायगा और वहाँ के लोगों की जो भारी मांग बढ़ेगी, उससे (अमेरिका में) आर्थिक संकट का भय सदा के लिए खतम हो जायगा।" सक्सेना न अमेरिकन

पूंजीपतियों के हृदय को नरम करने का प्रयत्न करते हुए कहा—"सारे विश्व की आर्थिक स्थिति को देखते हुए मैं कहूंगा, कि युक्तराष्ट्र अमेरिका—जो ही केवलमात्र औद्योगिक विकास पूंजी देने की क्षमता रखता है—विश्व में आर्थिक कारबार बिगड़ने से रोकने के लिए रास्ता ढूढ़े और अविकसित देशों की विकास योजनाओं के लिए पूंजी दे। इस तरीके से लोगों को पूरी तौर से काम मिलेगा। औद्योगिक उपज यथेष्ट परिमाण में चालू रहेगी, और सारे विश्व के लोगों का जीवनतल ऊँचा होगा, जिससे यह साबित होगा, कि विश्व सचमुच एक है, जिसमें शान्ति की भांति समृद्धि भी सबके लिए अविभाज्य है।"

महीप—भारत आदर्शवादियों से खाली नहीं होगा ?

युधिष्ठिर—लेकिन जिसके पास पैसा है, वह उसे जहाँ-तहाँ बोता नहीं फिरता, वह पचास बार देखकर तब आगे कदम रखने की कोशिश करता है। जैसा कि पहले बता चुके हैं, श्री घनश्यामदास बिड़ला पूंजी की खोज में बाहर जाने वाले देशवासियों में सबसे प्रभावशाली हैं—भाग्यशाली तो हैं ही। उन्होंने अमेरिका की पूंजी-राजधानी में कई दिन उन लोगों से बातें की, उनके सामने अपने सुझाव रखे, जोकि ट्रूमन के कथनानुसार पूंजी बाहर लगाने की क्षमता रखते हैं। २२ मई (१९४९) को न्यूयार्क में एक संवाददाता से बिड़ला ने अपने विचार प्रकट किये—"हमने अमेरिकन उद्योगपतियों में से चोटी के कितने ही लोगों से बातचीत की। यह उद्योगपति वह हैं, जिनके हाथ में मोटरकार की कंपनियाँ, बिजली के सामान तथा बिजली पैदा करने के प्लाँट कपड़े की मिलें, और तेल के बड़े-बड़े कारबार हैं। हमने ऐसों से भी बातचीत की, जो कि बड़े बैंकर, कोशपति, भारी इंजीनियरी कारबार के मुखिया हैं। यहाँ के व्यापारी आमतौर से भारत के प्रति सहानुभूति रखते हैं। वह अच्छी तरह अनुभव करते हैं, कि चीन के चले जाने तथा एशिया के दूसरे भागों में उथल-पुथल होने के कारण भारत ही ऐसा देश है, जो शान्तिस्थापना करने में सहायता कर सकता है। लेकिन व्यवहार में उनकी सारी सहानुभूति का अर्थ कुछ नहीं है। यदि हमारे पास डालर होते, तो अमेरिका से यंत्रों और टेकनिकल ज्ञान लेना मुश्किल न था; लेकिन हमारे पास डालर नहीं हैं, इसलिए भारत अमेरिका से तभी यंत्र और टेकनिकल सहायता प्राप्त कर सकता है जब कि अमेरिकन ही हमारा हस्तावलम्बन करें।"

महीप—प्रधान मंत्री तो पूरा विश्वास दिला चुके हैं।

युधिष्ठिर—प्रधान मंत्री के विदेशी पूंजीपतियों को पूरी छूट की घोषणा करने पर भी बिड़ला उसे पर्याप्त नहीं समझते, इसीलिए कहते हैं कि—"प्रधान

मंत्री ने विदेशी पूंजी के सम्बन्ध में जो वक्तव्य दिया है, वह संतोषजनक समझा जाता है, लेकिन उसमें कई बातों को और साफ करने की आवश्यकता है। आशा है, प्रधान मंत्री जब यहाँ आयेंगे तो उन्हें और साफ कर देंगे।"

महीप—प्रधान मंत्री की जिस सफाई की प्रतीक्षा बिड़लाजी के कथनानुसार अमेरिकन पूंजीपति कर रहे हैं, उसे सोचकर भारत का सिर यदि गरम होने लगे, तो आश्चर्य नहीं। अभी भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के जूए में जोड़कर एक सफाई हमारे प्रधान मंत्री दे आये हैं।

युधिष्ठिर—बिड़लाजी ने यह भी विचार प्रकट किया—"यदि हम देश का जल्दी-से-जल्दी उद्योगीकरण चाहते हैं, तो उसके लिए आवश्यक सामान खरीदने पड़ेंगे। इसके लिए अगले कुछ सालों में एक अरब डालर खर्च करने पड़ेंगे। यह तभी हो सकता है, जब अमेरिकन उद्योगपति केवल पैसे ही से मदद नहीं करें, बल्कि अमेरिकन काम के ढंग को भी बतलायें।"

महीप—विश्वबंक भी सहायता करेगा ही। फिर क्या ?

युधिष्ठिर—आगे बिड़लाजी ने कहा—"विश्वबंक भी भारत को कुछ सहायता देगा। किंतु बहुत अधिक रकम की नहीं। इसलिए वह समस्या को हल नहीं कर सकता। यदि भारत उद्योग-प्रधान बनना चाहता है, तो उसे बहुत हद तक अमेरिका की सहायता और सहयोग पर निर्भर करना पड़ेगा, और आपसी संपर्क से संदेहों को दूर करना आवश्यक है। आशा है, हमारी नई राजदूता श्रीमती विजयलक्ष्मी की अधीनता में हमारा दूतावास उन संदेहों को दूर करने में सफल होगा।"

महीप—बकरे की जान गई, किंतु खाने वाले को स्वाद नहीं आया। संदेह !

युधिष्ठिर—सन्देहों के बारे में बिड़लाजी ने कहा—"यहाँ के पूंजीपति का विदेश में और विशेषकर भारत में, पैसा लगाने का मन नहीं करता। वह अत्यधिक लाभ नहीं चाहता, लेकिन साथ ही वह अपनी अंगुली को जलाना भी नहीं चाहता।...हाल में कारखाना-संबन्धी जो कानून भारत में बना है, और जो अधिक परतंत्रता पूंजी पर लादी गई है, उससे अमेरिकन उद्योगपतियों का भय अधिक बढ़ गया है; अमेरिकन लोगों को भारत का कर भी अधिक मालूम होता है। लाभ में मजदूरों को सहभागी बनाना, कारखाना-नियंत्रण-कानून और पैसे के लौटा पाने की अनिश्चितता, यह सभी बातें सन्देह का कारण हुई हैं।"

महीप—साथ ही कम्युनिस्टों के उपद्रव की खबरें भी तो। बिड़लाजी एक डले से दो शिकार करने में उस्ताद हैं।

युधिष्ठिर—बिड़लाजी ने अमेरिकनों की ओर से किंतु अपने भारतीय बंधुओं

के हितों की ओर निगाह रखते हुए कहा—"मैं समझता हूँ भारत सरकार को यह अनुभव करना होगा, कि विदेशी पूंजी लगाने वालों के ऊपर तलवार लटकाना और फिर उन्हें समुद्र पार से आकर मदद देने के लिए कहना, दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं ।" बिड़लाजी को वहाँ यह देखकर संतोष हुआ, कि अमेरिका में देश की अर्थनीति से सम्बन्ध रखने वाले सभी महत्वपूर्ण विभाग प्रत्यक्ष या अपत्यक्ष रूप से उद्योग-संचालकों के नीचे हैं ।

भगवानदास—सचमुच, अमेरिकनों से पैसा निकलवा सकेगा, तो यही पुरुष ।

युधिष्ठिर—अमेरिका से भारत के जल्दी उद्योगीकरण के लिए कितनी पूंजी और टेकनिकल सहायता मिलेगी, इसका पता लगाना बिड़लाजी के वक्तव्य के बाद भी मुश्किल है। यह तो निश्चय समझना चाहिए कि अमेरिका से पूंजी प्राप्त करना नेहरू भाई-बहिन की कोशिश से नहीं, बल्कि बिड़ला की ही सिपारिश पर संभव है । भारत सरकार को अभी देशी-विदेशी पूंजीपतियों के सामने नाक रगड़नी होगी, और अपनी अवांछनीय हरकतों के लिए कान पकड़ कर उठना-बैठना होगा, तब शायद अमेरिकनों का हृदय द्रवित हो, और ऊँट के मुंह के जीरा दस-बीस करोड़ मिल जाय । लेकिन क्या हमारा देश अधिक दिनों तक हाथ-पर-हाथ धरके बैठे रहने की अवस्था में है ? ५० लाख खाने वाले मुखों का हर साल बढ़ना भारी संकट ऊपर से है ही, जिसके लिए हमारी सरकार पिछले साल ट्रेक्टरों से बहुत जोर लगाने के बाद सिर्फ ४० हजार एकड़ जमीन को आबाद करा पाई । हमें चाहे जैसे भी हो देश के उद्योगीकरण को आगे ले चलना है ।

रामी—रूस ने कैसे किया था ?

युधिष्ठिर—सोवियत् रूस ने १९२२ में गृहयुद्ध की समाप्ति के बाद जब फिर से आर्थिक पुनर्वास का आयोजन किया, उस समय रूस की अवस्था हमसे भी बहुत गई-गुजरी थी । मोटर और बिजली के उद्योगों का नाम भी न था; रेलें, कपड़े के कारखाने सभी गृह-युद्ध की बलि चढ़ चुके थे । सारे बड़े देश शत्रु थे, फिर कौन कर्ज देता ? लेकिन रूस के पास अपार प्राकृतिक-संपत्ति थी, वहाँ के लोगों के पास सीखने-समझने की शक्ति थी । थोड़े-बहुत इंजीनियर और विज्ञान-वेत्ता भी थे, जिनकी संख्या आज के भारतवर्ष से अधिक नहीं थी । हमारे देश में कोई वैसी ध्वंसलीला नहीं होने पाई, देश स्वतन्त्र होते समय रेलें सर्वथा सुरक्षित रहीं, हमारे कल-कारखाने काम करते मिले । फिर क्यों न हम भी अपनी प्राकृतिक-संपत्ति और मानवी प्रतिभा का उपयोग करें ? विदेशी-पूंजी आना चाहे, तो आये और उसके लिए हम कुछ रियायत करें तो भी ठीक है; लेकिन सिर्फ उसीके भरोसे बैठा नहीं रहना चाहिए । सोवियत् रूस बीस वर्षों के प्रयत्न के बाद आज दुनिया

का दूसरे नम्बर का उद्योग-प्रधान देश बन गया है। जापान ने भी अपने परिश्रम से ही अपने को शक्तिशाली बनाया था। चीन ने एक साल के भीतर अपने को खाद्य में स्वावलंवी बना लिया, १९५० में पिछले साल से ७५ लाख टन अधिक अन्न उपजाया। समस्यायें आकाश या पाताल की ओर मुंह करके बैठे रहने से हल नहीं हुआ करतीं।

रामी–तो हमें भी परमुखापेक्षी नहीं होना चाहिए।

युधिष्ठिर–यदि हम अपने लिए पर्याप्त भोजन अपनी धरती से निकालना चाहते हैं, तो उसके लिए कोसी, महानदी आदि की योजनाओं को पूरा करना होगा। और वह योजनाएँ उसी दशा में पूरी होंगी, जब विशाल नदियों से पनबिजली के साथ दूसरे उद्योग-धन्धों को भी साथ-साथ बढ़ाया जाये। यदि हम कपड़े की समस्या को हल करना चाहते हैं, और बाहर से चीजें मंगा नहीं सकते, तो कारखानों को उन्नीसवीं नहीं आधुनिकतम मशीनों से सज्जित और संगठित होना चाहिए। यदि हम अपने देश के सारे लड़के-लड़कियों को साक्षर बनाना चाहते हैं, तो पाठ्य पुस्तकों के लिए जितने कागज की आवश्यकता होगी, उसके लिए आज से तिगुने नये कारखाने खोलने पड़ेंगे, और उन्हें अपने यहाँ के बने यन्त्रों से चलाना होगा। यह लज्जा ही नहीं अत्यन्त शोक की बात है कि हमारे एक-दो जिलों के बराबर के स्वीजरलैंड, स्वीडन और चेकोस्लावाकिया जैसे देशों के सामने हम रेल के डब्बों, विजली के सामान, रेफ्रिजरेटर के लिए हाथ पसारें। हमारे छापेखानों का चलना असंभव हो जायगा, यदि हम बाहर से मशीनें न मंगायें। आलपीन, सुई से लेकर फाउन्टेनपेन, ब्लेड, घड़ी, मोटर तथा विमानों तक सभी चीजें हम बाहर से मंगाकर अपना कभी कल्याण नहीं कर सकते।

महीप–हमारे नेता गद्दी संभाल कर निश्चिन्त जो हैं।

युधिष्ठिर–हमारे राजनीतिक नेताओं के लिए तो यह जीवन-मरण का प्रश्न है। आजकल की तरह ढीलमढाल चाल से वह पाँच वर्ष तक मुश्किल से अपना अस्तित्व कायम रख सकते हैं। हमारी भोजन की समस्या और भंयकर होगी, शिक्षा, स्वास्थ्य के संबंध में सारे वादे झूठे सिद्ध होंगे।, दो बरस या चार बरस टालने पर भी लोगों के पास वोट के लिए जाना ही पड़ेगा–फिर २१ वर्ष से ऊपर वाले उस वक्त के नर-नारियों में क्या चतुर्थांश के वोट को भी प्राप्त कर सकेंगे? यदि आग से खेलना नहीं चाहते हैं, तो उन्हें देश की आवश्यकताओं को देखना होगा। यदि हमारे देश के शांतिप्रिय भाई देश को खूनी क्रांति के भीतर से नहीं घसीटना चाहते हैं, तो उन्हें भी कोशिश करनी होगी, कि अपनी आर्थिक समस्याओं को और बुरी न होने दिया जाय, और देश के किसी शिक्षाप्राप्त मस्तिष्क को बेकार

न रहने दिया जाय। केवल कलकत्ता में दो सौ से अधिक ऐसे तरुण बेकार पड़े हैं, जिन्होंने विदेश जाकर कल-कारखानों और विज्ञान की बातें वर्षों रहकर सीखी हैं, लेकिन भारत लौटने पर उनके लिए कोई काम नहीं। तारीफ यह कि इनमें कुछ भारत सरकार की छात्रवृत्ति लेकर बाहर गये थे। जब एक तरफ योजनाएँ धरती पर उतरने के लिए तैयार हों, और दूसरी तरफ उपयुक्त संख्या में विशेषज्ञ तैयार किये जायं, तभी दोनों का ठीक से उपयोग लिया जा सकता है। लेकिन इसके लिए उनसे क्या आशा की जा सकती है, जो एक दिन में सौ फाइलों पर हस्ताक्षर कर देने से समझते हैं, कि उन्होंने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया? आज बड़े वेतन का स्थान होना चाहिए, फिर योग्य-अयोग्य का कोई भी खयाल न करके अपने आदमियों को भरती करने की बात सोची जाती है। इंजीनियरी के क-ख को भी न जानने वाले एक सज्जन भूगर्भी रेलों के काम को देखने के लिए विलायत भेजे गए हैं, जहाँ से वह शायद पेरिस, बर्लिन और फिर अमेरिका का भी चक्कर लगायेंगे। पौंड-पावने और विदेशी विनिमय का यह कितना सदुपयोग है? बड़ी-बड़ी पनबिजली और नहर की योजनाओं के प्रधान प्रबंधक जो लोग बनाये गए हैं, उनका उस काम से कभी कोई संबंध नहीं रहा। वह मोटी-मोटी तनखाहें लेते बड़े-बड़े भत्ते बना रहे हैं। दामोदर-योजना की अकर्मण्यता को देखके "अमृत-बाजार-पत्रिका" (१५ मार्च १९४९) ने झुंझला कर लिखा था—"दामोदर-योजना की प्रगति के बारे में जो कुछ सूचनाएँ मिली हैं, वे बहुत उत्साहवर्धक नहीं हैं। आठ विकराल बाँध बाँधे जाने वाले हैं, किंतु अभी बनाने का काम एक में भी शुरू नहीं हुआ है। सिर्फ इंजीनियरों की प्रारंभिक दौड़-धूप हो रही है। अभी तक केवल ४५ एकड़ जमीन किसानों से प्राप्त की गई है, किंतु उनसे भी किसानों को हटाया नहीं गया है। इस योजना को पूरा करने के लिए जितनी विशाल मात्रा में कार्य करना है, उसे, आज हुए काम को देखने से कोई आशा नहीं होती, कि योजना निश्चित समय के भीतर समाप्त हो सकेगी। यदि काम इसी गति से चलता रहा, जैसे कि हो रहा है, तो इतना समय लगेगा कि लोग अधीर हो जायंगे। केवल लम्बी बातें करने और वचन देने पर वे संतुष्ट नहीं हो सकते। यदि जनता को अपने पक्ष में करना है, यदि राष्ट्रीय-सरकार के लिए उनका पूर्ण समर्थन प्राप्त करना है, तो कुछ ठोस चीज करनी होगी और वह भी बहुत जल्द। इस बात में जितनी देर होगी, आन्दोलनकारियों को गड़बड़ी फैलाने का उतना ही अधिक अवसर मिलेगा।"

भगवानदास—बिजली के सम्बन्ध में तो मालूम है, कि भारत यद्यपि आबादी में ड्योढ़े से ज्यादा है, किंतु रूस में हमारे यहाँ से ४५ गुना अधिक बिजली पैदा होती है।

युधिष्ठिर—हाँ, और १९५० में पूरी हुई सोवियत् पंचवार्षिक योजना, जो अब पूरी हो चुकी है, योजनाके निम्न परिमाण से अधिक भिन्न-भिन्न पदार्थों को तैयार कर रही है—

पदार्थ	टन (लाख)
लोहा	१९५ ,,
इस्पात	२५४ ,,
कोयला	२५०० ,,
मिट्टी का तेल	३५४ ,,
बिजली	८२००० (किलोवाट)
रेल-इंजन	१०००
मोटर	५,००,०००
ट्रेक्टर	२,२२,०००

रामी—और यह सब केवल बीस वर्षों के प्रयत्न से ?

युधिष्ठिर—और इसके मुकाबिले में हमारी औद्योगिक उपज (१९४७-४८ ई०) रही¹—

१९४८–४९		
लोहा	१५.४०८	लाख टन
इस्पात	१२.५८९	,, ,,
तैयार इस्पात	८.८७	,, ,,
कोयला	२६८	लाख टन
बिजली	४२२१७	लाख किलोवाट
सूती कपड़ा	३७३४७	लाख गज
जूट	१०१८२	,,

रामी—और हमारी संख्या सोवियत् वालों से डेढ़ गुनी से अधिक है।

१—१९४८ और १९४९ के पूर्वार्द्धों की उपज निम्न प्रकार है—

	१९४८ (पूर्वार्द्ध)	**१९४९ (पूर्वार्द्ध)**
कोयला (टन)	**१५५,२७,७६३**	**११५,४६,०६९**
सीमेंट (,,)	**७,५०,२९०**	**९,५८,०५१**
कागज (,,)	**४७,४४८**	**५१,३२४**
कपड़ा (गज)	**२१०,५६,७८,०००**	**१९९,६६,०२,०००**
सूत (पौंड)	**६९,०६,१६,०००**	**७६,३४,०५,२००**

"हिन्दुस्तान टाइम्स" २८—७—४९

युधिष्ठिर–लेकिन सोवियत् के लोग इतने पर ही संतुष्ट नहीं हैं। वह सोचते हैं, कि जब तक अमेरिका के बराबर चीजें नहीं पैदा की जायंगी, तब तक हम दम नहीं लेंगे। इसके लिए ड्योढ़ी जनसंख्या होने के कारण अमेरिका से ड्योढ़ी उपज को बढ़ाना पड़ेगा। इस काम को वह १९६० ई० में पूर्ण कर देना चाहते हैं, जबकि सोवियत् की कुछ चीजों की उपज निम्न प्रकार रहेगी––

लोहा	५ करोड़ टन (मेट्रिक)
इस्पात	६ ,, ,,
कोयला	५० ,, ,,
मिट्टी का तेल	६ ,, ,,

हम यदि उस वक्त की सोवियत उपज के समान शक्तिशाली होना चाहते हैं, तो तब उनसे हमारी जनसंख्या दूनी होने के कारण हमें इन चीजों को भी दूने परिमाण में पैदा करना होगा। चतुर्थ योजना के पूर्ण होते ही सोवियत् ने औरों के अतिरिक्त वोल्गा की कुविश्येफ़ और स्तालिनग्राद तथा वक्षु की अभूतपूर्व, अतिविशाल नहर-पनबिजली योजनाओंमें हाथ लगा दिया है। कुविश्येफ़ पन-बिजली स्टेशन दुनिया का सबसे बड़ा स्टेशन होगा। वक्षु को कास्पियन समुद्र से मिलानेवाली नदी ११०७ किलोमीतर (स्वेज १६० किलोमीतर) होगी, करोडों एकड़ नई कृषि भूमि रेगिस्तान से छीनी जायेगी।

महीप–दुनिया दौड़ी जा रही है और हम ?

युधिष्ठिर–दुनिया में जीवन की जबर्दस्त होड़ लगी है। वहां खड़ा होकर तमाशा देखने वाला भीड़ के पैरों के नीचे रौंद दिया जायेगा। क्या हम रौंदे जाना चाहते हैं या अपने देश को उद्योग-प्रधान बनाकर सुखी और समृद्ध बनाना चाहते हैं ?

———

५

पराये भरोसे उद्योगीकरण—दुराशामात्र

आज की बैठक में पहले भगवानदास ने युधिष्ठिर को सम्बोधित करके कहा—हम लोगों का वार्त्तालाप जान पड़ता है, लोगों तक में फैल रहा है। यद्यपि लोग संकोच के मारे पास नहीं आते, किन्तु कितनों ही के कान खड़े दिखाई पड़ते हैं।

महीप—खड़े होते रहें।

भगवानदास—खड़े होते रहे, तो कोई-कोई नजदीक भी आने की धृष्टता करेंगे। खैरियत यही है, कि जो लोग हमारी बातों में दिलचस्पी ले सकते हैं, वह ऐसी धृष्टता नहीं कर सकते। उनको हमारी बातों में कोई रुचि नहीं। तो भी मैं प्रार्थना करूँगा, कि यदि हम अपनी पंचायत को गंगातीर पर ले चलें, तो अच्छा है।

रामी—तो आप समझते हैं भगवान भाई! गंगा-घाट पर भीड़ नहीं लगेगी?

खोजीराम—मैं कहूँगा, क्यों न हम राजघाट की तरफ चलें।

महीप—डाक्टर साहब को जान पड़ता है, ऋषि-वेली भूली नहीं है।

खोजीराम—ऋषि-वेली के खयाल से नहीं, वहाँ तो जगद्गुरु कृष्णमूर्ति जगत् का फंदा काट रहे हैं, हम ऋषि-वेली से आगे चलें। हमारे आने-जाने में दिक्कत नहीं होगी, क्योंकि भगवानदास के पास कार है और मेरे पास भी।

भगवानदास—ऋषि-वेली क्या यदि सारनाथ चलना हो, तो भी कोई बात नहीं, लेकिन मैं गंगा के घाट की बात नहीं कह रहा हूँ।

महीप—जीते जी नहीं ले जाना चाहिए भगवान भाई!

युधिष्ठिर—कहने भी दो। भगवान भाई, आप कहाँ पंचायत को ले चलने का प्रस्ताव कर रहे हैं?

भगवानदास—गंगा के किनारे हमारा अपना घर है, और उसकी छत पर से गंगा दूर तक दिखाई पड़ती है।

महीप—नहीं गुरु, यह नहीं होगा। पिछले साल जब से रायकृष्णदासजी के मकान ने गंगालाभ लिया, तब से ऐसे मकानों पर मेरा विश्वास कम हो गया है, विशेषकर बरसात के दिनों में।

भगवानदास—हमारा मकान बहुत ऊँचा होने से यद्यपि वहाँ से गंगा दिखाई देती हैं, किन्तु गंगातट और हमारे घर के बीच में तीन-चार और मकान हैं और सिंधिया का पक्का घाट भी।

रामी—मैं भगवान भाई के पक्ष में हूँ, न मालूम महीने-भर या कितने दिनों हमारी पंचायत चलेगी। कल ही आपने पढ़ा है, काशी के पत्रों में पंचायत की चर्चा शुरू हो गई है।

महीप—रामी बहन ने फैसला दे दिया।

युधिष्ठिर—तो जान पड़ता है, सब इसके समर्थक हैं और अगली बैठक गंगा-किनारे भगवान-भवन की छत पर होगी।

भगवानदास—सभी भाइयों को इस अनुग्रह के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद, रामी बहन को विशेष करके। एक और निवेदन करना चाहता हूँ, यद्यपि मेरा उसके लिए विशेष आग्रह नहीं है। आपने महात्मा मुखपात्री जी का नाम सुना होगा ?

महीप—मैंने तो नहीं सुना, बड़ा विचित्र नाम है !

खोजीराम—मैंने उनका नाम सुना है, काशी के बड़े लोगों में भी उनकी बड़ी पूजा होती है। करपात्री जी ने तो कभी किसी युग में कर को पात्र बना के भिक्षा लेनी शुरू की थी, और मुखपात्री जी हाथ में भी भोजन नहीं लेते। मुख से जो कोई खिला देता है, उसी को खा लेते हैं। शरीर पर एक कोपीन और अंगोछा के सिवा और कुछ नहीं रखते। काशी के बड़े-बड़े शिक्षित, संस्कृत और अंग्रेजी दोनों के जानकार उनके भक्त हैं।

महीप—तो, उससे हमारी बैठक से क्या मतलब ?

भगवानदास—डाक्टर साहब ने उस महात्मा के बारे में बतलाया तो, लेकिन उनको समझ लीजिये बीसवीं शताब्दी के भारत के जितने महात्मा हुए हैं, सबका एकत्र अवतार।

महीप—अर्थात् वह रामकृष्ण परमहंस भी हैं, पं० त्रैलिंगस्वामी और भास्करानन्द भी, साथ ही अरविंद, रमन महर्षि, आनन्दी माई, स्वामी शिवानन्द, भक्तराज जयदयाल गोयन्दका और विश्वाद्वैतवादी महापुरुष रामकृष्ण डालमिया इत्यादि इत्यादि सभी।

भगवानदास—मैं तुमसे नाराज नहीं होता महीप बाबू, यही समझिए कि विश्व की सारी आध्यात्मिक विभूतियाँ उनमें अवतरित हुई हैं। उनको किसी तरह से हमारी पंचायत का पता लग गया, और वह चाहते हैं, कि यदि आपत्ति न हो, तो वह भी हमारी बैठक में श्रोता बनें।

रामी—इसीलिए तो भगवान भाई, आपने स्थान-परिवर्तन की भूमिका नहीं बाँधी ? खैर, मैं तो नहीं समझती, यदि महात्मा मुखपात्री जी श्रोता ही नहीं संयम के साथ वक्ता भी बनके हमारी बैठक में शामिल हों, तो कोई आपत्ति होगी।

युधिष्ठिर—लेकिन, ऐसा न हो कि कल को कोई दूसरा भाई करपात्रीजी को सम्मिलित करने की बात करे और परसों तीसरा किसी और पात्री को।

सब लोगों ने भगवानदास के प्रस्ताव को माना और आज असली विषय पर वार्त्तालाप भगवानदास ने शुरू किया—युधिष्ठिर भाई, हमने एक दिन विदेशी पूंजी की बात चलाई थी। पत्रों में भी देखते हैं। कितने ही लोग विदेशी पूंजी को भय की दृष्टि से देखते हैं, कोई-कोई तो उसे सीधे डालर-साम्राज्य के हाथ में बिकना कहने से भी बाज नहीं आते। लेकिन क्या हमारा देश ऐसी स्थिति में है, की बाहरी सहायता को ठुकरा दे? जल्दी और कम-तरद्दुद से देश के उद्योगीकरण के लिए विदेशी पूंजी और विदेशी विशेषज्ञों की सहायता ली जाय तो क्या हरज? दूसरे देश के पास सारे साधन मौजूद हैं, वह अगर हमारी सहायता करना चाहता है, तो उसमें आपत्ति की कौन सी बात है?

महीप—आप समझते होंगे, कि मैं अमेरिका की सहायता का कट्टर विरोधी हूँ? यदि मुझे विश्वास होता, कि हमारी शर्त पर अमेरिका बीस साल के भीतर हमारे देश को उद्योग-प्रधान कर देगा, तो मैं मानने के लिए तैयार था; लेकिन मैं समझता हूँ, अमेरिका कभी ऐसा नहीं कर सकता न करेगा।

भगवानदास—पहले से ही आप ऐसा कहे देते हैं?

महीप—यदि कोई कहे कि भगवानदासजी अपने हाथ से एक तोला अफीम लेकर खा लेंगे, तो क्या मैं यह नहीं कह सकता, कि वह ऐसा नहीं करेंगे।

भगवानदास—लेकिन यह अफीम खाकर मरने का सवाल नहीं है; अमेरिका को भी इसमें नफा है।

महीप—बस, उसी नफे को दिखला दीजिए। कैसे अमेरिका हमारे देश को उद्योग-प्रधान बनाके नफा उठाता रहेगा? जिस वक्त हमारा देश एक बार उद्योग-प्रधान बन गया, तो अपनी संख्या के अनुसार वह अमेरिका से ढाई गुना अधिक शक्तिशाली बन जायगा, फिर उसे किसी से लेना-देना नहीं रहेगा। लेकिन आप सोचिये जरा, क्या दुनिया में कहीं देखा है, कि एक देश ने दूसरे को उद्योग-प्रधान बना दिया है। इंगलैंड अपने साम्राज्य की लूट और अपने बल पर उद्योग-प्रधान बना; अमेरिका, जर्मनी, जापान अपने बल पर बने। रूस तो विरोध करने के बाद भी केवल अपने हाथों और मस्तिष्क के बल पर उद्योग-प्रधान बना। जो बात इतिहास में नहीं देखी गई, कैसे मान लिया जाय, कि वह अमेरिका हिन्दुस्तान के साथ करेगा।

खोजीराम—मैं समझता हूँ, भगवानदासजी को संकटमोचन के महात्मा की यह चौपाई याद नहीं है—"सुर नर मुनि की ये ही रीती। स्वारथ लायकरहिं सब प्रीती।"

रामी—भगवान भाई, क्या अयुक्त बात कहते हैं ? अमेरिका हिन्दुस्तान की मदद कर सकता है। आखिर अमेरिका पश्चिमी यूरोप में डालर-वर्षा कर ही रहा है।

महीप—हिन्दुस्तान को यदि अमेरिका कभी दो अरब डालर दे सकता है, तो केवल इसी स्वार्थ से कि हिन्दुस्तान साम्यवाद के लिए ढाल का काम देगा। लेकिन चीन में दस अरब रुपया गंवाकर अब उसकी वह हिम्मत नहीं रह गई है। वैसे लल्लो-पत्तो में लगाके हमारे देश को फंसाये रखना दूसरी बात है। यह तो आप मानेंगे कि अमेरिका हमारा मुँह देखने के लिए अरबों डालर नहीं देगा। सबसे पहले यह देखेगा, कि हम पर राजनीतिक तौर से वह विश्वास रख सकता है या नहीं।

खोजीराम—इसमें भी क्या संदेह है, जब कि भारतवर्ष ने अमेरिकन साम्राज्य के उपसाम्राज्य ब्रिटिश-साम्राज्य में रहना ही नहीं स्वीकार किया, बल्कि देश के भीतर और बाहर उसकी सारी गतिविधि उसी तरह की हो रही है, जिसे अमेरिका चाहता है। कोरिया के बारे में अपने आचरण से हमने और सफाई दे दी !

युधिष्ठिर—इस बात को पहले ही कह चुके हैं, दोहराने की आवश्यकता नहीं, हम डालर-साम्राज्य के भीतर पूर्णरूप से हैं; लेकिन अमेरिका को अभी भी विश्वास होता नहीं दिखाई पड़ता।

भगवानदास—हनुमान जी होते, तो हम हृदय चीरकर रख देते। यह तो सब तरह से स्पष्ट है, कि हमारा देश रूस और उसके साथ सहानुभूति रखने वालों से केवल दिखावेभर का सम्बन्ध रखना चाहता है।

महीप—दिखावे का भी मत कहिये, जब कि हमारे प्रधान-मंत्री रूस के निमन्त्रण को अस्वीकार करते हैं, और अमेरिका के निमन्त्रण को स्वीकार। कोरिया ने तो हमें दिखावे लायक भी रहने नहीं दिया।

भगवानदास—जिससे कुछ मिलने वाला होता है, उसके दो लात भी आदमी मंजूर करता है।

महीप—मैं कहूंगा, बिना कुछ मिले-जुले ही हम दो-दो लात खाने जा रहे हैं। आपके देश को उद्योग-प्रधान बनाने के लिए अमेरिका को कितना सामान देना पड़ेगा ? सामान के बारे में कहने से पहले मैं यह बतला देना चाहता हूँ; यदि आप समझते हैं, कि अमेरिका आपके यहाँ आकर मौलिक उद्योग-धंधे स्थापित कर देगा, ऐसे कल-कारखाने स्थापित कर देगा, जिसमें सुई से लेकर विमान तक, मोटर से लेकर विशाल युद्धपोत तक सभी चीजें हम बना सकें; तो आपके जैसा भोला आदमी दुनिया में नहीं है। ऐसा करने के बाद आप तुरन्त उसे अंगूठा दिखला देंगे।

भगवानदास—मौलिक उद्योग-धंधे न सही, हल्के उद्योग-धंधे को जमाने में क्या दिक्कत है ? हल्के उद्योग-धंधे के जम जाने पर मौलिक या भारी उद्योग-धन्धों को हम स्वयं धीरे-धीरे खड़ा कर लेंगे।

रामी—भगवान भाई, आप द्रविड़ प्राणायाम कर रहे हैं। अमेरिकन पूंजीपति बेवकूफ तो नहीं हैं, कि आपकी चाल न समझ पायेंगे।

महीप—यह भी सोचिए, हमारे देश की जनसंख्या अमेरिका से ढाई-गुनी के करीब और रूस से डेढ़-गुनी है। यदि रूस की पंचवर्षीय योजना से ड्योढ़ा अपने उद्योग-धन्धे को बढ़ा सकें, तभी हम रूस के समान सबल और समृद्ध हो सकेंगे; अमेरिका के बराबर पहुंचने में और देर लगेगी। हमें भी तो अंत में योजनाओं[1] का सहारा लेना पड़ेगा—औद्योगिक योजना[2], नदियों की योजना, कृषि-योजना। मान लीजिये हम रूस की वर्तमान पंचवार्षिक योजना से ड्योढ़ा अपने यहाँ उद्योग-धन्धे को बढ़ाना चाहते हैं, तो उसके लिए हमारे देश को यन्त्रों की आवश्यकता निम्न प्रकार होगी—

रेल-इञ्जन (दूरगामी)	३३००
डीजेल-इञ्जन (दूरगामी)	४५०
बिजली-इञ्जन (दूरगामी)	३३०
मोटर ट्रंक	६,४२,०००
मोटर बस	९६००
मोटर कार	७८,४००
लोहा और इस्पात-मिल के कल पुर्जे	१,५४,३५० (टन)
भाप-टर्बाइन (किलोवाट)	४३,५९,०००
जल-टर्बाइन (किलोवाट)	५,५८,०००
जल-टर्बाइन मध्यमँ (किलोवाट)	२,२५,०००
जल-टर्बाइन छोटी (किलोवाट)	७,५०,०००
बिजली मोटर (सौ किलोवाट तक)	९,३६,०००
बिजली मोटर (सौ किलोवाट से ऊपर)	१३,५००
धातु के कारखाने वाली मशीनें	१,११,०००
कपड़ा-मिल के तकवे	२१,००,०००
करघे	३७,५००.
ट्रेक्टर	१,६८,०००
ट्रेक्टर वाला हल	१,६५,०००
ट्रेक्टर वाला जोतक	१,२३,४५०

ट्रेक्टर वाला बोवक　　१,२४,९५०
दँवाई मशीन　　२७,४५०

एक अच्छा ट्रेक्टर आजकल दस हजार रुपये से कम में नहीं मिलता। रेलवे-इञ्जन का लाख-दो लाख मूल्य होता है। इन सब चीजों का दाम जोड़िये, तो वह एक-दो अरब नहीं खरब से कम नहीं पहुँचेगा। आप चाहते हैं, अमेरिका इन सबको बनाकर अगले पंद्रह सालों में आपको दे दे।

भगवानदास—सौ नहीं पाँच सौ अरब दाम हो, लेकिन इन चीजों के हमारे देश में आने पर हम उन्हें बन्द तो नहीं रखेंगे। हम भी अपने यहाँ प्रतिवर्ष चार-पाँच करोड़ टन लोहा निकालेंगे, कोयला और बढ़ायेंगे। खनिज-खाद्य पचासों लाख टन तैयार करेंगे, सीमेन्ट, काँच, सूती-ऊनी कपड़ा, चमड़े की चीजें, रबर की चीजें, मोजा-बनियान, आटा,चीनी, मछली, माँस, साबुन और हजारों तरह की चीजें पैदा करेंगे और अमेरिका से लिये उधार को सूद-सहित लौटा देंगे।

महीप—लौटाने की बात छोड़िए, यदि अमेरिका आपको उधार देगा, तो आपकी हड्डी से जो भी निकलने लायक होगा, निकाल लेगा। अमेरिका का परमाणु-बम रूस के सामने भले ही बेकार रहे, लेकिन आपके लिए वह काफी काम करने वाला होगा। जानते हैं न, बाकसर युद्ध में यूरोपीय शक्तियों ने चीन पर जुर्माना लगाया, जिसका चीन के लिए देना मुश्किल था। इस पर यूरोपीय शक्तियों ने आयात-कर वसूल करने का काम अपने हाथ में ले लिया। अमेरिका हमारे आयात-कर ही पर अधिकार नहीं करेगा, बल्कि जूट, चाय आदि जो भी चीज बाहर भेज कर पैसा बनेगा, सब पर अधिकार कर लेगा। लेकिन, सवाल यह है, कि कल और मशीन के रूप में आई इस बड़ी पूंजी का क्या आप सूद भी दे सकेंगे? आप जानते हैं, कि जो लोह-धून (ओर) दस रुपये की है, लोहा बनाने पर उसमें सौ रुपये का माल निकलता है, मशीनों में लगने वाले इस्पात को बनाने पर तो वह दो हजार का हो जाता है, और वह इस्पात जब तरह-तरह की शक्तिशाली मशीनों के रूप में बदलता है, तो उसका दाम और बीस गुना बढ़ जाता है। आप अधिक-से-अधिक लोहा बनाके उसे कच्चा ही बाहर भेज देंगे, फिर अपनी सस्ती चीज देकर कहाँ तक महँगे सौदे का दाम चुकाएंगे?

भगवानदास—लेकिन, जब छोटी-मोटी मशीनें हम बनाने लगेंगे, और आज भी छोटे-मोटे डिनामो, छापा-प्रेस और दूसरी चीजें हमारे देश में बन रही हैं, नई-नई यूरोपीय कलों को जब हम चलाएंगे, उनकी मरम्मत करेंगे और बड़ी संख्या में हमारे विद्वान् मशीन-विद्या को पढ़ेंगे, तो क्या हम उन मशीनों को स्वयं नहीं बनाएंगे?

युधिष्ठिर—यह तो अमेरिका के लिए डर की बात है। आपके लिए दस लाख मोटर और ट्रैक्टर को छूमन्तर से तो वह बनाकर नहीं देगा। आपकी माँग जितने कल-मशीनों की होगी, उनके बनाने के लिए अमेरिका के आज के कारखाने पर्याप्त नहीं होंगे। उनकी संख्या बढ़ानी होगी। पाँच-गुना बढ़ाने पर पूजी भी पाँच गुना और लगेगी, मजूर और इंजीनियर भी पाँच गुना बढ़ेंगे, नये विशाल नगर तैयार करने पड़ेंगे, जिनमें मजूर और विशेषज्ञ बसेंगे। आप पन्द्रह नहीं सौ साल तक अमेरिका से सारी चीजें लेते और मूल्य वापस करते रहते, तो थोड़े नफे पर भी अमेरिका ऐसे सौदे को मान लेता; लेकिन आप तो पहले ही से सोच रहे हैं, कि जैसे ही मशीन विद्या का परिचय और अनुभव हुआ और उनके बनाने की सामग्री तैयार होने लगी, तो हम अपने कारखाने खोल देंगे, अर्थात् पन्द्रह-बीस-बरस बाद आप अपने कारखाने खोल लेना चाहते हैं। फिर तो आपके काम के लिए बसे वे अमेरिकन नगर उजड़ जायंगे। वहाँ लगी पूंजी कल-पुर्जों के साथ नष्ट हो जायगी और अमेरिका के करोड़ आदमी भूखे मरने लगेंगे। आप यह न समझें कि अमेरिका ने बुद्धि बेचकर डालर बटोरा है।

भगवानदास—बात तो टेढ़ी मालूम होती है। उतना अधिक नहीं, कुछ कम ही सही, अमेरिका से अपने देश को उद्योग-प्रधान बनाने में क्या हमें सहायता नहीं मिलेगी ?

युधिष्ठिर—अमेरिका सहायता दे, तो क्यों नहीं मिलेगी ? लेकिन आज प्रति-वर्ष चालीस लाख टन अनाज बाहर से मंगाये बिना हम अपने लोगों की जान नहीं बचा सकते। जनसंख्या के बढ़ने से देश की आर्थिक अवस्था और गिरती जा रही है, ऊपर से रिश्वत और चोरबाजारी ने धन को लोगों के हाथों से खींचकर थोड़े हाथों में रख दिया है, नैतिक पतन (चोरबाजारी, रिश्वत) की तो महामारी-सी फैली हुई है। ऐसी अवस्था में प्यासे को सींक से पानी पिलाने से क्या लाभ ?

रामी—देखने में तो यही मालूम होता है, कि अमेरिका हमारे देश को औद्योगिक तौर से सबल बनाकर अन्त में उसे अपना अनुगामी नहीं, बल्कि प्रतिद्वन्दी बनायेगा।

खोजीराम—और यह भी दिखाई पड़ रहा है, कि हमारे देश में बंगाल या तेलंगना में जो गवर्नमेंट के विरुद्ध छोटे-मोटे उपद्रव हो रहे हैं, वह चाहे देश में नगण्य मालूम होते हैं, लेकिन अमेरिकन उसे भय की दृष्टि से देखते हैं।

महीप—चाङ्.कैशक पर डालर-शाहों ने विश्वास किया। ढाई अरब डालर कम नहीं होता, जो चाङ के हाथ में सौंपा गया था। लेकिन अन्त में चाङ कहीं का नहीं रहा। अमेरिका भारत के बारे में यह भी सोचेगा, कि आज जो हमारे साथ

शपथ खाते हैं, क्या वह कल रहेंगे भी ? अमेरिका यह भी जानता है, कि चीन में भी बीस साल पहले इसी तरह छोटे-मोटे नगण्य उपद्रव होने शुरू हुए थे ।

युधिष्ठिर—महाजन अपने पैसे को बड़ी मुश्किल से घर से बाहर निकालता है । किसान तो आधे सूखे-गीले खेत में भी अनाज डाल आता है, किन्तु बनिया नब्बे की जगह सौ लिखवाकर तब रुपया गिनता है । अमेरिका यदि हमारे देश को कुछ सहायता करेगा भी, तो जलते तवे पर छन्न से करने के लिए एक-एक बूंद करके ही । इधर हमें हर साल पचास लाख नये मुखों को खिलाना है । यदि यह नहीं करते तो जनता का धैर्य टूटता है, देश में उथल-पुथल मचती है । उधर अमेरिका सिर्फ एक-दो करोड़ डालर की चीजें भेजता है ।

महीप—उन चीजों में भी फाउन्टेनपेन, मुख-चूर्ण, लिप्स्टिक और फैशनेबुल मोटरों की भरमार, जिनमें लगाये पैसे से कोई उत्पादन नहीं, धनागम नहीं ।

भगवानदास—तो क्या हमें बाहर से आशा छोड़ देनी चाहिए ।

खोजीराम—आशा छोड़ देना हजार-गुना अच्छा है । यदि तब भी कोई मदद करता है, सहायता भेजता है, तो अच्छी बात है । लेकिन हमें हर तरह अपने पैर पर खड़े होने का प्रयत्न करना होगा ।

युधिष्ठिर—और अभी तो रोजा बख्शाने पर नमाज गले पड़ रही है । अमेरिका से डालर मिलने की कोई आशा नहीं, और उधर इंगलैंड में हाय-तोबा मची हुई है । वहाँ डालर का अकाल पड़ रहा है । क्यों नहीं अकाल पड़ेगा ? अन्न, दूध, माँस, गेहूँ और पूंजी भी कितने दिनों तक अमेरिका ढो-ढोकर इंगलैंड को पोसता रहेगा ? माँस देने में कुछ आनाकानी की, तो इंगलैण्ड ने इकरारनामा लिखकर अर्जेनतीन से माँस लेना स्वीकार किया । इसके लिए अमेरिका कुपित हो गया, डालर देने से हाथ खींचने लगा, पौंड पर तबाही आई, उसकी दर गिरने लगी । इंगलैण्ड के पास जो चालीस-पचास करोड़ पौंड सोना था, वह कागजी पौंड को न गिरने से बचाने के लिए हवा होने लगा । इंगलैण्ड के लिए पौंड का भाव गिराने के सिवा और कोई रास्ता नहीं था । पौंड का भाव तिहाई गिरा देना पड़ा, जिससे हमारा पौंड-पावना चाहे गिनती में उतना ही हो, लेकिन चीजों को खरीदने में उसका मूल्य दो-तिहाई ही रह गया ।

भगवानदास—हरे राम ! हरे राम ! तब तो दुनिया उलट जायगी । हमारा रुपया भी तो पौंड के साथ नत्थी है । यदि पौंड दो-तिहाई हो गया, तो हम बाहर से चीज मंगाने से रहे । उधर रुपया जो पौंड पर अवलम्बित था, उसकी हालत बुरी हो गई ही ।

महीप—और चालीस लाख इस साल, अगले साल पचास लाख टन जो अन्न

मंगाकर बाल-बच्चों को जिलाना है, उससे भी आफत आयेगी। अभी तक बाहर से अन्न खरीदने में पौंड तो हमारा बड़ा सहारा रहा।

भगवानदास—इधर आग है, उधर कुँआ, बड़ी भयंकर हालत है।

युधिष्ठिर—और मंजिल बहुत दूर है, न जाने कितने साल काटने हैं। क्या माँग-जाँच के भरोसे हम अपने देश को खड़ा करने की आशा रखके गलती नहीं कर रहे हैं? मैं तो समझता हूँ, हमारे लिए एक ही रास्ता है। रवीन्द्र के शब्दों में—"तुमी एकला चलो रे, एकला चलो रे, ओ अभागा!" लेकिन हमारा तेंतीस करोड़ का जनगण जब अपनी आस्तीन को ऊपर चढ़ा हाथों में फावड़ा ले, अपने पैरों पर खड़ा होकर (अकेला) चलेगा, तो रवीन्द्र के गान में "अभागा" की जगह "सुभागा" शब्द रखना होगा। हमारी राष्ट्रीय आय[3] इतनी कम है, उसे देखकर तो "पानी में मीन प्यासी" वाली कहावत याद आती है, एक दो के नमूने के गाँवों[4] से काम नहीं चलता है, उससे सारे देश की दरिद्रता नहीं दूर होगी।

महीप—पराये भरोसे का ही खयाल नहीं छोड़ना होगा, बल्कि हमारे कल के चटोरिये आज के उद्योगपति भी देश के पूर्ण उद्योगीकरण में बाधक ही सिद्ध होंगे। समस्यायें घड़ियाल की तरह मुँह बाये खड़ी हैं। नगरों में घरों की समस्या[6] को क्या घर-मालिक हल होने देंगे? देशी पूंजी चोरबाजारी में लगी है। विदेशी पूंजी स्वतंत्रता को गिरवी धरने को कहती है। देश का व्यापार गिर रहा है। पुरानी मशीनों के कारखानों से उपज कैसे बढ़ाई जायेगी? विदेशी विनिमय जो मिलता भी है उससे शौकीनी की चीजें—शराब, सिगरेट आदि मंगाई जा रही हैं। आयात-निर्यात[12] औद्योगिक क्षमता और उत्पादन[11] के झगड़े को देखकर तो कहना पड़ता है, कि हमारे पूंजीपति नैया डुबाकर छोड़ेंगे।

युधिष्ठिर—यदि उन्हीं के भरोसे हाथ पर हाथ रखे हम बैठे रहें?

६

देश में उद्योगीकरण के साधन हैं

पंचों की मंडली में आज युधिष्ठिर ने संवाद शुरू किया–मंगनी की मशीनों से भारत का उद्योगीकरण नहीं हो सकता और बाहर की निर्भरता हमारे लिए हानिकारक होगी। लेकिन प्रश्न होगा, क्या हम अपने भरोसे देश का उद्योगीकरण कर सकते हैं ? मैं समझता हूँ, यदि हमें बाहर से कोई भी मदद न मिले, तब भी हम अपने देश का उद्योगीकरण कर सकते हैं। हां, यह अवश्य है, कि हम जो भी उत्पादन करेंगे, उसका बड़ा भाग उपभोग न करके नये कारखानों में लगा देना पड़ेगा; जिसमें हम अपने आधारिक उद्योगों[१] को पहिले सुस्थापित कर सकें, जिसका होना राष्ट्रीकरण की दृढ़ नीति[२] पर ही हो सकता है, नहीं तो चोरबाजारी सटोरियों के हाथ में पड़कर मरना होगा। वह कभी हमारे प्राकृतिक स्रोतों का पूरा इस्तेमाल नहीं करेंगे, और विशेषज्ञों[३] को बेकारी की भूख से तड़पायेंगे। कितनी ही न अत्या-वश्यक चीजों के उपभोग का लोभ छोड़ना होगा। "देर होगी" की शिकायत नहीं की जा सकती, क्योंकि यह आशा रखनी भूल-मात्र होगी, कि दूसरे देश–और वह इंगलैण्ड तथा अमेरिका छोड़ दूसरे नहीं हैं–जहाजों का ताँता लगाकर हमारे देश में १०-१५ साल के भीतर कारखाने-ही-कारखाने खड़ा करके हमें भी अपने पैरों पर खड़ा कर देंगे, और फिर सलाम करके बिदा हो जायेंगे। हमारा तजर्बा बतलायेगा कि बाहर की प्रतीक्षा में जो समय हमने लगाया, उससे कहीं पहले देश को उद्योग-, प्रधान बनाया जा सकता था। देश को उद्योग-प्रधान बनाने के लिए तीन चीजें आवश्यक हैं, (१) हमारे पास प्राकृतिक संपत्ति होनी चाहिए, (२) हमारे पास काम करने के लिए पर्याप्त हाथ होने चाहिए और (३) विज्ञान तथा टेकनिकल साइन्स (यन्त्र-चातुरी) में दक्षता होनी चाहिए।

भगवानदास–ठीक कहा युधिष्ठिर भाई, दूसरों के ऊपर निर्भर रहना अच्छा नहीं है। हमारे सेठ लोग यद्यपि चाहते हैं, कि बाहर से मदद अधिक मिले, तो काम जल्दी हो जाय; किन्तु वह भी स्वावलम्बन के विरोधी नहीं हैं।

महीप–विदेशी पूंजी और सहायता के लिए हमारे पूंजीपति क्यों उत्सुक हैं, सके कारण भी हैं भगवान भाई। वह समझते हैं कि हम जर्जर नाव में बैठे हैं, यदि दो चार और को बिठा लें, तो सबके जोर लगाने और लत्ता भरने से नैया पार

हो जायगी। अथवा समझते हैं, नाव पर डाकुओं का डर है, इसलिए और भी आदमी आ जायं, तो सबल हाथ लड़ने के लिए मिल जायंगे।

खोजीराम—इसमें संदेह नहीं महीप, हमारे पूंजीपति आग्रह करके अमेरिकनों को ला बिठाना चाहते हैं। उनकी पूंजी से भी इन्हें उनका परमाणु-बम बहुत प्यारा है। वह समझते हैं, कि अमेरिका की मदद से क्रांति की बाढ़ भारत में रोक दी जायेगी।

रामी—लेकिन, अमेरिका चीन को क्यों नहीं बचा सका?

भगवानदास—चीन अपनी कमजोरियों से तबाह हुआ। भगवान भी उसी को मदद करके बचा सकते हैं, जो स्वयं अपनी मदद करता है।

महीप—मैं समझता हूँ भगवान भाई, हमारे पूंजीपति चाङ्कैशक के पृष्ठपोषक पूंजीपतियों से किसी बात में बेहतर नहीं हैं।

युधिष्ठिर—हम दूसरी-दूसरी बातों में बहके जा रहे हैं। देश के उद्योगीकरण के साधन पर विचार करना है। यह इतना बड़ा विषय है कि, उसे एक शाम में समाप्त करना बहुत कठिन है, इसलिए अपने विषय ही तक बात को सीमित रखें, तो अच्छा है। लेकिन देखना है, प्राकृतिक संपत्ति में किसकी हमारे पास कमी है, और कौन-कौन सी वस्तुएँ मौजूद हैं।

महीप—देश के आधारिक उद्योगीकरण[१] में सबसे पहले ईंधन और शक्ति की आवश्यकता होती है। यदि कोयला, बिजली, तेल, गैस हमारे पास पर्याप्त नहीं है, तो हम अपने देश का पर्याप्त उद्योगीकरण भी नहीं कर सकते।

भगावानदास—कोयला तो, मैं समझता हूँ, हमारे पास बहुत है।

महीप—बहुत क्या पर्याप्त भी कहने का हमें साहस नहीं है। लेकिन, यह भी स्मरण रखना है, कि उद्योगीकरण के लिए आवश्यक सामग्री में से अधिकांश जमीन के उदर के भीतर हैं। हमारे यहाँ जो सर्वे अंग्रेजों ने की है, वह बिलकुल नाममात्र की है। जिन खनिजों को उन्होंने देखा, कि सस्ते और आसानी से निकाले जा सकते हैं, उन्हीं की खानों को चालू किया। कितने ही खनिज पदार्थ धरती में हजार-हजार फुट नीचे प्राप्त होते हैं। उनकी खोज की बात ही क्या, जब ऊपरी सर्वे भी बहुत कम हुई है। लोहे[२] का तो देश में अक्षय भंडार है, और बहुत उत्कृष्ट जाति का कोयला[३] हमारे पास है। हमारे झरिया, मध्यप्रदेश, हैदराबाद जैसे कोयला-क्षेत्र प्रसिद्ध हैं। कालिम्पोङ् की कोयलाखान में तो लड़ाई के समय से काम होने लगा है। हमारी धरती में जितना खनिज[४] है, उसे जानने के लिए हमें हजारों भूतत्वज्ञों को खोज के काम में लगाना पड़ेगा। पूर्वी पंजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार और बंगाल के कुछ हिस्से—यही हमारे मैदानी इलाके हैं, और ये पहाड़ी इलाकों से कम हैं।

हमारे पास विन्ध्याचल और दक्षिणी पर्वतमाला दुनिया की सबसे पुरानी चट्टानों की हैं, और हिमालय सबसे नया पहाड़ है। आश्चर्य नहीं होना चाहिए, यदि कोयले की राशि हमारे पास अकूत हो।

भगवानदास–लेकिन, हमें कल्पना पर नहीं दौड़ना चाहिए, अभी हमारी क्या स्थिति है ?

महीप–कोयला परिमित मात्रा में है, और उसमें भी धातु के लिए आवश्यक ऊँचे दर्जे का कोयला और भी कम है।

रामी–तब तो कोयले को बड़ी सावधानी से खर्च करना होगा।

महीप–आज तक अंग्रेज हमारी इस अत्यन्त महत्वपूर्ण वस्तु को सबसे ज्यादा बरबाद करते रहे हैं। हमें अवश्य अपने कोयले को मितब्ययिता के साथ खर्च करना होगा। लेकिन, कोयले की कमी को हम बिजली से पूरा कर सकतें हैं।

खोजीराम–शक्ति[१] बिजली के लिए तो हमारा देश शायद दुनिया में सबसे धनी है।

महीप–सारी दुनिया में अगर सबसे धनी न भी हो, तो भी हमसे अधिक बिजली दुनिया के एक-दो ही देश पैदा कर सकते हैं। पूर्वी पंजाब से बिहार तक की सात बड़ी नदियों[१] से प्रत्येक हजार फुट की उतराई पर ३० लाख घोड़े की शक्ति की बिजली पैदा की जा सकती है।

भगवानदास–३० लाख घोड़े की शक्ति !

महीप–और यह भी खयाल रखिये कि इन नदियों पर सात हजार फुट की ऊँचाई से नीचे बराबर हम बिजली बनाने वाले स्टेशन स्थापित कर सकते हैं।

भगवानदास–तब तो सात नदियाँ ही हमें दो करोड़ घोड़े से अधिक की शक्ति प्रदान कर देंगी।

महीप–हमारे पास बिजली का स्रोत केवल हिमालय ही में नहीं है। नर्मदा, महानदी और सोन जिन पहाड़ों से निकलती हैं, वहाँ से भी बिजली निकाली जा सकती है। यद्यपि विंध्याचल का भाग इतना ऊँचा नहीं है, कि वहाँ सनातन हिम बना रहे, किन्तु मानसून हमें इतना पानी देती है, कि हम इन पहाड़ों में जगह-जगह बड़े-बड़े सरोवर—कृत्रिम समुद्र—बनाके पानी जमा कर सकते हैं, जो बिजली और सिंचाई दोनों के काम आ सकता है। कई जगह तो एक नदी को दूसरी से मिलाया जा सकता है, जिससे नौका द्वारा माल सस्ते में भेजा जा सकता है।

खोजीराम–हमारे यहाँ भी नदियों के मिलाने की संभावना है ? रूस ने अपनी मास्को, वोल्गा, दोन आदि नदियों को मिलाकर पाँच समुद्रों को नत्थी कर दिया

है। और अब तो वक्षु नदी को कस्पियन समुद्र से मिलाकर अफगानिस्तान की उत्तरी सीमा पर लदे स्टीमर को कलकत्ता भेजा करेगा। हो सकता है हमारे पास भी ऐसे साधन हों।

महीप–हाँ, महानदी और नर्मदा को ऊपरी भाग में मिलाकर हम अपने पूर्वी (अरब) पश्चिमी (बंग) समुद्रों को देश के भीतर-भीतर से जोड़ सकते हैं।

रामी–क्या कहा? क्या उड़ीसा से महानदी द्वारा आदमी नर्मदा होकर गुजरात पहुँच सकता है?

महीप–रामी बहन, आश्चर्य करने की बात नहीं है। महानदी भी अमरकंटक से निकलती है, और नर्मदा का भी स्रोत वहीं है। अमरकंटक से कुछ दक्षिण इन दोनों नदियों को नहर द्वारा मिलाया जा सकता है। हाँ, नदियों को कहीं-कहीं पर गहरी करने की आवश्यकता होगी, कहीं-कहीं उनकी धारा में भी परिवर्तन करना पड़ेगा, तब उनसे नौसंतरण का काम लिया जा सकेगा। खैर, सिंचाई और नौसंतरण की बातें फिर होंगी। यह निश्चय है, कि मध्यप्रदेश और मालवा भी अपनी रेलों, कल-कारखानों और प्रकाश के लिए पर्याप्त बिजली पैदा कर सकते हैं। मद्रास और बम्बई के पूर्वी-पश्चिमी घाटों में भी बिजली भरी हुई है; बम्बई नगर को अब भी वहाँ से बिजली मिल रही है। इस प्रकार हमारे देश में कहीं भी रेल और कारखाने को चलाने के लिए कोयला जलाने की आवश्यकता नहीं।

भगवानदास–तब तो कोयले की बहुत बचत होगी, हम चाहेंगे तो विदेश में उसे भेज दूसरा आवश्यक माल खरीद सकेंगे।

महीप–शायद पूरे उद्योगीकरण के बाद धातुओं के कारखाने में जितने कोयले की आवश्यकता होगी, तथा पेट्रोल बनाने में उसकी जितनी आवश्यकता होगी, वह कम नहीं होगी। तो भी पन-बिजली वस्तुतः हमारे ईंधन और शक्ति की समस्या को हल कर सकती है। हम देश में उसे इतना पैदा कर सकते हैं, कि सारी रेलों को बिजली से चलाया जा सकता है, ग्राम-नगर दोनों के सारे कारखानों को बिजली से संचालित किया जा सकता है, सारे घरों में बिजली के ही प्रकाश को जलाया जा सकता है। यहाँ तक कि अपनी खेती की मशीनों को भी हम बिजली से चला सकते हैं।

भगवानदास–लेकिन पेट्रोल का काम कैसे चलेगा? कहते हैं हमारे यहाँ उसका अभाव है।

महीप–अभी तक जो सर्वे हुई है, उसे नाम-भर का कहना चाहिए, और उससे जान पड़ता है, कि पेट्रोल में हमारा देश परम दरिद्र है।

खोजीराम–क्या पेट्रोल के लिए कोई रास्ता नहीं निकाला जा सकता है?

महीप—बहुत-सा पेट्रोल का खर्च कम किया जा सकता है, शहर में मोटर-बसों को हम बिजली से चला सकते हैं। दरअसल अब ट्रामवे चलाने की आवश्यकता नहीं है, उससे खामखाह सड़क खराब लगती है। हम ऊपर के बिजली के तारों के बल पर मोटर-बस चला सकते हैं। मोटरों और बसों में भी एक चौथाई पेट्रोल के खर्च को कम किया जा सकता है, यदि अपनी सारी चीनी मिलों के सीरे को स्पिरिट में बदल दिया जाय। अंग्रेज इसे नहीं चाहते थे, क्योंकि उन्हें अपना तेल बेचना था।

भगवानदास—लेकिन हमें तो कम्पनियों का खयाल नहींकरना है।

महीप—एक-चौथाई पेट्रोल कम करने ही से काम नहीं चलेगा, किंतु कोयले से भी हम बहुत-सा पेट्रोल पैदा कर सकते हैं। इस तरह अपने पेट्रोल के आयात को तीन-चौथाई तक घटा सकते हैं, और एक तरह विमानों के लिए ही हम बाहर के देशों के पेट्रोल पर निर्भर कर सकते हैं।

खोजीराम—और एक-चौथाई पेट्रोल के लिए हम किसी के मजबूर नहीं रहेंगे। रूस, इंगलैण्ड, अमेरिका जो भी हमें अच्छी शर्त और भाव पर देगा, हम उसी से पेट्रोल खरीदेंगे।

रामी—मेरा तो महीप भाई, माथा ठनकने लगा था। सोचती थी, कहीं पेट्रोल हमारे हाथ-पैर बाँधकर दूसरों के हाथ में नहीं दे दे। यह तो मालूम हो गया, कि तीन-चौथाई पेट्रोल का काम हम निकाल सकते हैं। उसके बाद नाप——आ-सेतु, आ-हिमालय, आ-सदिया, आ-सौराष्ट्र हर जगह की छान-बीन—करने पर संभव है और भी कुछ पेट्रोल मिल जाय।

महीप—अवश्य हमको कोशिश करनी चाहिए। अंग्रेजों ने जितना बतलाया, हमारी धरती में उतने ही खनिज पदार्थ हैं, यह समझ बैठना गलत होगा। स्वाभाविक गैस का ईंधन किसी-किसी देश में मिलता है, किसी-किसी देश में कोयले की खान से गैस निकालने का भी आयोजन है। सब देखने से जान पड़ेगा कि ईंधन और शक्ति के हमारे पास काफी स्रोत हैं, जिनके कारण हमें अपने देश को उद्योग-प्रधान बनाने में कोई दिक्कत नहीं हो सकती।

भगवानदास—और लोहा ?

महीप—लोहे से तो हमारा देश मालामाल है। हमारा लोहा दुनिया में बहुत ऊंचे दर्जे का है। तीन अरब टन लोहे की निधि तो अभी ही कूती जा चुकी है। पहाड़ों में उसे जगह-जगह पाया जाता है। हिमालय में कई जगहों पर सौ वर्ष पहले लोहा निकाला जाता था। हिमालय में यमुना की शाखा पब्बर की उपत्यका में सौ वर्ष पहले बहुत लोहा बनता था। बिहार उड़ीसा, मध्य-प्रदेश, मैसूर और

मद्रास में सुजात लोहे के इतने भारी स्रोत हमारे पास मौजूद हैं, जो कई सौ वर्षों तक काम दे सकते हैं।

भगवानदास—उसके बाद और भी महत्वपूर्ण धातुएँ हैं ?

महीप—आल्मोनियम कम महत्व की चीज नहीं है। यह केवल बरतनों के बनाने में ही इस्तेमाल नहीं होती, बल्कि हवाई-जहाज और दूसरे कामों में भी इस्तेमाल होती है। लोहे के बाद सबसे अधिक खर्च आल्मोनियम का ही है। हमारे पास आल्मोनियम की अक्षयनिधि है। अभी तो हम केवल बंगाल के बक्साइट का ही आल्मोनियम बना रहे हैं, यह काम भी लड़ाई के समय से आरम्भ हुआ।

भगवानदास—हाँ, मुझे मालूम है। बाबू निर्मल कुमार जैन ने बड़े परिश्रम और दूरदर्शिता के साथ इस कार्य को आरम्भ किया था। अंग्रेज नहीं चाहते थे, कि देश में आल्मोनियम बने।

महीप—अब चाहने का नहीं करने का सवाल है। अलौह धातु में ताँबे की हमें कमी नहीं है। अभी वह बिहार में निकाला जाता है, लेकिन हिमालय में कई जगह निकाला जाता था, पीछे विदेशी ताँबा सस्ता पड़ने लगा, तब पुरानी खानें बंद हो गईं।

खोजीराम—देश के लिए सस्ता और महंगा क्या मतलब रखता है ? यदि हमें अपने देश को किसी वस्तु में परतंत्र नहीं रखना है, तब तो हमें सस्तेपन और महंगेपन का खयाल छोड़ देना होगा।

महीप—यह आप समाजवादी उद्योग-धंधे की बात कह रहे हैं। पूंजीपति का जीवन निर्भर है सस्ते-महंगेपन के ऊपर। जहाँ सारे राष्ट्र की दृष्टि से काम करना होता है, वहाँ तीस रुपया मन खरीदे गेहूँ को भी घाटा सहकर पंद्रह रुपया मन में बेंचा जाता है। एक जगह के बढ़े माँस को काटकर दूसरी जगह लगाने में राष्ट्र कोई क्षति नहीं समझेगा, लेकिन पूंजीवादी प्रथा यह स्वीकार नहीं कर सकती। जहाँ तक ताँबे का सवाल है, हम हर जगह शोधनिया-कारखाने खोल सकते हैं। ताँबे के लिए हमें बाहर के देशों पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है। मजबूत इस्पात बनाने के लिए मंगानीज और क्रोमाइट की आवश्यकता होती है। यह दोनों चीजें हमारे यहाँ बहुत मिलती हैं। अंग्रेजों ने देश में शुद्ध करने का इंतजाम होने नहीं दिया और आज भी यह चीजें बड़े परिमाण में कच्चे रूप में मिट्टी के मोल बाहर भेजी जा रही हैं। सीसा की हमारे यहाँ कमी नहीं है, लेकिन अब भी उसके निकालने में बहुत-सा खर्चीला तरीका इस्तेमाल किया जा रहा है। उदयपुर से सीसे के धातु-पाषाण (धून) को लारी और रेल से बंगाल भेजा जाता है। किसी वक्त मेवाड़ की

इन सीसे की खानों के पास बड़ा नगर बसा था, आज भी उसका ध्वंसावशेष वहाँ मौजूद है, और सीसा ढालने की लाखों मूसायें आप वहाँ देख सकते हैं। पहले धातु-पाषाण से सीसा भर गला के निकाल लिया जाता था, उसमें मिला चाँदी, ताँबा और जस्ता छोड़ दिया जाता था। आधुनिक ढंग का कारखाना स्थापित कर देने पर हम सब धातुओं को अलग कर सकते हैं। बिजली-उद्योग[१], मशीन-उद्योग[२] को बढ़ाकर धन बल संपन्न हो सकते हैं।

भगवानदास—हमारे देश में और कौन-कौन-सी धातुएँ हैं?

महीप—अभी जो हमारी अधूरी खोज हुई है, उससे मालूम होता है, कि निकल और राँगे का हमारे यहाँ टोटा है? लेकिन हमें पुरानी सर्वे पर विश्वास नहीं करना चाहिए। मेरे मित्र १९४८ में ऊपरी सतलज के इलाके में गये थे। वह धातु-शास्त्री नहीं हैं, लेकिन देश की भूमि में क्या-क्या संपत्ति है, इसे पता लगाने की कोशिश हरेक भारतीय को करनी चाहिए। वहाँ उन्हें सीसा के बहुत अच्छे धातु-पाषाण (धून) की राशि का पता लगा, जिनमें एक सतलज के बायें किनारे पूर्वणी में है, और दूसरा सतलज के दाहिनें तट पर मीरू में। इनके अतिरिक्त चार-पाँच प्रकार के दूसरे खनिज पदार्थ भी वहाँ प्राप्त हुए। पास की वस्पा-उपत्यका के ऊपरी भाग में तो काले रंग का एक चूर्ण मिलता है जो जल उठता है, गंधक की तीक्ष्ण गंध देता है। दर असल उद्योगीकरण के काम के साथ हमें अपने देश की अंगुल-अंगुल भूमि को चालना होगा, तब चीजों का पता लगेगा।

खोजीराम—उद्योग-धंधे के लिए कच्चे माल भी आवश्यक होते हैं?

महीप—बहुत-से कच्चे माल आवश्यक हैं। हमारे जंगल लाख, टरपेन्टीन, गंदा-बिरोजा, बाँस की पल्प, कागज की घास के अक्षय-भंडार हैं। यह हमारे हाथ में है, कि चाय, कपास, जूट, तंबाकू, ऊख, तेलहन को अपनी आवश्यकता-भर पैदा कर सकें, हाँ, इसके लिए कृषि में सुधार और सिंचाई का सस्ता प्रबंध करना पड़ेगा।

रामी—यह तो मालूम हो गया, कि हमारे देश में उद्योगीकरण के लिए आवश्यक प्राकृतिक संपत्ति मौजूद है, मानवी शक्ति के लिए तो कुछ कहना ही नहीं है।

महीप—हमारी राष्ट्रीय आय दुनिया में कितनी कम है। मानवी शक्ति बेकार पड़ी है, उसका उपयोग कैसे किया जाय, हमारे लिए यह भारी समस्या है। हमारे गाँवों के काम करनेवाले लोगों में एक-तिहाई के लिए साल में चार महीने का काम है और तब जब कि हम कृषि का यंत्रीकरण नहीं कर पाए हैं। हमारे देश की जन-संख्या में से २० करोड़ आदमी काम करने लायक हैं, जिनमें अगर १५ करोड़ को ही उत्पादक शारीरिक काम के लिए ले लें, तो आज उनमें से मुश्किल से ५ करोड़ के लिए काम है। हमारे देश के लिए मानवी शक्ति के उपयोग की कठिनाई का

सवाल ही नहीं है । उद्योग-प्रधान देश होने पर हमारे कमकरों को मशीन का ज्ञान अधिक होना चाहिए, जिसमें वह यंत्रों को चतुराई से इस्तेमाल कर सकें । हमारे देश के मजूरों में कार्यक्षमता की कमी है, किंतु इसका कारण है उनके जीवन-तल का नीचा होना, तथा शिक्षा का अभाव ।[१]

युधिष्ठिर—मैं समझता हूँ, यदि अमेरिका की तरह इनका भी वेतन और जीवन-तल ऊँचा हो और सार्वजनिक शिक्षा फैले, तो कार्य-क्षमता की कोई शिकायत नहीं रह सकती । लोग कमकरों को भूखे मारकर चाहते हैं, कि वह बीस-तीस रुपये रोज कमाने वाले मजूरों का मुकाबला करें । यह केवल अपने लूटने के लिए कार्यक्षमता का बहाना ढूंढ़ने की बात है ।

रामी—हमारे देश में प्राकृतिक और मानवी शक्ति की कमी नहीं है । लेकिन प्राकृतिक शक्ति तो लाखों वर्षों से पड़ी है, सभी धातु हिमालय, विंध्याचल, सतपुड़ा, सह्याद्रि और महेंद्र के गर्भ में मौजूद थे । आदमियों के हाथ भी अपेक्षाकृत कम तो नहीं थे, किंतु उससे क्या फायदा हुआ ?

महीप—रामी बहन, फायदा के लिए सबसे आवश्यक चीज है साइंस-ज्ञान और टेकनिकल-ज्ञान । जिस देश के पास यह मौजूद हैं, उसे दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है, फिर वह उद्योग-प्रधान हो समृद्ध-सबल बन के रहेगा । क्या किसी को संदेह है, कि हमारा देश साइंस के अवगत करने में कोई अयोग्यता नहीं रखता ?

भगवानदास—मैं तो समझता हूँ, जिस देश ने आर्यभट्ट, बराहमिहिर जैसे अद्भुत गणितज्ञ और ज्योतिषी पैदा किये, नागार्जुन और चरक जैसे रसायन-वेत्ता और आयुर्वेदज्ञ पैदा किये, वह नये विज्ञान को अवगाहन में अक्षम रहेगा, यह मानने की बात नहीं है ?

महीप—दुनिया में सभी मानते हैं, कि भारतीय मस्तिष्क बड़ी-से-बड़ी उड़ानों में भी पीछे नहीं रह सकता । हमारे रामानुजम् को बहुत अधिक दिन जीने का मौका नहीं मिला, लेकिन उन्हें २० वीं सदी में विश्व का सबसे बड़ा गणितज्ञ माना गया । रामन् ने भौतिकशास्त्र में नोबुल-पुरस्कार प्राप्त करके दिखा दिया कि भारतीय दिमाग केवल गणित की सैद्धान्तिक उड़ान में ही बहुत ऊँचे नहीं उड़ सकता, बल्कि प्रायोगिक-विज्ञान में भी वह दुनिया का मुकाबला कर सकता है । हमारे रवीन्द्र ने साहित्य के क्षेत्र में भी विश्व से भारत का लोहा मनवा लिया; इसलिए आज दुनिया में कोई आदमी भारतीय मस्तिष्क को विज्ञान में अक्षम होने की बात नहीं कर सकता । लेकिन यह जरूर है, कि हमारे देश में शिक्षा जिस तरह होती रही है, उसकी उपज रामानुजम्, रामन्, जगदीशचन्द्र बोस, या मेघनाद साहा नहीं हैं, उन्होंने भारत में अंग्रेजों की बाँधी लकीर को तोड़कर यह सफलता पाई । अंग्रेज चाहते थे, कि भारतीय केवल क्लर्क बने रहें ।

भगवानदास—उनकी तो देश में भरमार है। बंगाल सरकार की बसों के संचालन के लिए तीन सौ बाबुओं की आवश्यकता थी, जिसके लिए तीन हजार दरखास्तें आईं।

महीप—हमारे यहाँ अब भी आँख नहीं खुल रही है, अभी भी हमारे शिक्षामंत्री संपूर्णानन्दजी संस्कृत-विश्वविद्यालय खोलके एक सफेद हाथी बाँधने जा रहे हैं।

भगवानदास—महीप बाबू, मैं आपसे यहाँ मतभेद रखता हूँ। आप हमारी प्राचीन विद्या को फूटी आंखो देखना नहीं चाहते। क्या संस्कृत में कोई भी काम की चीज नहीं है? क्यों उसे आप ठुकराना चाहते हैं?

महीप—भगवान भाई, आप गलत समझ रहे हैं। मैं अपने पूर्वजों के कृतित्व का अभिमान करता हूँ। वाल्मीकि-अश्वघोष; व्यास—कालिदास, दंडी-बाण, बुद्ध-कणाद, दिङ्नाग-धर्मकीर्ति, शंकर-वाचस्पति, आर्यभट्ट-भास्कराचार्य, चरक-नागार्जुन के लिए मैं किसी से कम गर्व नहीं करता। मैं मानता हूं कि छठी-सातवीं सदी तक बौद्धिक उड़ान में भारत का दुनिया में कोई सानी नहीं था, हरेक क्षेत्र में हम आगे बढ़े हुए थे। मैं यह नहीं मानता, कि संस्कृत को ठुकरा देना चाहिए। संस्कृत एक नये रूप में हमारे जीवन में भीतर तक घुसने जा रही है, केवल अनिवार्य सार्वजनिक शिक्षा और मातृ-भाषा के माध्यम बनने की देर है।

भगवानदास—जीते रहो महीप!

महीप—यदि मुझे अपने देश के इतिहास, अपनी संस्कृति के विस्तार का परिज्ञान न होता, तो मैं संस्कृत के महत्त्व को हल्के दिल से ठुकरा सकता था। मैं उसके महत्व को समझता हूँ, लेकिन किस समय कौन सी चीज की सबसे अधिक आवश्यकता है, इसे भी देखना होता है। आज हमारे पास जो कुछ रुपया है, उसे देश की संपत्ति बढ़ाने, उसे सबल करने में न लगाकर यदि सौ संस्कृत के विद्यालय और दो सौ विद्यार्थियों के अन्न-क्षेत्र लगाके खर्च कर डालें, तो क्या यह बुद्धिमानी होगी? संस्कृत-विश्वविद्यालय दस-बीस वर्ष बाद बनता, तो आसमान न टूट पड़ता।

भगवानदास—तो आप संस्कृत के विरोधी नहीं हैं न?

महीप—विरोधी! मैं तो कहता हूँ, कि हमारे लड़के-लड़कियाँ, शत-प्रतिशत स्कूल में पढ़ने जायँ, और उनमें अधिक-से-अधिक संस्कृत को द्वितीय भाषा के तौर पर लें। ऐसा होने पर जो हमारी वैज्ञानिक परिभाषाएँ संस्कृत से बन रही हैं; उन्हें वह आसानी से समझ सकेंगे, जिस तरह चिकित्सा-विज्ञान के छात्रों के लिए पश्चिमी यूरोपीय देशों में लातिन का ज्ञान आवश्यक समझा जाता रहा है, क्योंकि अंग्रेजी चिकित्सा की पुस्तकों में लातिन के शब्द अधिक आते हैं।

भगवानदास—महीप बाबू, मेरा भ्रम दूर हो गया।

महीप–मेरा कहना इतना ही था, कि सूप के ब्याह में चलनी का गीत नहीं होना चाहिए। देश का उद्योगीकरण और कृषि का यंत्रीकरण, यह है हमारे सामने सबसे आवश्यक काम। हमारे यहाँ सभी जगह कूएँ में भांग पड़ी मालूम होती है; नेहरूजी प्रायोगिक विज्ञान नहीं, परमाणु के भीतर का रहस्य निकलवाने के लिए करोड़ों रुपया लगाके भौतिक विज्ञान की प्रयोगशाला खुलवा रहे हैं, शुद्ध रसायन और ज्योतिष के विज्ञान के अनुसंधान में हमारे देश की प्रतिभाओं को लगाना चाहते हैं। परमाणु-विज्ञान जैसे शुद्ध विज्ञानों का अनुसंधान ऐसा है, जिसका प्रयोग हमारी तुरंत की समस्याओं के हल में कोई नहीं है। अमेरिका, इंगलैण्ड, रूस जैसे उद्योग-प्रधान देशों के लिए जो काम की चीज है, वह आज हमारे लिए बहुत महंगी शौकीनी-मात्र है।

भगवानदास–नेहरूजी दूसरे प्रकार के अनुसंधान को मना तो नहीं करते।

महीप–मना न मना करने का सवाल नहीं है। सवाल है, आप करते क्या हैं? हमारे कर्णधार कोई बहाना नहीं कर सकते, क्योंकि देश को किधर ले जाना है, उपयोगी शिक्षा के लिए क्या किया जाय, यह हमारे हाथ में है।

रामी–लेकिन उच्चशिक्षा के लिए कमीशन तो बैठाया गया था?

महीप–वह जले पर नमक छिड़कने से अधिक नहीं था। जो विशेषज्ञ कमीशन में थे, वह औद्योगिक विज्ञान अथवा टेकनिकल शिक्षा के संबंध में सलाह देने के न अधिकारी थे, न उसके लिए बुलाये गए थे। उन्होंने हमें वही बतलाया, जो सौ वर्षों से अंग्रेज बतलाते रहे। हमारे विश्व-विद्यालय वैसे ही दर्शन, साहित्य, कानून, शिक्षा-विज्ञान के स्नातक और डाक्टर—सो भी अंग्रेजी के माध्यम से—पैदा करते जायें, जिससे बेकारी बढ़ना छोड़ हमारी कोई आर्थिक समस्या हल नहीं हो सकती। कमीशन के सयानों ने मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने जैसी आवश्यक तथा स्वाभाविक बात को भी टाल देने को कहा। द्वीप-द्वीपांतर से बुलाये इन सयानों में एक भी ऐसा विशेषज्ञ नहीं था, जो हमें आज की हमारी शिक्षा-समस्याओं पर परामर्श दे सके। राष्ट्र-कर्णधारों की बुद्धि जहाँ तक जाती है, उसी के अनुसार तो कमीशन बनाया जायगा। हमारे पास वह सूझ कहाँ है, कि सारे राष्ट्र को उन समस्याओं के हल करने पर लगायें, जो हमारे द्वार पर टकरा रही हैं। विदेश में विद्यार्थी भेजे जा रहे हैं। इस समय तो केवल ऐसे विद्यार्थी भेजे जाने चाहिये थे, जो उन विषयों को सीखते, जो हमारी आर्थिक उन्नति में सहायक होतीं, किंतु अभी भी भारी संख्या में हमारे विद्यार्थी साहित्य, भाषा-विज्ञान, शिक्षा-विज्ञान में डाक्टर बनने के लिए हमारे उस विनिमय के रुपये से विदेश जा रहे हैं, जो कल-मशीनों की खरीद के लिए अत्यावश्यक हैं।

भगवानदास—यह तो बड़ी बुरी बात है। इस बात को तो मैं भी समझ सकता हूँ, यद्यपि मैंने बहुत-सा समय संस्कृत के ग्रन्थों के खोजने में लगाया।

महीप—पहले तो विद्यार्थी बाहर भेजने की जगह सस्ता यह है, कि शिक्षक यहाँ बुला लिये जायं। जो विद्यार्थी भेजने ही हों, तो वह सिर्फ साइंस और टेकनालोजी के हों और उनमें भी वही लिये जायं, जो अपने विषय को काफी जानते हों और विदेश में केवल विशेषज्ञता तथा अनुभव प्राप्त करने के लिए जा रहे हों। बाहर भेजे जानेवाले विद्यार्थियों के बारे में जो बेसमझी बरती जा रही है, वही बात अपने यहाँ के इंजीनियरी कालेजों में हो रही है। बनारस, रुड़की, या यादवपुर के इंजीनियरी कालेजों को देखिए, जहाँ हमारे सारे आर्थिक ढांचे के इंजीनियर तैयार किये जा रहे हैं। वहाँ तीन से पाँच साल में अपने विषय में अच्छी योग्यता प्राप्त करके निकलेंगे। अभी भी इन कालेजों में जितने विद्यार्थियों को शिक्षा दी जा सकती थी, नहीं दी जा रही है। इन कालेजों में हम विद्यार्थियों को तीन शिफ्ट (बारी) में पढ़ा सकते हैं—छ बजे से बारह बजे तक प्रथम, बारह बजे से छ बजे शाम तक द्वितीय, और छ बजे से आधी रात तक तीसरी, इस प्रकार उतने ही यंत्रसाधनों और उन्हीं प्रयोगशालाओं के द्वारा हम तिगुने विद्यार्थियों को पढ़ा सकते हैं। अध्यापकों की तो कमी है ही नही। लेकिन, हमारी मौजूदा शिक्षण-संस्थाओं के सामने ऐसा उपयोग तब न हो, जब कि कोई योजना[१] हो।

खोजीराम—और मैं कहूँ महीप बाबू, हमारे जो सैकड़ों तरुण प्रायोगिक विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करके लौटे हैं, और उनके लिए भी कोई काम नहीं है।

महीप—मैं जानता हूँ, रुड़की में मुझे एक विद्यार्थी ने बतलाया था कि हमारे सामने भी प्रश्न है—शिक्षा समाप्त करके काम क्या करेंगे ?

रामी—दामोदर, भखरा, कोसी, महानदी, रेहंद की इतनी बड़ी-बड़ी योजनाएँ जो हैं, फिर बेकार रहने का क्या सवाल है ?

महीप—उक्त विद्यार्थी की बात से ही मालूम हो जाता है, कि वह कागजी योजनाएँ अनिश्चित काल की हैं, नहीं तो इंजीनियरों को बेकारी का डर क्यों ? हमारे कर्णधार बस अपने सरकारी विभागों में अधिक-से-अधिक सचिवों, उपसचिवों तथा दूसरे अफसरों को भरने में लगे हैं, उन पर पानी की भाँति रुपये बहा रहे हैं, जो कि सारा व्यय अर्थशास्त्र के अनुसार अनुत्पादक (बंध्या) व्यय है। द्वितीय विश्वयुद्ध में लड़ाई से मजबूर होकर अंग्रेजों को जरा सा अपना हाथ ढीला करना पड़ा, मशीन-मशीनटूल-वैज्ञानिक अस्त्र-[६]रेल-मोटर जैसे मशीन उद्योग[७] में ही नहीं भारी रसायन[८], काष्ठ उद्योग[९], चर्म उद्योग[१०], रबर[११],

१—देखो परिशिष्ट अध्याय ५।१

सीमेंट[१२], काच[१३], वस्त्र[१४], वनस्पति तेल[१५], के उद्योगों में देश जैसे आगे बढ़ा, उससे निराशा की गुंजाइश नहीं है, हम देश का पूर्ण उद्योगीकरण कर सकते हैं।

युधिष्ठिर—यह तो स्पष्ट हो गया कि हमारे पास देश की आर्थिक उन्नति के सभी साधन मौजूद हैं। यदि हम उनका अच्छी तरह से इस्तेमाल करें, तो अपने देश को बिना बाहर की भारी सहायता के भी उद्योग-प्रधान बना सकते हैं। इसके लिए सोवियत् रूस का उदाहरण हमारे सामने है। किसी ने उसे फूटी कौड़ी भी कर्ज नहीं दी, वल्कि सभी बाधक होते रहे; किन्तु, रूस के पास दृढ़ संकल्प था, प्राकृतिक संपत्ति थी, लोगों के भीतर प्रतिभा थी, काम करने वाले हाथ थे। अपना पेट काटकर अन्न, काठ या पेट्रोल से बदल के कुछ जरूरी मशीनें बाहर से मंगाईं, फिर सभी चीजें अपने घर में बनाने लगे। उन्होंने परमाणु-बम तक बनाके रख दिया। यदि रूस बाहर की आशा पर हाथ-पर-हाथ धरे बैठा रहता, तो आज कहीं का न होता। उसने बहुत कम विद्यार्थी बाहर भेजे। हाँ, बड़ी-बड़ी तनख्वाह देकर विशेषज्ञ बुलाये; उनसे सभी बातें सीखीं। हमें भी हजारों जर्मन-जापानी विशेषज्ञ मिल सकते हैं। हम भी वही काम कर सकते हैं, जो रूस ने किया। १९२९ ई० से जर्मनी के आक्रमण तक केवल १२ ही साल रूस को काम करने के लिए मिले थे, इसी बीच में वह अपने पैरों पर खड़ा हो गया। वह अपने बल पर उद्योग-प्रधान देश बन गया। हम भी वैसा कर सकते हैं।

———

७

वैयक्तिक पूँजी की सीमा हो

भगवानदास—कल हम लोगों ने बाहर का मुंह न देखके अपने बाहुबल से आगे बढ़ने की बात की थी। मुझे वह बहुत पसंद आई। पराये हाथ की चीज पराये वश में होती है। क्या ठिकाना, दिलासा देते-ही-देते काम बिगाड़ दें। हमने एक चीज की तरफ ध्यान नहीं दिया। हमारे देश में अपने आदमियों के पास भी कम पूंजी नहीं है। मैं जानता हूँ, लड़ाई के दिनों में एक सेठ ने कितने ही करोड़ रुपये कमाये। यदि बही-खाते में लिखते, तो रुपये में दो पैसा चार पैसा मिलता, बाकी अंग्रेज सरकार ले जाती। साथ ही इतना रुपया बंक में रखके छिपाया नहीं जा सकता था, इसलिए उन्होंने चाँदी और सोना खूब खरीदा। राजस्थान की एक रियासत में उनका घर है, वहाँ उन्होंने घर के नीचे चाँदी की सिल्लियों को बिछाकर सीमेंट कर दिया।

महीप—वह बहुत होशियार था। कानपुर के एक सेठ ने तो लड़ाई के दिनों में लाखों मन कोयला नीचे बिछाकर ऊपर से फुलवारी लगवा दी थी; भंडाफोड़ होने पर बड़ी मुश्किल से रक्षा हुई। —"सोना बहा जाय और कोयले पर छाप" इसीको कहते हैं।

रामी—महीप, तुम बीच-बीच में बात को बहका देना चाहते हो। भगवान भाई को कहने दो। यदि हमारे सेठों ने इस तरह चाँदी-सोना ले जाके दो-चार अरब जमा कर दिया है, तो इस वक्त वह हमारे काम आयगा; क्योंकि अब तो रियासत-बे-रियासत का भेद नहीं रह गया है।

भगवानदास—लोगों को डर लगा हुआ है, कि कहीं धन निकालने पर इन्कम-टैक्स का सवाल न उठाया जाय।

खोजीराम—उसकी चिन्ता मत करो भगवान भाई, इन्कम-टैक्स पर हमारी सरकार जोर देने नहीं जा रही है। हमारे उद्योग-धंधों पर छागये सटोरिये उद्योग-पतियों को डरना नहीं चाहिए।

महीप—सरकार को घोषित कर देना चाहिए, कि इन्कम-टैक्स भी धर्मादा का टैक्स है, "जो दे उसका भी भला, जो न दे उसका भी भला।" आज तक क्या इन्कम-टैक्स की गड़बड़ी के कारण किसी करोड़पति को सजा हुई है? अब तो सरकार ने

पूरा ध्यान रखा है, कि पूंजीवाले संतुष्ट और निर्भय हो जायं और पूंजी भले घर की नवोढ़ा की तरह सिकुड़ी-सिमटी न रहे।

भगवानदास—मुझे और कहना नहीं है, इतना ही कहना था, कि देश के आत्मा-वलम्बी होने में सहायक जो इतना धन बचाके रखा गया है,—जिसके लिए चाहे कुछ ईमानदारी को छोड़ना ही पड़ा हो—उसे हाथ से दे देना कौनसी बुद्धिमानी है ? ऐसा करना चाहिए, जिसमें तहखानों और फर्शों के नीचे बंद यह सारी पूंजी आकर कल-कारखानों के रूप में खड़ी हो जाय और देश की उपज बढ़े। ऐसा कोई भी कानून बनाना हानिकारक होगा, जिसमें पूंजी सकुच कर अन्तर्धान हो जाय।

महीप—हाँ, पूंजी को सकुचने नहीं देना चाहिए, और पूंजी का कलेवर जैसे भी बढ़ता जाय, उसमें भी रुकावट नहीं डालनी चाहिए, क्योंकि अन्त में पूंजी पर ही उद्योगीकरण निर्भर करता है।

भगवानदास—यही मेरी भी राय है। मेरे भाईबंद बराबर डरते रहते हैं। कहते हैं, पूंजी तो जमा कर ली, लगाना भी चाहते हैं, लेकिन कहीं सरकार पूंछ बैठे—कहाँ से पैसा मिला, तो सिर पर आफत आ जायगी।

महीप—आफत आने का डर नहीं है, सबके पास दो-दो प्रकार के बही-खाते हैं, एक इन्कमटैक्स वालों को दिखाने के लिए और दूसरा अपने धन को संभालने के लिए। चीजों के भी दो भाव हैं, बहुत मजबूरी हुई, तभी असली दाम पर चीजें दी जाती हैं, नहीं तो उसका ड्योढ़ा दूना दाम लेकर कागज पर उतना ही चढ़ाया जाता है, जितना कानून से अनुमोदित है। जिस समय कपड़े पर से कन्ट्रोल उठा था, उस समय तो मौज हो गई थी। तीन मास में सेठों ने एक अरब की पूंजी जमा कर ली। आपका कहना है—चाहे किसी तरह से भी जमा की गई हो, पूंजी का रूप लेने के बाद वह गंगा की तरह पवित्र, यमुना की भांति निर्मल है। पूंजी जमा करने के लिए तब तो और प्रोत्साहन वस्तुतः देना चाहिए, और वह तो दिये विना भी हो रहा है।

भगवानदास—हम लोग समझाने की कोशिश कर रहे हैं, कि बहुत लालच करके अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी नहीं मारनी चाहिए। ज्यादा लालच करने पर, लाभ बढ़ाने पर देश में चीजों का दाम बेहद बढ़ जायगा, रुपया का मोल बिलकुल गिर जायगा। फिर जो हाहाकार देश में मचेगा, उससे त्राण नहीं मिल सकेगा। लेकिन, जानते हैं, अच्छी बातों का असर देर में होता है, बुरी बातों का तुरंत।

खोजीराम—भगवान भाई, तुम महात्मा मुखपात्री को ले आने वाले थे, वैसे महात्माओं के उपदेश का असर जरूर होगा। हमारे सेठ लोग बड़े धर्मभीरु होते हैं।

भगवानदास—मैंने आप लोगों से आज्ञा ले ली, आज मैं नहीं जा सका। देख

रहे हैं, इस पानी-बूंदी के दिन में बाहर जाने का मन भी नहीं करता, और महात्मा नगवा के पास भुइंधरे में रहते हैं।

युधिष्ठिर—हमने महात्मा जी को लाने की अनुमति दे दी है, उनकी मर्जी जिस दिन हो आयें। किन्तु, हम यह नहीं मानते कि चोर-बाजार के सेठ किसी महात्मा के उपदेश से करोड़ों के लाभ पर लात मारेंगे। करोड़ के लाभ में दो-चार लाख महात्मा जी के वचनानुसार वह दान-पुण्य में खर्च कर सकते हैं; यदि महात्मा करपात्री जी की तरह कोई दिव्य पुरुष विमान से आकर उतरे, तो उसको हवाई अड्डे पर जाकर मालों से लाद सकते हैं, घर में आरती उतार सकते हैं, किन्तु यदि महात्मा चोर-बाजारी और घूस-रिश्वत के विरुद्ध कहने लगे, तो कभी नहीं पटरी जमेगी।

भगवानदास—गोस्वामीजी ने ठीक कहा है—"जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई।" जान पड़ता है, उस समय भी चोरबाजारी थी।

महीप—हाँ, गोस्वामीजी ने बड़ी पते की बात कही है। हमारे चोरबाजारी सेठों, दोहरा हिसाब रखने वाले करोड़पतियों और घूस के अखाड़े के मल्लों पर तो यह चौपाई पूरी तौर से घटती है।

भगवानदास—अच्छे-बुरे सभी जगह होते हैं महीप बाबू, यह नहीं समझना चाहिए कि पूंजीपतियों के दिल में दया-मया नहीं है।

युधिष्ठिर—मैं आपसे इस बारे में बिलकुल सहमत हूँ। मैं समझता हूँ, व्यक्ति को सभी चीजों का दोषी ठहराना रोग के असली निदान को न जानने की कोशिश करना-सा है।

महीप—मैं भी दया-मया से इन्कार नहीं करता। आखिर हमारे देश के पूंजी-पतियों में तो बड़ी संख्या ऐसों की है, जिन्हें मांस-मछली का नाम सुनकर भी मिचली आने लगती है, जो अपने हाथ से एक चींटी को भी नहीं मार सकते, फिर दया-मया पर संदेह कैसे उठ सकता है? लेकिन भगवान भाई, आपके राजस्थान ही की कहावत है न—

"जाणणहारा जाणियाँ वणियाँ तेरी बाण।
विण छाणे लोई पिवै, पाणी पीवै छाण॥"

युधिष्ठिर—यह भी एकांगी बात है। यदि एक आदमी बरसते पानी में जाय, तो वह भीगे बिना नहीं रह सकता। काजल की कोठरी में जाकर बिना कालिख लगाये कोई लौट नहीं सकता। मैं समझता हूं, पूंजीपतियों, व्यापारियों में सभी गये-गजरे नहीं हैं, लेकिन मजबूरी है। आजकल के व्यापार में जानते हैं, हर जगह रुपये-पर-रुपया नफा न हो तो उसे करने के लिए कोई तैयार नहीं हो सकता। रुपये पर दो पैसा कमाके उसके सामने वही चिड़िया की समस्या आयगी—"क्या

खाऊँ क्या पिऊँ, क्या ले परदेस जाऊँ।" रुपये के माल पर चार आना तो एक ही जगह की रिश्वत में चला जाता है, फिर दो आने के नफे को लेकर आजकल कैसे कोई रोजगार कर सकता है?

भगवानदास–युधिष्ठिर भाई का कहना ठीक है। आज यदि चोरबाजारी के दर पर अपनी चीज नहीं बेचते है, तो सभी जगहों पर नफे में हिस्सेदार बैठे हैं, वह रास्ते में हर जगह रुकावट डालेंगे, बेंचने के लिए चीज हाथ नहीं आयगी, उसे तो चोरबाजार वाला ले जायगा। फिर तो बरस-दो-बरस में टाट ही उलटना पड़ेगा न? आज के युग में ईमानदारों पर क्या-क्या बीत रही है, इसे कहना मुश्किल है। मैं उनके भीतर रहता हूँ, बल्कि उन्हीं में से एक हूँ। मैंने तो अपने लिए नियम बना रखा है–"थोड़ा खाना बनारस का रहना।"

रामी–मैंने एक और कहावत सुनी है–

चना चबेना गंगजल, जो पुरवै करतार।
काशी कभी न छोड़िये, विश्वनाथ दरबार॥

भगवानदास–सो तो मैंने अपने लिए निश्चय कर लिया है–कुछ भी हो, अपने नियम पर दृढ़ रहूँगा। कई हित-मित्रों की खरी-खोटी सुननी पड़ती हैं। कहते हैं–तुम दिवालिया होकर रहोगे। दिवालिया होना होगा तो बाबा सुखपात्री की शरण मौजूद है। वह भी मुझसे सहमत हैं, और कहते हैं–"बच्चा, कुछ भी हो जाय, लेकिन सत से न डिगना।" मेरे पूर्वजों ने कैसे पाँच पीढ़ी में धन कमाया, यह मालूम होना मुश्किल है, किन्तु वह दूध के धुले नहीं थे, मुझे यह मानने में उजुर नहीं है।

युधिष्ठिर–भगवान भाई, आपकी बातें छिपी नहीं हैं। हम जानते हैं कि आप सत्य पर रहना चाहते हैं, और सत्य के खोजी हैं। यदि आप कहीं पर बहक जाते हैं, तो इसीलिए कि जंगल में रास्ता नहीं पाते। मैं यह भी कहूँगा कि आपकी तरह के और भी कितने ही पूंजीपति हो सकते हैं, जो सत्य का रूप ईमानदारी से समझते हैं, उससे डिगने के लिए तैयार नहीं हैं। कितने ही ऐसे भी हैं, जो अपनी इच्छा से मार्ग-भ्रष्ट नहीं हुए, बल्कि उन्होंने कोई दूसरा रास्ता नहीं देखा। वह व्यापार-पेशा के भीतर रहना चाहते हैं, किन्तु सभी आदमी तो सुखपात्री या उनके शिष्य नहीं बन सकते? वस्तुतः व्यक्तियों को दोष देना अनुचित है। व्यक्ति समाज से ऊपर उठकर यदि अच्छा करता है, तो वह महापुरुष है, और समाज से नीचे गिरकर बुरा करता है, तो वह कुपुरुष है। किन्तु समाज के विरोध से जो असमर्थ हो डूब रहा है, उसे सभी बातों के लिए दोषी ठहराना अच्छा नहीं है।

महीप–मैं भी इसे मानता हूँ, यद्यपि कभी-कभी व्यक्ति के वास्तविक दोष को अधिक बढ़ा-चढ़ाके कह डालता हूँ। असल में व्यक्ति दोषी नहीं है। पूंजीवादी

व्यवस्था के भीतर जो जायगा, या डाल दिया गया है, उसके लिए वैसा होना ही पड़ता है। इसीलिए व्यक्ति के हृदय-परिवर्तन से सामाजिक क्रान्ति करने पर विश्वास नहीं किया जा सकता। एक, दो या दस-बीस व्यक्ति भी अच्छे निकल आ सकते हैं, और सम्भव है, उनमें कुछ ऐसे भी हों, जो अपने सर्वस्व को किसी आदर्श के लिए न्योछावर कर दें, किन्तु उससे क्या उत्पीड़न और शोषण रुक सकता है? हमें व्यवस्था बदलनी है, उसके बाद हृदय स्वयं ही बदल जायगा।

युधिष्ठिर—हृदय बदलने के लिए भी प्रयत्न करना बुरा नहीं है, आखिर एक आदमी के अच्छे बनने का उसके आस-पास पर कुछ तो असर होता है। हाँ, यह अवश्य है कि महामारी में सारे नगर के गली-कूचे को कीटाणु-रहित करना पड़ता है। लेकिन, हम फिर इधर-उधर बहक रहे हैं। हम वैयक्तिक पूंजी द्वारा उद्योगीकरण में स्वावलम्बी होने की बात कर रहे थे।

भगवानदास—मैं मानता हूँ कि पूंजी के हरेक रुपये नहीं पैसे में भी खून लगा रहता है, लेकिन जब हमें उसे अपने देश की संपत्ति को बढ़ाने और उसे सबल बनाने में लगाना है, तो यह देखना होगा, कि कैसे अधिक-से-अधिक पूंजी व्यवसाय में लगाई जा सकती है। पूंजी के भड़कने के जितने भी कारण हो सकते हैं, भरसक उनको हटाने की कोशिश करनी चाहिए। हमारी सरकार ने विश्वास दिलाया है, कि बिना क्षतिपूर्ति के कोई कल-कारखाना राष्ट्रीय नहीं बनाया जायगा। इससे पूंजी को साहस होगा, कि वह कल-कारखानों में लगे। अभी हमारा देश समाजवादी देश नहीं है, जब हो जायगा, तब मैं समझता हूँ, बहुत-से अपने ज्ञान और अनुभव को समाजवादी निर्माण में लगा देंगे। लेकिन, जब तक वह नहीं है, तब तक पूंजी को खामखा भड़काने की क्या आवश्यकता? अभी सरकार ने यह मानने के लिए पूंजीपतियों को तैयार करना चाहा, कि कारखानों में जो लाभ हो, उसमें मजूरों को भी भागीदार बनाना चाहिए। मैं समझता हूँ, यह समय से पहले किया जा रहा है; वह समय तब आयगा, जब देश में समाजवाद की स्थापना हो जायगी। अभी तो मानना पड़ेगा, कि पूंजी अन्तिम निर्णायक है। उसीके लिए आज हम अमेरिका की खुशामद कर रहे हैं, उसी के लिए तो बाहर से लाकर कल-कारखाना खोलने वालों के लिए हर तरह की रियायत कर रहे हैं।

महीप—अर्थात् जो खून-पसीने को एक कर जोखिम उठाके माल पैदा कर रहे हैं, वह केवल वैतनिक दास रहें? मजूर कारखाने का दास नहीं है, उसीके रक्त-मांस को गलाकर कारखाना चल रहा है, धन उत्पादित हो रहा है। अब अधिक दिनों तक पूंजीपति मजूरों की इस तरह अवहेलना नहीं कर सकते।

खोजीराम—हम अभी सशस्त्र क्रान्ति की बात नहीं कर रहे हैं, और न उसके बारे

में कहना चाहते हैं, क्योंकि जब वह अनिवार्य हो जाती है, तो अपने आप आ जाती है, उसके संचालन के तरीके दूसरी जगह सीखे जाते हैं। हमें अभी यह समझके कहना है, कि हमारे देश में पूंजीपति भी हैं, मजूर भी हैं, यन्त्र-विशेषज्ञ भी हैं, सबको कारखाने का भागीदार मानने पर ही काम ठीक से चल सकता है।

भगवानदास—बात तो बिलकुल युक्तियुक्त है, किन्तु औंधी खोपड़ियों को समझाये कौन ? वह कहते हैं, यदि हमें अपने काम में स्वतन्त्रता नहीं देते, तो हम पूंजी को अन्तर्धान कर देंगे। आप सबसे छिपाने की आवश्यकता क्या, हममें बहुत-से ऐसे मिलेंगे, जो कुमनुष्य नहीं अपमनुष्य हैं। चाहे वह फलाहारी हों या आमिषा-हारी; लेकिन स्वार्थ के लिए वह सब कुछ कर सकते हैं। जिन्होंने जीवन-भर सट्टे-बाजी[1] को, रिश्वत और चोरबाजारी को उसी तरह स्वीकार किया, जिस तरह मछली पानी को, उनसे आप भले की आशा नहीं रख सकते। वह अपने को बड़ा समझदार समझते हैं, क्योंकि सट्टे में दाव लग गया, और फिर व्यापार भी सट्टे जैसे नफे के साथ चल निकला। पैसे देके विशेषज्ञ खरीदे जा सकते हैं, कारखाना वह चला रहे हैं। सेठजी केवल लाभ-हानि का बही-खाता देखते हैं। उन्हें ही सफल उद्योगपति कहा जाता है। ये ही लोग हैं, जो सारे अपने वर्ग को ले डूबेंगे, ये हैं जो आज सौ सैकड़ा लाभ उठाते हैं, तो कल डेढ़सौ सैकड़े बिना सन्तोष नहीं कर सकते।

महीप—भगवान भाई, आप यह अपने भीतरी अनुभव से कह रहे हैं। आप भी उनके आचरण से असन्तुष्ट हैं और समझते हैं, कि यही लोग महान् अनिष्ट के लाने वाले होंगे। लेकिन, वह इतने अंधे हैं कि चार कदम भी आगे नहीं देख सकते।

भगवानदास—व्यक्ति नहीं व्यवस्था मानव के उत्थान-पतन का कारण होती है, मैं इस सत्य को अनुभव कर रहा हूँ। उस व्यवस्था में पड़ा आदमी दुर्योधन के शब्दों में कह उठता है—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि॥

युधिष्ठिर—चिरस्थापित व्यवस्था के सामने मानव निर्बल है, किंतु साथ ही उस व्यवस्था के तोड़ने की भी उसमें शक्ति है। कभी-कभी मानव को बहुत ऊपर उठा देखा जाता है।

महीप—आप कह रहे हैं, कि वैयक्तिक पूंजी की देश के उद्योगीकरण में सहायता लेनी चाहिए। बहुत अच्छा। लेकिन हम क्या देखते हैं। हमारी सरकार ने कितने ही नये कपड़े के कारखानों के बनाने का निश्चय किया, पूंजीपतियों को निमंत्रित किया, कि वह कारखाने खोलें, सरकार उन्हें कल-मशीन मंगाने के लिए विदेशी-विनिमय देगी। एक बड़े उद्योगपति ने मिल खोलने का जिम्मा लिया। वह डेढ़

वर्ष इधर-उधर करते रहे, फिर एक दिन सरकार को लिख दिया, कि हमसे यह काम नहीं हो सकता, कल-मशीनों का दाम बहुत बढ़ गया है। वैयक्तिक पूंजी कभी नहीं चाहेगी, कि देश को जितने कपड़े की आवश्यकता है उतने कपड़ों को बनाने लायक मिलें बन जायं। माँग अधिक और चीज कम होती है, तभी चीज का दाम बढ़ाया जा सकता है, और लाभ अधिक होता है, यह बिलकुल स्पष्ट-सी बात है। इसीलिए पूंजीपति के भरोसे यदि देश का उद्योगीकरण करना है, तो वह कभी नहीं होने का। पूंजीपति अवश्य उपज को इतना कम रखेंगे, जिसमें माँग अधिक होने से दाम बढ़े, और चीजें छिपाके चोरबाजारी का अवसर मिले।

रामी—जहाँ लाभ-शुभ की बात है, वहाँ व्यक्ति कुछ नहीं रह जाता, वह लाभ की बाढ़ में बह जाता है। निजी पूंजी में निजी नफा सब कुछ है, देश की आवश्यकताओं की ओर वहाँ ध्यान नहीं दिया जा सकता, क्योंकि वैयक्तिक पूंजी के व्यवसाय का लक्ष्य देश के सभी व्यक्तियों को सुखी बनाना नहीं है; उसे सबसे पहले देखना है, अपना लाभ और पूंजी की रक्षा।

महीप—यह तो साधारण कारखानों की बात हुई। सरकार बड़े-बड़े लोहे के कारखाने और दूसरे कितने ही धंधों को अपनी ओर से खोलने की बात कर रही है। मैं समझता हूं, वैयक्तिक पूंजी के हाथ में जब तक उस वस्तु के कितने ही कारखाने हैं, तब तक सरकारी कारखाने चलने नहीं पायंगे, सरकारी डाक नहीं चल पाती, यदि निजी डाक भी चलाई जाती। देखते नहीं कितने ही आई० सी० एस० समय से पहले पेंशन लेकर पूंजीपतियों के नौकर बन रहे हैं। जब वहाँ दो हजार तीन हजार की जगह दस हजार मिलनेवाला है, ऊपर से लाभ में से भी कुछ भाग, भी तो क्यों कोई सरकारी कुर्सी का मोह करेगा? यदि निजी पूंजीपतियों के हाथ में लोहे के कारखाने रहे और सरकार ने अपना बड़ा कारखाना खोला, तो कोई योग्य विशेषज्ञ वहाँ रहने नहीं पायेगा। पूंजी-पति चार-गुना, पाँच-गुना वेतन देकर उसे अपनी तरफ खींच लेंगे। वह इस बात की कोशिश करेंगे, कि सरकारी कारखाना घाटे पर चलता रहे, ताकि उनके कारखाने को राष्ट्रीय बनाने का खयाल ही छोड़ दिया जाय, बल्कि सरकारी कारखाने को भी पूंजीपतियों के हाथ में सौंप दिया जाय।

भगवानदास—तो आप समझते हैं कि निजी पूंजी के हाथ में कोई उद्योग ही नहीं रहने पायें?

महीप—मैं तो यही चाहता हूँ, कि कल ही देश में समाजवाद स्थापित हो जाय, और सभी उत्पादन के साधन व्यक्ति नहीं राष्ट्र के हाथ में चले जायं; लेकिन जब तक ऐसा नहीं हो रहा है, तब तक के लिए तो निजी पूंजी माननी ही पड़ेगी, और उसके

लिए अवसर भी बना रहेगा। यदि कुछ राष्ट्रीय और कुछ वैयक्तिक कारखाने रखने ही हों, तो कम-से-कम ऐसे कारखानों को ही राष्ट्रीय करना चाहिए, जिसकी उपजवाले सारे कारखाने निजी पूंजी के हाथ में न हों। पीछे का कारखाना समाजवादी और पहले का पूंजीवादी होगा, तो इसका परिणाम बुरा होगा।

भगवानदास—अर्थात् एक चीज का कारखाना राष्ट्रीय बनाया जाय, तो उस चीज के सभी कारखानों को वैसा किया जाय, नहीं तो सभी को निजी रहने दिया जाय।

युधिष्ठिर—संक्रांतिकाल में निजी पूंजी को कितने ही समय तक बर्दाश्त करना पड़ता है, किन्तु जिस तरह किसी दूसरे देश की सहायता से अपने देश को पूरी तरह उद्योग-प्रधान नहीं बनाया जा सकता, वही बात वैयक्तिक पूंजी के बारे में भी है। वैयक्तिक पूंजी विदेशी पूंजी का इसलिए भी आवाहन करना चाहती है, कि जिसमें दोनों इकट्ठा रहने पर एक दूसरे को सहारा दें। वैयक्तिक पूंजी को हम एक सीमित क्षेत्र में कुछ ही समय के लिए काम करने को छोड़ सकते हैं, लेकिन यदि हम उसके भरोसे उद्योग-धंधे को तेजी से बढ़ाना चाहते हैं, तो उसको इजाजत देनी पड़ेगी, कि वह अधिक-से-अधिक नफा करे। अधिक पूंजी तभी जमा होगी, जब मजूरों को कम-से-कम पारिश्रमिक दिया जाय और दाम बढ़ाके अधिक-से-अधिक नफा लिया जाय, जैसे तीन महीने में कपड़ा कंट्रोल के हटते ही एक अरब रुपया जमा किया गया। यह है पूंजी जमा करना। चाहे ऐसा करने से अनाज का दाम दूना बढ़ जाये, कपड़ा तथा दूसरी चीजें अधिक महंगी हो जायें, इसकी उसे कोई परवाह नहीं। पुराने युग में तथा पिछड़े हुए देशों में पूंजी की आवश्यकता इस तरह पूरी हो सकती है, किंतु जहाँ जागृत संगठित श्रमिकवर्ग है, वहाँ यह बात चलने नहीं पायेगी। वह जरूरी है कि वैयक्तिक पूंजी को राष्ट्र के हित के ऊपर न समझा जाये।

८

औद्योगिक अशांति

भगवानदासजी आज की गोष्ठी में आते समय बहुत उत्तेजित-से मालूम हो रहे थे, और पंचों के बैठने के साथ ही उन्होंने कहना शुरू किया—यदि हमारे देश में समाजवाद चालू हो जाता, तो मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं थी।

रामी—आपत्ति तो भगवान भाई, बेवकूफ करते हैं। जो चीज देश के अधिकांश लोगों की इच्छा के अनुसार स्वीकार कर ली गई, यदि उसका विरोध कुछ आदमी करते हैं या उसके लिए हाय-तोबा मचाते हैं, तो यह फजूल की बात है; आखिर सत्तर और अस्सी प्रतिशत लोगों का लाभ जिससे है और उन सब लोगों की इच्छा के अनुसार जो व्यवस्था स्वीकार की गई है, उसके बारे में समझ लेना चाहिए कि सबके भले में अपना भी भला।

महीप—यही तो लोग समझ नहीं पाते। इसीलिए कहना पड़ता है, जिसे खून का चसका लग गया, वह उसे छोड़ता नहीं।

युधिष्ठिर—ऐसे शब्दों के प्रयोग से महीप, आखिर क्या लाभ है? इससे सताये हुए लोगों को लाभ नहीं, और खामखाह में कितनों का दिल दुखता है। यह तुम भी जानते हो, कि बहुत से लोग स्वभावतः भले हैं; लेकिन उसमें पैदा हो जाने के कारण अपने समाज या वर्ग से ऊपर नहीं उठ सकते।

महीप—मैं आपसे सहमत हूं और यह भी मानता हूं कि जवानी का खून कभी-कभी नाहक गर्म हो उठता है। लेकिन यह तो युधिष्ठिर बाबू, देख ही रहे हैं, कि जो लोग समाजवाद के अपने देश में स्थापित हो जाने पर गड़बड़ी पैदा करते हैं, वह लाभ में नहीं रहते।

युधिष्ठिर—बहुत अधिक संख्या लाभ में नहीं रहती। रूसी सामन्तों और महापूंजीपतियों में, जिनका विदेशी बैंकों में रुपया रहा, दूसरे देशों में संपत्ति रही अथवा किसी तरह बहुमूल्य वस्तुओं के रूप में काफी धन निकाल ले जा सके, वही विदेश में जाकर आराम से रहे, और ऐसों की संख्या बहुत कम थी। पंचानबे प्रतिशत बाहर जाकर कष्ट में रहे, जिनमें पच्चीस-तीस प्रतिशत की अवस्था तो अत्यन्त दयनीय देखी गई।

भगवानदास—वह कौन से?

युधिष्ठिर—रूस की समाजवादी क्रांति का विरोध करने में असफल हो कितने ही लोग पास-पड़ोस के देशों में भाग गए। कई हजार की संख्या में तो चीन के हर-बिन, मुकदन, शंघाई आदि नगरों में चले गए। इनकी दशा कितनी बुरी थी, यह कहने की आवश्यकता नहीं। हजारों स्त्रियों को जीवन बनाये रखने के लिए शरीर तक बेचना पड़ा। इन रूसी भगोड़ों ने कम-से-कम चीनवालों के दिल में तो यूरोपियनों की रत्ती-भर भी प्रतिष्ठा नहीं रहने दी। और अब उनकी और भी हालत बुरी है, उन्हीं की क्या पूर्वी यूरोप के भागे हुओं की अवस्था भी उन्हीं रूसियों जैसी है।

भगवानदास—सोवियत्-क्रांति के बत्तीस साल बाद भी क्या वह किसी ठौर-ठिकाने नहीं लगे?

युधिष्ठिर—ठौर-ठिकाने की बात पूछ रहे हो और दूसरी पीढ़ी के तैयार हो जाने पर? द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जब पूर्वी देशों में भी साम्यवाद की स्थापना हो गई, तो जो रूसी क्रांति के भगोड़े इस बीच में अपने मनोभाव को नहीं बदल सके, उन्हें वहां से भी निकल कर भागना पड़ा। शंघाई आदि नगरों के चीनी साम्य-वादियों के हाथ में जाने के बाद फिर वह अपना डंडा-कुंडा लेके भागे। उनमें से कुछ भारत भी पहुंचे हैं, किन्तु बहुत कम; कितने ही फिलीपीन, न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया को भागे।

रामी—वह कहाँ तक भागते रहेंगे? समाजवाद की आग तो सभी जगह लगी हुई है। ऊपर से जिनके पास राजसत्ता है, वह लोगों की भूख और कपड़े की समस्या हल नहीं करना चाहते, या इच्छा रहने पर भी दूसरों के स्वार्थ के फेर में इतने पड़े हुए हैं, कि कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं।

महीप—मैं तो कहूंगा, वह बहुत कर पा रहे हैं। वह अपनी अकर्मण्यता से समाजवाद का आवाहन कर रहे हैं। निश्चय ही अगले दस वर्षों तक यही रफ्तार बढ़ती रही, तो भारत में समाजवाद अगत्या स्थापित हो जायगा। मैं तो कहूंगा कि उसका श्रेय समाजवादियों या साम्यवादियों को अधिक नहीं मिलना चाहिए।

खोजीराम—चीन की तरह। तब तो वहाँ भी समाजवाद की स्थापना का श्रेय माउ-चे-तुङ्, चू-ते, चौ-अन्-लाई तथा उनके साथियों को नहीं देकर चाङ्-कैशक को देना होगा।

महीप—तो क्या आप चाङ्. को कुछ भी श्रेय देना नहीं चाहते? अमेरिका ने ढाई अरब डालर जो चीन को दिया, उसमें एक-आध अरब रखके बाकी के सारे हथियार आदि चीनी कम्युनिस्टों के पास पहुंचे। क्या चाङ्. ने सहायता न की होती, तो अमेरिका के बने नवीनतम और अत्यन्त शक्तिशाली हथियार सात जनम में भी कम्युनिस्टों को नसीब होते?

युधिष्ठिर—हम कहाँ-से-कहाँ भाग रहे हैं ? भगवानदासजी कोई बात कहना चाहते थे। आप लोग कहाँ-से-कहाँ उड़ाये लिये जा रहे हैं।

खोजीराम—मैं तो समझता हूं युधिष्ठिर भाई, घी का लड्डू टेढ़ा भी भला।

युधिष्ठिर—हम मानते हैं कि हमारी गोष्ठी को पूरी तौर से एक ही बात में नियंत्रित नहीं रहना है। हम कुछ इधर-उधर भी चले जाते हैं, तो भी वह बेकार नहीं होता; तब भी हम किसी-न-किसी समस्या के बारे में ही विचार करते हैं। भगवान भाई कहीं अपनी बात कहना ही न भूल जायं। भागने वालों की बात तो साफ ही है, कि प्रथम विश्व-युद्ध में दुनिया के एक छठे भाग पर समाजवाद की स्थापना हुई, द्वितीय विश्व-युद्ध के समाप्त होते-होते पूर्वी यूरोप समाजवाद के झंडे के नीचे चला आया। और अब चीन जैसा विशाल देश—जो जन-संख्या में विश्व का सबसे बड़ा देश है—समाजवाद को स्वीकार कर चुका। कहाँ तक लोग विरोध करते हुए भागते चलेंगे! यूरोप, एशिया के जो भाग अभी पूंजीवाद के फंदे में हैं, उनकी भी हालत अच्छी होती नहीं जान पड़ती। तेल और बत्ती समाप्त-से हैं, दीपक पर हवा के थपेड़े लग रहे हैं। आखिर भगोड़ों को कहाँ जाकर शरण मिलेगी ? दुनिया की भूमि नपी-तुली है, समाजवाद के फैलने का वेग भी १९१७ से १९४९ के बत्तीस सालों की प्रगति से नापा जा सकता है। विश्व की जन-संख्या का एक-तिहाई से अधिक भाग समाजवाद का अनुयायी हो चुकी। आखिर भगोड़े प्रशान्त महासागर में जाकर डूबेंगे या अटलांटिक में ? मुझे तो हाल के एक तिब्बती भद्रपुरुष की बात बड़ी अच्छी लगी, किंतु मैं भगवान भाई की बात में विक्षेप नहीं करना चाहता।

भगवानदास—उसकी परवाह मत करिये युधिष्ठिर भाई, मैं अपनी बात पूछ के रहूंगा, लेकिन तिब्बत के भद्रपुरुष की बात जरूर कहें।

युधिष्ठिर—चीन में साम्यवादियों की विजय-पर-विजय देख के तिब्बत के हर्त्ता-कर्त्ता घबड़ा गए। उन्होंने एकान्तवास छोड़ा और साम्यवाद से त्राण पाने के लिए आकाश-पाताल सबका चक्कर काटा, लेकिन ढाई अरब की मार खाये अमेरिका को सुध-बुध कहाँ थी और किस आशा पर चाङ्. की असफलता के बाद वह तिब्बती टट्टू द्वारा घुड़-दौड़ जीतने की आशा रखे। इंगलैंड तो स्वयं ही भिखारी है, वह क्या मदद देगा। जहाँ जहाँ आशा थी, तिब्बत का शिष्टमंडल सब जगह पहुँचा। लेकिन, मीठी बातों के अतिरिक्त कोई चीज हाथ न आई। नानकिङ्. के पतन के बाद तो और भी घबड़ाहट हो उठी। एकाध धनियों ने भारत में अपने लिए ठौर-ठिकाना बनाना भी शुरू कर दिया। उक्त भद्रपुरुष से पूछा, तो उन्होंने कहा—क्रांति के कारण देश छोड़कर भागे अधिकांश लोगों की अवस्था देखकर तो यही अच्छा मालूम होता है, कि अपने ही देश में बने रहें।

महीप—अर्थात् देश के भीतर रहकर पासा पलटने की कोशिश करनी चाहिए।

युधिष्ठिर—वह भद्रपुरुष पासा पलटने की आशा नहीं करते थे। वह कह रहे थे—यदि साम्यवादी हमें आकर मार डालेंगे, तब भी कोई बात नहीं, कम-से-कम हम उस दुर्गति से तो बच जायंगे जो भगोड़ों को उठानी पड़ती है। और यदि हमसे शिक्षित होने के कारण कोई काम लेना चाहेंगे, तो हम ईमानदारी से काम करेंगे और प्रमाणित करेंगे कि देश के नव-निर्माण के हम भी इच्छुक हैं और अपनी शक्ति भर नये कर्णधारों को उनके काम में मदद देने के लिये तैयार हैं

महीप—ऐसे लोगों को, मैं समझता हूं, समाजवादी देश में काम करने का बहुत अवसर मिलेगा।

भगवानदास—मैं तो कहूंगा, यही भावना अच्छी है।

रामी—अच्छा भगवान भाई, आप अपनी बात तो बतलायें।

भगवानदास—यही कह रहा था—समाजवाद का झंडा गड़ जाय, तो हम भी विरोधी नहीं बनेंगे, बल्कि जो भी हमसे बन पड़ेगा, देश के नव-निर्माण का काम करेंगे। लेकिन, आज भारत में समाजवाद तो नहीं चल रहा है। देश में अन्न और उद्योग बढ़ाने सम्बन्धी समस्याएं भयंकर हो उठी हैं। इस वक्त तो हम जितना ही अधिक अपने खेतों, कल-कारखानों, चाय-बगानों से उपजा सकें, जितनी ही अधिक घर-खर्च की वस्तुओं को पैदा कर सकें और जितनी ही अधिक वस्तुओं को बाहर भेजकर डालर और पौंड जमा कर सकें, उतनी ही देश की रक्षा और भलाई होगी। यदि हमने कारखानों की उपज न बढ़ाई, तो न अपने देश के उद्योग की चीजें बना सकेंगे, और न बाहर भेजकर डालर पौंड जमाकर उससे दूसरे देशों से अन्न या मशीनें खरीद सकेंगे, और इसका परिणाम घातक होगा। अन्न बिना लोग मौत के मुंह में जायंगे, मशीनों बिना हम कारखाने नहीं बढ़ा सकेंगे। बिहार में हमारी एक चीनी की मिल है, जहां हम दूसरी मिलों की अपेक्षा मजूरों का बहुत ध्यान रखते हैं। हम मजूरों को सबसे अधिक वेतन देते और अतिरिक्त लाभ के अनुसार उनको बोनस भी देते हैं; यहाँ तक कि ऊख की फसल बीत जाने पर जब मिल बंद रहती है, उस समय भी हम मजूरों को आधा वेतन देते हैं। वहाँ अस्पताल का इन्तजाम है, रहने के लिए कितने ही साफ-सुथरे क्वार्टर बनवा दिये हैं और सोच रहे हैं यदि मिठाई और सीरे से स्पिरिट बनाने का भी काम पूरी तौर से चल निकले, तो बारहों महीने मजूरों को काम दें, उनके लिये स्थायी घर बनवा दें। रामी बहन, हमारी मिल देख आई हैं, वह बतला सकती हैं, कि हमारे यहाँ मजूरों की कितनी पूछताछ है।

रामी—मैंने देखा है; और कई दूसरी मिलों को भी मैं देख चुकी हूं, निश्चय

ही भगवान भाई की मिल के मजूरों के साथ बहुत अच्छा बर्ताव किया जाता है।

भगवानदास—तो भी हमारे मिल के मजूरों ने हड़ताल कर दी है। मिल-मालिक भाई पहले ही से हमारे विरोधी थे, बन्धु-बान्धव भी बहुत डाँटते थे। एक सम्बन्धी तो कह रहे थे—तुम पूरे बेवकूफ हो, एक चीनी के मिल की नफे पर लोगों ने तीन-तीन मिलें खड़ी कर लीं, एक कपड़े की मिल से चोरबाजारी द्वारा करोड़ों की पूंजी बढ़ाके लोग बड़े-बड़े कारखानेदार बन गए—अंग्रेजों की मिलें खरीद लीं; लेकिन तुम दस साल से वहीं हो। मैंने उन्हें वही "थोड़ा खाना बनारस का रहना" की कहावत सुना दी। मैं बहुत नफा नहीं चाहता किन्तु यह हड़ताल देखकर लज्जा आ रही है। मेरे प्रतिद्वन्दी भाई मुझे खूब ताना मार रहे हैं। यदि मैं मिल से अधिक नफा उठाके नये कारखाने खड़ा कर सकता, तो मैं बेवकूफ नहीं समझा जाता।

खोजीराम—कारखानों को और अधिक बढ़ाना, देश के उद्योग-धन्धे को उन्नत करना, यह तो देश के प्रति सबसे आवश्यक कर्त्तव्य है। सभी को अपनी शक्ति-भर इस काम में सहायता करनी चाहिए।

महीप—कारखाना बढ़ाने के लिए पूंजी की आवश्यकता होती है, और पूंजी को हम मजूरों का पेट काटकर जमा करते हैं, यह उन्हीं के पसीने की कमाई है; किन्तु मिल-मालिक—जिसके भाई-बन्दों ने कन्ट्रोल के उठ जाने पर तीन महीने के भीतर एक अरब रुपया जमा कर लिया—यह मानने के लिए तैयार नहीं है। तो पूंजीपति चोरबाजार में चुपचाप कपड़े को बेंचकर एक अरब अपने पाकेट में डालना चाहते हैं।

भगवानदास—मैं इसे बुरा मानता हूं। इतना लोभ उन्हें अवश्यमेव ले डूबेगा। किन्तु वह कहते हैं, कि अंग्रेजों ने दूसरे मुल्कों की लूट और अपने देश के मजूरों का वेतन कम रखके खूब नफा कमा पूंजी जमा की, और उससे अपने देश के उद्योग-धन्धे को बढ़ाया। भारत के पास साम्राज्य नहीं है, कि वहाँ के लोगों को लूटके पूंजी बढ़ाई जाय।

महीप—इसलिए पूंजीपति चाहते हैं कि घर में ही शिकार खेला जाय और मजूरों की कमाई में से एक लाख का एक करोड़ बनाके और भी भारी पूंजी का मालिक बना जाय। लेकिन भगवान भाई, अब वह होनेवाली बात नहीं है। अंग्रेजों ने उस समय अपने अधीन देशों को लूटा, जब कि उन देशों में स्वतन्त्रता के लिए नवचेतना नहीं आई थी। उन्होंने उस समय अपने यहाँ के मजूरों की खाल उतारी, जब उनमें आत्म-चेतना और संगठन नहीं था, जबकि वह अपने को क्रीत-दास से

समझते थे। आज मजूरों में चेतना है। वह जानते हैं कि पूंजीपति जोंक छोड़कर और कुछ नहीं हैं। इस वक्त यदि आप उन्नीसवीं सदी की तरह मनमानी पूंजी बढ़ाना चाहेंगे, तो संगठित मजूर इसे बर्दाश्त नहीं करेंगे। वह समझने लगे हैं, कि फैक्टरी मालिक की नहीं बल्कि हमारे अपने खून-पसीने की है।

भगवानदास—जो भी समझते हों, लेकिन उपज का बढ़ाना तो हरेक का कर्तव्य है।

महीप—भगवान भाई, रूस में भी कारखाने हैं और अमेरिका तथा हमारे देश में भी। रूस का मजूर दूसरे पड़ोसी कारखाने के साथ उपज बढ़ाने की होड़ लगाता है, जिससे वहाँ चीजों की उपज बहुत तेजी से बढ़ती है। द्वितीय विश्वयुद्ध में सत्तर लाख आदमियों के मारे जाने पर भी रूस के किसानों ने युद्ध-समाप्ति के डेढ़ बरस के भीतर ही अनाज इतना पैदा कर लिया, कि वह अपने ही नहीं, दूसरे देशों को भी खिलाने लगे। उजड़े शहरों को वहाँ जितनी जल्दी से आबाद किया गया, वह वही कर सकते थे। वहाँ खेतों और कारखानों में क्यों होड़ लगती है? क्यों वहाँ हड़ताल करना बुरा समझा जाता है? इसीलिए कि वहाँ के मजूर जानते हैं, कि यहाँ तीन महीने में उनकी कमाई से एक अरब बनाकर कोई बैठ नहीं सकता। यदि हमारे यहाँ के मजूरों को भी यह मालूम होता, कि अपनी मजूरी का जो पैसा हम नहीं पा रहे हैं, वह किसी सेठ की नहीं बल्कि देश की खातिर जमा हो रहा है, जिससे बढ़ते कमकर-पुत्रों के काम के लिए और अधिक कारखाने खोले जायंगे, तो हमारे देश में भी औद्योगिक अशान्ति नहीं होती।

भगवानदास—भाई, वही कर लेना, लेकिन जब तक वह नहीं होता, तब तक हड़ताल करके उपज बन्द करने का अर्थ है, देश को अकाल के गाल में फेंकना।

युधिष्ठिर—देश को नुकसान पहुँचाना ठीक नहीं है, लेकिन नुकसान को रोकने के लिए क्या मजूर अपना काम जोर-शोर से करते जायं, पूंजीपति निडर हो पूंजी बटोरते जायं, एवं मजूरों की दशा दिन-पर-दिन गिरती जाय?

रामी—भगवान भाई, थोड़ी देर के लिए आप अपनी बात थोड़ी छोड़ दीजिये एक तरफ। एक तरफा देश-सेवा की आशा तो आप नहीं रख सकते? मजूरों को उनकी कमाई का पर्याप्त भाग देने की बात तो अलग, पूंजीपति सदा इसी ताक में रहते हैं, कि कैसे हमारी जेब से कम-से-कम पैसा बाहर निकले। यह विचार तो वह मनमें आने ही नहीं देना चाहते, कि मजूर भी कारखाने के मालिक हैं।

भगवानदास—मैं तो मानने के लिए तैयार हूं और मैं समझता हूँ, मजूरों को यह खयाल होना चाहिए; लेकिन मालिक होने के साथ अपनी जिम्मेदारी का भी तो उन्हें खयाल करना होगा।

महीप–आप भगवान भाई, जबानी जमा-खर्च को भुगतान समझ रहे हैं। वही कहावत है–"बहू का बहुत मान, किन्तु हाँडी-चूल्हा छूने न पाये।" आपके जबानी कह देने से तो मजूर कारखाने के मालिक नहीं बन जाते। मालिक होने का प्रमाण यही है, कि कारखाने के लाभ में मजूरों को भी भागीदार माना जाय। यह बात स्वीकार करने के लिए कहने पर बिड़ला साहब नेहरू सरकार को धमकी दे रहे हैं, कि तब अमेरिका एक पैसे की मदद नहीं देगा; हालाँकि सरकारी पंचों ने यह राय दी है, कि औद्योगिक शान्ति रखने के लिए यह जरूरी है। सेठ इसे नई बात बतलाते हैं, और कहते हैं कि ऐसे तो पूंजीपति रोजगार नहीं कर सकते।

खोजीराम–यह तो अमेरिका का नाम लेकर धमकी है। वह जानते हैं, कि हमारी सरकार ने अमेरिकन बादल को देखकर घड़ा फोड़ दिया है।

महीप–यह तो मालूम हो गया न, कि पूंजीपति मजूरों को कारखानों में भागीदार स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। यही नहीं, जिसको नहीं तिसको नौकरी से निकाल देना अपनी शान समझते हैं। मजूरों की साधारण तकलीफों और माँगों को भी तब तक ठुकराते जाते हैं, जब तक मजूर एक होकर उनका मुकाबला नहीं करते।

भगवानदास–मुकाबला करने की क्या बात पूछते हैं, अब क्या कहीं भी मजूर डरते हैं? मजूर और किसान दोनों की वही बात है। किसान जमींदार को माता-पिता समझता था और वैसा ही आज्ञाकारी देखा जाता था, लेकिन अब?

खोजीराम–लेकिन, जमींदार किसान को सौतेला बेटा भी नहीं समझता था। एकतरफा भक्ति के दिन गये भगवानजी!

भगवानदास–पूंजीपतियों का भी दोष है, इससे मैं इन्कार नहीं करता, लेकिन यह जो समाजवादी-साम्यवादी उन्हें भड़का रहे हैं, केवल अपने स्वार्थ के लिए भड़का रहे हैं, क्या यह अच्छी बात है?

महीप–अपने स्वार्थ के लिए भड़का रहे हैं, इसका क्या अर्थ है? क्या मजूरों का वेतन बढ़ने पर बढ़े रुपयों को वे अपनी पाकेट में रखना चाहते हैं? इस तरह की स्वार्थ की बात, राजनीतिक विप्लव और उपद्रव की बात, अंग्रेज भी उस समय बहुत किया करते थे, जब हमारे नेता स्वतंत्रता के लिए युद्ध छेड़े हुए थे।

भगवानदास–व्यक्तिगत स्वार्थ भले न हो। खैर, इसे जाने दीजिए, यदि आप कहना चाहते हैं, कि मजूरों के स्वार्थ के लिए लड़ रहे हैं, तो मजूरों के स्वार्थ का खयाल केवल इन्हीं लोगों को नहीं है, राष्ट्रीय मजूरसंघ भी तो आखिर मजूरों की बड़ी सफलतापूर्वक सेवा कर रहा है।

महीप–मजूरों की सफलतापूर्वक कुसेवा कर रहा है। यद्यपि इसका यह अर्थ

नहीं कि, राष्ट्रीय-मजूर-संघ के सभी नेता-कार्यकर्ता जान-बूझकर ऐसा कर रहे हैं। जान-बूझकर करें या न करें, किन्तु यह संस्था पूंजीपतियों का पाँचवाँ दस्ता है, इसका काम मजूरों की संघशक्ति को नष्ट करना और झूठे दिलासे देकर मजूरों को भ्रम में रखना है।

भगवानदास—यदि अलग नई संस्था खोलने से ही आप राष्ट्रीय-मजूर-संघ के लोगों को दोषी ठहराते हैं, तो समाजवादी भाइयों ने भी तो पुराने मजूर-संघ से अलग अपनी मजूर-पंचायत कायम कर ली है।

महीप—मैं नहीं कह सकता कि वह ठीक किया गया। मैं तो यही चाहूंगा कि सभी मजूर-संगठन किसी-न-किसी तरह एकताबद्ध हो जायं; किन्तु मजूर पंचायत पर यह दोषारोपण नहीं किया जा सकता, कि यह पूंजीपतियों की सहायता करने के लिए, हड़ताल तोड़ने तथा मजूरों को आपस में लड़ाने के लिए अपना संगठन कर रही है।

भगवानदास—आपकी दृष्टि में राष्ट्रीय-मजूर-संघ का मजूर-हित से कोई संबन्ध नहीं है?

महीप—आपका यह विचित्र प्रश्न है। कभी कोई हित कर देने वाला यदि असली हितू समझा जाता, तो बैरगिया नाला का आपका जूता उठानेवाला ठग भी हितू समझा जायगा। देखना तो यह है कि इस संगठन का लक्ष्य मजूरों के विस्तृत तथा स्थायी हित की ओर है या नहीं। लेकिन, मैं यह कहूँगा कि फूट डालने की यह नीति किसी देश में भी अधिक समय तक सफल नहीं हुई है। पूंजीवादी सरकार सिर्फ जेल और गोली से ही मजूरों की शक्ति नहीं तोड़ना चाहती, बल्कि उन्हीं के भीतर से फूट डालने वालों की जमात भी बनाती है।

युधिष्ठिर—महीप, एक ओर तुमने स्वीकार किया, कि राष्ट्रीय-मजूर-संघ में ऐसे भी आदमी हो सकते हैं, जिनकी नीयत पर हमला नहीं किया जा सकता; लेकिन दूसरी ओर से तुम काला पोचारा फेरना चाहते हो।

महीप—यदि ऐसा भ्रम मेरे कहने से हुआ हो, तो मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूँ, कि मेरी यह मंशा नहीं है। हाँ, ऐसे भोले-भाले आदमी हो सकते हैं, जो भ्रम के कारण पूंजीपतियों के षड्यंत्र में शामिल हो गए।

भगवानदास—लेकिन महीप बाबू, आप तो बहुत पढ़-गुन चुके होंगे, हमारे प्रधान-मंत्री ने कहीं भी समाजवाद या साम्यवाद को बुरा-भला नहीं कहा है। वह तो देश में समाजवाद को लाना चाहते हैं। हमारे गाँधीवादी सर्वोदयवाले भी साम्यवाद को मानते हैं और कहते हैं कि साम्यवादियों तथा सर्वोदयवादियों के उद्देश्य में कोई अंतर नहीं है, अंतर है केवल साधनों में।

महीप–प्रधान-मंत्री के समाजवाद की बात आप क्यों कहते हैं ? आप खामखाह गड़ा मुर्दा उखाड़ना चाहते हैं। हमें कथनी नहीं करनी चाहिए और करनी में प्रधान-मंत्री ने भरसक समाजवाद को कोसों नीचे गाड़ दिया। समाजवादी नेहरू अब लुप्त इतिहास की बात रह गए। रही सर्वोदय समाज की बात, मैं उनके भावों का सम्मान करता हूँ, यद्यपि कभी-कभी उनकी आलोचना करने से भी बाज नहीं आता।

युधिष्ठिर–जितने ईमानदार तथा बहुजन-हितैषी व्यक्ति हैं, उनकी कड़ी आलोचना की क्या आवश्यकता। मैं समझता हूँ, सर्वोदय-समाजियों में गाँधीजी के सबसे ईमानदार अनुयायी हैं। इसमें भी शक नहीं, कि वह साम्य-समाज की स्थापना चाहते हैं और जैसे-जैसे हमारे देश की अवस्था वैयक्तिक स्वार्थ के कारण भयंकर रूप धारण करती जायगी, वह अपने उद्देश्य के लिए और अधीर भी होते जायंगे। किन्तु उनको भ्रम है कि साम्यवादी हिंसावाद पर विश्वास रखते हैं। हिंसा उसे कहेंगे, जो आक्रमण के लिए की जाय। आत्मरक्षा के लिए अगर कोई आदमी तलवार का सहारा लेता है, तो दोषी नहीं है। प्राण-संकट से बचने के लिए यदि कोई आततायी को जान से मार दे, तो कानून भी उसे हत्यारा नहीं कहता। साम्यवादी आक्रमण के लिए नहीं, आत्मरक्षा के लिए हिंसा को स्वीकार करते हैं। आक्रमणकारियों को निःशस्त्र कर दीजिए, उनके पास हथियारबन्द गुरखे रखने के लिए पैसा न हो, तब कह सकते हैं–देखो हम पूरी जन-तांत्रिकता को व्यवहार में ला दिये हैं, अब किसी को यदि देश में क्रांति करनी है, तो शान्ति के पथ से करे।

रामी–यह कहाँ होने वाला है, प्रेस, पैसा, प्रभाव तो दिन-पर-दिन और भी चंद आदमियों के हाथ में चला जा रहा है।

खोजीराम–शक्ति का इतना अधिक एक जगह जमा होना, और वह भी व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए, बहुत बुरी बात है।

महीप–लेकिन उसी मात्रा में अधिक लोगों का कंगाल हो जाना, भारी संख्या में मजूरों का कल-कारखानों के पास एक जगह जमा हो जाना भी हो रहा है, जो पूंजीवादी शासन के लिए खतरे की चीज है।

भगवानदास–हाँ, यह दोनों खतरे की चीजें हैं। हम तो समझते हैं, मजूरों और मिलमालिकों को मिलाके रखने से ही काम ठीक से चलेगा, और यह मिलाने का काम राष्ट्रीय-मजूर-संघ कर रहा है।

महीप–क्योंकि उसका उद्देश्य है–"ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना, जो कि उसके प्रत्येक सदस्य के सर्वतोमुखी विकास के रास्ते में बाधा डालने

से मुक्त है, जो मानव व्यक्तित्व को हर प्रकार से उसके हरएक रूप में वृद्धि करने को उत्साहित करती है और आर्थिक कार्यों में लाभ की वांछा के लिए सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक शोषण तथा असमानता की ओर किसी रूप में भी शक्ति के समाज-विरोधी केन्द्रीकरण को क्रमशः चरम सीमा तक हटाने को तैयार है।"

भगवानदास–आखिर आप लोग भी तो यही बात कह रहे हैं।

महीप–कहने और करने में बहुत अंतर है। यदि यह करने वाले होते, तो पूंजीपतियों का आशीर्वाद उन्हें न मिलता, न उनके पत्र कालम-के-कालम उनकी प्रशंसा में रंगते।

खोजीराम–मैं तो समझता हूँ, यह केवल कमकर-वर्ग में फूट डाल के उसे निर्बल करने की चाल है। दूसरे मजूर संगठन जब तक कुछ शक्तिशाली हैं, तब तक उनकी कुछ पूछ भी रहेगी, नहीं तो इनको भी धत्ता बता दिया जायगा और फिर पूंजीपतियों की नंगी तानाशाही स्थापित हो जायगी।

युधिष्ठिर–यह सब हो सकता है, किंतु भूख और चरम दरिद्रता की समस्या कभी कमकरों को चैन लेने नहीं देगी।

१

आहार की समस्या

आज वर्षा बंद थी, आकाश में कहीं-कहीं सफेद बादल दिखाई पड़ते थे, जो निरुद्देश्य-से इधर-से-उधर सरक रहे थे। ऊपर, जान पड़ता है, वर्षा जोर की हुई थी, क्योंकि गंगा की धार दूर तक फैली थी। आज की गोष्ठी में पाँच की जगह छ आदमी थे; छठे कौन थे, इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं।

आरम्भिक अभिवादन के बाद छओं जने पक्की छत के ऊपर कालीन पर बैठे। युधिष्ठिर ने गोष्ठी आरम्भ करते हुए कहा—आज हमें आहार की समस्या पर विचार करना है, आहार की लोग अवहेलना करते हैं, मैं समझता हूँ वह इतना अवहेलनीय नहीं है। उसके ऊपर जीवन आधारित है। मैं समझता हूँ, शायद प्राचीन काल में अन्न की अवहेलना की गुंजाइश थी; उस समय अन्न बहुत था, खानेवाले कम थे, इसलिए भोजन की चिंता नहीं थी। स्वामीजी शायद बतला सकेंगे कि क्यों हमारे यहाँ अन्न को निकृष्ट समझा गया।

मुखपात्री—नहीं, प्राचीन-काल में जिस वक्त उपनिषद् के ऋषि भारत में विचर रहे थे, कहा जाता था, "अन्नं वै ब्रह्म।"

रामी—अन्न को ब्रह्म कहते थे और ब्रह्म से बढ़कर कोई चीज नहीं।

मुखपात्री—यह भी उस वक्त विधान किया गया था, "अन्नं बहु कुर्वीत।"

भगवानदास—"अन्न बहुत उपजाओ", यह नारा बहुत पुराना मालूम होता है।

मुखपात्री—वह लोग अतिथि के बड़े सेवक थे। जिसके घर से अतिथि बिना तृप्त हुए चला जाता था, समझते थे उसका जीवन-भर का पुण्य चला गया[1]। अन्न बिना अतिथि की सेवा कैसे हो सकती है?

महीप—पहले "अन्न बहुत उपजाओ" कहना जबानी नहीं था। लोग बहुत अन्न उपजाते थे और इस भारत भूमि पर कोई भूखा नहीं रहता था। पिछली लड़ाई के समय अंग्रेजों ने "अन्न बहुत उपजाओ" का नारा लगवाया, करोड़ों रुपये प्रचार में खर्च किये गए, लेकिन नारे का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अन्न जब बहुत महंगा हो गया, तो किसान कोशिश करके अधिक अन्न उपजाने लगे। आजकल अन्न के

१—"अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति।"

लिए "त्राहि, त्राहि" मच रही है। अन्न की बहुत कमी है। आदमी पीछे कितने अन्न की आवश्यकता होती है, इसे तो हमारे डाक्टर साहब बतलायेंगे।

खोजीराम—आदमी-आदमी के लिए एक ही परिमाण की शक्ति आवश्यक नहीं होती। जो अधिक शारीरिक मेहनत करता है, उसे अधिक भोजन की आवश्यकता है। जो मेहनत कम करता है, उसे कम शक्ति की आवश्यकता होती है। भारी बोझा उठाके पहाड़ पर चलने वाले आदमी को उसके शरीर के छोटे-बड़े होने के अनुसार साढ़े तीन हजार से चार हजार कलोरी तक चाहिए।

भगवानदास—कलोरी क्या चीज है?

खोजीराम—कलोरी[1] के बारे में यही समझिए कि सेर भर घी में ७१३६ (या ७०९२) कलोरी शक्ति होती है। घी में सबसे अधिक ताकत होती है।

मुखपात्री—"आयुर्वै घृतं।" अच्छा तो जो शरीर से ज्यादा मेहनत नहीं करता, उसको कितनी शक्ति की आवश्यकता है?

खोजीराम—दो हजार कलोरी की आवश्यकता तो होगी ही, वैसे १७५० कलोरी भी पर्याप्त है।

मुखपात्री—तब तो आदमी पाव-सवा-पाव घी खाकर २४ घंटे के लिए छुट्टी पा सकता है।

खोजीराम—लेकिन उस आहार से क्या लाभ, जिससे शक्ति नहीं मिलती? उस पेट्रोल से क्या लाभ जो टैंक के टूटने से चू जाता है?

मुखपात्री—तो क्या हम जो खाते हैं, सब शक्ति नहीं बनता?

खोजीराम—जिस आहार में जितनी अधिक शक्ति होती है, उसको पचाने में भी उतनी ही मेहनत लगती है, जैसे घी, चर्बी, बादाम। यह सभी चीजें मिश्रित करके एवं अधिक परिश्रम द्वारा हजम होती हैं। कुछ खाद्यों में प्रति सेर (दो पौंड) कितनी कलोरी है, इसे बताता हूँ—

खाद्य	कलोरी	खाद्य	कलोरी
सोया-सेम	३८०८.	चावल (उसना)	३६४८.
चना	३३६०.	तपियोका	३२६४.
मटर (बड़ी)	३९७६.	गेहूं (आटा)	३२६४.
मसूर दाल	३२३२.	गुड़	३२००.
बाजरी	३३६०.	रोटी	३२००.
मक्का	३०७२.	भात	३४६४.
चावल (अरवा)	३४५६.	घी	७१३६.

१—जितनी शक्ति में एक ग्राम जल एक डिग्री सेंटीग्रेड गरम हो जाता है।

खाद्य	कलोरी	खाद्य	कलोरी
दूध (भैंस)	९६०.	माँस (मुर्गा)	१०८०.
" (गाय)	५७६.	" (भेड़)	१३४४.
" (बकरी)	६४०.	" (सूअर)	२६९६
" (मानुषी)	८७६.	मछली (मीठे जल की मोटी)	१७६०.
" (भेड़)	९६०.	" (" " पतली)	७०४.
" (बकरा)	११५२.	अंडा (मुर्गी)	१३४४.
पूड़ी	४१६०.	शकरकंद (लाल)	१०८८.
चीनी	३६१६.	शकरकंद (सफेद)	८६४.
खीरा	९६.	आलू	८६४.
कटहल	७६८.	गाजर	३२०.
आम	७६८.	मूंगफली (तेल)	८०६४.
नारंगी	३८४.	सरसों (तेल)	७९६४
अनन्नास	३८४.	मक्खन	६९१२.

रामी—अधिक कलोरी वाली चीजों को देखकर तो लालच होता है, कि क्यों न दो सेर की जगह पाव-भर खा लिया जाय, किन्तु उनके हजम करने में दिक्कत होती है, यह सुनकर मन हिचकता है ।

महीप—मन ही हिचकता है या कभी खाकर भी देखा है ?

रामी—खाकर देखा है, तभी तो मन हिचकता है ।

खोजीराम—केवल अधिक कलोरी खाने से फायदा नहीं, फिर या तो हम हजम नहीं कर पाते, या बेकार मोटे होते जाते हैं । हमारे खाने में मटर जैसे प्रोटीन देने वाले आहार की आवश्यकता है; चर्बी जैसे स्निग्ध पदार्थ की भी आवश्यकता है; कार्बोहाइड्रेट अधिक देने वाले आहार की भी आवश्यकता है । फिर भीतर से शरीर के यन्त्र की वृद्धि और रक्षा करने में सबसे अधिक आवश्यक वस्तु है ए, बी, सी, डी, इ विटामिन । लेकिन मोटामोटी देखने पर सबसे पहले कलोरी का ही खयाल आता है । हमारे देश के लोगों के आहार का औसत लगाने पर यही कहना पड़ेगा, कि यहाँ प्रति-व्यक्ति २५०० कलोरी की आवश्यकता होगी। लेकिन यह औसत की बात है, अधिक मेहनत करने वाले को ३००० कलोरी, हल्के शारीरिक श्रम और मामूली व्यायाम करने वाले को २५०० कलोरी, अधिक परिश्रम करने वाले को ४००० कलोरी की आवश्यकता है ।

महीप—यदि हम गेहूं को ले लें और १९५१ में अपने देश की जनसंख्या ३५ करोड़ मान लें, तो प्रत्येक व्यक्ति को साल-भर में ६ मन १३ सेर गेहूं की आवश्यकता होगी अर्थात् साढ़े चार आदमी पर एक टन अनाज की जरूरत ।

भगवानदास–हिसाब सीधा रखने के लिए टन पीछे पाँच आदमी कर लीजिए, तो साल में हमारे देश को ७ करोड़ टन अनाज की आवश्यकता होगी। लड़ाई के समय से ही "अधिक अन्न उपजाओ" की बात चल रही है, उससे कितना अनाज बढ़ गया ?

युधिष्ठिर–अनाज बढ़ने की बात कर रहे हैं ? चावल को ही ले लीजिए। १९४५ में ७०,००० टन चावल बाहर से मंगाया गया, अगले साल १,४४,००० और १९४७ में ४,६४,००० टन और पिछले साल ८,००,००० टन मँगाया गया। इसके अतिरिक्त २०,००,००० टन चावल घर में पैदा हुआ।

मुखपात्री–अनाज तो बहुत महंगा है। बाहर से इतना अनाज मंगाने पर हम कहाँ से दाम चुका सकेंगे ?

युधिष्ठिर–१९४८ में १२० करोड़ रुपये का अनाज मंगाना पड़ा। तौल में १९४४ में १५ लाख टन, १९४६ में २५ लाख टन बाहर से मंगाया गया था। १९४८ में कुल मिलाकर २८,००,००० टन आया था, १९४९ में ४०,००,००० टन की आवश्यकता रही, १९५१ में आध करोड़ टन चाहिये।

भगवानदास–जान पड़ता है अनाज के टोटे का कहीं अन्त ही नहीं होना चाहता।

महीप–इतना ही नहीं भगवान भाई, हर साल ५० लाख खाने वाले नये मुंह हमारे देश में बढ़ जाते हैं।

मुखपात्री–क्या कहा नारायण ? पचास लाख बच्चे हर साल हमारे यहाँ पैदा होते हैं ?

महीप–बच्चे नहीं पैदा होते, स्वामीजी, सालभर में जितने लोग मरते हैं और जितने पैदा होते हैं उनका जोड़-बाकी करके श्री रोकड़बाकी पचास लाख हर साल बढ़ जाते हैं। आदमी की बढ़ती साधारण ब्याज के हिसाब से नहीं होती। यह सूद-दर-सूद या चक्रवृद्धि का ब्याज है, अर्थात् इस पचास लाख पर भी अगले साल ७५ हजार और बढ़ जायंगे और पचास लाख तो बढ़ेंगे ही।

भगवादास–अर्थात् दस बरस बाद १९६१ तक ६ करोड़ मुंह और बढ़ जायंगे, जिसका अर्थ है १,२०,००,००० टन अनाज की और आवश्यकता[१]। भाई, मेरा तो इससे माथा गरम हो रहा है। बदले में देने को हमारे पास केवल ५७ करोड़ पौंड चाय है[१]। बहुत हल्ला-गुल्ला करके साल-भर में एक लाख एकड़ जमीन नई खेती के लिए तैयार की गई, जिसका अर्थ है–

१–अनाज के बदले हमारे पास देने का एक बड़ा साधन है चाय, जिसकी प्रतिवर्ष औसत उपज अगले पृष्ठ पर है–

महीप–२५ हजार टन अनाज अर्थात् ५० लाख नये खानेवाले मुंह में से सिर्फ सवालाख के लिए खाने का इन्तजाम।

मुखपात्री–यह तो बाढ़ आ रही है, इसे कैसे रोका जाय ?

महीप–इसी बेतहासा बाढ़ के कारण तो स्वामीजी, मेरा विश्वास भगवान् से उठ गया।

मुखपात्री–क्या कहते हो नारायण ? तुम परमात्मा में विश्वास नहीं रखते ?

युधिष्ठिर–भगवान् की बात न उठाइये स्वामीजी, नहीं तो महीप उसी पर सारा समय बिता देगा।

महीप–भगवान् पर मेरा रत्तीभर भी विश्वास नहीं है, किन्तु आप सब पर विश्वास है।

मुखपात्री–जब हमारे भगवान् ही पर विश्वास नहीं तो हम जैसे भगवान् के सेवकों पर क्या विश्वास होगा ?

महीप–नहीं, परिहास नहीं कर रहा हूँ, स्वामीजी, मेरा बिलकुल विश्वास है, यदि हमारे साधु-महात्मा कोशिश करें, तो भगवान् जिस नैया को डुबाना चाहते हैं, वह पार लग जाय। बस अधिक नहीं, हर साल केवल २५ लाख स्त्रियों और २५ लाख पुरुषों को साधु बना लें।

मुखपात्री–हमने इस दृष्टि से तो कभी साधुओं के बारे में नहीं सोचा था। अब मैं समझता हूँ, इतनी भयंकर जन-वृद्धि हमारे देश के लिए काल है।

महीप–यही समझिए धर्मावतार, कि २००० ईसवी तक भारत में एक अरब आदमी हो जायंगे, आज से तिगुने से भी ज्यादा।

भगवानदास–इसका क्या कोई उपाय नहीं है ?

महीप–उपाय दो ही हैं, या तो सन्तान कम पैदा हो या लोग मरें ज्यादा;

सन्	उपज लाख पौंड	एकड़ (लाख)
१८७८	३८५	२
१९००	२०१३	.....
१९३९	३९७०	७.७६
१९४६	५५०५	७.५६
१९४७	५६१४	७.६
१९४८	५६९०	७.६

हमारे खरीदार हैं--इंगलैंड (३० करोड़ पौंड), यु० रा० अ० (३ क०), कनाडा (१.६३), आयर (१.५,) मध्यपूर्व (१.२५), आस्ट्रेलिया (१.१६), सोवियत (१ क०), दूसरे देश (१.७२ करोड़ पौंड)।

लेकिन, हमारे यहाँ हैजा, प्लेग, इन्फ्लुएंजा जैसे यमराज के सारे बड़े-बड़े वीरों ने कोशिश करके हार मान ली; जब पचास लाख हर साल बढ़ना ठहरा, तो साधारण मृत्यु के ऊपर से यदि तीस लाख हैजा-प्लेग के भी न्योछावर हो गए, तो उसमें कौन दिवाला निकलने वाला है ?

रामी–साधु-साधुनियों की तो महीप, तुमने एक नई उपयोगिता बतला दी ।

महीप–और मैं विधवा-विवाह का भी घोर विरोधी हूं ।

भगवानदास–शाबाश, महीप भाई, तुम धीरे-धीरे हमारे ऋषियों के रास्ते पर लौट रहे हो, उन्होंने कुछ सोचकर ही विधवा-विवाह का निषेध किया था ।

युधिष्ठिर–निषेध किया था, लेकिन हमारे देश के ३५ करोड़ में ८ ही करोड़ उसे मानते हैं, सब मानते तो कोई बात भी थी ।

भगवानदास–जोई माने सोई, धर्म के रास्ते पर यदि एक आदमी भी डटा रहे तो भी बहुत है ।

महीप–मैं तो चाहता हूँ,कि कानून बनाके अपने देश की सभी जातियों में विधवा-विवाह बंद कर दिया जाय । जिसका एक बार ब्याह हो गया, उसका फिर दुबारा ब्याह नहीं होना चाहिए और तरुण विधवाओं पर तो और भी कड़ाई होनी चाहिए ।

खोजीराम–तो तुम ५० से ऊपर की विधवा के ब्याह करने के विरोधी तो नहीं हो ?

महीप–नहीं, बिलकुल नहीं, ५० के बाद बंधन खोल देना चाहिए ।

मुखपात्रीजी ने मुस्कुराते हुए कहा–भाई, तुम बड़े मजाकी आदमी हो । लेकिन मुझे तो यह जन-वृद्धि एक भयंकर आफत-सी मुंह बाये सामने दिखाई पड़ रही है । आखिर हर साल ५० लाख ही मुंह बढ़ें, तो भी तो १० लाख टन अनाज की आवश्यकता बढ़ जायगी ।

महीप–जिसके लिए पचास लाख एकड़ हर साल नये खेत बढ़ाये जायं, तो किसी तरह काम चलेगा ।

मुखपात्री–लेकिन धरती तो एक अंगुल भी नहीं बढ़ रही है । पहाड़ों तक पर जितने जंगल थे, लोगों ने सब काट के खेत बना लिये ।

महीप–अंदाज लगाया गया है, यदि सभी प्रान्तों में जितनी जमीन परती पड़ी हुई है, सबका खेत बना लिया जाय, तो एक-चौथाई और खेत निकल आयगा । लेकिन यह निश्चित है कि जिस तेजी के साथ भगवानदासजी के भगवान् बच्चों को भेजने में मुस्तैदी दिखा रहे हैं, उससे यमराज के प्रयत्न की भांति आदमी का भी सारा प्रयत्न निष्फल होगा । खानेवालों की वृद्धि का मुकाबला अन्न नहीं कर

सकता। ऊपर से हमारे नेता "अधिक अन्न उपजाओ" के बारे में जैसी बच्चों की-सी बातें कह रहे हैं, उसे सुनकर तो देह में आग लग जाती है।

भगवानदास–नेताओं को चार सुनाये बिना तुम्हारे पेट में पानी नहीं पचेगा। वह बेचारे तो पूरी कोशिश कर रहे हैं। हमारे प्रधान-मंत्री ने २९ जून १९४९ को रेडियो पर कहा था कि १९५१ के बाद हम बाहर से अन्न मंगाना बंद कर देंगे।

महीप–भगवान भाई, तुम बहुत भोले हो, मैंने जब उस भाषण को पढ़ा, तो पसीना आने लगा। १९५१ तक एक करोड़ और नये मुंह आ गये अर्थात् प्रतिवर्ष २० लाख टन अनाज की आवश्यकता और बढ़ गई, उस साल का ४० लाख टन वाला टोटा तो रहेगा ही। अन्न बंद करने का मतलब होगा, ६० लाख टन अनाज का टोटा। एक करोड़ एकड़ नया खेत कहाँ से तैयार हो जायगा? यह तो सीधा लोगों को भूखा मारने की तैयारी है और आप इस पर खुश हो रहे है।

भगवानदास–नहीं, महीप जी, प्रधान मंत्री ने रास्ता भी बतलाया, कहा था कि लोगों को शकरकंद, आलू, तपियोका खूब खाना चाहिए। इस प्रकार सचमुच कई लाख टन अन्न का घाटा पूरा हो जायगा।

मुखपात्री–भगवानजी, महीप बाबू ठीक कह रहे हैं। जान पड़ता है, तुम्हें तपियोका ने भूल-भुलैया में डाल दिया।

महीप–इन्हीं को भूल-भुलैया में नहीं डाला है, स्वामीजी, नेहरूजी को भी किसी मेनन ने भूल-भुलैया में डाल दिया।

खोजीराम–मेनन का क्यों नाम लेते हो?

महीप–मेननों का नाम मैं बुरी नीयत से नहीं ले रहा हूँ। जहाँ कहीं भी हमारी नैया लड़खड़ाती है, वहाँ मेनन ही हस्तावलम्ब देकर उसे बचाते हैं। तपियोका मेननों के देश मालावार में होता है। नेहरूजी ने तपियोका को देखा होगा, इसम संदेह है, और चखा होगा, इसकी तो आशा नहीं करनी चाहिए।

भगवानदास–सचमुच भाई, मुझे तो यह सिद्धों की कोई जड़ी-बूटी मालूम हुई, समझने लगा खाने की देर है और हमारी सारी अन्न-समस्या हल हो जायगी। यह तपियोका क्या बला है?

महीप–अरारोट की तरह का एक मोटा लंबा-सा कंद है, समझ लीजिए शकरकंद की तरह धरती से निकलने वाला कुछ अधिक लंबा मोटा कंद है; लेकिन शकरकंद की तरह मीठा नहीं, उसमें थोड़ी कड़वाहट भी होती है। दिल्ली में वह डेढ़-दो रुपया सेर उसी समय बिक रहा था, जिस समय नेहरूजी रेडियो पर भाषण दे रहे थे। कितना सस्ता! इसे मालावार के गरीब लोग खाते हैं।

मुखपात्री–इसीलिए मैं कहने जा रहा था, शकरकंद, आलू और तपियोका

हमारे आहार की कमी को तब न पूरा करेंगे, यदि अभी तक लोग इन चीजों को फेंकते रहे हैं।

महीप—इसीलिए तो स्वामीजी, भाषण पढ़कर मेरी देह जल गई। इन लोगों के मस्तिष्क में आखिर कुछ पीली मज्जा है भी या नहीं।

युधिष्ठिर—अपार्लमेंटरी शब्द ! ऐसा कहने से महीप, तुम्हें क्या लाभ होता है ?

महीप—क्षमा माँगता हूं, लेकिन इतना तो आप देखेंगे, कि जिस आदमी ने अन्न की कमी को पूरा करने के लिए शकरकंद और तपियोका का नाम लिया, उसको रेडियो पर भाषण करने से पहले जान लेना चाहिए था, कि हमारे गाँव के गरीब शकरकंद और तपियोका खाते हैं या नहीं। इन्हीं को नहीं, कितनी ही जंगलों में पत्तियाँ, जड़ी-बूटियाँ मिलती हैं, जहर न होने पर लोग कड़वाहट की परवाह न करके उबाल के पानी फेंककर उन्हें भी खा जाते हैं। इन सबके खाने के बाद जो अनाज की कमी होती है, उसी के कुछ अंश को आप बाहर से अन्न मंगाकर दे रहे हैं। प्रधान मंत्री ने तो तपियोका तक ही कहकर रहने दिया, किन्तु उस समय के खाद्य-मंत्री तो "बड़े मियाँ तो बड़े मियाँ, छोटे मियाँ सुभानल्लाह।"

मुखपात्री—खाद्य-मंत्री ?

महीप—हाँ, खाद्य-मंत्री श्री जयरामदास दौलतराम ने सबसे पहले दहाड़ा था कि १९५१ से हम बाहर से अन्न मंगाना बंद कर देंगे। जब खरीदने के लिए पैसा नहीं रहेगा, तो स्वयं ही अन्न आना बंद हो जायगा। लेकिन, कैसे-कैसे आदमी चुन-चुनकर हमारे भाग्य की बागडोर पकड़ने के लिए बिठाये गए हैं !

रामी—आखिर क्या बात है ? जयरामदास दौलतरामजी तो बड़े सीधे-सादे आदमी हैं, उनसे चिढ़ क्यों ?

महीप—वह सीधे-सादे आदमी हैं ठीक, और हमें उनसे चिढ़ना नहीं है। हम तो अपने भाग्य के लिए झंख रहे हैं। श्रीमान् ने सागर विश्वविद्यालय के उत्सव में भाषण देते हुए कहा था—आपके जूट उत्पादन से हमें बड़ी खुशी है। हम इसकी कोशिश कर रहे हैं, कि यहाँ पर एक जूट-अनुसंधान-प्रतिष्ठान खोल दिया जाय।

भगवानदास—क्या कहा भाई महीप ? सागर में जूट ? उस पहाड़ी, सूखी जमीन में जूट कहाँ से होगा ? मैं सागर गया हूँ। मुझे विश्वास नहीं है कि उन्होंने ऐसा कहा होगा।

महीप—आपकी बात क्या, मुझे ही अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था, जब मैं उन शब्दों को सुन रहा था। वह दीक्षान्त-भाषण था। वहाँ पर मंत्रीजी

के मुंह से जब ये शब्द निकल रहे थे, तो किसी को अपने कानों पर विश्वास नहीं पड़ रहा था।

रामी–बहुत आश्चर्य है। जूट बंगाल में होता है और वहाँ भी ऐसी जगह जहाँ बरसात के पीछे तक छाती-भर पानी लगा रहता है। जूट के भीतर से लोग नाव ले जाते हैं। यह मंत्रीजी को क्या सूझी थी ?

युधिष्ठिर–खैरियत नहीं है। आहार की जैसी भयंकर समस्या है, उसको हल करने का काम ऐसे अनाड़ियों के हाथ में पड़ गया है। लेकिन, मैं समझता हूँ, यदि अनाड़ीपन को छोड़कर अकल से काम लिया जाय, तो हमारी समस्या हल हो सकती है।

महीप–और सुनिये, तत्कालीन गवर्नर-जनरल राजगोपालाचारी ने (६ जुलाई १९४९) को अपने रेडियो-भाषण में क्या कहा[1]–"यदि हम अधिक अन्न नहीं उपजायेंगे तो अकाल और विप्लव को निमंत्रण देंगे, जो जनसंख्या को कम कर देगा।...प्रकृति निष्ठुर लेखा परीक्षक है, जो स्वतः काम करती है। ...आजकल हम बाहर से कारखाने की चीजें तथा काफी परिमाण में खाद्य-सामग्री भी मंगा रहे हैं। इसका दाम चुकाने के लिए स्वयं अधिक माल उपजाकर बाहर भेजने की जगह हम इंगलैंड में युद्ध के समय जमा हुए बैंक के पैसे पर निर्भर करते हैं। लेकिन यह सदा चलता नहीं रहेगा...। हमारे मजूर-वर्ग का जीवनतल ऊंचा हो गया है; उसे ऊंचा जाना चाहिए था, और यह बहुत अच्छा हुआ, जो ऊपर गया। किसान और खेतिहर-ग्रामीण-मजूर, जो पहले रागी (मंड़वा), मक्की या बाजरे पर गुजारा करते थे और त्योहार या किसी विशेष समय ही चावल खाते थे, अब वह आमतौर से चावल खाते हैं और बिना उसे खाये उनको चैन नहीं आता।...इन सबके कारण चावल की हमारे यहाँ कमी है। हम आसानी से चावल की खेती को बढ़ा नहीं सकते, क्योंकि उसके लिए बाँध और नहर की आवश्यकता होगी, जिस पर भारी व्यय होगा और उन्हें तुरंत तैयार भी नहीं किया जा सकेगा; लेकिन बिना सिंचाई के प्रबंध के हम अधिक बाजरा, मटर या कंद पैदा कर सकते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि रागी, कोदो, बाजरा और मक्के के अधिक खाने का फैशन चलाया जाय। जब तक कि तथाकथित उच्चवर्ग वैसा न करे, तब तक फैशन चलाया नहीं जा सकता। वह जो-जो करते हैं, उसी की दूसरे नकल करते हैं। जेल जाने, अछूतों के साथ मिलने-जुलने, चर्खा कातने और गाँधी-टोपी पहनने की भांति बाजरा खाने को भी देशभक्ति-पूर्ण महाफैशन बनाना चाहिए, तभी हम आज के चावल के

१–'स्टेट्समैन' (कलकत्ता ८.७.४९)

भार को हल्का कर सकते हैं।" देखा न कितना ज्ञानपूर्ण उपदेश है ! अब गाँव के मजूर भी चावल खाये बिना नहीं रह रहे हैं।

खोजीराम–बाजरा-कोदो-मक्का तो अभी तक फेंका जाता था, और अब उनके खाने से टोटे के टनों की पूर्ति होगी।

मुखपात्री–लेकिन १९५१ में अनाज बाहर से मंगाना बंद करने की जो बात कही जा रही थी, उसे क्या समझ कर कह रहे थे ?

युधिष्ठिर–कुछ नहीं समझ के कह रहे थे। विलायत से लालबुझक्कड़ बुलाया गया। उसने लड़ाई के दिनों में इंगलैंड की आहार-व्यवस्था संभाली थी। वहाँ समस्या क्या थी ? अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया सब जगह से अनाज, माँस, मछली से भरे जहाज आ रहे थे। बस उसे कड़े राशन के साथ सबको बाँट देना था। उसी लालबुझक्कड़ ने बतला दिया, कि तीन काम करो तो हिंदुस्तान की आहार-समस्या हल हो जायगी।

भगवानदास–कौन से तीन काम लालबुझक्कड़ ने बतलाये ?

युधिष्ठिर–पहला काम यह कि आहार की समस्या को युद्धकाल के समान संकट कालीन समस्या घोषित कर दो।

महीप–आज सात वर्षों से जो अन्न के लिए हर गाँव हर घर में "त्राहि-त्राहि" मची हुई है, यह संकटकाल की घोषणा नहीं है ?

भगवानदास–और दूसरा उपाय क्या बतलाया ?

युधिष्ठिर–खाद्य-विभाग को केन्द्र से लेकर राज्यों तक एक संगटन में संगठित कर दो और इसके लिए केन्द्र, राज्य और सभी जगह एक-एक कमिश्नर नियुक्त कर दो। मध्यदेश के भूतपूर्व मंत्री श्री र० क० पाटिल केन्द्र के प्रथम खाद्य-कमिश्नर नियुक्त भी कर दिये गए।

महीप–अर्थात्, तीन-चार हजार मासिक पाने वाले कमिश्नर, और उससे कुछ कम पाने वाले सहायक-कमिश्नर, उपकमिश्नर और लिखनीचन्दों को बहाल कर दो; जैसा कि भारत-सरकार ने पिछले दो वर्षों में अपने हर विभाग में मोटी-मोटी तनख्वाह वालों को बढ़ा के किया !

भगवानदास–यह दोनों बातें तो सचमुच ही बेकार मालूम होती हैं–"सूत न कपास, जुलाहे से लट्ठम-लट्ठा" ! आखिर सेर-दो-सेर अनाज बढ़ाने की भी कोई बात कही या नहीं ?

युधिष्ठिर–बात यही कही, कि किसानों का स्वैच्छिक सहयोग प्राप्त करना चाहिए।

महीप–प्रधान-मंत्री ने यदि हिन्दी में भाषण दिया होता, तो स्वैच्छिक सहयोग

में अनुप्रास का माधुर्य अवश्य है। स्वैच्छिक सहयोग डंडे के बल पर अनाज जमा करके लिया जो जा रहा है। मैं अनाज संग्रह करने का विरोधी नहीं हूं। यदि किसान अपने खाने से अधिक अनाज बखार में रखता है, तो उसे ले लेना चाहिए, साथ ही यह भी देखना चाहिए, कि उसे चोरबाजार की दर से चीजों को खरीदना न पड़े। कोई किसान अनाज घर में नहीं रखेगा, यदि उसे माकूल दाम पर अपने काम की चीजें मिलती रहें और माकूल दाम पर उसका अनाज खरीदा जाता रहे। शहरों के चोरबाजारियों पर आपकी चलती नहीं और आप किसानों पर टूट पड़ते हैं।

मुखपात्री–सचमुच ही यह तो लालबुझक्कड़ वाली ही बात रही–"चक्की बाँध के पैर में कहुं हरिन न कूदा होय"। हम लोगों ने तो आज "अन्न ब्रह्म" के बारे में केवल निराशा ही निराशा की बात सुनी, लेकिन कहीं प्रकाश की एक किरण भी दिखलाई पड़ रही है, या साधुओं, हैजा, प्लेग और अकाल का ही भरोसा है।

महीप–प्रकाश की किरण का क्या टोटा–"बचने का दरिद्रता?" मई १९४९ को दिल्ली में भारत के खाद्य-मंत्री जुटे थे, जिस पर कलकत्ता के दैनिक "नेशन" (६-५-४९) ने लिखा था "व्याख्यानबाजी, श्लाघा और छूमंतरी योजनाएं! ..अत्यंत महंगे खाद्य-परामर्शदाता लार्ड बायड-ओर ने खाद्यमंत्रियों से कहा, कि १९५१ तक पर्याप्त खाद्य उपजा लेना बिलकुल ठीक है। यह छूमंतर वाला देश अगले दो सालों में उसे अच्छी तरह पूरा कर सकता है। कुछ समीक्षक कह रहे थे, ये योजनाएं जैसी तैयार की गई हैं, वह केवल जादू से ही पूरी की जा सकती हैं।....योजना बहुत सुन्दर है, दो वर्ष में घर के भीतर पर्याप्त अन्न, फिर बाहर से अनाज आना बंद, जीवन खर्च की कमी, कपास में देश की आत्म-निर्भरता।....खाद्यमंत्री लोग जुटे, बोले और बिखर गए। अब इधर भारत-सरकार के खाद्य-विभाग के पास बंबई और मध्यप्रदेश से अकाल की आतंकोत्पादक खबरें आ रही हैं। वहाँ अन्न का ही अभाव और फसल की ही पूरी तौर से बरबादी नहीं हुई है, बल्कि भूख और बीमारी से भारी संख्या में ढोर मर गए। बहुतेरे इलाकों में नर-नारी मुश्किल से एक जून के भोजन से जी रहे हैं। अकाल-अवस्था की इन खबरों को समाचार-पत्रों और समाचार-एजेंसियों ने दबा दिया है। ....लार्ड बायड-ओर बहुत भले आदमी हैं। क्या उन्होंने भारत की "शाँतिवादी" सरकार की प्रशंसा नहीं की? क्या उन्होंने सुझाव नहीं रखा, कि भारत को विश्व-सरकार की स्थापना में नेतृत्व करना चाहिए–यह लोगों का पेट भरने से कहीं अधिक महान् कार्य होगा।"

भगवानदास–यह पेट भरना कितनी बड़ी समस्या है? डेढ़-दो-रुपये सेर का तपियोका खाओ। खैर! और कोई भी पेट में भरने की चीज है?

महीप—है क्यों नहीं ! अभी पाँच हजार टन प्रतिदिन मछली मारी जाती थी, अब उसे दस हजार टन करने जा रहे हैं।

भगवानदास—राम ! राम ! महात्माजी के अनुयायी यह क्या करने जा रहे हैं ?

महीप—कुछ नहीं, सिर्फ अठारह लाख टन की जगह अब साल में छत्तीस लाख टन मछली मारी जायगी। अठारह लाख टन अन्न का घाटा तो पूरा होगा।

खोजीराम—यह भी कागजी योजना तो नहीं है ?

महीप—दो करोड़ रुपये की योजना बनी है। अनुसंधान-स्टेशन स्थापित हो रहे हैं। उथले, गहरे समुद्रों तक में मछवाही की जायगी, तालाब-नदी की तो बात ही क्या ?

युधिष्ठिर—अच्छा, आज अब यहीं तक रहें, "हरि अनंत हरि कथा अनंता" के समान ही पेट की भी माया है।[1]

1—Monthly Abstract of statistics (oct. 1950 P. I.) **के अनुसार १९४९ में जन्म प्रति सहस्र २६·८ और मृत्यु १६ थी, अर्थात्[1] प्रति वर्ष १ प्रति सैकड़ा के हिसाब से हमारी जनसंख्या बढ़ रही है। १९५० में जनसंख्या ३४,७३,४०,००० आंकी गई।**

१—उपज की अवस्था १९४९ और १९५० में निम्न प्रकार रही (वही पृ०८,९)

	चावल एकड़ (हजार)	टन (हजार)	गेहूं एकड़ (हजार)	टन (हजार)
१९४९	१,०९८७	१,९८,५६	२,४३,४८	४७४४
१९५०	१,१६६०	२,१९,१३	२,३६,२७	६११०

	चना (हजार)	टन	अन्य अन्न एकड़ (हजार)	टन (हजार)
१९४९	१,६९,७१	१,६९,७१	७,९४,३०	१,३८,६९
१९५०	२,०४,२७	२,०४,२७	७,९७,९३	१,३९,०९

१०

कृषि-सुधार

शाम के पाँच बज रहे थे । फिर गंगा-किनारे की उसी बड़ी हवेली की छत पर पंच लोग जमा हुए । स्वामी मुखपात्री के चेहरे को देखने ही से मालूम होता था, कि गोष्ठी उन्हें बहुत पसंद आई, और पहले दिन के अजनबीपन का अब कहीं पता नहीं था । आज बल्कि उन्होंने ही बात आरंभ की—मैं गोष्ठी के बारे में सुनकर कौतूहलवश यहाँ आया था । मैं जानता हूँ, कितने ही लोग मेरे यहाँ आने को पसंद नहीं करेंगे । इसे वे आवश्यकता से अधिक सांसारिकता समझते हैं । किंतु जब मुझे पता लगा, कि यहाँ इस गोष्ठी में सभी सत्य के खोजी हैं तो मैं आने को तैयार हो गया । महीप की कड़वी-मीठी बातें भी एकाधबार कुछ अमधुर-सी मालूम हुईं, लेकिन मैं समझ गया कि इस तरुण में भी बड़े निःस्वार्थभाव से सत्य की जिज्ञासा मौजूद है । यदि कभी वह गरम हो उठते हैं, तो इसका अर्थ किसी के प्रति द्वेष-भाव नहीं है, बल्कि खतरे से भरी परिस्थिति को देखकर भी रक्षकों की उपेक्षा उन्हें असह्य मालूम होती है । मैं बाहर की बातों में समय नहीं लेना चाहता । जिज्ञासा के कारण मैं कुछ अधिक बोल देता हूँ, नहीं तो मैं उसकी आवश्यकता नहीं समझता । जन-वृद्धि भयंकर गति से हो रही है, अन्न की समस्या का हल अभी तक दीख नहीं पड़ रहा है । मैं यही चाहता हूं कि आप सब अन्न ब्रह्म को प्रसन्न करने का कोई रास्ता निकालें ।

युधिष्ठिर—कोई नया रास्ता निकालने का सवाल नहीं है । रास्ते निकले हुए हैं । दूसरे देशों में कैसे लोगों ने इस समस्या को हल किया ? हमारे देश में सात मन एकड़ औसत तरीके से गेहूं होना बहुत समझा जाता है, शायद जिले का हिसाब लेने पर इतना भी नहीं पहुँचेगा ।—अर्थात् एक टन के लिए चार एकड़ की आवश्यकता है । चार एकड़ की पैदावार में पाँच आदमी किसी तरह खा सकते हैं । पाँच आदमी का आमतौर से परिवार होता है । आप गाँव में देखें तो मुश्किल से दस घर होंगे, जिनके पास चार एकड़ से अधिक जमीन होगी । उनके वे चारों एकड़ सात मन पैदा नहीं कर सकते । ९० फीसदी परिवार अपनी जमीन से पेट भरने के लिए अन्न नहीं पैदा करते ।

मुखपात्री—यह सच बात है, मैं अपने अनुभव से कहता हूँ । सौ में से तीस

घर तो ऐसे मिलेंगे, जिनके पास कोई खेत है ही नहीं, और साठ परिवार अपने खेत से पेट नहीं भर सकते । इस पर से हम हर गाँव में देखते हैं, कि आज से साठ बरस पहले जहाँ एक घर था, वहाँ पाँच[1] घर हो गए, और कितने के तो सात-सात आठ-आठ भी हो गए । जिन गाँवों में परती, ऊसर या जंगल था, उन्हें काट के कुछ खेत बना लिया गया, लोगों को कुछ आसरा मिला । लेकिन, जिन गावों में पिछली सदी के अंत तक सारे ऊसर या जंगल कटके आबाद हो चुके थे, उनकी हालत बहुत बुरी है । मुझे तो दिखाई पड़ता है, कि हमारे लोग दलदल में धँसते ही चले जा रहे हैं । सवाल है, हमारे जितने मुंह हैं, उनको अन्न कैसे दिया जाय ।

महीप–"जिन पेट दियो, तिन अन्न न दैहे ।"

मुखपात्री–तुम्हारे परिहास को मैं बुरा नहीं मान सकता । तुम भगवान् को नहीं मानते, तो मैं किसी को जबर्दस्ती भगवान् मनवाने की बात भी पसंद नहीं करता । अपनी-अपनी श्रद्धा होती है । तुम्हारा कहना है, भगवान् ने मुंह तो चीर दिया है, फिर खाना भी देंगे । लेकिन मैं समझता हूँ, भगवान् ने आदमी को बुद्धि और हाथ-पैर भी दिये हैं, इसलिए उसे स्वयं रास्ता निकालना चाहिए । युधिष्ठिर जी बतलायें कि कैसे इस वृद्धि को रोका जाय और कैसे खाना दिया जाय । बाढ़ आँखों के सामने ही बढ़ती आ रही है ।

भगवानदास–हाँ धर्मावतार ! कल की बात सुनकर मैं भी भयभीत हो चला । मेरे कोई संतान नहीं है, अभी मेरी पत्नी २४ बरस की है । माँ और सब लोग तंग कर रहे हैं, कहते हैं दूसरा ब्याह कर लो । और तो और, पत्नी भी कहती है कि निरवंश होना अच्छा नहीं है । लेकिन, कल की बात सुनकर मैंने अपने भाग्य को सराहा । मैं अब कोशिश करूँगा कि कोई संतान हो ही नहीं । पुत्र का क्या, किसी भी विना माँ-बाप के होनहार बच्चे को लेकर अपना बना लेंगे ।

खोजीराम–चिकित्सा-विज्ञान में ऐसे साधन मौजूद हैं, जिनसे संतान को रोका जा सकता है । इंगलैंड में पाँच साल तक गवेषणा करके राजकीय-कमीशन ने रिपोर्ट दी है, कि वहाँ संख्या की वृद्धि २.२ प्रतिशत ही है ।

भगवानदास–दो तो माँ-बाप ही हुए, उसका मतलब हुआ कि पाँच आदमी पर एक की वृद्धि, सो भी कितने सालों के बाद हुई है ?

खोजीराम–इस शताब्दी में इंगलैंड की जन-संख्या में बहुत कम वृद्धि हुई ह, वहाँ उसे बढ़ाने की कोशिश हो रही है । लेकिन, मैं यह इसलिए कहना चाहता था,

---

१–कलिम्पोङ् के एक साधारण परिवार प्राणधर परियार को ले लीजिये । उनके पाँच लड़के और दो लड़कियाँ थीं, आज पोते २१ और पोतियाँ १९ हैं । तीसरी ही पीढ़ी में दो से ४० हो गए ।

कि चूंकि वहाँ सभी साक्षर और शिक्षित हैं, अच्छे खाते-पीते हैं। यदि दो से चार बच्चे पैदा होते हैं, तो उनकी आमदनी प्रति-व्यक्ति कम हो जाती है, जिससे जीवन-तल को ऊपर नहीं रख सकते। इसीलिए वह प्रयत्न करते हैं, कि संतान सीमा से अधिक न होने पाये।

महीप—अर्थात् मनुष्य के सामने भगवान् की एक भी नहीं चलती। यदि मनुष्य साक्षर और शिक्षित हो जाय, उसके खाने-पीने का तल ऊँचा हो, तो वह भी अधिक संतान पसंद नहीं करेगा। बहुत हुआ तो एक लड़का और एक लड़की काफी समझेगा।

युधिष्ठिर—मैं समझता हूं कि अभी इतनी जनवृद्धि के बाद भी यदि अकल से काम लें, तो हम अच्छे खाने-पीने, रहन-सहन के जीवन-तल के साथ रह सकते हैं। और इस शताब्दी तक जितनी हमारी संख्या बढ़ सकती है, उसके लिए भी हम सभी चीजें पर्याप्त परिमाण में पैदा कर सकते हैं।

रामी—जहाँ तक मशीन की चीजों का संबंध है, उसके बारे में संदेह नहीं है। हम अपनी आवश्यकता से अधिक कपड़ा बना सकते हैं, कपास की उपज बढ़ाई जा सकती है और काम करने वालों की संख्या को भी। किंतु, अन्न की बड़ी समस्या रह जाती है।

युधिष्ठिर—अन्न की कमी का एक कारण तो यह है, कि खेतों की उपज दूसरे देशों से छठे-पाँचवें और चौथे ही हिस्से-भर है।

भगवानदास—अर्थात् जहाँ दूसरे ४२ मन गेहूं पैदा करते हैं, वहाँ हम सात मन औसत गेहूं खेत से घर लाते हैं। जहाँ दूसरे ३५ मन चावल पैदा करते हैं, वहाँ हमारी औसत पाँच मन की होती है। हमारे यहाँ भी औसतन ४००० पौंड अर्थात् ५० मन के करीब्र धान एक एकड़ में पैदा किया गया है।

युधिष्ठिर—दूसरे लोग जादू-मंतर नहीं करते। बस, खेती में खाद, पानी, जोताई और अच्छे बीज का प्रबन्ध करते हैं, साइंस (विज्ञान) की सहायता लेते हैं, हाथ और बुद्धि दोनों चलाते हैं। उसी का परिणाम है, कि हमसे पाँच-गुना से सात-गुना तक अन्न पैदा करते हैं। खाद्य-विभाग के सचिव पंजाबी ने कहा है, कि यदि हम केवल १० प्रतिशत पैदावार बढ़ा दें, तो हमारे ही नहीं बढ़ने वाले मुखों के लिए भी देश में अन्न पर्याप्त हो जायगा। यदि हम सिंचाई और खाद का इन्तजाम करें, तो पाँच-गुना अधिक अन्न पैदा हो सकता है, फिर अनाज का क्यों घाटा रहेगा?

रामी—क्या हमारे पास इन सब बातों के साधन हैं?

युधिष्ठिर—सारे साधन हैं, बल्कि यूरोप के देशों से अधिक हैं। हमारे यहाँ की प्रकृति हमारे प्रति उतनी कठोर नहीं है, जितनी यूरोप के अधिक भाग की।

वहाँ अक्तूबर से मार्च के अन्त तक कोई फ़सल नहीं हो सकती। बर्फ पड़ जाती है, जिससे खेत ढँक जाते हैं। जब बर्फ पिघलती है, तभी काम होता है। हमारे यहाँ तो हर खेत में तीन फसलें आसानी से हो सकती हैं। धान के खेत अगहन में काट लेने के बाद आषाढ़ तक छ महीने सूखे पड़े रहते हैं। क्या उन्हें जोतकर खाद दे सिंचाई करके हम दो फसल और नहीं पैदा कर सकते? जापान में बर्फ पड़ती है, तो भी बीच के थोड़े-से समय से फायदा उठाकर मैंने किसानों को धान के खेत में स्ट्राबरी और तरकारियाँ पैदा करते देखा है। हमारे यहाँ भी धान के खेतों में जाड़ों में कोई तरकारी बोई जा सकती है; फिर गर्मी में प्याज या चीना की खेती हो सकती है। जो धान के खेत नहीं हैं, जिनमें गेहूं-जौ बोया जाता है, उनमें तो पानी का प्रबन्ध होने पर प्रतिवर्ष पाँच फसल पैदा कर सकते हैं, हर हालत में अपनी फसल को आज से दुगुनी तो कर ही सकते हैं। और यदि दूसरे देशों के अनुसार ही हम भी पैदा करने लगें, तो आज से पाँच-गुना अधिक अन्न होगा। यदि तीन-गुना भी मान लें, तो फसल के दूने के हिसाब से छ-गुना अधिक पैदा कर सकते हैं।

भगवानदास–हमारे यहाँ खेती की भूमि कितनी है?

युधिष्ठिर–भूतपूर्व कांग्रेस सभापति श्री पट्टाभि सीतारामय्या के भाषण के अनुसार–(१) अन्न उपजाने वाली सारी भूमि १६ करोड़ एकड़ है, जिसमें (क) सिंचाई वाली ५ करोड़ और (ख) केवल राम-भरोसे अर्थात् वर्षा से फसल पैदा करने वाली भूमि १० करोड़ एकड़ है। (२) इसमें सिंचाई आदि की बहुविधि योजनाएं १५ वर्षों में २.७० करोड़ एकड़ और बढ़ा देंगी, जो कि तबकी बढ़ी जन-संख्या के लिए पर्याप्त होगी। दूसरी तरह से विचार करते हुए उन्होंने कहा–(१) जोती भूमि हमारे यहाँ प्रति-व्यक्ति .६ (२।५) एकड़ है। (२) कम-से-कम आवश्यक कलोरी प्रति-पुरुष प्रतिदिन १७५० चाहिए, जिसे करीब एक एकड़ की वार्षिक उपज से निकाला जा सकता है।

भगवानदास–तो निराश होने की आवश्यकता नहीं, जब कि हमारे पास प्राकृतिक साधन मौजूद हैं।

युधिष्ठिर–रामय्याजी ने यह भी बतलाया–मलेरिया के कारण हमारे पास दो लाख वर्गमील अथवा १२ करोड़ एकड़ भूमि बेकार पड़ी है।

भगवानदास–किस कोने में है यह जमीन, हमें तो गोचर के लिए भी भूमि दिखलाई नहीं पड़ती।

युधिष्ठिर–(१) पूर्वीघाट में गंजाम से विजगापटन तक के जिलों में ६०,००० वर्गमील भूमि पड़ी है, फिर (२) पश्चिमीघाट और (३) हिमालय की तराई में। इन जंगलों में ५० से १०० इंच तक वर्षा होती है, किन्तु मलेरिया के कारण वहाँ

प्रति-वर्गमील ५० से १०० व्यक्ति ही रहते हैं, जब कि सीतामढ़ी सबडिवीजन में १३०० प्रतिवर्गमील २८ साल पहले थे। हमें २५ या ३० करोड़ एकड़ खेत चाहिए, जिसमें १६ करोड़ एकड़ जोते मौजूद हैं; दामोदर आदि योजनाओं के १५ साल में पूरा होने पर २.७ करोड़ एकड़ और निकल आयंगे।

महीप—और तब तक सात करोड़ मुंह जो और बढ़ जायंगे ?

युधिष्ठिर—मैं डाक्टर रामैया की बात कह रहा हूँ। १८.७ करोड़ एकड़ भूमि तो पक्की ठहरी, मलेरिया-भूमि से १२ करोड़ एकड़ निकाले जा सकते हैं। ३०.७ करोड़ एकड़ खेत, खाने वाले ३० करोड़, प्रतिमुख एक एकड़। "लेखा-जोखा थाहें लड़का मरै काहे।"

भगवानदास—तो मामला फिर खटाई में क्यों ?

युधिष्ठिर—फसलों की संख्या दुगुनी करनी होगी, उपज तिगुनी और फिर बेकार जमीन को आबाद करना; सब मिलाकर हम आज से आठ-गुना अधिक अन्न पैदा कर सकते हैं।

भगवानदास—और पंजाबी ने केवल १० प्रतिशत उपज बढ़ाने से बेड़ा पार बतलाया था। यह भी तपियोका और लाल-बुझक्कड़ की बात तो नहीं है ?

महीप—नहीं, न लाल-बुझक्कड़ के बताये रास्ते से काम बनेगा और न तपियोका के खाने के आविष्कार को मान लेने से ही।

भगवानदास—लेकिन, यदि आज से सात-गुना अधिक अन्न पैदा कर सकें, तो अवश्य हम एक अरब मुखों को भी अन्न का टोटा नहीं होने देंगे। मैं समझता हूं, शिक्षा और दाने-कपड़े का प्रबन्ध हो जाय तो आदमी संतान के लिए हाहाकार नहीं करेगा। कैसी बेवकूफी है, कहते हैं संतान नहीं रहे तो नाम नहीं चलेगा ? लेकिन मैं ही आपके सामने हूँ, अपने परदादा का नाम नहीं जानता, न परदादी का, सात पीढ़ी की तो बात ही मत पूछिये।

रामी—यदि लिखा-पढ़ी रही, तो शायद सात पीढ़ीवाले दादा का नाम मालूम भी हो जाय, किन्तु दादी का तो कभी भी नहीं मालम हो सकता।

युधिष्ठिर—लेकिन सवाल है, कि सात-गुना अधिक अन्न कैसे पैदा किया जाय ?

महीप—हमारे प्रधानमंत्री और भूतपूर्व खाद्य-मंत्री श्री जयरामदास दोनों ने जब १९५१ से भारत की सीमा के भीतर अन्न का घुसना रोक देने की भीष्म-प्रतिज्ञा कर ली है, तो अन्न बढ़ाने का कोई उपाय तो सोचा ही होगा ?

भगवानदास—महीप भाई, तुम क्यों उन बेचारों के ऊपर हर वक्त दो वाण चलाने के लिए तैयार हो जाते हो ? अपनी शक्ति की सीमा होती है, वे भी अपनी शक्ति-भर कुछ करना चाहते हैं।

महीप—करना चाहते तो भगवान भाई, मुझे कभी दुख नहीं होता। अगर कहा होता कि १९५१ में दामोदर, कोसी, महानदी, कृष्णा, नर्मदा, भखरा के बाँध और नहर की विशाल योजनाएं पूरी हो जायंगी, बिजली घर-घर पहुंचने लगेगी, पानी करोड़ों एकड़ खेतों में बहने लगेगा, तो मैं कभी रुष्ट नहीं होता। इन छ योजनाओं की नहीं अगर तीन योजनाओं के बारे में भी कहा जाता, तो मुझे कुछ कहना नहीं था। मेरे देह में तो आग इसलिए लगी, कि जिस गति से कागजी कार्रवाई की जा रही है, उससे १९५१ तक एक में भी शतांश काम नहीं हो सकेगा और इस पर भी ये लोग अन्न की कमी को जबानी जमाखर्च से हटा देना चाहते हैं।

युधिष्ठिर—अन्न अधिक उपजाना, किसी लाल-बुझक्कड़ के महान् परामर्श से नहीं हो सकता। हमें कोशिश करनी है, कि धरती के भीतर जो गंगा बह रही है, उसे बिजली के ट्यूबवेल लगाकर किसानों के खेतों में पहुंचाया जावे। आज से सौ-पचास वर्ष पहले यह कड़ी समस्या हो सकती थी, जब कि कूंए से चुल्लू-चुल्लू-भर पानी उलीच कर खेत सींचे जाते थे। आज तो ६ नहीं १२ इंच मोटा पाइप धरती में गाड़ के बिजली लगा दीजिये, और दिन में बीस-बीस एकड़ जमीन सींच लीजिये। हर दो-दो सौ गज पर ऐसे ट्यूब भारत के बहुत-से भागों में लगाये जा सकते हैं, और हम धरती के भीतर बहती गंगा का उपयोग आसानी से कर सकते हैं।

भगवानदास—जहाँ पहाड़ हैं, जैसे सागर, दमोह वहाँ की सिंचाई की समस्या कैसे हल हो सकती है?

युधिष्ठिर—वहाँ तो और अच्छा पहाड़ी जमीन ऊँची-नीची होती है। हमारे देश में प्रायः सभी जगह वर्षा खूब होती है। हम वर्षा के पानी को नदियों की बाढ़ बनके समुद्र में क्यों जाने दें? ऊँची जगहों में पहाड़ियों को घेर-घेर के नाले-नदियों के लाये वर्षा के पानी को जमाकर बड़े-बड़े "समुन्दर" बना सकते हैं। ऊँचे होने की वजह से इनसे पनबिजली भी खूब बनाई जा सकती है, सिंचाई का अच्छा इन्तजाम हो सकता है।

भगवानदास—तब तो मारवाड़ के रेगिस्तान को छोड़ सभी जगह की समस्या हल कर सकते हैं।

युधिष्ठिर—मारवाड़ के रेगिस्तान में देखना होगा, कि हम उससे क्या लाभ उठा सकते हैं। लूनी नदी में परीक्षा हो रही है। कूंए यदि हजार फीट पर भी पानी दे सकें, तो हमें खोदने से बाज नहीं आना चाहिए। पानी जितना जमा कर सकें, नदियों के पानी को घेरके सरोवर बनाके सिंचाई करें, सब करना होगा। साथ ही, रूस में रेगिस्तानों में वृक्ष लगाने के सफल तजर्बे हुए हैं—रेगिस्तानमें हर तरह

के नहीं खास तरह के ही वृक्ष लग सकते हैं, जिनका कम पानी में गुजारा हो सकता है। लगे हुए वृक्ष कुछ पानी को सोखकर अपने पास जमा करेंगे। तरबूज, खरबूज यहां तक कि अंगूर को भी रूसवालों ने अपने रेगिस्तानों में सफलतापूर्वक खाइयों में उगाया है। हम भी उसे कर सकते हैं। फिर क्या मालूम है, हमारे रेगिस्तानों के भीतर कहीं कोई खनिज न निकल आये। तुर्कमानिया (सोवियत्) में रेगिस्तान में गंधक की बहुत बड़ी खान निकल आई है।

मुखपात्री–सिंचाई का हमारे यहां सुभीता है। नहर-बांध बनाने के लिए हमारे पास करोड़ों हाथ हैं, इञ्जीनियरों के थोड़ा-सा ध्यान देने पर हमें दुःख नहीं होगा। सीमेंट बाहर से मंगाने की आवश्यकता नहीं। मशीन और विशेषज्ञ हम स्वयं बना और तैयार कर सकते हैं, और कितने ही बाहर से अपनी चाय-जूट के बदले मंगा सकते हैं।

युधिष्ठिर–खाद भी हमारे यहां खनिज-तत्वों से यथेच्छ बनाई जा सकती है। जिप्सम् से रासायनिक खाद बनाने का एक कारखाना सिंदरी[1] (बिहार) में तैयार किया गया है। इसे पश्चिमी-पंजाब के जिप्सम् के भरोसे तैयार करने का निश्चय हुआ था, अब वह जिप्सम् पाकिस्तान में चला गया। लक्ष्मण-झूला (देहरादून) के पास भी जिप्सम् है। चाहिए था, कि फैक्टरी वहीं खोली जाती, किंतु एकदम विदेशी कंपनियों के हाथ में खेलना घाटे का सौदा होता है। अस्तु, रासायनिक खाद के हमारे पास बहुत जखीरे देश के भिन्न-भिन्न भागों में मौजूद हैं। हम सिंदरी जैसे अनेक कारखाने खोल सकते हैं।

महीप–और हम अपने गोबर को भी तो खाद के लिए इस्तेमाल कर सकते है। खाद्य को क्षेत्र और उपज दोनों बढ़ाना है, हम पिछड़े हुए हैं।[2]

युधिष्ठिर–गोबर का जलाना तो भारी पाप है, जैसे किसी समय पुआल को जलाने पर गांव के लोग बड़ा पाप समझते थे–गोमाता के मुख के आहार को जलाना सचमुच ही पाप की बात थी। गोबर वनस्पति-माता के मुख का आहार है, उसे खेत में न डाल के जलाना हत्यारे का काम है। ईंधन के लिए पत्थर के कोयले और जहां सुलभ हो लकड़ी का उपयोग करना चाहिए।

मुखपात्री–खाद की समस्या आसानी से हल हो जायगी, इसका तो अंदाज मालूम हो रहा है।

युधिष्ठिर–और बहुत भारी परिमाण में खाद तो वायुमंडल में मौजूद नाइट्रोजन (नत्रजन) है। हम करोड़ों मन नत्रित (शोरा) वायुमंडल से निकाल सकते हैं, जैसा कि जर्मनों ने किया।

भगवानदास–खाद और सिंचाई के बाद अच्छे बीज की समस्या बहुत मुश्किल

नहीं है। किसानों को दिखलाकर समझा देना है, फिर वह अपने अच्छे बीज का इस्तेमाल करेंगे।

महीप—नये-नये तरह के बीज तैयार किए गए हैं। रूस के कृषि-विशेषज्ञों न ऐसा गेहूँ तैयार किया है, जो एक साल का बोया तीन साल तक काटा जा सकता है। ऐसे बीज हैं, कि पौधों को गेरवी आदि बीमारी नहीं लगती और उपज भी अधिक होती है।

युधिष्ठिर—हां, कृषि को विज्ञान के साथ जोड़ना पड़ेगा। विज्ञान ने बहुत-सी बातें निकाली हैं, जिन्हें हमारे किसान निरक्षरता और साधनहीनता के कारण नहीं इस्तेमाल कर सकते। हरेक किसान को सात साल की शिक्षा मिलनी चाहिए और उसे आवश्यक कृषि-विज्ञान का परिचय प्राप्त करना चाहिए।

मुखपात्री—जब सिंचाई नहरों और ट्यूबवेलों से होगी, बांध बांध के कितने ही छोटे-मोटे समुंदर तैयार किये जायंगे, तो वहां भी विज्ञान के बिना काम नहीं चलेगा।

युधिष्ठिर—विज्ञान अब जीवन के हर अंश में आना चाहता है। जिन देशों ने इस तत्व को स्वीकार कर लिया, वे सुखी हैं। लेकिन विज्ञान का कृषि में उपयोग आजकल के किसानों के सहारे नहीं हो सकता। चार एकड़ और दो एकड़ के खेतों में—सो भी दसियों जगह बिखरे हुए—कैसे कृषि-विज्ञान का उपयोग हो सकता है? कैसे वहां नवीन हथियारों का इस्तेमाल हो सकता है? इसलिए हमें खेती को साझे की खेती में परिणत करना होगा।

भगवानदास—साझे की खेती लोग पसंद करेंगे?

युधिष्ठिर—यदि आप उपज को सात-आठ गुना अधिक पैदा करके दिखा दें, तो वह साझे की खेती के पक्षपाती हो जायंगे। उन्हें हवाई-सहयोग की बात कहके सहयोगी नहीं बना सकते। यदि आप ऐसा करके दिखलायें, जिसमें आमदनी सात-आठ गुनी हो जाय, तो किसान उसे खुशी से स्वीकार करेंगे। ईख से किसानों ने बहुत फायदा देखा। चीनी की मिलों के बनने के बाद अधिक दाम में ईख बिक जाती है, इसलिए सब छोड़-छाड़कर किसानों ने ईख पर ध्यान दिया। लाभ दिखाइये, फिर किसानों से बढ़कर नई बातों को माननेवाला कोई नहीं होगा। यदि उन्हें मालूम हुआ, कि साझे की खेती से नफा है, तो वह बड़ी खुशी से उसे स्वीकार कर लेंगे।

भगवानदास—साझे की खेती से किसान भड़केंगे जरूर, और आप लेक्चर के भरोसे उन्हें अपने मत में नहीं ला सकते। साझे की खेती जहां शुरू की जाय, सरकार को चाहिए कि कृषि-मशीन, (ट्रेक्टर आदि), सिंचाई-पम्प तथा दूसरी

चीजों को सबसे पहले वहां वालों को दिया जाय, ताकि लोगों को दिखलाया जा सके कि साझे की खेती में अधिक लाभ है। साझे की खेती में मेंड़ों को तोड़ दिया जायगा। बड़े-बड़े खेतों की सूरत में चकबंदी कर दी जायगी। वैज्ञानिक कहते हैं, कि हमारी मेंड़ों को हटा देने पर चूहे आदि जानवर जितना अन्न बरबाद करते हैं, उससे चौथाई अन्न बचाया जा सकता है। फिर साझे की खेती में मेंड़ का झगड़ा नहीं रहेगा, न खेत के लिये लड़ाइयां चलने पायंगी।

भगवानदास–लेकिन साझे की खेती में मजूरी कैसे मिलेगी? खेत के छोटे जमींदारों की क्या हालत होगी?

युधिष्ठिर–मजूरी काम के मुताबिक मिलेगी। हरेक काम का एक नाप रखना होगा। जो नाप के बराबर काम कर दे, उसे एक दिन गिनना चाहिए, यदि दूना कर दे तो एक ही दिन में दो दिन की हाजिरी करनी चाहिए और नाप का आधा काम करने वाले की हाजिरी आधा दिन मानी जाय।

मुखपात्री–यह साफ हो गया। जो अच्छा काम करेगा, उसे अच्छा पैसा मिलेगा, जो कम करेगा उसे कम।

युधिष्ठिर–और छोटे जमींदारों या खेत के जोतने वाले मालिकों को आज की आमदनी पर खेती के खर्च को काटके उतना वार्षिक दे देने पर छोटे-मोटे जमींदार भी नाराज नहीं होंगे।

महीप–यदि सौ में एकाध नाराज हों तो उनकी नाराजगी की परवाह नहीं करनी होगी।

युधिष्ठिर–खेती को हम यदि साझे की कर देते हैं, तो उसमें विज्ञान और कृषि के नवीनतम हथियारों का इस्तेमाल अच्छी तरह कर सकते हैं, फिर उपज के आज से दस गुनी बढ़ जाने में कोई संदेह नहीं है। साथ ही खाली बैठे दिनों के लिए गांव-गांव में छोटे-मोटे गृह-उद्योग कायम कर दिये जा सकते हैं, जिनमें सस्ती बिजली के भी सहायक हो जाने पर ग्रामोद्योग चमक उठेगा।

मुखपात्री–कल तो मैं निराश हो गया था। समझता था, अन्न और जन-वृद्धि की समस्या देश को डुबाकर रहेगी। लेकिन, आज मालूम हुआ, कि निराश होने की आवश्यकता नहीं है।

युधिष्ठिर–कमर बांध के खड़े हो जाने की आवश्यकता है। आगे सब हो जायगा। फिर जन-बृद्धि हमारे लिए डर की बात नहीं रहेगी। जितने ही नये मुख पैदा होंगे उससे दूने हाथ भी तो साथ आयेंगे? वह सयाने होकर देश का धन बढ़ायेंगे।

भगवानदास–यदि उन्होंने भी ऐसे ही आँख मूंद रखा, और कुछ करना नहीं चाहा ?

युधिष्ठिर–तो लाल भवानी आके रक्षकों की भक्षक बन जायगी ।–जानते हैं न, चीन में लाल भवानी आ गई और वहाँ साल भर में ही अन्न समस्या भी हल कर ली गई। अन्न की सारी समस्या हमारे हाथों से हल होने लायक है, लेकिन थोथे लम्बे-चौड़े लेक्चर से कुछ होने-हवाने वाला नहीं है । गांव की कृषि और गृहोद्योग के द्वारा आर्थिक-व्यवस्था को बेहतर बनाना होगा और जैसा कि आज बतलाया, ऐसे तरीके हैं, और हमारे हाथ में हैं, जिनसे उपज बढ़ सकती है । अमेरिका के हाथ में अपना गला देकर दान में अनाज पाने की आशा दुराशा मात्र है। यदि लड़ाई के लिये तुला अमेरिका इस साल २० लाख टन अनाज दे भी दे, तो अगले साल, १९५३, १९५४ में क्या करेंगे, जब कि दस लाख अन्न खानेवाले प्रतिवर्ष नये मुंह हमारे देश में बढ़ते जा रहे हैं।

११

सर्वोदय और रामराज्य

गंगा-किनारे छत पर आज छओं पंच विराजमान थे। जान पड़ता है, भगवानदास और मुखपात्रीजी ने निश्चय कर लिया था, कि आज भारतवर्ष के सुझाये रास्ते से अपनी आधुनिक समस्याओं को हल करने के बारे में बात करनी होगी। भगवानदासजी ने ही बात आरंभ की—हमारे आगे बढ़ने में बहुत-सी रुकावटें हैं। हम दूसरे-दूसरे हल सोच रहे हैं, लेकिन हमारे भारत ने भी अपने लम्बे इतिहास में समस्याओं के हल करने का उपाय सोचा है। मैं यह नहीं कहता, कि भारत के दिमाग की सोची बात होने से हम "तातस्य कपोयमिति ब्रुवाणाः क्षारं जलं कापुरुषाः पिवन्ति", का अनुकरण करें।

खोजीराम—अपने पूर्वजों की सोची हुई, अपनी जन्मभूमि में बरती हुई बात का ध्यान सबसे पहले करना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं। महीपजी को भी इसमें कोई उजुर नहीं होगा।

महीप—नहीं, बिलकुल नहीं। अपने मे प्रेम किसको नहीं होता ?

भगवानदास—गांधीवाद-परम-निष्णात श्री शंकररावदेव ने १३ मार्च १९४९ ई० को महाराष्ट्र के प्रमुख कांग्रेस-कार्यकर्ताओं के कैम्प में भाषण देते हुए कहा था—"स्वतन्त्रता के बाद हमने सामाजिक-आर्थिक समानता की स्थापना की शपथ ली थी। कांग्रेसजनों का कर्तव्य है कि अपनी नैतिक आवश्यकताओं से अधिक संपत्ति न जमा करने की प्रतिज्ञा करें, और किसी रूप या आकार में जाति-पांति को न स्वीकार करें, न मानें। इस प्रकार अपनी शपथ पर दृढ़ रहते हुए हम काफी नैतिक-बल जमा कर सकते हैं, जिससे एक नई अहिंसात्मक सामाजिक व्यवस्था—सर्वोदय-समाज—स्थापित कर सकते हैं।" सर्वोदय-समाज का अर्थ ही है, सबकी उन्नति करने वाला समाज।

खोजीराम—सबके उदय की इच्छा रखना बुरा नहीं है, लेकिन कितनों के स्वार्थ दूसरों से टकराते हैं, इसलिए व्यवहार में, मैं समझता हूं, सर्वोदय-समाज नहीं, बल्कि बुद्ध का बहुजनोदय समाज ही ठीक उतर सकता है।

मुखपात्री—आस्तिक होते हुए भी मैं बुद्ध का सम्मान करता हूं। आपने बुद्ध का नाम लेकर भगवानदास का मुंह बन्द करना चाहा है।

खोजीराम—बिलकुल नहीं, बुद्ध ने अपने शिष्यों को दुनिया में जाने के लिए सर्वप्रथम उपदेश हमारी इसी पुरानी काशी नगरी के छोर पर अवस्थित सारनाथ में दिया था—"चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजन-हिताय बहुजन-सुखाय।" बुद्ध बहुजनहिताय-बहुजनसुखाय की जगह सर्वजन-हिताय, सर्वजन-सुखाय कह सकते थे; लेकिन वह जानते थे, कि चोरों-डाकुओं के हित-सुख की बात कहने से बहुजनों का अनिष्ट होगा। उन्होंने "प्रियं ब्रूयात्" के धोखे में असत्य का बोलना पसंद नहीं किया।

भगवानदास—क्या यह अच्छा नहीं है, कि हम मनुष्यमात्र में आर्थिक और सामाजिक समानता स्थापित करें?

खोजीराम—मनुष्यमात्र में आर्थिक समानता स्थापित करना और सर्वोदय बिलकुल एक दूसरे से उलटे हैं। समानता स्थापित करने के लिए उन लोगों के साथ अप्रिय आचरण करना होगा, जो कि आर्थिक और सामाजिक विषमता के पोषक हैं, बल्कि जिनका अस्तित्व ही उसी विषमता पर कायम है। सर्वोदय से बहुजनोदय अधिक व्यावहारिक और ईमानदारी की बात मालूम पड़ती है।

भगवानदास—तो सत्य-अहिंसा के पुजारियों की नीयत पर आपको विश्वास नहीं है? आप समझते हैं, कि वह धोखा देने के लिए ऐसा कहते हैं?

खोजीराम—मैं उनकी नीयत पर कभी आक्षेप नहीं करता, लेकिन नीयत का समझना मुश्किल है। हां, यह कह सकता हूं, कि वह जिस शब्द को इस्तेमाल कर रहे हैं, उसके अर्थ को समझ नहीं पाते। शायद सर्वोदय से उनका अर्थ भी बहुजनोदय ही है, क्योंकि चोर की चांदनी का समर्थन वह कभी नहीं करेंगे। आप कह सकते हैं, चोर की चोरी छुड़ाने के लिए उसे जेल भेजकर हम उसका भी हित चाहते हैं।

महीप—आप कह सकते हैं कि हम दूसरे जन्म में उनका हित चाहते हैं, उनके परलोक को बनाना चाहते हैं, किन्तु इससे आप सिर्फ बात को गोल-मटोल रखना चाहते हैं।

भगवानदास—इसे गोल-मटोल क्यों कहते हैं? "सर्वोदय के मौलिक सिद्धान्त का आधार है—सभी आदमी समान हैं। मानव के पारस्परिक सम्बन्ध प्रेम द्वारा नियन्त्रित होने चाहिएं, न कि शक्ति द्वारा। इस सिद्धान्त का राजनीतिक क्षेत्र में प्रयोग करने पर वह जनतन्त्रता का रूप लेता है। आप सर्वोदय समाज को केवल जनतान्त्रिक संस्थाओं द्वारा ही स्थापित कर सकते हैं, क्योंकि जनतन्त्रता मनुष्य के बीच समानता के ही सिद्धान्त को नहीं स्वीकार करती, बल्कि यह भी विश्वास करती है, कि वास्तविक मानव-प्रगति की ओर ले जाने वाला कोई भी परिवर्तन सिर्फ शिक्षा और मनुष्य के परिवर्तन द्वारा ही लाया जा सकता है।" शंकरदेवजी

ने बात को कितना स्पष्ट कर दिया ? इस पर भी आप गोल-मटोल होने की बात करते हैं ।

महीप—भगवान भाई, वहीं पर आपके ऋषि शंकरदेवजी ने यह भी स्वीकार किया है—"दूसरे आदमियों के साथ हमारा जीवन और सम्बन्ध प्रेम की अपेक्षा लोभ द्वारा, सेवा की अपेक्षा अधिकतर शक्ति द्वारा प्रभावित होता है । विशेष कर देश, सम्प्रदाय, जाति या वर्ग के नाम से हम मनुष्य-मनुष्य के भीतर दीवार खड़ी कर देते हैं और फिर लड़ते हैं ।" मनुष्य किन बातों से अधिक प्रभावित होता है, उसे खुले तौर से कहके शंकरदेव फिर गोल-मटोल बोलने लगते हैं—"हम भूल जाते हैं, कि मनुष्य इन सबसे ऊपर है, यह सब मनुष्य के लिए है, किन्तु मनुष्य उनके लिए नहीं है ।" थोड़ा अँधेरे में जाकर फिर वह प्रकाश में आते हैं—"मनुष्य के शक्ति-सम्बन्धी लोभ और राग के भेद उसे सब तरह के शोषण और उत्पीड़न की ओर ले जाते हैं, जिसका परिणाम हिंसात्मक संघर्ष और युद्ध होते हैं ।"

भगवानदास—आप अँधेरे और प्रकाश की बात क्यों करते हैं ? मनुष्य की निर्बलताओं के बारे में शंकरदेवजी ने जो बतलाया है, उससे कौन इनकार कर सकता है ? निर्बलताओं को हटाना होगा, तभी मनुष्य ऊपर उठेगा ।

महीप—फिर आप वेदान्त और रहस्यवाद की बात करने लगे । आर्थिक और सामाजिक समानता को आखिर आप कैसे लाना चाहते हैं । उपदेश और हृदय-परिवर्तन से लाना चाहते हैं, यह कहना आसान है । केवल सर्वोदयवादियों ने ही यह नुस्खा नहीं बतलाया, पहले भी बुद्ध, महावीर, ईसा जैसे महान् पुरुष हुए हैं, उन्होंने अपने उपदेश और आचरण द्वारा कितना हृदय-परिवर्तन कर पाया ? पिछले ढाई हजार वर्षों के प्रयत्न से तो कोई अन्तर नहीं आया । यदि आप ढाई हजार वर्ष और भी प्रयत्न करना चाहते हैं, तो कीजिये; हम आपका रास्ता नहीं छेंकते, लेकिन ढाई हजार वर्ष के प्रयत्न से जिस नुस्खे को सफल होते नहीं देखा जा सका, उस पर और विश्वास करना अनेक पीढ़ियों को भयंकर उत्पीड़न और शोषण की चक्की में पिसने के लिए छोड़ देना है । यह मत समझिये कि गांधीजी के महान् आदर्श को हम सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते । मानव-मात्र में बन्धुता गांधीजी का सिद्धान्त है, जिसे हम मानते हैं । जाति-पांत के भेद-भाव से हम भी उसी तरह नफरत करते हैं, जैसे गांधीजी । गांधीजी उत्पीड़ित मानवता का कल्याण चाहते थे, इसका अर्थ यह नहीं कि वह किसी को हानि पहुंचाना चाहते थे। गांधीजी चाहे "सर्व" शब्द का प्रयोग करते हों, किन्तु उनके सामने सदा बहुजन का हित रहता था, नहीं तो खूनी दरिन्दे के मुंह से उसका शिकार क्यों छीनते ?

मुखपात्री—आप हमारे भारत के विचारकों की बात की कदर नहीं करना चाहते ।

महीप—स्वामीजी, मैं आपकी बातों को बहुत ध्यान से सुनूंगा, चाहे वह मेरी राय के अनुकूल हों या प्रतिकूल। यह इसलिए, कि मैं समझता हूं, आपने हमारे पुराने विचारकों के विचारों को गम्भीरतापूर्वक पढ़ा है, समझने की कोशिश की है, और आचरण करने का भी खयाल रखा है। लेकिन, जब जीवन-भर पश्चिमी-पत्तल का जूठन चाटने वाले आजकल के शिक्षित अपने पूर्वजों की बातों को अटकल-पच्चू जहां-तहां से सुनके व्यासगद्दी पर बैठकर धर्मोपदेश करने लगते हैं, तो शरीर में आग लग जाती है, केवल उनकी अनधिकार-चेष्टा देखकर—"कौआ चले हंस की चाल।"

खोजीराम—बड़ा व्यंग कर रहे हो महीपजी, आखिर कौन ऐसा अनधिकारी ऋषियों की गद्दी पर जा बैठा?

महीप—मत पूछिये डाक्टर साहब, आप यदि डाक्टरी-विद्या, शल्य-चिकित्सा के बारे में कुछ कहें, तो हम उसे बहुत ध्यान से सुनेंगे, क्योंकि हम जानते हैं, आपने इस विद्या का अवगाहन किया है। लखनऊ विश्व-विद्यालय के राजनीति के अध्यापक डाक्टर शर्मा अपने विषय पर और उसकी भाषा में कुछ कहते, तो वह हमारे सुनने की बात थी; किन्तु ७ जनवरी १९४९ ई० को नागपुर में राजनीति-विज्ञान-सम्मेलन में बोलते हुए आपने अपने को समझ लिया कि हम साक्षात् व्यासजी अथवा नैमिषारण्य की पौराणिक सूतजी के गद्दी के अधिकारी हैं। भारतीय संविधान की स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुता पर संतुष्ट हो आप कर्तव्य, सम्मान और दिव्यता को भी सृजनात्मक नागरिकता के लिए अत्यन्त आवश्यक बतलाते हैं। डाक्टर साहब ने इन तीनों शब्दों के लिए ड्यूटी (कर्तव्य या धर्म), डिग्निटी (सम्मान), डिविनिटी (दिव्यता) जैसे अनुप्रासबद्ध शब्दों का प्रयोग किया है। जीवन-भर राजनीति-विज्ञान को पढ़ाते हुए डाक्टर शर्मा, जान पड़ता है, अब चौथे-पन की ड्यूटी की बात सोच रहे हैं, इसलिए इस बात पर खेद प्रकट करते हैं कि हमारे संविधान-निर्माता अपने पूर्वजों की संस्कृति के मौलिक सिद्धान्तों की अवहेलना कर रहे हैं। उनके विचार में ऐसा प्रयत्न न सन्तोषजनक हो सकता है न चिर-स्थायी। वह सुझाव देते हैं कि हमारा नया संविधान यदि सारतः गांधीवादी दर्शन को लिये होता, तो अच्छा होता।

रामी—सचमुच ही श्रीमती शर्मा को सजग कर देना चाहिए, डाक्टर साहब तो वानप्रस्थ या संन्यास की तैयारी में हैं। विधान को वह पृथ्वी से ऊपर उठाना चाहते हैं।

महीप—हां, क्योंकि वह गांधीजी के दर्शन को रामराज्य का आदर्श बतलाते हुए उसे अव्यावहारिक उटोपिया नहीं मानते। उनका कहना है—यह पूर्ण सामाजिक दर्शन है, जो कि भारतीय-सभ्यता के आदर्श की कसौटी पर बहुत बार कसके स्थापित

किया गया है । डाक्टर साहब का कहना है कि यदि हमारे नेताओं में हिम्मत, दूरंदेशी और निश्चय करने की शक्ति हो, तो हमारी उलझी हुई बहुसंख्यक समस्याओं का सन्तोषजनक हल निकल आ सकता है ।

खोजीराम–शाबाश डाक्टर साहब, शर्मा वंश का आदर्श तो जरूर आपने हमारे सामने रखा, चाहे वैज्ञानिक डाक्टरों के वंश से भले ही बहुत दूर चले गए हों । गांधीजी का नाम कितनों को उबार रहा है, फिर आप नाम-प्रताप से क्यों वंचित रहें ?

भगवानदास–रामराज्य गांधीजी का दर्शन है और रामराज्य ही सर्वोदय है, जिससे मानवमात्र की समानता अभीष्ट है ।

महीप–और डाक्टर साहब श्रीमुख से कह रहे हैं, कि यह हमारी सारी उलझी गुत्थियों के सुलझाने की रामबाण औषधि है । तो फिर हमारा नेतृत्व क्यों नहीं ऐसी औषधि दोनों हाथों लेकर सिर पर चढ़ाता ? अथवा हिम्मत, दूरंदेशी और दृढ़-निश्चय का अभाव होने पर उन्हें चाहिए कि गुत्थियों को सुलझाने के लिए बहुत महँगे अंग्रेज या अमेरिकन परामर्शदाताओ को छोड़, डाक्टर साहब की शरण में जायं, सारा भार उन्हें सौंप के अलग हो जायं । लखनऊ की राजनीति-शास्त्र की गद्दी से उठकर जो व्यास की गद्दी पर बैठ सकता है, उसके लिए नेताओं की गद्दी संभालना भार नहीं होगा ।

रामी–हमने तो रामायण में पढ़ा था, "दैविक दैहिक भौतिक तापा । रामराज्य काहू नहिं व्यापा ।।" उधर पुराने रामायण की कथाओं में पढ़ा था, कि एक शूद्र ने केवल यह अपराध किया था, कि उसने भगवान् की तपस्या कर ली, जिस पर राम ने जाकर उसका सिर काट दिया । कहीं ऐसा रामराज्य आज मत चला आये, नहीं तो अम्बेडकर और जगजीवनराम को तो पहले से ही कोई उपाय कर लेना होगा, नहीं तो खैरियत नहीं । लेकिन हमारे डाक्टर साहब कौन से रामराज्य को मानते हैं ?

महीप–"एक ऐसा राज्य जिसमें प्रत्येक नागरिक अपनी उन्नति और सुख के लिए पूर्णतम अवकाश और अवसर पाये ।"

खोजीराम–आदमी-आदमी में भेदभाव नहीं, किसी के स्वार्थ में बाधा डालने की आवश्यकता नहीं, सबको निराबाध अपनी उन्नति और सुख के लिए मौका दिया जा रहा है । घास को भी पूरा अवकाश दिया जा रहा है, और घोड़े को भी । घर-वाले को कहा जा रहा है, "जागते रहना", और चोर को "जा चुरा"; क्योंकि हरेक नागरिक को जो पूर्णतम अवकाश और अवसर देना है ।

महीप–डाक्टर शर्मा गांधीजी की दुहाई देते हैं, फिर भीष्म, शुक्र और कौटिल्य

जैसे राजनीति-धुरंधरों के बतलाये रास्ते का निर्देश करते हैं। वह बतलाना चाहते हैं, कि इतिहास की भौतिक-व्याख्या एक एकांगी धारणा, अथवा दुराग्रह मात्र है। राज्य के क्रिया-कलाप को मनुष्य के भौतिक संतोष तक ही सीमित मानने को वह बुरा मानते हैं, और चाहते हैं कि राज्य मनुष्य को आध्यात्मिक तत्त्व के साक्षात्कार कराने में भी सहायक हो—अर्थात् अब सरकार को ८४ हजार ऋषियों की तपो-भूमि नैमिषारण्य जैसे सैकड़ों पावनस्थान भारत के प्रत्येक भाग में स्थापित करने होंगे, जिसमें कि नागरिकों को अध्यात्म-तत्त्व का साक्षात्कार हो। उनका कहना है—जो राज्य इन बातों की उपेक्षा करता है, वह अपने लक्ष्यभूत कर्तव्य से पतित हो जाता है; क्योंकि मनुष्य केवल घुमंतू, मिलंतू और काम-करन्तू भूखा पशु नहीं है, "वह केवल मुंह और पेट नहीं है, वह कुछ और भी है।"

मुखपात्री—सचमुच ही शर्मा अब हम लोगों की रोजी पर हाथ मारना चाहता है!

खोजीराम—बुरा तो नहीं है, यदि शर्मा को स्वामीजी के आसन पर बैठा दिया जाय और स्वामीजी को उनके आसन पर। मैं समझता हूँ, स्वामीजी भीष्म, शुक्र और कौटिल्य की बातें जितनी स्पष्टता तथा ईमानदारी से विद्यार्थियों को पढ़ा सकेंगे, उससे विद्यार्थियों को शर्मा का वियोग असह्य नहीं होगा।

युधिष्ठिर—सच कह रहे हो। शर्मा ने बहुत मुंह और पेट की बात अब तक की होगी, उसका प्रायश्चित भी हो जायगा।

भगवानदास—शर्मा की बातें हमारे लिए नई तो नहीं होतीं, यदि वह भीष्म, शुक्र, कौटिल्य के पास में ले जाकर हमें छोड़ आते, किंतु राजनीति-विज्ञान-सम्मेलन कोई हरिकीर्त्तन-सम्मेलन तो नहीं है। उन्होंने कुछ अपने विषय की भी तो बात बतलाई होगी?

महीप—अपने विषय की बात नहीं बतलाई, ऐसा तो नहीं कह सकते, लेकिन अब वह जान पड़ता है, साधन-चतुष्टय-संपन्न हैं और केवल अध्यात्म-तत्त्व का साक्षात्कार ही उनका लक्ष्य रह गया है—"धर्म (ड्यूटी) सम्मान (डिग्निटी) द्वारा दिव्यता (डिविनिटी) की ओर ले जाता है।"

रामी—यहां न केवल अध्यात्मिकता ही कूट-कूट कर भरी है, बल्कि अनुप्रास की भी गजब की छटा है।

महीप—वाण भी तो शर्मा ही के वंश में पैदा हुए थे। और सुनिए—"मनुष्य पूंजीपति के हाथँ का हथियार मात्र या कम्युनिस्ट का जांगरू मात्र नहीं है।" कितनी समदर्शिता है। पूंजीपति और कम्युनिस्ट—किसीके लिए जरा भी पक्षपात नहीं है—"उसके जीवन का एक दैवी उद्देश्य है। वह उस उद्देश्य को उसी क्षण पूरा कर सकता है, जब कि वह अपनी सत्ता की चेतना का बोध कर ले। वह मानवजाति

के सम्मान के गर्भ में स्रोत-रूप है, जिसके भीतर से सदा मानववाद की धारा बहती रहेगी, यदि वह सिर्फ यह जान ले, कि उसकी आत्मा सर्वोच्च शक्ति, सर्वश्रेष्ठ सृष्टि है।"

खोजीराम–सचमुच ही शर्मा को इस कांग्रेस का सभापति बनाके लोगों ने भूल कर दी। उन्हें हृषीकेश के स्वामी शिवानन्द की गद्दी पर बैठाना चाहिए था।

मुखपात्री–वह क्या बैठेगा, जिसे यह भी ज्ञान नहीं कि आत्मा सृष्टि नहीं अमर है।

महीप–रामराज्य पर राजनीतिक-सम्मेलन के सभापति को खूब विस्तार के साथ बोलना चाहिए था। शर्माजी के उपदेशानुसार रामराज्य राज्य-संबंधी गांधीवादी विचारधारा है। वह यह भी बतलाते हैं, कि गांधीजी भारतवर्ष में रामराज्य की स्थापना करना चाहते थे–"इस शब्द का अर्थ अधिकांश लोग ठीक से समझते हैं, किंतु कुछ थोड़े लोग जान-बूझकर इसकी उल्टी व्याख्या करते हैं।" इन थोड़े लोगों पर शर्माजी ने कई लात लगाये हैं। रामराज्य के शब्दार्थ को बतलाते हुए डाक्टर शर्मा का उपदेश है–"रामराज्य ऐसे प्रकार का राज्य है, जो परंपरा के अनुसार अयोध्या के राजा राम के शासन-काल में प्रचलित था, जिसमें सभी नागरिक सुखी और समृद्ध थे। उस राज्य की व्याख्या राम ने स्वयं लक्ष्मण से की है–'लोक में धर्म, अर्थ और काम ही समृद्धि के साधन हैं, जिनमें अर्थ और काम धर्म के साधन हैं।" इस प्रकार धर्म रामराज्य की जान है। और धर्म का रूप क्या था, इसको यदि परम्परा द्वारा सुने गए अयोध्या के रामराज्य के संबंध में जानना हो, तो इसके लिए शम्बूक शुद्र और राम के खड्ग की बात याद कर लीजिये।

रामी–शर्मा और शंकरदेवजी में किसकी व्याख्या प्रामाणिक मानी जाय?

महीप–अपनी-अपनी श्रद्धा की बात है। शर्माजी शम्बूक के वधवाली परम्परा के माननेवाले जीव हैं, ब्राह्मण-क्षत्री-लाला के सनातन रामराज्य की रक्षा का भार उनके ऊपर आ पड़ा है। शंकरदेव बेचारे गांधी-परम्परा के समर्थक हैं, इसलिए आर्थिक-सामाजिक विषमता और जाति-पांत के भेद-भाव को फूटी-आँखों भी देखना नहीं चाहते। शंकरदेव जनतंत्रता को मानते हैं, लेकिन चौथेपन में धर्म के अंधभक्त शर्माजी तीन कौड़ी के मोल पर भी जनतंत्रता को हाथ से छूने के लिए तैयार नहीं हैं।

मुखपात्री–भाई, रामराज्य की तो संतों-महात्माओं में चर्चा बहुत होती रहती हैं, किंतु जो व्याख्या यहां मैंने सुनी, उससे अच्छी व्याख्या तो और जगह सुनी जा सकती है। लेकिन जिन समस्याओं पर आप सब विचार कर रहे हैं, उनमें से एक का भी समाधान इससे नहीं होगा। अन्न का सवाल रामराज्य की रटन से पूरा

नहीं हो सकता, जन-वृद्धि के सवाल को रोकना होता, तो रामराज्य के जप से उसे हो जाना चाहिए था। मुझे तो समझ में आता है, कि नाहक बेजगह "राम-राज्य", "आत्मसाक्षात्कार" आदि की रट लगाई जा रही है।

युधिष्ठिर—सच पूछिए तो रामराज्य में न जनतन्त्रता का कहीं नाम था और न सर्वोदय का। जान पड़ता है, राजाओं और उनके पिट्ठुओं ने राजतन्त्री शासन की महिमा बढ़ाने के लिए यह कल्पना की, जिसके चक्कर में उत्पीड़ित जनता के परम मित्र गांधीजी भी पड़ गए, और आज कितने ही उनके ईमानदार अनुयायी भी उसी की रटन में हैं। आज के कितने ही स्वार्थी जीव जैसे गांधी का नाम ले अपना काम साध रहे हैं, वैसे ही असली औषधि से ध्यान हटाने के लिए लोगों ने रामराज्य की महिमा गानी शुरू की है। रामराज्य कभी व्यावहारिक न था और न रहेगा।

भगवानदास—लेकिन यदि सबकी भलाई वाले, अथवा आपके विचारानुसार बहुजन के हित-सुख के लिए जो राज्य-व्यवस्था हो, उसे रामराज्य कहा जाय, तो क्या हरज ?

महीप—यदि झूठ कहने में कोई हरज नहीं है, तो कहा जाय।

भगवानदास—झूठ क्यों ?

महीप—क्योंकि अपने समय में इसका जो अर्थ समझा जाता था, उससे उलटा अर्थ निकालने की कोशिश करनी पड़ेगी।

रामी—लेकिन कहा तो गया है—"उलटा नाम जपै जग जाना। वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना ॥"

युधिष्ठिर—अब समय बीत चुका है, और राम की महिमा राम भी नहीं गा सकते, तो रामराज्य की महिमा हम क्या गा सकेंगे ? इतना अवश्य है कि राम-राज्य से हमारी राजनीतिक गुत्थियों के सुलझने की कोई आशा नहीं हो सकती, वह जनतन्त्रता नहीं एकतंत्रता पर आधारित था, बहुजन के हित-सुख के लिए नहीं, बल्कि मुट्ठी-भर लोगों के हित-सुख के लिए था। सर्वोदय वालों से हमें इतना ही कहना है, कि "सर्व" शब्द में बहुत निकृष्ट स्वार्थों के फूलने-फलने का मौका देना उनके आदर्श को गिरा देगा।

१२

जनतंत्रता

भगवानदास ने कहा—महीप भाई ! वैसे तो बहुत "छी मानुस" "छी मानुस" किया करते हो, लेकिन दुनिया के लोगों की राय भी तो देखनी चाहिए ।

महीप—दुनिया के लोगों की कौनसी राय देखी है, भगवान भाई, जिसके लिए आज आपने बड़ा सन्तोष प्रगट करते हुए यह कहा ?

भगवानदास—हमारी राजदूता विजयलक्ष्मीजी ने अमेरिका में बतलाया, कि भारतवर्ष जनतान्त्रिक जगत् में एक बड़ी शक्ति लेकर अवतीर्ण हुआ है । अमेरिका के लोगों ने उनके वचन का बड़ा स्वागत किया ।

महीप—बड़े स्वागत का प्रमाण तो यही है, कि हमारे यहां के पत्रों में सब जगह यह समाचार छपा है ।

भगवानदास—हमारे यहां क्यों अमेरिका के तीस-तीस पेजों के और रोज चालीस-चालीस लाख छपने वाले पत्रों में भी यह बातें छपी होंगी ।

महीप—छपी होंगी इसका क्या प्रमाण ? हमारे अखबारों को स्वयं चाहे पसंद हो या न हो, समाचार-एजेन्सी रूटर और पीटिआई जो भी बाहर से तार भेज दें, उसे छापना पड़ता है ।

भगवानदास—छापना क्यों पड़ता है ? क्या पत्र-सम्पादक सम्पादकीय कुर्सी पर बैठकर अपने कर्तव्य को भूल जायंगे ?

रामी—कर्तव्य को भूलना आसान है, किन्तु पेट को भूलना नहीं । जान पड़ता है भगवान भाई, आप पत्रों को पढ़ते-भर ही हैं, यह नहीं जानते कि उनकी कुञ्जी किसके पास है ।

भगवानदास—अपने बनारस के "आज", "संसार", "सन्मार्ग" तीनों अखबारों को हम मंगाते हैं । धर्म की दृष्टि से हमारी अधिक सहानुभूति "सन्मार्ग" के प्रति है, लेकिन "आज" और "संसार" में भी हम बड़ी निर्भीकता के साथ देश-हित की बातें छपती देखते हैं ।

महीप—यह भी जानते हैं, कि यह या इनके भाई-बन्द प्रयाग, कानपुर, लखनऊ, दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई आदि के जितने बड़े-बड़े दैनिक हैं, सब करोड़पतियों के हाथ में हैं । आज एक अच्छा दैनिक-पत्र निकालने के लिए कम-से-कम दस लाख

रुपया चाहिए। भला दैनिकपत्र को करोड़पति छोड़कर दूसरा कैसे निकाल सकता है ? फिर सिर्फ एक पत्र निकालने से अधिक खर्च पड़ता है । अब तो एक-एक मालिक के एक-एक दर्जन दैनिक-साप्ताहिक निकलते चले जा रहे हैं ।

रामी–एक-एक दर्जन ?

महीप–एक-एक दर्जन ही समझिए । बिड़ला के दिल्ली, प्रयाग और पटना से तीन अंग्रेजी और तीन हिन्दी के दैनिक निकल रहे हैं । "विश्वमित्र" कलकत्ता पटना, कानपुर, दिल्ली, बम्बई से निकल रहा हैं । छोटे-मोटे मिलाकर बिड़ला के एक दर्जन पत्र होंगे । दालमिया और गोयनका ने भी कई पत्र निकाले हैं ।

मुखपात्री–देश के स्वतन्त्र होने का यह लाभ तो है ? कहाँ एक पत्र निकालना मुश्किल था, और कहां "विश्वमित्र" का पाँच-पाँच स्थानों से निकलना ।

भगवानदास–करपात्रीजी महाराज की कृपा से हम लोगों को "सन्मार्ग" मिला है, जो कलकत्ता, बनारस और दिल्ली तीनों जगहों से निकल रहा है । वैसे दुनिया देखने से तो जान पड़ता है, वह रसातल जा रही है, किन्तु "सन्मार्ग" को देखकर मन हरा हो जाता है ।

महीप–"सन्मार्ग" को हम बुरा नहीं कहते । कई पत्रों से वह अच्छा है और विविध भांति के समाचार भी देता है । हमें तो कलकतिया "सन्मार्ग" को आठ बड़े-बड़े पृष्ठों में छपा देखकर बहुत सन्तोष हुआ । जैसा वह पुराण-पन्थी है, वैसी उसकी छपाई-सफाई नहीं है । उसकी अनुदारता या क्रांति-विरोध की शिकायत करते हैं, किंतु यह निश्चय जानिये, यदि क्रांति अखबारों के भरोसे होती, तो उसका सभी जगह दीवाला निकलता । जनतंत्रता की जिम्मेदारी यदि पत्रों पर होती, अथवा बड़ी-बड़ी संख्या में छपने वाले पत्र अपनी जन-प्रियता के प्रमाण होते, तो इंगलैंड में मजूर-पार्टी वाले किसी चुनाव को नहीं जीत पाते, क्योंकि वहां ९० फी सदी पत्र विरोधी टोरियों के हाथ में हैं ।

भगवानदास–यदि जनप्रिय न होते, तो इतनी संख्या में छपते क्यों ?

महीप–बिड़ला के पत्र ऐसे ही समाचारों और विचारों को छापेंगे, जिन पर उनके मालिक की अलिखित छाप है । मान लो, कोई दूसरा टुटपूंजिया आदमी अस्सी या नब्बे हजार किसी तरह जमा करके एक गरम पत्र निकालता है, तो क्या लोग बिड़ला के पत्र को छोड़कर उसके पत्र को लेंगे ? गरम विचारवाला पत्र भी अपने छओं पृष्ठों के सभी कालमों में गरम विचार ही नहीं भर सकता, उसे तरह-तरह की खबरें भी देनी पड़ेंगी; जिनमें करोड़पतियों की समाचार-एजेंसियों के ठण्ढे विचार भी आयेंगे । कुछ बेठंडी बातें तो आप बिड़ला के पत्रों में भी पायेंगे । वहां भी मर्यादा के भीतर किसी गरम लेखक की भी कोई चीज छप जाती है ।

जहां बड़ी पूंजी और बड़े साधनों से निकलने वाले पत्र अच्छे वेतनवाले सम्पादक और संवाददाता रख सकते हैं, उनकी बांह समाचार जुटाने में बहुत दूर तक पहुँच सकती हैं, वहां टुटपूंजिया पत्र इधर-उधर की बासी-जूठी खबरों को नमक-मिर्च लगाकर छापेगा और भरसक मुफ्त में लेखों को लेने की कोशिश करेगा।

युधिष्ठिर—अर्थात् सब काम मांग-जांच के करेगा और घाटा बर्दाश्त करने की शक्ति नहीं रखेगा, इसलिए उसकी टांग सदा लड़खड़ाती रहेगी। फिर ग्राहक बेचारे ऐसे पत्र पर क्यों विश्वास करेंगे ? कोई धर्म कमाने के लिए तो दैनिक पत्र नहीं पढ़ता। सभी उसमें ताजी खबरों और देश-विदेश की बातों को देखना चाहते हैं।

रामी—आजकल तो पत्र पढ़ना अमल-सा हो गया है। शहर में रहते हुए सवेरे यदि पत्र नहीं मिलता, तो आदमी की वही हालत होती है, जो अफीम बिना अफीमची की।

भगवानदास—पत्र और विमान मोहिनी के अवतार हैं।

खोजीराम—मुश्किल यही है कि दोनों पुरुषवाची। विष्णु ने पुरुष होकर स्त्री का रूप लिया था; हो सकता है, इन दोनों ने पहले जन्म में स्त्री होकर अब पुरुष का जन्म लिया हो। और भगवान भाई का कहना भी ठीक है, यदि ये मोहिनी अवतार न होते, तो करपात्री महाराज जैसे महान् विरक्त पुरुष कैसे इन पर मुग्ध हो जाते ? उनके करों से तीन-तीन पत्र "सन्मार्ग" के नाम पर निकल रहे हैं। उनकी चरण-धूलि अब विमानों को छोड़कर और किसी को नहीं मिल रही है। हमारे बूढ़े सनातन धर्म ने कितने नवीनतम भाव को स्वीकार किया है।

महीप—इसलिए समाचार-पत्रों का आकार-प्रकार और ग्राहक-संख्या जनप्रियता का प्रमाण नहीं है, और न वह जनतंत्रता के वाहन हैं। मैं तो कहूंगा, वह प्रकाश फैलाने के लिए नहीं, बल्कि अंधकार से दुनिया को ढांकने के लिए जन्मे हैं। लोगों को सचमुच समाचार-पत्र पढ़ने का अमल हो गया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद तो समाचार-पत्रों को ऐसे लोगों के हाथों में भी देखते हैं, जो कभी दो पैसा भी अखबार के लिए नहीं खर्च करते थे।

रामी—और अब छ पैसा दो आना खरचते हैं। दूसरा जमाना होता, तो रोज दो आने का अखबार लेके पढ़ना कितना भारी मालूम होता। "अमृतपत्रिका" भी तो दो आने की निकली है ?

महीप—लेकिन मैं चाहता हूँ, उसके आठ पृष्ठों में "अमृतबाजार-पत्रिका" या "स्टेट्समैन" के बराबर पाठ्य-सामग्री हो। यदि उतनी पाठ्य-सामग्री दे,

तो मैं समझता हूँ, हिन्दी अखबारों को वह ऐसा रास्ता दिखलावे, जिससे वह पाठ्य-सामग्री देने में अंग्रेजी पत्रों के कान काटते ।

मुखपात्री–अंग्रेजी पत्रों के तुम भी विरोधी हो महीप बाबू ?

महीप–मुझे अपने देश में अब अंग्रेजी में पत्रों को निकलते देखकर लज्जा आती है ।

युधिष्ठिर–ठीक कहते हो महीप, किसी भी स्वतन्त्र देश में नहीं देखा जाता, कि विदेशी भाषा में सबसे अच्छे पत्र निकलते हों । अंग्रेजों की गुलामी के चिह्न तब तक नहीं मिटेंगे, जब तक अंग्रेजी में पत्र निकलेंगे । मैं चाहता हूं, हिन्दी के पत्र ही पढ़े जायं, किन्तु क्या किया जाय ? छ पैसे के हिन्दी पत्रों में उसकी एक-चौथाई भी पाठ्य-सामग्री नहीं रहती, जितनी आठ पैसे के अंग्रेजी अखबारों में । "अमृत-पत्रिका" पृष्ठों और दाम में अंग्रेजी पत्र के बराबर आठ पृष्ठ का होने पर भी उसकी एक-तिहाई सामग्री भी नहीं देती, जितनी अंग्रेजी पत्रों में होती है ।

भगवानदास–जब हिन्दी पत्रों में कागज पूरा लगाते हैं, तब तो चाहिए कि उतनी ही सामग्री भी दें ।

महीप–हमारे पत्रों में अंग्रेजी पत्रों से कम पाठ्य-सामग्री होने का एक कारण पृष्ठों की कमी भी है, जिसे पत्रिका ने हल कर दिया । दूसरा कारण है, हमारा हिन्दी का टाइप अंग्रेजी जैसा छोटे आकार का नहीं है और छोटे आकार का बनाने पर टाइप टूटता बहुत है । हमारे एक मित्र की सलाह से ऊपर नीचे की मात्राओं को बगल में रखके प्रयाग के एक फौंड्री वाले ने नये टाइप बनाये हैं ।

खोजीराम–अगल-बगल में मात्रा रखके ? तब तो पढ़ने में नये अक्षर-से मालूम होंगे ।

महीप–किसी मात्रा या अक्षर के आकार में हेर-फेर नहीं किया गया, केवल ऊपर-नीचे की जगह उन्हें अगल-बगल में रख दिया गया है । दो पृष्ठ तक पढ़ने में कुछ नवीनता-सी मालूम होगी । पीछे लोग मजे से उसे उसी तरह पढ़ेंगे, जैसे ऊपर-नीचे मात्रा वाले टाइप को ।

भगवानदास–यह तो एक नये प्रकार के टाइप बनाने की परीक्षा हुई । उससे पाठ्य-सामग्री में क्या अन्तर होगा ?

महीप–बहुत अन्तर होगा । अगल-बगल में मात्रा लगा देने से जो टाइप बारह प्वाइन्ट की जगह घेरता था, वह सात प्वाइन्ट में आ जाता है । अथवा यह कहिये "नया समाज" की बारह पंक्तियां जितना कागज घेरती हैं, वह अब सात पंक्तियों के बराबर घेरेंगी । साथ ही ऊपर-नीचे मात्रा न लटकने के कारण टाइप टूटेंगे नहीं, क्योंकि सभी टाइप अपने बल पर खड़े रहेंगे । तीन प्वाइन्ट का

ढला टाइप भी देखने में छ प्वाइन्ट के बराबर बड़ा मालूम होगा। मात्राओं के टूटने का भी डर नहीं रहेगा। फिर अंग्रेजी पत्रों में जो छोटे-से-छोटे टाइप लगते हैं, उनसे भी छोटा टाइप किन्तु देखने में दूना मोटा हमारे पास हो जायगा।

भगवानदास—देखने में दूना कैसे मालूम होगा ?

महीप—अंग्रेजी के टाइप चाहे अपने बल पर भले ही खड़े हों, किन्तु हमारी मात्राओं की तरह ("एफ", "जे") ऊपर और नीचे बढ़े रहते हैं, जिससे जगह अधिक घेरते और छोटा करने पर पतले बन जाते हैं। हमारे नये टाइप में यह दोष नहीं है।

भगवानदास—यदि ऐसा है, तो उस टाइप में कुछ चीजें छपकर आनी चाहिएं।

महीप—युधिष्ठिर भाई की एक पुस्तक उसी में छपने जा रही है। देखने में उतने मोटे टाइप में छपी पुस्तक दो सौ पृष्ठ की जगह एक सौ बीस पृष्ठ में छपके मिलेगी। इस तरह के छोटे टाइपों के प्रयोग से हमारे पत्र चाहें, तो अंग्रेजी दैनिकों से ज्यादा पाठ्य-सामग्री हिन्दी पाठकों को दे सकते हैं।

रामी—तब तो निश्चय ही लोग ऐसे पत्र को लेंगे, क्योंकि उसमें तिगुनी पाठ्य-सामग्री मिलेगी।

महीप—लेकिन फिर पत्र-मालिकों को सिर-दर्द होने लगेगा, जब सुनेंगे कि सम्पादकीय विभाग में दूने आदमियों की जरूरत पड़ेगी, नौकरों की तनख्वाह पर दूना खर्चा करना होगा।

युधिष्ठिर—लेकिन कभी तो हमें यह करना ही होगा,हिन्दी-भाषा-भाषी राज्यों से अंग्रेजी के पत्रों को खतम करना होगा।

रामी—समाचार-पत्र अमल के कारण ही अनिवार्य से हो गए हैं और पाठकों में उनके लेने में केवल गरम और नरम विचारों का ही ध्यान नहीं रहता, बल्कि विविध-सामग्री देश-देशान्तर की खबरें आदि उन्हें आकृष्ट करती हैं। जो लोग समाचार-पत्रों की जनतंत्रता का राग अलापते हैं, वह यह जानते हुए भी ऐसा करते हैं, कि जनतन्त्रता नाम की चीज करोड़पति मालिकों के समाचार-पत्रों से कोसों दूर है। रहा भारत के प्रचंड जनतान्त्रिक होने का ढिंढोरा, उसे वाम-पंथियों से पूछ लीजिए। मैं समझता हूं, उन्हें इसकी शिकायत न होनी चाहिए, यदि सद्योजाता जनतन्त्रता उन्हें भारी मालूम होती है।

महीप—भारी क्यों मालूम होनी चाहिए ? प्रेम का आरंभ है—"इब्तिदाये इश्क है, रोता है क्यों ?" जनतन्त्रता हमेशा रही है और हमेशा नहीं भी रही है। जिस वर्ग के हाथ में राज-शक्ति रही, उसके लिए जनतन्त्रता, हर प्रकार की स्वतन्त्रता मौजूद है, और प्रतिद्वन्द्वी शक्ति-भ्रष्ट के लिए जनतन्त्रता, विचार-

स्वतन्त्रता, लेखन-स्वतन्त्रता, भाषण-स्वतन्त्रता कभी नसीब नहीं रही। जिस वक्त अमेरिका के लोग स्वतन्त्रता की बात करते हैं, उस वक्त समझ लेते हैं, कि उनके देशवासियों में आठ में से एक नीग्रो अस्तित्व ही नहीं रखते। अमेरिका में नीग्रो को साधारण होटल में ठहरने का अधिकार नहीं। दक्षिणी रियासतों में श्वेताङ्गों के घर में भी आगे से घुसने का उन्हें अधिकार नहीं, उन्हें पीछे के द्वार से प्रवेश करना होता है; तो भी जनतंत्रता पर बड़े-बड़े व्याख्यान झाड़ने वाला कोई अमेरिकन खयाल भी नहीं करता, कि वह वस्तु-स्थिति का अपलाप कर रहा है।

भगवानदास—अच्छा भारत में जनतंत्रता नहीं है, तो क्या रूस में जनतन्त्रता है ?

महीप—मैंने तो पहले ही कह दिया, कि प्रभुताशाली वर्ग के लिए जनतन्त्रता और उससे सम्बन्धित सारी स्वतन्त्रताएं हैं। जैसे करोड़पतियों के लिए शासित देशों में उनके प्रतिद्वन्द्वियों के लिये जनतन्त्रता के उपभोग का कोई अवसर नहीं मिल सकता, उसी प्रकार रूस में भी जिनके लिए शासन हो रहा है, उन मजदूरों, किसानों और बुद्धिजीवी कमकरों के लिए जनतन्त्रता है, और उनके हित के विरोधियों के लिए विचार-भाषण-लेखन की स्वतन्त्रता नहीं हो सकती। दोनों जगह स्वतन्त्रता की अपनी-अपनी सीमाएं हैं। रूस की जनतन्त्रता की सीमा के भीतर ९५ प्रतिशत से ऊपर जनता आती है, दूसरे देशों में ५, ६ प्रतिशत का आना भी मुश्किल है।

खोजीराम—हमारे यहां भी अंग्रेजों के समय बहुत जनतन्त्रता की बातें होती थीं, किंतु अब तो जान पड़ता है, बोलने वाले भी बदल गए हैं। ग्राम-पंचायतों का हमारे प्रांत में वयस्क मताधिकार के अनुसार जो चुनाव हुआ है, उसके परिणाम को देखकर तो अब हमारे बड़े-बड़े लोग घबड़ा उठे हैं। सोच रहे हैं, इक्कीस साल से अधिक उम्र के स्त्री-पुरुषों को वोट का अधिकार दे देने पर तो सब गुड़-गोबर कर देंगे।

महीप—इसी से मालूम होता है, कि उनका जनतन्त्रता से कितना प्रेम है। संविधान में राष्ट्रपति तथा राज्यपालों के चुनावों या उनको दिये अधिकारों को देखने से मालूम होगा, कि जनतंत्रता से हमारे कर्णधार कितने दूर हैं। उसमें हर जगह उन्हें भय-ही-भय दिखलाई देता है।

मुखपात्री—क्या आपको भय नहीं मालूम होता ?

महीप—मुझे क्यों मालूम होगा, मैं बहुजन के हित, बहुजन के राज्य का पक्षपाती हूँ। जो अल्पजन के हित और राज्य के पोषक हैं, उनको जरूर घबराहट होगी। लेकिन "दमड़ी की हंडिया गई, और कुत्ते की जात पहचानी गई"; हमारे जनतन्त्रता के बड़े-बड़े समर्थकों की कलई तो खुल गई। अब तो मालूम होता

है, वह जनतन्त्रता के नाम से ब्राह्मण-क्षत्री-लालों का राज्य कायम रखना चाहते हैं।

युधिष्ठिर–ब्राह्मण-क्षत्री-लालों की बात किसी दूसरे समय के लिए छोड़ कर आज अपने को जनतन्त्रता तक ही सीमित रखिये।

महीप–हमारे देश में जनतन्त्रता कहां है, जिसका ढिंढोरा हमारी राजदूता पातालपुरी में पीट रही हैं। यहां अभी भी बड़े-बड़े नेता जाति-पांत के शिकार हैं। जाति की लकीर को जरा भी हटाना नहीं चाहते। जाति-पांत, यह न समझिये, केवल निराकार ऊँच-नीच भावना का ही समर्थन करती है। नहीं, इस जाति-पांत ने धन का बँटवारा ऐसा कर दिया है, कि बड़ी जातियों के पास, जिनकी संख्या पच्चीस सैकड़ा से अधिक नहीं है, सारी रियासतें, जमींदारियां ही नहीं रही हैं; बल्कि उन्हीं के पास साहूकारा और वाणिज्य-व्यापार है, उन्हीं के हाथों में सारे कारखाने, उन्हीं के हाथों में बड़ी-छोटी सरकारी नौकरियां हैं–महामन्त्री से कलेक्टर तक सब बड़ी जातियों के आदमी हैं। ७५ प्रतिशत जनता केवल सामाजिक तौर से ही हीन नहीं समझी जाती, बल्कि उसके अर्थागम के सारे रास्ते रुके हुए हैं। आज कुछ मन्दिरों को अछूतों के लिए खोल देने से आप समझते हैं, जनतन्त्रता का द्वार खोल दिया गया। वस्तुतः वह कोई महत्व नहीं रखता। यदि धन और विद्या में ७५ प्रतिशत लोगों को समान होने का अधिकार मिले, तो हम जरूर कहेंगे, कि आप जनतन्त्रता की तरफ आगे बढ़ रहे हैं।

भगवानदास–विद्या में समान अधिकार तो सभी मानते हैं।

महीप–सभी मानते हैं इससे काम नहीं चलता। क्या मानने मात्र से गांव के पैसे-पैसे के लिए मुहताज घुरहू चमार का लड़का प्रतिभाशाली होने पर भी कालेज की पढ़ाई समाप्त कर सकेगा? आप जानते हैं, विद्या का द्वार केवल उसी के लिए खुला है, जिसके पास धन है।

भगवानदास–धन में समानता, तब तो जनतन्त्रता के लिए सबसे आवश्यक बात हुई।

युधिष्ठिर–विद्या और व्यवसाय में सबको एक समान आगे बढ़ने का अवसर मिले, तब तो कहा जा सकता है, कि हम जनतन्त्रता की ओर बढ़े हैं, नहीं तो देवता भी मर्त्यलोक के लोगों से दूर रहते हुए अपनी मौज में जनतन्त्रता के गीत गा सकते हैं।

१३

नौकरशाही अंधेर

आज वर्षा पड़ रही थी, इसलिए पंचों की बैठक दालान में हो रही थी। भगवानदास की सलाह को मान लेने का किसी को खेद नहीं हुआ, क्योंकि नीचीबाग में निगाहें जैसी पड़ रही थीं, उससे डर था कि उनकी बैठक अपने तक ही सीमित न रहे। बनारस के पत्र वाले भी इस फिक्र में थे कि गोष्ठी की बातें अपने पत्रों में छापें। एकाध बार उन्होंने मनगढ़न्त बातें अपने पत्रों में सिर्फ इसीलिए छापीं, कि गोष्ठीवाले खंडन के लिए भी कुछ लिखें, लेकिन किसी ने जवाब नहीं दिया। भगवानदास की कोठी के भीतर कोई उनके पास नहीं पहुँच सकता था। छओं पंचों में किसीको नौकरशाहों से बहुत ज्यादा परेशान होने का मौका नहीं मिला था, क्योंकि नौकरशाहों से उन्हें अव्वल तो काम नहीं था, और यदि वह मिलते भी थे, तो परिचित मित्र के तौरपर। उस दिन रामी कहीं से पुराने पत्र की कापी लाकर उसके बारे में बोलने लगी—जनवरी (१९४९) में यहीं बनारस में हमारे राज्य के समाजवादी दल का सम्मेलन हुआ था, उसकी प्रधाना श्रीमती अरुणा आसफअली थीं, जो श्री भगवानदासजी के शास्त्र के अनुसार आधुनिक पंचकन्याओं में गिनी जा चुकी हैं। उन्होंने नौकरशाही के बारे में खरी-खरी बातें कही थीं। उनके वाक्य थे[1]—"पंडित नेहरू और सरदार पटेल दोनों ही के हृदय में निःसंदेह जनता के हित की भावना है, लेकिन वह शायद अपनी इच्छा के विरुद्ध ही सही, उसी नौकरशाही यंत्र के नियंत्रण में है, जिसकी एक समय उन्होंने घोर निन्दा की थी। शासनारूढ़ दल के लिए यह अनिवार्य है, कि अपनी आज्ञाओं को कार्यरूप में परिणत करने के लिए नौकरशाही[1] पर निर्भर रहें। लेकिन साथ ही यह अत्यन्त आवश्यक है, कि वह नौकरशाही ऐसी काली भेड़ों से न भरी हो, जिन्होंने कि अपने जीवन में दास-मनोवृत्ति के सिवा कोई खूबी नहीं दिखलाई। नौकरशाही[2] सिर्फ पैसे के लिए काम करती है, उसे जनता के हितों का ध्यान शायद ही होता है।"

भगवानदास—पंचकन्या ने बात तो पक्की कही है, चाहे वह किसी को बुरी लगे। लेकिन लोग कह सकते हैं—अरुणाजी सरकार की समालोचना करने में आजकल कोई अंकुश नहीं रखतीं।

१—"अमृतबाजार पत्रिका" (कलकत्ता) ६-१-४९।

महीप—यदि अरुणाजी की बात आप पक्षपातपूर्ण समझते हैं, तो पूर्वी पंजाब के हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश श्री स० र० दास की बात के बारे में तो ऐसा नहीं कह सकते। दिल्ली के एक पत्र को कड़ी आलोचना करते देख वहां के चीफ-कमिश्नर ने पत्र की जमानत जब्त कर ली थी। पत्र-स्वामी ने हाईकोर्ट में अपील की, जिसको तीन न्यायाधीशों की पूरी बेंच ने सुना। न्यायाधीशों ने चीफ-कमिश्नर की आज्ञा को रद्द करते हुए अपने निर्णय में नौकरशाही के बारे में लिखा[1]—"देश की परिस्थिति में जो परिवर्तन और (लोगों में) नये भाव आये हैं, जान पड़ता है, उनके कारण प्रशासकों (नौकरशाहों) के दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उनके दिमाग में पुरानी अहम्मन्यता और मनमानी की बातें अब भी घर किये हुए हैं। सद्यःप्राप्त हमारी स्वतन्त्रता ने उनकी दृष्टि को विस्तृत नहीं किया, और वह अब भी किसी उचित टिप्पणी या आलोचना को दबा देने के लिए तैयार हैं। पीड़ित व्यक्ति जब त्राण पाने के लिए दिल खोलकर प्रार्थना करता है, तो उसे राजद्रोह-कानून के सस्ते हथियार से दबा दिया जाता है।"

खोजीराम—मुझे इन दोनों उद्धरणों में कोई अत्युक्ति नहीं दीख पड़ती। हमारे देश के पिछले तीन वर्षों के इन स्वतन्त्रता के दिनों में जो सबसे कम परिवर्तित हुए हैं, वह हैं यही नौकरशाह—सरकारी कर्मचारी, जिन्होंने जीवन-भर अंग्रेजों की खुशामद की। जो सदा उनका यश गाते और उनके हुक्म से अपने भाइयों पर हर तरह के अत्याचार करते रहे, वह आज भी फल-फूल रहे हैं। बलिया में पंजाब के मार्शल-ला के दिनों को और भयंकर रूप में दोहराने वाले अफसर आज भी मूंछ पर ताव दे रहे हैं।

महीप—अब हमारे मंत्री लोगों के दरबार में भी वह उसी तरह से हाजिरी देते हैं, जैसे अंग्रेजों के दरबार में दिया करते थे, फिर प्रभु क्यों न प्रसन्न हो जायं।

युधिष्ठिर—मंत्री लोग अपने इन अफसरों के हाथों में खेलते हैं, वह अपने सचिवों के हाथ की कठपुतली हैं, इसे प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं। अधिकांश मंत्रियों को काम के लिए कोई योग्यता न रखने के कारण पद-पद पर अन्धे की तरह अपने सचिवों की अंगुली पकड़ के चलना पड़ता है। वह भी उनकी कमजोरियों से परिचित हैं।

रामी—मुझे तो नौकरशाहों के बारे में एक मित्र की राय पसंद आई। आज की नौकरशाही को उन्होंने कार्यक्षमता के अभाव के सहित बृटिश नौकरशाही के साथ बराबर किया; आज की नौकरशाही = ब्रिटिश नौकरशाही—कार्यक्षमता। सुदुर्लभ लाखों की मिक्रोफिलम की मशीनों को दिल्ली में मंगवाकर किस तरह

१—"अमृतबाजार पत्रिका" (कलकत्ता) १९-५-४९।

बरसात में चौपट किया गया, यह नौकरशाही कार्यक्षमता का बड़ा प्रमाण है। पाकिस्तान के बंटवारे के समय जो पचासों लाखों की मशीनें मिलीं थीं, वह दो साल से विलिंगटन हवाई अड्डे (दिल्ली) में बाहर फेंकी रहकर बरबाद हो गई। सुनिये कोई वाममार्गी नहीं बिड़ला का पत्र (हिन्दुस्तान-टाइम्स संध्या समाचार ४-८-४९) की तिलमिलाहट पैदा करनेवाली पंक्तियां—शीर्षक है "लाखों मूल्य की मशीनें अब कबाड़। दो सरकारी विभागों में उत्तरदायिता का विवाद।" और फिर—"विमानयात्री और उधर से निकलने वाले साधारण लोग भी यह देखकर आश्चर्य करते होंगे, कि क्यों हाते के एक विशेषता रखने वाले कोने को कबाड़ रखने के लिए छोड़ दिया गया। वह इतने समय से वहां है, कि हवाई अड्डे पर प्रायः आने-जाने वालों का उधर ध्यान भी नहीं जाता। वह समझते हैं कि वे भी उस भूभाग के अंग हैं। नगर में चीजों को जिस तरह से रखा जा रहा है, दिल्ली के लोग उससे परिचित हैं, और अन्न, मशीन तथा कोई सामान भी इस तरह आकाश के नीचे रखा देखने पर उन्हें आश्चर्य नहीं होगा। पाकिस्तान भागे लोगों की कई हजार मोटरें आज भी एक हाते में पड़ी सड़ रही हैं। हवाई अड्डे का यह ढेर कबाड़ नहीं, प्रकाश के साधन, किरणों की मशीनें और प्रकाशवर्षक महाप्रदीपों के पाये आदि हैं। सैनिक उड़ान-विभाग ने एक नजर डाली, और कह दिया वह उनके काम का नहीं है। इसलिए उसे राजकीय भारतीय विमानसेना को दे दिया गया। उन्हें भी इन चीजों की आवश्यकता नहीं थी....यह दो साल पहले की बात है। तबसे सरकार के दोनों विभागों की लम्बी बहस चल रही है कि कौन शिशु को उठायेगा। उधर दोनों विभागों के कार्यालयों में फाइलें मोटी होती गईं और इधर मशीनें भी धूल और कीचड़ जमा करती गईं, तथा अंत में हाल की बरसात ने सबको स्वाहा कर दिया। कोई नहीं कह सकता, कि दो वर्ष पहले इस सामान का कितना दाम था। वह लाखों का रहा होगा, किन्तु अब कुछ हजारों का भी नहीं है। अब सुना जा रहा है, कि उसे नीलाम कर दिया जायगा। साधु संकल्प, किंतु दो बरसातों और दो गर्मियों तक खुले मैदान में पड़े कबाड़ को कौन खरीदेगा? यदि इसे कबाड़ के भाव बेंचा जायगा, तो सार्वजनिक कोष के इस घाटे को कौन पूरा करेगा?"

खोजीराम—सचमुच ही देखकर आश्चर्य होता है। पहले तो यही अफसर इतने अयोग्य न थे, न उनमें इतना ढीला-ढालापन दिखलाई पड़ता था। अब जहां देखिये वहां कोई समय पर नहीं होता। एक आदमी को किसी दफ्तर में पूर्व परामर्श के अनुसार रख लिया गया। उसने छ महीना काम किया। अब भी उसकी नियुक्ति का पत्र नहीं आया। तार देने पर भी बात वहीं-की-वहीं

रही। सभी अफसर और सभी आफिस अपने को काम में व्यस्त दिखलाते हैं, और काम की हालत यह है।

महीप—इसमें आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि हमारे मंत्री भी तो दिल्ली के बादशाहों और लखनऊ के नवाबों का कान काटना चाहते हैं। जो उनके दरबार में पहुंच जाता है, खुशामद करने में दक्ष है, या हित-मित्र, सगे-सम्बन्धी का कोई नाता रखता है, उसके सात खून माफ हैं, उसे सबसे पहले तरक्की मिल जाती है। दूसरी ओर काम करते मरने वाले की कोई पूछ नहीं है, बल्कि चुगली लग गई, तो कूंए में गिरना पड़ता है। जब पद-वृद्धि और पदह्रास का यह तरीका है, तो क्यों कोई अधिक मेहनत उठायगा? पंजाब के सचिवालय में वहां के महामंत्री ने जाकर देखा, कि अफसर लोग घंटे-घंटे-भर देर करके आते हैं। "परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई" की कहावत थी। जब मंत्री महामंत्री सब अपने ही आदमी हों और सभी जगह वही आरामतलबी और शिथिलता रहे, तो काम क्यों किया जाय?

युधिष्ठिर—मैं नहीं समझता, सभी अंग्रेज काम में तत्परता रखते थे। उन्हें भी शिकार और सैर का बहुत शौक था, लेकिन कम-से-कम अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से वह काम लेना जानते थे और वैयक्तिक नाते-रिश्ते की बात न होने से कितनी ही हद तक काम को देखकर ही पदवृद्धि करते थे।

खोजीराम—हमारे बहुत से अफसर तो, यदि किसी का भय-संकोच नहीं हुआ, तो घर पर बैठे-बैठे ही दस-बीस कागजों पर हस्ताक्षर करके समझ लेते हैं, कि आज का काम खतम हो गया। एक तरफ काम की यह बात है, और दूसरी तरफ नौकरों की संख्या बढ़ाने में हमारे आज के शासक आंख मूंद के काम कर रहे हैं। खर्च अंधाधुंध नहीं आमदनी के अनुसार करना जरूरी है। भारत-सरकार ने खर्च-घटाव-समिति बनाई। समिति ने सरकारी नौकरियों के प्रतिवर्ष के एक अरब पैंतालीस करोड़ के खर्च में कुल तीन करोड़ दस लाख के घटाने की सिफारिश की। केन्द्रीय सरकार के सचिवालय के नौकरों में जिस तरह अंधाधुंध वृद्धि हुई, उसका व्योरा देखिये—

कर्मचारी	**१९३९ ई०**		**१९४९ ई०**		**सिफारिश**
सचिव (सेक्रेटरी)	९	—	१९	—	१९
संयुक्त सचिव	८	—	४०	—	३६
उपसचिव	१२	—	८९	—	७६
अतिरिक्त सचिव	०	—	५	—	२
अन्तर सहायक "	१६	—	४४	—	
अधीक्षक (सुपरिण्टेण्डेन्ट)	६८	—	२९४	—	२६५

कर्मचारी	१९३९ ई०		१९४९ ई०		सिफारिश
सहायक पदस्थ	८	–	१४८	–	८३
सहायक	४९३	–	२३१०	–	१९३२
लिपिक (क्लर्क)	६४१	–	२५४८	–	२०३८

महीप–यह गरीब जनता के पसीने की कमाई में आँख मूंदकर सीधे आग लगाना है।

खोजीराम–आग लगाना मत कहिये, सब अपने-अपने लोगों को भरने के लिए तैयार हैं; समझते हैं, कि एक मरतबे नौकरी पर नियुक्त कर देने के बाद फिर कौन निकालने वाला है ?

रामी–लेकिन ६४१ लिपिक (क्लर्क) की जगह २५४८ अर्थात् चौगुने क्लर्क काम क्या करते हैं ?

खोजीराम–एक बड़ा काम यही है–यदि क्लर्कों की पल्टन न होगी, तो अफसरों के लिए काम क्या रहेगा ? जब कागज काला करना, रिपोर्ट और हस्ताक्षर-भर ही काम है, तो चाहे जितने अफसर बढ़ाते जाइए। तारीफ तो यह है, कि जहां पहले नौ सचिव थे, अब उनकी जगह १९ हो गए हैं; और जानते ही हैं, सचिव सबसे मोटी तनख्वाह पाते हैं। खर्च-घटाव-समिति ने १९ सचिव में से एक को भी कम करने की सिफारिश नहीं की। समिति स्वयं झक्खाड़ सचिव के रोब में थी, वह भला कैसे उनके खिलाफ कलम चलाती ?

युधिष्ठिर–क्लर्क और सचिव की ही बात क्यों ले रहे हैं, माथे पर ही क्यों नहीं देखते ? गवर्नर-जनरल का वेतन कितने ही समय तक वही चलता रहा, जो कि अंग्रेज वाइसरायों को मिलता था। जब कड़ी आलोचना हुई, तो प्रधान-मंत्री ने यह कहकर उसका औचित्य ठहराया कि पद-मर्यादा के लिए वह आवश्यक है। वेतन जब कम भी हुआ, तो उससे यह न समझें कि गवर्नर-जनरल की अपनी गोशालायें, अपनी घोड़शाल, अपने मोटरखाने, अपने मालियों और शरीर-रक्षकों की पल्टन का खर्च कम हो गया है। गवर्नर-जनरल[३] का मकान वही विशाल प्रासाद रहा, बल्कि बाग बगीचों के संभालने के लिए पहले से कई गुना अधिक खर्च था; यद्यपि अब प्रासाद में बहुत जगह मकड़ी के जाले भी दिखलाई पड़ते थे, सिर्फ चमगीदड़ियों के आने की देर थी। कहीं-कहीं कालिख भी लगी थी, क्योंकि नौकरों के रहने पर भी काम की ढिलाई जो हर जगह थी। यदि कमी हुई, तो शायद शूकर-शाला की। अब उसकी जरूरत नहीं रही, क्योंकि राजगोपालाचारी घासाहारी थे।

रामी–वाइसराय का अपना विशाल अन्तःपुर था–रानियों के लिए नहीं, बल्कि पशुओं, मनुष्यों और वस्तुओं के लिए। सैकड़ों गायें रहती थीं, यद्यपि वाइस-

राय, वाइसराइन के लिए एक-दो गायें काफी थीं। मैं समझती हूँ, उसमें अभी कमी नहीं की गई होगी।

महीप—नहीं, कमी क्यों? प्रधानमंत्री के कथनानुसार गवर्नर-जनरल की (या राष्ट्रपति[२]), पद-मर्यादा के लिए वह आवश्यक थे।

महीप—रामी बहिन, एक छोटा-सा लेख डाक्टर जे० सी० कुमारप्पा ने इस भयंकर फजूलखर्ची को क्रांति का लक्षण कहते हुए लिखा था।

रामी—सुनाओ तो।

महीप—अच्छा लीजिये[१]—"'अंग्रेज तो यहां से चले गए हैं, पर ऐसा मालम होता है, कि वे एक ऐसी परंपरा छोड़ गए हैं, जिसने हममें से चन्द लोगों के जीवन में घर कर लिया है।....दिल्ली शहर खुद गरीबों के बूते पर की जाने वाली तड़क-भड़क के प्रदर्शन का एक खासा उदाहरण है। वहां वाइसराय की कोठी पुराने जमाने के मुगलों के ऐश्वर्य को भी मात करने वाली है। उसमें रहने के कुल ८६ कमरे और ५६ गुसलखाने हैं। ये कमरे इक्के-दुक्के नहीं, परन्तु बम्बई के फ्लैट जैसे हैं और उनमें से हरएक में एक मध्यवर्गीय कुटुम्ब बड़ी आसानी से रह सकता है। पुराने जमाने में, जब दिल्ली में राजसी ठाठ वाले होटल नहीं थे, इंगलैण्ड के अमीर-उमराव आदि मेहमानों को ठहराने के लिए वाइसराय की कोठी एक होटल का भी काम देती थी। पर आज गरीबों से वसूल किये टैक्सों के बूते पर उसी रफ्तार को चालू रखने की हमें कोई जरूरत नहीं दीख पड़ती।....

"इस कोठी में कुल ३१२ नौकर और ९० फर्राश हैं, जिनका मासिक वेतन २५,००० रु० याने सालाना तीन लाख रुपया होता है। उनके 'अदना' मालिक वाइसराय का वेतन भी इनकमटैक्स और सुपरटैक्स (यदि लगता होता) मिलाकर मासिक १५,००० रुपया के करीब होता है। नौकरों की भड़कीली पोशाकों के लिए सालाना ४०,००० रुपया खर्च होते हैं।

"इस कोठी के बगीचे का क्षेत्रफल २९० एकड़ है और वह 'तमाम दुनिया में अपना सानी नहीं रखता'—ऐसा कोठी के अधिकारी डींग मारते हैं। पर यह सब संभव होने के लिए उस बगीचे में २६३ वनस्पति-विशेषज्ञ और माली रखने पड़ते हैं। इनका सालाना खर्च तीन लाख रुपये से अधिक होता है। कोठी का तमाम घर-खर्च सालाना साढ़े चार लाख रुपये से ऊपर जाता है। कोठी की मरम्मत के लिए हर साल करीब बारह लाख रुपये और फर्नीचर-दुरुस्ती या टूट-फूट के लिए हर साल एक लाख रुपये खर्च होते हैं। पूरे सामान और फिटिंग की लागत पचास लाख रुपये है।

१—"नया समाज" जुलाई, १४४९ "क्रांति के लक्षण"।

"ये खर्च परंपरागत चले आए हों, सो बात नहीं है। अंग्रेज वाइसरायों के जमाने में भी ये खर्च इतने अधिक नहीं बढ़े थे। सन् १९३८ में बगीचे का खर्च ७७,००० रु० से कुछ अधिक था, पर आज का खर्च तो इससे पचगुना है। उसी प्रकार १९३८-३९ में घर खर्च एक लाख अस्सी हजार रुपये था, और आज वह इससे ढाई गुने से भी अधिक है। केवल मुद्रास्फीति की बदौलत इतना फर्क नहीं पड़ सकता।"

रामी—एक करोड़ का नया म्यूजियम जो बनाने जा रहे हैं, उसके लिए इसी भवन को क्यों नहीं ले लेते ?

महीप—इन्द्र-भवन को ढाहना चाहती हो रामी बहिन, अच्छा आगे सुनो—

"......हमारे प्रधानमंत्री हमेशा जीवन का रास्ता ऊंचा उठाने की बातें करते रहते हैं, इसलिए शायद उन्हें यार्करोड पर की अपनी कोठी ठीक नहीं मालूम हुई और वे कमांडर-इन-चीफ के आलीशान महल में रहने चले गए। तमाम मंत्री एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर पार्टियां देने में मशगूल हैं। आम जनता के लिए उन्होंने क्या किया, इसका यदि लेखा-जोखा तय्यार किया जाय, तो बड़े दुख के साथ 'कुछ नहीं' कहना पड़ता है।

"इधर ऊँचे ओहदे वाले लोग इस प्रकार अच्छे-अच्छे महलों का उपभोग करते हैं, तो उधर मामूली क्लर्क आदि लोगों को रात को सिर रखने के लिए भी जगह नहीं मिलती। इससे शायद यह भी सिद्ध हो सकता है, कि महकमों की कार्यक्षमता भी घट गई है। (लाट-साहेब के) एक स्टेट-आफिसर की रिपोर्ट से पता चलता है, कि सन् १९३९ में कुल ६४७२ रहने के क्वार्टर थे। और पिछले साल उनकी संख्या १५,४०४ हो गई। सन् १९३९ में रहने के मकानो के लिए कुल १०,००० अर्जियां आई थीं, जो पिछले साल ७०,००० हो गईं। दफ्तरों के लिए सन् १९३९ में ७,७५,००० वर्गफुट जगह काफी थी; पर पिछले साल वह ५६,३४,००० वर्गफुट हो गई। इस पर से क्या हम यह अनुमान लगायें कि महकमों की कार्यक्षमता बढ़ गई है ? इन्हें तो कोई रोग हो गया है। हमें यह याद रखना चाहिए कि १९३९ के हिन्दुस्तान का एक-तिहाई हिस्सा पाकिस्तान में चला गया है। इसके बावजूद सरकारी नौकरों की संख्या में वृद्धि और उसी अनुपात में कार्यक्षमता की शिकायतों की वृद्धि—ये बातें किसी खराबी की निश्चित द्योतक हैं।

"हमें तो ऐसा डर लगता है, कि ये सब हालतें आखिरी जार के जमाने के रूस की हालतें जैसी हो रही हैं। हम चाहते हैं और प्रार्थना करते हैं, कि ये सब बातें रूसी क्रांति जैसी क्रान्ति के पूर्व-चिह्न न साबित हों। एक तरफ साम्राज्य-

शाही ठाट-बाट और दूसरी तरफ भयंकर गरीबी और सारी चीजों का अभाव, ऐसी हालत जब पैदा हो जाती है, तभी क्रान्ति की संभावना रहती है। आज अपने देश में ये हालतें अधिकाधिक दृष्टिगोचर हो रही हैं। समाजवादी-कम्युनिस्ट लोगों की धर-पकड़ इस मरज की ऊपर-से-ऊपर मरहम-पट्टी जैसी है, इससे मरज ठीक न होगा। हमारी व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हो, यही इस मरज की सच्ची दवा है। क्या हमारे नेता लोग समय रहते चेत जायंगे, या हमें रूसी क्रान्ति के समान भीषण-क्रान्ति के अग्नि-दिव्य में से गुजरना पड़ेगा?"

भगवानदास—कड़वी किन्तु सच्ची स्पष्टवादिता !

महीप—उससे मुझे इनकार नहीं। प्रान्त के गवर्नर भी गवर्नर-जनरल से पीछे नहीं रहना चाहते। जब ये नव्वाब बहादुर बाहर निकलते हैं, तो एक पूरी शरीर-रक्षक अफसरों-भटों की पलटन अनुगमन करती है। दूसरे स्टाफ तथा लग्गू-भग्गुओं की तो बात ही मत पूछिए। आखिर यह परमुंडे फलाहार कब तक होगा? यह सारा पैसा देश के भूखे-नंगों का पेट काटकर आता है। गवर्नर-जनरल से तो कभी आशा नहीं रखी जा सकती थी, कि वह जरा भी नीचे आने की कोशिश करेंगे।

युधिष्ठिर—अंग्रेजों को पद-मर्यादा कायम करना था परमुंडे। लेकिन पद-मर्यादा की बात अंधाधुन्ध खर्च से ही रह सकती है, यह नेहरूशाही तर्क है। १९३५ में जापान के प्रधान-मन्त्री का वेतन ६००) मासिक के करीब था, और उसी के आसपास कोरिया के गवर्नर-जनरल का। इस वेतन से तो अधिक उस समय हमारे जिले का एक ज्वाइंट-मजिस्ट्रेट या एस० डी० ओ० पाता था। लोगों को अन्धा समझ रखा था, इसीलिए ऊट-पटांग बात कहके समझा दिया जाता है।

मुखपात्री—मेरी तो बोलने की हिम्मत ही जाती रही, जब मैंने सुना कि १ अरब ४५ करोड़ रुपया हमारे नौकरशाही के चलाने में लग जाता है। वेतन तो गांधीजी ने मन्त्रियों को ५००) रखना चाहा था, किंतु अब वह तिगुने से भी सन्तुष्ट नहीं हैं। मैंने १९३५ में लिखी जापान-सम्बन्धी एक पुस्तक में वहां के पदाधिकारियों के वेतन की एक सूची देखी थी। आज के रुपये से मिलाने के लिए हम उस समय के रुपये को तिगुना कर सकते हैं। सूची यह है—

कर्मचारी	वार्षिक येन	मासिक रुपया
प्रधान-मंत्री—	९,६००	६००
राजमंत्री, कोरिया गवर्नर-जनरल—	६,८००	४२५
प्रिवी-कौंसिल के सभापति,		
राजदूत, प्रधान-जज, फार्मूसा—		

कर्मचारी	वार्षिक येन	मासिक रुपया
गवर्नर-जनरल	६,६००	४१२॥
राजकीय विश्व-विद्यालयों के चांसलर	६,८००	४२५
मंत्रि-मंडल के चीफ सेक्रेटरी, तोक्यो का प्रधान-पुलिस-अफसर, प्रधान-इञ्जीनियर	५,८००	३६२॥
जिला मजिस्ट्रेट	४,६५०	२९०॥
छोटे अफसर	४० से १८५ मा०	३० से १०५
युनिवर्सिटी प्रोफेसर		७५ से ३२५
साधारण अध्यापक	४५ से २०० मा०	३३¾ से १५'
साधारण मजदूर	१५ से ३० मा०	११। से २२॥

महीप—स्वतन्त्र भारत की सरकार के अन्धाधुन्ध खर्च और उसके सम्बन्ध में घटाव-समिति के ऊपर टिप्पणी करते हुए 'अमृत-बाजार पत्रिका'[१] ने लिखा था—"समिति की सिफारिशों को पढ़ते हुए, आदमी को खयाल होने लगता है., कि उसने बहुत से भारी खर्चों के मदों को छुआ तक भी नहीं है।........एक महत्त्व-पूर्ण सिफारिश विदेशों में भेजे जानेवाले मिशनों के विषय में हैं, जिनके बारे में बहुत सी कहावतें मशहूर हैं। समिति ने कहा है—अगले तीन वर्षों में सिवाय असाधारण अवस्था के किसी दूसरे देश में नया मिशन स्थापित न किया जाय। लेकिन वर्तमान मिशनों के बारे में क्या राय है? इन मिशनों के ऊपर खर्च करने में भारी हृदयहीनता से काम लिया जाता है। भारत-सरकार ने अभी तक इस बात को बिलकुल जनता को नहीं बतलाया, कि इन मिशनों में से प्रत्येक पर कितना खर्च हुआ और उसका विवरण क्या है।..........भिन्न-भिन्न मिशनों में जाने वाले व्यक्तियों के नाम, उनके वेतन आदि, योग्यताएं तथा नियुक्ति के आधारभूत सिफारिशों या सम्बन्धों को प्रकाशित करना चाहिए। जनता के मन में सन्देह है, कि अनेक ऐसी नियुक्तियां और खर्च हुए हैं, जो कि राज्य के लिए आवश्यक नहीं थे, जिसे कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों को संतुष्ट करने के लिए किया गया।"

युधिष्ठिर—नियुक्तियों के लिए योग्यता की बात पूछने की आवश्यकता क्या है? जो हाजिरी बजाये, अंग्रेजों की नकल अच्छी तरह कर सके, चाहे कैसा ही पतित क्यों न हो, वह योग्यतम व्यक्ति समझा जाता है। एक सज्जन जो अपने व्यक्तित्व के लिए देश में दुष्परिचित नहीं थे, एक देश में प्रतिनिधि

१—कलकत्ता १६-६-४९।

बना के भेजे गये। मुझे याद है, जिस वक्त उनकी नियुक्ति हुई थी, एक मित्र उनके बारे में बतला रहे थे—वह कह रहे हैं, मैं अपने आवास में एक कमरा चीनी ढंग से सजाऊंगा, दूसरा यूरोपीय और तीसरा कुछ और ढंग से। जान पड़ता है, उन्होंने अपने मंसूबे को कई गुना बढ़ा-चढ़ा के पूरा किया। साल-भर बीतने नहीं पाया, कि उन्होंने अपने और अपने नियुक्त-कर्त्ताओं के मुखों पर कालिख पोत दिया। पहली बार परदा खुला तो ढांकने-तोपने की कोशिश की गई, किन्तु अन्त में उन्हें बुला मंगाना पड़ा। एक और बड़े घर की बेटी बड़े दायित्व के साथ विदेशी मिशन में भेजी गई थीं। उन्होंने भी कम नामहंसाई नहीं की। ऐसे दर्जनों व्यक्तियों को बतलाया जा सकता है, जिनका तितली और छछूंदर होना ही योग्यता का सबसे बड़ा प्रमाण-पत्र माना गया। मुश्किल तो यह है, हमारे भाग्य-विधाताओं को संस्कृति का अत्यन्त विकृत और अधूरा ज्ञान है, किसी भी चमकनेवाले को वह सोना समझ लेते हैं।

महीप—और हमारी नौकरशाही ऐसे सोने से भरी पड़ी है। यदि एक ही पीढ़ी से पाला रहता, तो सम्भव था, पुरानी पीढ़ी के खतम होते ही हमारा पिंड छूट जाता, किंतु पिंड छूटनेवाला मालूम नहीं होता। बूढ़े अपने पुराने प्रभाव के कारण आयु अधिक हो जाने के बाद भी टिके हुए हैं। पेंशन लेने में पैसा भी कम मिलता, प्रभुता का भी अंत हो जाता है,इसलिए कोई बूढ़ा नौकरशाह अवसर-ग्रहण करना नहीं चाहता। साथ ही वह अपनी सारी पौध को स्थान-स्थान पर बैठा देना चाहता है। मुझे युधिष्ठिर भाई क्षमा करें, यदि मैं कहूं, कि जगह-जगह गदहे भर दिये गए हैं। कौन इस गंदगी को साफ करेगा ?

युधिष्ठिर—मैं ऐसे शब्द नहीं पसन्द करूंगा, किंतु महीप बाबू, आपको प्रसन्न होना चाहिए, शत्रु के गदहा होने पर ही काम जल्दी बनता है।

महीप—लेकिन, तब तक तो जनता का कचूमर निकल जायगा। ओह, यह अंधेरगर्दी कब तक बंद होगी ?

भगवानदास—इस बला से बचने का भी कोई उपाय है क्या ?

युधिष्ठिर—कुर्सी तोड़नेवाले नौकरशाहों से बचने का उपाय ? अभी तो कोई उपाय नहीं मालूम होता। अभी तो विभाग-पर-विभाग खुलते चले जा रहे हैं। कितने ही ऐसे विभाग हैं, जिनके बहुत से अंशों को तोड़ देने पर कोई हरज नहीं हो सकता, क्योंकि वह सब आपस ही में एक दूसरे के हस्ताक्षर करने-कराने भर से अपना कार्य पूरा करते है। सोचने की बात है, क्या अंग्रेजों के रहते समय जो काम नौ सेक्रेटरी कर लेते थे, उससे आज के १९ सेक्रेटरी अधिक काम करते हैं ? क्या ४९३ की जगह २३१० सहायक अपनी संख्या के अनुसार काम भी

कर रहे हैं ? जनता के पैसे को इतनी बेदर्दी से खर्च करना शायद ही पिछले डेढ़ सौ सालों में कभी देखा गया होगा ।

महीप—मुझे तो मालूम होता है युधिष्ठिर भाई, यदि यही हालत रही, तो फिर हमारे यहां वही अयोग्यता और अकर्मण्यता, वही मिथ्याचार और विलासिता देखने में आयेगी, जो अवध की नवाबी के अंतिम दिनों में पाई जाती थी । आज सभी जगह नौकरशाहों का बोलबाला है और कहीं-कहीं तो वह पहले ही की तरह अभिमानी और अशिष्टाचारी-दिखाई पड़ते हैं । पंजाब के नौकर-शाहों में तो जान पड़ता है, ओडायर-शाही के जमाने से कोई अन्तर पड़ा ही नहीं । यदि इसको देखना हो तो दिल्ली के पालम हवाई अड्डे के पुलिस-अफसर को जाकर देख लें, जो पासपोर्ट की जांच करने के लिए बैठा रहता है । उसके लिए सामने से गुजरनेवाले सभी यात्री संदिग्ध अपराधी हैं ।

युधिष्ठिर—निम्न श्रेणी की नौकरशाही का स्वभाव है—अपने से नीचे को आंख दिखाये, ऊपर के सामने पूंछ हिलाये और अपरिचित के साथ रूखा और असंयत बरताव करे ।

महीप—मैं समझता हूँ, इस देश के नौकरशाहों से कोई आशा हमारे बूढ़े नेता भी नहीं कर सकते, यदि चालीस बरस से ऊपर वाले नौकरशाहों को अनिवार्य पेंशन लेने के लिए मजबूर नहीं किया जाता । यह वह खोपड़ियां हैं, जिनके दिल में कभी देशभक्ति ने जगह नहीं की, जिन्होंने एक नागरिक या मनुष्य के तौर पर कभी अपना कर्तव्य समझ कर कोई काम नहीं किया । उन्होंने जो काम किया, वह केवल पेट तथा ऊपर के डर के मारे किया । सबसे बढ़कर तो यह बात है, कि वह उस भ्रष्टाचार में सबसे आगे हैं, जिसका आरम्भ द्वितीय विश्व-युद्ध में अंग्रेज-अफसरों ने स्वयं किया था ।

भगवानदास—भ्रष्टाचार का तो मुझे बहुत पता है, क्योंकि अपने भाई उसी के बल पर खूब फल-फूल रहे हैं । आज सारा चोर-बाजार इन्हीं अफसरों के बल पर चल रहा है । नौकरशाहों ने आचरण से दिखला दिया—"टका धर्मः टका कर्म टकाहि परमं पदं ।" यदि इन्हें बंगाल की खाड़ी में ले जाके डुबा दिया जाय, तो इस देश का कुछ भी अकल्याण नहीं, बल्कि भला ही होगा । यह कहते हुए मैं इसे भी मानता हूँ, कि चारों तरफ कालिमा पुती रहने पर ऐसे भी कुछ अफसर मिलते हैं, जिनमें मानवता पाई जाती है, जो अपने कर्तव्य को समझते हैं, और जिन्हें कोई प्रलोभन डिगा नहीं सकता । लेकिन, ऐसों को तपस्वी का जीवन बिताना पड़ता है, मुझे ऐसे व्यक्ति का पता है, जिसने काजल की कोठरी में जाकर भी कालिख अपने देह में लगने नहीं दिया । खर्च की मजबूरी न हो,

इसलिए उसने ब्याह नहीं किया, और न ही वह सगे-संबंधियों के फेर में पड़ा। लेकिन इस तरह के तपस्वी कितने हैं ?

युधिष्ठिर—अवस्था बहुत भीषण है। हमारी सरकार के जो संचालक हैं, उनके हाथ, पैर और आंखें यही नौकरशाह हैं। वह हमेशा अपने स्वामी के आज्ञाकारी हैं, जहां तक शिष्टाचार की बातों का संबंध है। साथ ही जिस तरह वह अपने स्वामी की अयुक्त बातों का समर्थन करने के लिए तैयार रहते हैं, उससे मालूम होता है, कि वह अपने उसी मालिक को गढ़े में गिरने पर चार लात और लगाने की तैयारी में हैं—जो आखिरी दम तोड़ रहा है, उसे चार लात लगाने में क्या हरज ? नौकरशाहों पर संयम जनता की सहायता से हो सकता था, लेकिन जनता धीरे-धीरे विस्मृत की जा रही है।

महीप—इधर नौकरशाहों में अब नई प्रवृत्ति हो चली है, विशेष कर अधिक तीक्ष्ण बुद्धिवालों में—वह सरकार की जगह पूंजीपतियों की नौकरी ज्यादा पसंद करने लगे हैं, क्योंकि वहां पैसे कमाने की कोई सीमा निर्धारित नहीं है, आखिर पैसे के अधीन भोग हैं। नौकरशाहों के सुधार का कोई रास्ता दिखाई नहीं पड़ता। उनका तो अंत होकर ही सुधार होगा। नौकरशाहों की प्रभुता को कम किया जा सकता था, यदि वयस्क-मताधिकार से निर्वाचित ग्राम, थाना, उपजिला, जिला के निर्वाचित पंचायतों को बहुत-सा शासन-प्रबंध और न्याय का काम दे दिया जाता, लेकिन अभी तो बात उलटी ही हो रही है। जिला के कलेक्टर के हाथ में पहले से भी अधिक अधिकार रखने की कोशिश की जा रही है।

१४

दिल्ली के देवता

आज कई दिन बाद गोष्ठी हुई। भगवानदास दिल्ली गए हुए थे। गोष्ठी में उन्होंने कहा–

"अयोध्या मथुरा, माया, काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥"

युधिष्ठिर–भारत की ये प्राचीन सात पुरियाँ हैं–दिल्ली यहां न तीन में, न तेरह में। अयोध्या साकेत के नाम से प्रसिद्ध बहुत पुरानी नगरी है, यद्यपि ऐताहासिक काल में उसका स्थान एक बड़े सांस्कृतिक और व्यापारिक नगर से बढ़कर नहीं था–अर्थात् वह कोई सबल राजनीतिक केन्द्र नहीं बन पाई थी। मथुरा को शकों ने बनाया। कई शताब्दियों तक शक-क्षत्रपों की राजधानी रहने से मथुरा धन-धान्य से सम्पन्न हो गई, चारों ओर मन्दिर और विलास-भवन फैल गए। मथुरा के साथ-साथ शकों ने कई जातियों का भी भाग्य खोल दिया। हरिद्वार या माया की ख्याति समृद्ध-नगरी के तौर पर कभी नहीं हुई; उसका माहात्म्य गंगाद्वार ने ही बढ़ाया। काशी राष्ट्र की वाराणसी चिरकाल से ही प्रसिद्ध नगरी रही है, यद्यपि उसका राजधानी बनने का सौभाग्य बुद्ध के जन्म के बहुत पहले खत्म हो चुका था। काञ्ची का दक्षिण-भारत में वही स्थान रहा है, जो उत्तर-भारत में काशी का–जहां तक कि संस्कृति और विद्या का संबंध है। किन्तु काञ्ची उससे बढ़कर भी कुछ थी। वह कई शताब्दियों तक प्रतापी पल्लव-वंश की राजधानी रही। उसने दक्षिण-भारत में कला और साहित्य की उन्नति में ही भारी भाग नहीं लिया, बल्कि जावा, सुमात्रा और हिन्दचीन में भी भारतीय संस्कृति को फैलाने में उसका प्रथम और सबल हाथ रहा। अवन्तिका या उज्जयिनी के लिए क्या कहना है? वह बहुत बार और सदियों तक सबल राजनीतिक केन्द्र रही, कवियों को प्रेरणा देती रही। उसे तो स्वतः कविमय कहा जाय, तो अत्युक्ति नहीं। हमारे ज्योतिषियों ने उसी को शून्य-देशान्तर कहने का मान प्रदान किया, जो कि आज कल अंग्रेजों ने ग्रीनविच को दे रखा है। मैं तो जब कभी राजधानी को दिल्ली से हटाने की बात सुनता हूँ, तो मेरा ध्यान उज्जयिनी की तरफ जाता है। इतिहास का अभिमान, मैं समझता हूँ, कोई प्राचीनपंथिता नहीं

है। उज्जयिनी है भी भारत के केन्द्रीय स्थान में। वहां का जलवायु भी बड़ा स्वास्थ्यकर है और वहां दिल्ली की तरह की लू भी नहीं चलती। द्वारावती या द्वारिका चाहे ऐतिहासिक नगरी न हो, लेकिन है वह भी महत्त्व रखने वाली पुरी।

भगवानदास—क्यों न हम "अयोध्या मथुरा दिल्ली" कर डालें।

युधिष्ठिर—इन सातों पुरियों में दिल्ली को भी गिना जाता, यदि वह प्राचीन काल में कोई ऐतिहासिक स्थान रखती। दिल्ली सचमुच भारत की नई नगरियों में है। लेकिन दिल्ली को एक बड़ा सौभाग्य प्राप्त हुआ है—वह है युग-युग के स्मरणीय गांधीजी का निर्वाण-स्थान होना, उनके शहीद होने की भूमि बनना। इसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा, कि विशाल भारतीय, गणराज्य की प्रथम राजधानी बनने का सौभाग्य भी उसी को प्राप्त है। यह कहने की तो आवश्यकता नहीं कि पुराण-धर्मशास्त्र में दिल्ली का माहात्म्य न होने पर भी वह तेरहवीं से अठारहवीं—छ शताब्दियों तक भारत की राजधानी रही है। आज भी दक्षिण वाले मुहम्मद तुगलक की तरह दिल्ली को उजाड़ फेंकने की कोशिश में हैं, किन्तु दिल्ली की कीली ऐसी ढीली नहीं है। करोड़ों-करोड़ रुपयों के भवन वहां तैयार हैं, जिनको छोड़ उजाड़कर दूसरी जगह ले जाने के लिए मुहम्मद तुगलक-जैसा ही दिमाग होना चाहिए।

मुखपात्री—पहिले-पहल मैंने दिल्ली को १९१६ ई० में देखा था। यद्यपि उस समय का चित्र स्मृति-पटल पर से धूमिल हो गया है, किन्तु इतना तो याद है, कि आज की दिल्ली का शतांश भी उस समय नहीं था। १९२६ ई० में यद्यपि नई दिल्ली की रूपरेखा कुछ खड़ी होने लगी थी, किन्तु अब भी वह सुनसान-बीयाबान में ढाई-ईंट की डेरा ही थी, आज वह बहुत बढ़ती चली जा रही है।

युधिष्ठिर—दिल्ली आकाश की ओर नहीं, क्षितिज की ओर बढ़ना चाहती है। नई दिल्ली को बगीचों और बंगलों का शहर बनाया गया है—उद्यानों-क्रीड़ो-पवनों का नगर। बहुत लोग उसकी तारीफ करते हैं, किन्तु मैं पसन्द करता, यदि दिल्ली आकाश की ओर बढ़ती और जमीन पर कम फैलती। हमारे देश में आदमी ज्यादा और जमीन कम है। यदि जमीन की कमी को थोड़ा भी आकाश से पूरा कर सकें, तो यह लाभ की बात है। आसमान की ओर बढ़ने पर—पँचमहले-सतमहले मकान उठाने पर—दूरी भी कम हो जायगी। इस शताब्दी के अंत तक यमुना के दोनों तरफ बसी दिल्ली की आबादी आसानी से तीस लाख हो जायगी। किन्तु, यदि तीस लाख आदमी क्रीडोद्यान-अन्तर्वर्त्ती बँगलों में बसाये गए, तो नगर को पचीसों मील तक बढ़ना होगा। फिर दोस्तों से मिलने, संस्थाओं में

जाने, आफिसों में काम करन के लिए बहुत दूर-दूर की खाक छाननी पड़ेगी, जिसमें अधिक समय और पैसा तो लगेगा ही, मोटरों और बसों के लिए अधिक पेट्रोल की भी जरूरत होगी, भूगर्भी रेलों के लिए अधिक बिजली की आवश्यकता होगी। दुनियां में कोई ऐसा नगर नहीं है, जहां स्थान की इस तरह की फजूलखर्ची की गई हो।

महीप—नई दिल्ली की जिन्होंने नींव रखी थी, उनका विचार कुछ दूसरा ही था। उनको भारत के गरीबों की कसाले की कमाई की परवाह नहीं थी। सबके पास कारें थीं, उनके लिए दूरी क्या चीज थी? उन्हें सुन्दर बाग, हरी घास से ढँका लान और स्वच्छ हवा चाहिए थी। पैसे की उन्हें परवाह नहीं थी। वे नहीं जानते थे, कि दिल्ली कभी उनके हाथों से छिन जायगी और जिन लोगों के हाथों में जायगी वे इसे बहुत महँगी विलासिता समझेंगे और बेवकूफी भी।

युधिष्ठिर—खैर, वह महंगी बेवकूफी हमारे मत्थे पड़ी है। दिल्ली के नये शासक शायद उसे बेवकूफी नहीं समझते, क्योंकि वे भी निर्धनतम देश की सबसे अधिक खर्चीली राजधानी होने के पक्षपाती मालूम पड़ते हैं। देश की ऊंची नौकरियों और विदेश के भारतीय दूतावासों में इस नीति का साफ़ परिचय मिलता है। गवर्नर-जनरल को अपने पद की मर्यादा कायम रखनी है। इसलिए अंगरेज गवर्नर-जनरलों से कम वेतन देना पद की मर्यादा को बट्टा लगाना है! पर लोगों ने ये दलीलें नहीं सुनीं, जिसका परिणाम यह तो हुआ कि गवर्नर जनरल का वेतन कुछ कम करना पड़ा था। लेकिन तो भी गवर्नर-जनरल को अपने महाप्रासाद में ही रहना पड़ा। अब वही बात राष्ट्रपति के लिए हो रही है।

भगवानदास—हमारे राष्ट्रपति के महाप्रासाद को गीदड़ों और लोमड़ियों के लिए तो नहीं छोड़ा जा सकता। फिर उसका क्या करना चाहिए?

महीप—वही, जो दूसरे देशों में प्रासादों के साथ किया गया है। सेंट पीटर्स-बर्ग में जार के शरद्-प्रासाद में आज संसार का एक बहुत बड़ा म्यूजियम है उसी तरह इसे भी राष्ट्र के बड़े म्यूजियम को ही देना चाहिए। तब उसको ठीक रखने के लिए जो खर्च पड़ेगा, वह राष्ट्रपति के मत्थे नहीं मढ़ा जायगा। हमारा देश बड़ा है, हमारे देश की संस्कृति और इतिहास और भी बड़े हैं। यह महा-प्रासाद उसके लिए बहुत उपयुक्त होगा और बहुत बड़ा भी नहीं होगा। किन्तु, राष्ट्रीय संग्रहालय के प्रति हमारे दिल्ली के देवताओं की रुचि वैसी ही नाम-मात्र की है, जैसा कि नाम-मात्र का संग्रहालय वहां खोला गया है।

युधिष्ठिर—दिल्ली में वैसे तो बहुत खुली जगह है—चौड़ी सड़कें, विशाल मैदान,

दूर-दूर बँगले तथा प्रासाद–किन्तु वहां मेरे-जैसों का दम घुटे बिना नहीं रहता। पहले तो अंगरेज, इस घर के स्वामी, राजधानी के भौंरे थे। उनकी यदि इस देश के भूत-भविष्य-वर्तमान तथा इस देश की संस्कृति-साहित्य-कला के प्रति कोई स्नेह सहानुभूति न थी, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। क्योंकि वे विदेशी बाट के बटोही थे, उन्हें इन चीजों से क्या लेना-देना था ? किन्तु आज के दिल्ली के भोक्ता क्यों इतने फीके-फीके दीखते हैं ? फीका रहने पर शायद आपत्ति हो वे रसज्ञ हैं–अंगरेजों के समय से आज दिल्ली अधिक अधर-राग और अधिक मुख-चूर्ण व्यय करती है। ऊपर से काजल का खर्च भी कई गुना बढ़ गया है। दिल्ली में अप्सराओं का सम्मान कम नहीं है, इसलिए वहां के देवताओं को फीका कहना ठीक नहीं जँचेगा। मैं अधरराग, मुखचूर्ण, नेत्रांजन का विरोधी तथा प्राचीनपंथी नहीं हूँ। मैं मानता हूँ कि आज से हजार-दो-हजार वर्ष पहले भी इन प्रसाधनों का आज से भी अधिक उपयोग होता था। मैं उन्हें फीका इसलिए कहता हूँ, कि दिल्ली के ये देवता हाल ही में दिल्ली छोड़कर गये देवताओं के अंधे नकलची हैं। पश्चिम की कितनी ही बातें लेना बुरा नहीं, लेकिन अपनी भी तो कोई चीज होती है। उसका भी तो कुछ अभिमान होता है। लेकिन, दिल्ली में उसका शायद ही कहीं पता लगे। मुझे तो दिल्ली के इन फीके देवताओं के लिए सबसे उपयुक्त नाम 'हिन्दू-एँग्लो-इन्डियन मालूम देता है। एँग्लो-इन्डियन न एँग्लो रहे न इन्डियन। वे इस देश की मिट्टी-पानी से अपना कोई वास्ता नहीं समझते थे। हम आज के दिल्ली के देवताओं के बारे में भी इतना तो कह ही सकते हैं कि सहस्राब्दियों से चली आई हमारे देश की मिट्टी के साथ उन्हें कुछ परायापन-सा मालूम होता है। आज दिल्ली में उसी तरह अंगरेजी का अखंड राज्य है, जैसा कि अंगरेजों के रहते समय था। अंगरेजी हट जायगी, यह कहना वहां कुफ्र महापाप है ! अगर अंगरेजी की कोई चीज वहां नहीं है, तो वह है उनकी कार्य-क्षमता। हां, दिल्ली के देवता लगभग हर बात में भारतमाता की कसम खाने और गांधीजी की दुहाई देने से नहीं चूकते, लेकिन वह भी विदेशी भाषा में और विदेशी ढंग से ! अगर वे रंग की मजबूरी को हटा सकते, तो शायद उससे भी बाज नहीं आते।

मुखपात्री–दिल्ली में क्या कोई स्वदेशी भावनावाले नहीं हैं ?

युधिष्ठिर– दिल्ली में कोई-कोई स्वदेशी भावना वाले भी हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु उनकी हालत तो 'जिमि दशनन महँ जीभ बिचारी'–जैसी है। एक विभाग के मुखिया ने कुछ ऐसी ही अनधिकार चेष्टा की– वह अंगरेजी शब्दों को जमा करके उन्हें हिन्दी-जामा पहनाने की कोशिश करने लगे। दिल्ली के महा-

देव को किसी तरह पता लग गया। फिर तो वह फटकार पड़ी, जो ऐसे अनधिकार-चेष्टाकारियों को जिन्दगी भर न भूलेगी। दिल्ली के देवताओं को हिन्दू-एँग्लो-इंडियन इसीलिये कहना होगा, कि उनके अन्तस्तल में न हिन्दू का भाव है, न एँग्लो इंडियन ही वे अपने को कह सकते हैं। हां, एक बात है। एँग्लो-इंडियन इस देश में उड़ते पंछी ही रहे, जिनको याद करने के लिए इतिहास बाध्य नहीं होगा। आर्थिक तथा दूसरी तरह के पुर्ननिर्माण की बात राम जाने, किन्तु भारत की भूत और भविष्य की संस्कृति को तो इनसे कोई आशा नहीं दिखाई पड़ती।

भगवानदास--इनकी चलेगी तब तो दिल्ली कभी भी भारत का सांस्कृतिक केन्द्र नहीं ही बनेगी।

युधिष्ठिर-जो भी हो, बहुतों की इच्छा न रहते भी भारत की राजधानी तो आखिर दिल्ली हो ही गई। कन्नौजाधिपति जयचन्द के सामने यहां का राजा एक सामन्त से बढ़कर नहीं था--दिल्ली कन्नौज के सामने पनभरनी दासी से अधिक महत्व नहीं रखती थी--किंतु तुर्कों ने दिल्ली में ही डेरा डाला और अपना झंडा गाड़ दिया। अंगरेज भी अछता-पछता कलकत्ता से दिल्ली उठ आए और अब दिल्ली ही स्वतंत्र भारत की भी राजधानी बन गई है। हम इसके साथ मुहम्मद तुगलक का-सा बरताव करने के पक्षपाती नहीं हैं और न अकबर का ही रास्ता लेना चाहते हैं; किन्तु क्या दिल्ली यथार्थ में भारत की आठवीं पुरी बन सकती है? गांधीजी जाते-जाते उसकी नींव तो रख ही गए हैं, उसे एक राष्ट्रीय तीर्थस्थान तो बना ही गए हैं। काशी, काञ्ची, अवन्तिका केवल मोक्षदायिका ही नहीं रहीं, उन्होंने संस्कृति, साहित्य और कला के विकास में भारी भाग लिया था, जिसकी ओर दिल्ली के आज के देवताओं का ध्यान भी नहीं है। उनके संस्कृति-प्रेमी की कसौटी यही है कि कितनी जल्दी सारा महाप्रासाद राष्ट्रीय संग्रहालय के रूप में परिणत होता है और मध्य-एसिया-म्यूजियम को उसके सड़े स्थान से हटाकर यहां लाया जाता है। दिल्ली के साहित्य-प्रेम की कसौटी होगी कि कितनी जल्दी वहां का विश्वविद्यालय हिन्दी को अपना लेता है। आज इसकी आशा नहीं हो सकती है। दिल्ली के शिक्षा-मंत्री और उनके सचिव के बारे में कुछ कहना तो सूरज को दीपक दिखाना है। जब दिल्ली के देवताओं का अंगरेजी का ही ओढ़ना-बिछौना अंगरेजी का ही भोजन-चबेना है, तो दिल्ली से भारतीय साहित्य के लिए क्या आशा की जा सकती है?

भगवानदास--साहित्य के प्रसार में रेडियो का भी हाथ है।

युधिष्ठिर--वह सचमुच वाग्देवी की वाणी है, किन्तु उसका भी वही रास्ता है, जो दिल्ली के तैंतीस हजार देवताओं का। दिल्ली के महादेव, शिक्षा-मंत्री

और दिल्ली-रेडियो को यह भी खयाल नहीं है, कि कम-से-कम उसके खंभे तो हिन्दी की भूमि में हैं। दिल्ली का रेडियो लंदन का कान काटना चाहता है। प्रोग्राम के घंटों और मिनटों को देखिये, तो मालूम होगा, कि सचमुच "हनोज दिल्ली दूरस्त"। अब तो मानो मथुरा नहीं, दिल्ली तीन लोक से न्यारी, महादेव के त्रिशूल पर अपने को खड़ा समझती है।

महीप—दिल्ली में ही हुए एसिया-सम्मेलन के एक एसियाई प्रतिनिधि कह रहे थे—"एसियाई सम्मेलन था, यूरोपीय साम्राज्यवाद के खिलाफ हम अपनी आवाज उठा रहे थे और बोलते थे हम लोग अंगरेजी और फ्रेंच में! कैसी विडम्बना है यह!" इस वक्त तो खैर, विडम्बना का सवाल नहीं उठता। विडम्बना तो तब होती है, जबकि दिल्ली के देवताओं की आप्रलय—अर्थात् जब तक दम-में-दम है, तब तक— अंगरेजी और अंगरेजियत को कायम रखने की दृढ़प्रतिज्ञा पर ध्यान जाता है!

भगवानदास—क्या दिल्ली कभी भी कला में वृद्धि करेगी?

युधिष्ठिर—क्यों नहीं करेगी? अगर दिल्ली के वर्तमान देवता मोहिनी को अमृत वितरण करते समय केतु बनकर पाँती में बैठ गए होते, तो जरूर मुश्किल था। हाँ, उनके रहते-रहते बहुत कम संभावना है कि दिल्ली कोई महत्वपूर्ण कला-केन्द्र बन सकेगी। कला अर्थात् मूर्तिकला, चित्रकला, नृत्यकला, अभिनयकला, संगीतकला—इन सबका संबंध अतीत से चले आये उस भारतीय प्रवाह के साथ है, जिसका परिचय दिल्ली वाले देवता करना ही नहीं चाहते। फिर उस महादेव की दिल्ली कैसे आठवीं पुरी होगी, जो लखनऊ के अंतिम नवाब से बहुत समानता रखते उनके बराबर भी कला से संबंध नहीं रखते।

———

१५

भाई-भतीजे-भांजे

खोजी—आज हमारी सरकारी सेवा में क्या भाई-भतीजे-भांजे भरने के दरबे हैं, देखिये कश्मीरी[1] ब्राह्मणों को देखिये मेननों[2] को जान पड़ता है बुद्धि-विद्या का ठीका उन्हीं को मिला है।

महीप ने मुस्कराते हुए कहा—और मेरी आज एक कविता सुनाने की इच्छा है।

युधिष्ठिर—राजनीति से उतरकर महीप, तुम कविता भी करने लगे?

रामी—यदि महीप ने कोई कविता की है, तो सुनाने दीजिये युधिष्ठिर भाई, मैं समझती हूँ स्वामीजी और भगवान भाई को उजुर नहीं होगा।

मुखपात्री—रोज-रोज मीठा खाते-खाते कभी-कभी नमकीन खाने की भी इच्छा हो उठती है।

भगवानदास—और मैं नहीं समझता, महीप कोरी कविता के शौकीन हो गए हैं। सुनाओ महीप भाई, तुम्हारी भी कविता सुन लें।

रामी—और मैं वचन देती हूँ, यदि कविता कसौटी पर ठीक उतरी, तो मैं अपनी छोटी बहन कमला से कहूँगी—क्यों पास में महीप जैसा कवि रहते तू अपनी काव्य-प्रतिभा को इधर-उधर बिखेर रही है।

खोजीराम—अच्छा तो महीप, पारितोषिक भी ठीक हो गया, अब झटपट कविता सुना दो।

महीप—कविता तो उपेन्द्रचन्द्र मल्लिक ने की है और सो भी अंग्रेजी में। मैंने उसकी हिन्दी में तुकबन्दी-भर कर दी है। सुनिये—

मेनन मेनन चारों ओर, मेनन शासित देश,
मेनन काले मेनन उजले, मेनन खाकी वेष।
मेनन ब्याहे मेनन क्वांरे, मेनन छोड़े फिरे से ब्याहे,
मेनन राज - निवेश, मेनन बद या बेस।
मेनन मेनन चारों ओर, मेनन शासित देश।
मेनन हमारे दायें बायें, मेनन हमारे सीस,
क, ख, मेनन ख, ग, मेनन, मेनन का से हा।
बुद्धिक मेनन बुद्धू मेनन, हँसमुख मेनन दुर्मुख मेनन,
कायर मेनन हर्षुल मेनन, मेनन अग्नी वेश।

बोले नेहरू हंकारे पटेल जब, मेनन शासित 'देश,
दूर की भूमि देशी राजे, प्रांते होवे अथवा केंद्रे,
जगह सभी और सभी काम में, मेनन वहां है पहुँचा मिलता,
मेनन चतुरे मेनन चंटे, मेनन साँचे मेनन काँचे।
मेनन धुर्त्ते मेनन सुस्ते, मेनन करे प्रशास,
बोले नेहरू हंकारे पटेल जब, मेनन शासित देश।

भगवानदास—यह मेनन क्या चीज है? यह संस्कृत का शब्द तो नहीं है। अंग्रेजी मैं थोड़ा ही जानता हूँ, हो सकता है, किसी दूसरी भाषा का शब्द हो।

महीप—न यह अंग्रेजी का शब्द है न किसी और भाषा का। यह शुद्ध भारतीय शब्द है। यह केरल (मलावार) देश की एक जाति की उपाधि है।

रामी—लेकिन "मेनन-शासित-देश" क्यों कहा?

महीप—क्योंकि हमारे देश के शासकों का बाहरी खोल उतार दीजिए, तो भीतर से एक-न-एक मेनन जरूर निकल आयेगा।

रामी—यह तो सुनने की बात है, जरा बतलाओ तो। हमने तो लंदन के अपने राजदूत मेनन का ही नाम अभी तक सुना था।

महीप—अच्छा तो दो वर्ष पहिले की अधूरी [२]सूची सुनिये—

(१) क. अ. गंगाधर मेनन, अटर्नी जेनरल, त्रावन्कोर-कोचीन युक्त-राज्य।
(२) क. क. मेनन, पुलिस डिप्टी-सुपरिन्टेन्डेन्ट, मद्रास।
(३) क. म. मेनन, सचिव, त्रावन्कोर-कोचीन युक्त-राज्य (पहले भारत सरकार के विकास-सचिव)।
(४) क. प. स. मेनन, सचिव, परराष्ट्र विभाग भारत-सरकार।
(५) क. र. क. मेनन, सचिव अर्थ-विभाग, भारत-सरकार।
(६) ग. (गोविन्द) मेनन, न्यायाधीश, मद्रास हाईकोर्ट।
(७) ट. ग. मेनन, भारत सरकार के लंका में व्यापार-कमिश्नर।
(८) ट. स. मेनन, आई. सी. एस,।
(९) प. अ. मेनन, युक्तसचिव, विदेश-विभाग, भारत-सरकार।
(१०) प. ग. मेनन, मन्त्री कोचीन।
(११) प. म. मेनन, सचिव स्वास्थ्य विभाग, भारत-सरकार।
(१२) म. (माधव) मेनन, मंत्री स्वास्थ्य और शिक्षा विभाग मद्रास।
(१३) म. ग. मेनन, प्रथम सचिव युक्तराष्ट्र-संगठन-भारतीय प्रतिनिधि-मंडल।

२—देखिये परिशिष्ट अध्याय १५ और १२ भी।

(१४) ल. (लक्ष्मी) मेनन, युक्त राष्ट्र संगठन के पेरिस-अधिवेशन के भारतीय मंडल की सदस्या (अब युक्त-राष्ट्र-संगठन के सचिवालय के महिला-विभाग में उच्च-कर्मचारिणी।)

(१५) व. क. क. (कृष्ण) मेनन, इंगलैंड में भारतीय राजदूत।

(१६) व. क. र. मेनन-सचिव, यातायात-विभाग, भारत-सरकार।

(१७) व, ग. मेनन, विशेष कर्तव्य–नियुक्त-अफसर मद्रास।

(१८) व. य. मेनन, परामर्शदाता, राज्य-विभाग, भारत-सरकार।'

रामी–कविता तो तुम्हारी महीप, कुछ ऐसी ही वैसी रही, यह कहने से खिन्न न होना। मैं तुम्हारे लिए कमला से सिफारिश करूंगी; लेकिन जो तुमने मेननों की सूची दी है, उससे तो जान पड़ता है, सचमुच भारत मेननमय है।

खोजीराम–आज उत्तर-प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, आसाम, बंबई, उड़ीसा, पंजाब सभी राज्यों के प्रधानमंत्री ब्राह्मण हैं। मद्रास, और मध्यभारत के प्रधानमंत्री भी ब्राह्मण रह चुके हैं, लेकिन क्या किया जाय, जब कि चाहे क्षत्रियों के हाथ में हो या अपने हाथ में, पिछले चार हजार वर्षों से हमारे सिर पर ब्राह्मणों का डंडा शासन करता आ रहा है।

भगवानदास–क्या मेनन केरल की कोई जाति है।

युधिष्ठिर–जाति नहीं, बल्कि नायर जाति की कई उपाधियों में यह एक उपाधि है। नायरों में मेनन, वारियर, पनिक्कर, पिल्ले आदि कई उपाधियां होती हैं। उत्तर वालों को मालूम नही, इसलिए वह समझते हैं कि मेनन कोई अलग जाति है। समाज में इनका स्थान कुछ विचित्र सा है।

रामी–विचित्र-सा क्या ? क्या वह अन्त्यज अछूत तो नहीं हैं ?

युधिष्ठिर–नहीं, वह अन्त्यज नहीं उच्चज है। केरल में ब्राह्मणों के बाद नायरों का ही नम्बर आता है। यही नहीं बल्कि शताब्दियों से नायर-कन्याओं के साथ ब्राह्मण प्रणय परिणय करते आये हैं। अभी बीस साल पहले तक बहुत ही कम समृद्ध और संभ्रांत नायर परिवार मिलते, जिनकी कन्या ब्राह्मण की परिणीता न होती।

रामी–जान पड़ता है, केरल के ब्राह्मण हमारे यहां से अधिक उदार हैं। ब्राह्मण से दूसरे नंबर पर होने से नायर क्षत्रिय होंगे। लेकिन हमारे यहां तो क्षत्रिय की कन्या से कोई ब्राह्मण ब्याह नहीं कर सकता।

युधिष्ठिर–उदार नहीं हैं, बल्कि यहां से भी ज्यादा चंट हैं। नायर-कन्या को केरल का ब्राह्मणकुमार अपनी पत्नी नहीं बनाता, कन्या माता-पिता के घर में रहती है, उसका पुत्र भी नानी के घर में रहता है। सबका भरण-पोषण कन्या

के मातृकुल से होता है। अपने इन पुत्रों के भरण-पोषण के सुभीते के लिए ब्राह्मणों ने नायर-कुल के लिए विशेष विधान बना दिये हैं। उनके यहां घर की पैतृक संपत्ति—मातृक संपत्ति कहना चाहिए—का अधिकार केवल कन्याओं को होता रहा, पुत्र अधिकारी नहीं माने जाते रहे। अभी थोड़े ही दिन हुए, जब कि नायर-पुत्रों को भी उत्तराधिकार मिलने लगा।

खोजीराम—तब तो केरल के ब्राह्मण जरूर हमारे यहां से भी चंट निकले।

युधिष्ठिर—इतना ही नहीं केरलीय ब्राह्मणों ने अपने कुल में संपत्ति का उत्तराधिकार केवल ज्येष्ठ-पुत्र के लिए रखा, कनिष्ठ पुत्रों को संपत्ति ही से नहीं ब्राह्मण कुलजा पत्नी से भी वंचित कर दिया, वह केवल नायर-पुत्रियों से संबन्ध कर सकते थे।

रामी—और इन्होंने नायरों में संपत्ति का अधिकार केवल कन्याओं को ही देकर अपनी परम चतुराई या स्वार्थान्धता का पूर्ण परिचय दे दिया। तो हमारे मेनन लोग उसी वंश के हैं, जिसमें ब्राह्मण-पुत्रों की संख्या पर्याप्त है।

युधिष्ठिर—पूरे ब्रह्म-क्षत्र हैं। यदि मेननों को आप अपनी जाति के पक्षपात का दोष लगाते हैं, तो वह दोष ब्राह्मणों पर भी आयेगा; ब्राह्मण ही नहीं, बल्कि उनके अवान्तर भेदों पर भी आयगा।

महीप— हां, मेननों और नायरों से कम आप नेहरू, गुरटु, काटजू, कौल, कुंजरू, कचरू, दर जैसे मैदानी काश्मीरी ब्राह्मणों[1] को सभी जगह छाये नहीं पायेंगे।

युधिष्ठिर—ऐसा क्यों होता है ?

महीप—खून पानी से अधिक गाढ़ा होता है, अतएव भाई-भतीजे-भांजे को भरने की दुष्प्रवृत्ति सभी जगह देखी जाती है।

युधिष्ठिर—लेकिन क्या यह स्वाभाविक नहीं है ? आखिर भाई-भतीजे-भांजे को व्यक्तिगत तौर से आदमी जानता है—योग्यता से परिचित होता है, इसलिए यह स्वाभाविक है, कि किसी पद के लिए पूछे जाने पर वह उसके लिए सिफारिश करे।

महीप—योग्यता ही नहीं, उसकी अयोग्यता को भी वह जानता है, लेकिन तब भी देखा जाता है कि दूसरे योग्य व्यक्ति से उसको पहले आगे बढ़ाया जाता है। आगे बढ़ाने में कहीं-कहीं तो बहुत नीचता का परिचय दिया जाता है। चार सौ पाने वाले आदमी को उठाकर दो हजार की जगह पर बिठा दिया जाता है। एक सज्जन एक प्रेस के सर्वाधिकारी बना दिए गए थे, जिन्होंने प्रेस कभी देखा तक नहीं था। एक-दो महीना रहने पर उन्हें स्वयं अपनी कमजोरी मालूम

१—देखिए परिशिष्ट अध्याय १५, १९।

हुई और अपने उन्हीं संरक्षकों की मदद से उन्हें किसी विदेशी दूतावास में भेज दिया गया।

युधिष्ठिर—यदि आप मेनन-सेन, बनर्जी-मुकर्जी, नेहरू-कोल केवल इन्हीं लोगों को दोष देना चाहते हैं, तो मैं कहूँगा आप जड़ पकड़ना नहीं चाहते। दुनिया के किसी देश को देखें, हर जगह ऊँचे दर्जो पर पहुंचे लोग अपने सम्बन्धियों का प्रबन्ध करते हैं। इंगलैंड में भी आप इसे देखेंगे। लेकिन उनके यहां जातिवाद इतना कड़ा नहीं है, ब्याह-शादी केवल अपनी ही जाति में नहीं की जाती। हमारे यहां तो अपनी ही जाति, नहीं अपनी ही उपजाति में सम्बन्ध होता है, जिसके कारण जाति-भाई का खयाल बहुत संकीर्णरूप ले लेता है।

खोजीराम—मैं मानता हूँ, जो अपने रक्त-सम्बन्धी होते हैं, उनसे आदमी की घनिष्टता होनी स्वाभाविक है। और यह ठीक है, यदि हमारे यहां की जाति-बिरादरी के बांध तोड़ दिये जांय, तो यह संकीर्णता कितनी ही हद तक दूर हो जायगी। लेकिन चाहे कितना ही खून के सम्बन्ध का खयाल हो, उसके कारण गदहे को रथ में जोतना तो अच्छा नहीं है। आखिर इससे देश का काम खराब होता है। अयोग्य आदमी कैसे अपने पद के दायित्व का निर्वाह कर सकता है ?

भगवानदास—कहते हैं अच्छे खानदान के पुत्र अपनी कुलागत शिक्षा-दीक्षा के कारण बहुत संस्कृत होते हैं। वह ऊँचे पद को देखकर चौंधिया नहीं जाते, बल्कि बिलकुल घर-सा अनुभव करते हैं और पानी में मछली की तरह तैरने लगते हैं।

महीप—शायद इसीलिए अब उच्चपदों और राजदूतों के स्थानों के लिए राजाओं और राजकुमारों को आगे बढ़ाने की कोशिश हो रही है।

भगवानदास—बहुत से राजाओं और राजकुमारों का मुझे परिचय है। उनकी संस्कृति केवल वेष-भूषा और खान-पान में अंग्रेजों की नकल तक सीमित है।

युधिष्ठिर—साधारण कुलपुत्रों के सम्बन्ध में भी नहीं कहा जा सकता कि वह संस्कृति-शून्य होते हैं। सांस्कृतिक चाल-व्यवहार को जन्मते ही कोई नहीं सीख लेता।

खोजीराम—राजाओं के लिए हमारे नेताओं को इतनी चिन्ता क्यों है ? राज-काज उनके हाथ से छीन लिया गया कहा जाता है, किन्तु उन्हीं में से आज कितने ही सर्वशक्तिमान राज-प्रमुख हैं; मोटी-मोटी रकमें तो सभी को पेंशन के तौर पर मिल रही हैं। उनके प्रासाद और मूल्यवान आभूषणों में से भी बहुत

कम ही लिया गया है। यदि फजूलखर्ची से काम न लें और बुढ़िया आंधी न आ जाये, तो उनके पास जो धन है, वह एक नहीं चार पीढ़ियों के लिए पर्याप्त है।

महीप—लेकिन मुझे कम विश्वास है, कि पहली पीढ़ी अगली पीढ़ी के लिए कुछ छोड़ेगी। यदि महाक्रांति ने बीच में ही उनके हाथों को खाली नहीं कर दिया, तो भी आदत बिगड़ी हुई है। वह कोई उत्पादक कार्य नहीं कर सकते, फिर जमा पैसा कितने दिनों तक चलेगा ? लेकिन सरदार की उन पर बड़ी कृपा रही। रियासतों के एकीकरण का जो काम हुआ, उसमें अपने बाद वह सबसे अधिक श्रेय राजाओं को देना चाहते हैं—"देश-भक्ति के नशे में चूर होकर राजाओं ने अपने सत्त्वों को त्याग दिया, इतिहास में इतना बड़ा त्याग कभी नहीं हुआ था।"

भगवानदास—आप इन सब बातों पर विश्वास करते हैं न ?

महीप—मैं विश्वास करूं या न करूं, किन्तु करोड़पतियों के अखबार गला फाड़-फाड़कर यही कह रहे हैं और स्वयं सरदार भी राजाओं की प्रशंसा करते नहीं थकते थे।

युधिष्ठिर—राजाओं की बात न सही किंतु रियासतों के एकीकरण में सरदार पटेल को श्रेय देना ही पड़ेगा। अंगरेजों ने भारत-भूमि छोड़ते समय केवल उसे दो टुकड़ों ही में नहीं बांटा था, बल्कि ऐसा ढंग लगाया था, कि भारत के सभी छ सौ छत्रधारी सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र हो जाय। १५ अगस्त १९४७ से पहले ही जगह-जगह ऐसा रङ्ग-ढंग] भी दिखलाई पड़ता था। त्रावन्कोर के दीवान अंग्रेजों के पिट्ठू रामस्वामी अय्यर की उछल-कूद हम लोगों को भूली नहीं है। इन्दौर भी होल्कर साम्राज्य का स्वप्न देख रहा था। हैदराबाद तो समझता था, कि उसके महान छत्रधारी होने में कोई विवाद नहीं है। मैं समझता हूँ महीप, बूढ़े सरदार में और कमियां हो सकती थीं, बेचारा नेत्रहीन है, केवल टटोलकर ही देखता था; किंतु छ सौ छत्रधारियों को खदेड़कर रियासतों को एक जगह लाने में उसने जो चतुराई दिखाई उसे मानना पड़ेगा।

महीप—आपके कहने का मैं मूल्य समझता हूँ। सरदार की ही दृढ़ता थी जो नेहरू हैदराबाद के मामले में अपनी ढुलमुलयकीनी का प्रमाण नहीं दे सके, यह मैं मानता हूँ। लेकिन, रियासतों के एकीकरण में जिसने सबसे बड़ा काम किया है, बल्कि कहिये ९० प्रतिशत से भी अधिक जिसको श्रेय देना चहिए, उसको भुलाया जा रहा है।

भगवानदास—वह कौन है ? जिसको भुलाया जा रहा है ?

महीप—रियासतों की जनता। यदि उसने अपने रजुल्लों को जरा भी शह दिया होता, तो एक ही साथ त्रावन्कोर, मैसूर, कोल्हापुर, बड़ोदा, इन्दौर, ग्वालियर,

उदयपुर, बीकानेर, जयपुर, त्रिपुरा, कूचविहार आदि सभी राजा उठ खड़े होते। फिर किसी की शक्ति नहीं थी, कि भारत को फिर अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की स्थिति में जाने से बचाता। वहां की जनता केवल चुप ही नहीं रही, बल्कि सारे भारत की जनता के साथ चलने के लिए तैयार थी। राजाओं को अपनी सेना पर विश्वास नहीं रह गया था। उन्होंने बहुत हिला-डुला के देख लिया, कि यदि और तीन-पांच किये, तो जो पेंशन और संपत्ति हाथ आई है, उससे भी हाथ धोना पड़ेगा, और फाके-मस्त बाट का भिखारी बनना पड़ेगा। भगवान भाई, यह बात सच है या नहीं ?

भगवानदास—मैं महीप बाबू से बिलकुल सहमत हूँ। कुछ रियासतों का मुझे व्यक्तिगत परिचय है। अंग्रेजों ने जाते वक्त जो किया, उसे देखकर उनका दिल हरा हो गया था। किन्तु जब अपने आस-पास के भूखे भेड़ियों को देखा, तो दिल सूख गया।

महीप—इसलिए राजाओं के आत्मत्याग और दूरदर्शिता का ढिंढोरा बिलकुल झूठा है और सरदार के मुंह से अनेक बार उसकी आवृत्ति तो और भी असह्य थी। अब उस स्वार्थ-त्याग की दुहाई देकर उनको और उनकी पौधों को बड़ी-बड़ी नौकरियों में भरने का उपाय रचा जा रहा है, यह अति है। जो मोटी-मोटी पेंशन उन्हें दी जा रही है, मैं नहीं समझता, जनता उसे अधिक दिनों तक बर्दाश्त कर सकेगी।

युधिष्ठिर—काफी इधर-उधर बहक चुके, हम "अंधा बांटे रेवड़ी, फिर फिर अपनों को देय" की बात कर रहे थे और चले गए राजाओं के ऊपर।

महीप—लंबे अर्थ में लेने पर यह भी अंधे की रेवड़ी है। अब राजाओं का देवपुत्र होना खतम हो गया। हमारे करोड़पति सेठ बड़े रुढ़िवादी हैं, नहीं तो कुछ दिनों में देखते, अधिकांश राजकुमारियां सेठों के अन्तःपुरों में दिखाई पड़तीं।

भगवानदास—और एक बात नहीं जानते महीप बाबू, सेठ दालमिया को किसी ज्योतिषी ने बतला दिया था, कि सेठजी का पुत्र चक्रवर्ती राजा होगा। इसीलिए वह ताबड़तोड़ तरुणियों से ब्याह रचाते चले जा रहे हैं। प्रधान मंत्री ने भारत को गणराज्य घोषित करके सेठजी के चक्रवर्ती पुत्र पाने की लालसा पर पानी फेर दिया, और उपप्रधान-मंत्री ने बीकानेर को राज्यशासन से वंचित करके दालमिया सेठ की अगले जनम की साध को भी धूल में मिला दिया। मुझे तो बूढ़े सेठ के ऊपर बड़ी दया आ रही है। अगली पीढ़ी और अगले जनम दोनों का ठीक-ठाक हो गया था, लेकिन अब मालूम होता है, सेठ को या तो मेकादो के वंश में जन्म लेना पड़ेगा या इंगलैंड की राजकुमारी के वंश में।

रामी–बड़े दुर्भाग्य की बात है, अब तो संसार में राजवंश भी बहुत गिने-चुने रह गए हैं। मालूम नहीं सेठजी के दूसरे जन्म लेते-लेते वह भी बच रहेंगे या नहीं।

महीप–नहीं रहे तो सेठ को इस पृथ्वी से आशा छोड़ देनी होगी और फिर किसी दूसरे ही लोक के बारे में ज्योतिषियों से पूछना होगा। अच्छा, अन्धे की रेवड़ी की बात तो जहां देखो तहां मालूम होती है। यदि दिल्ली में एक सिन्धी मंत्री पहुंच जाता है, तो जहां तहां से भाई-भतीजे-भांजे जमा करके आधी जगह उनसे भर देना चाहता है।

भगवानदास–केवल भाई-भतीजा-भांजा और आत्मीयता के कारण ही स्नेह नहीं होता। वाणभट्ट ने[१] "एकगोत्रता, एकजातिता, एक साथ पलना, एक देश-निवास, बार-बार दर्शन, एक दूसरे की स्नेह की बात सुनना, परोक्ष में उपकार करना या एक-स्वभावता" को स्नेह का कारण बतलाया है।

युधिष्ठिर–ऐसा पक्षपात बड़ा दोष है, इसको मैं स्वीकार करता हूँ; किन्तु मनुष्य पत्थर नहीं है, उस पर हर एक कार्य का प्रभाव या प्रतिप्रभाव पड़ता है। जो उसके आत्मीय हैं, उनके कष्टनिवारण को वह अपनी जिम्मेदारी समझता है।

महीप–सो सब मानता हूँ, लेकिन आपको मालूम है, कि इस अंधे की रेवड़ी के अनुसार कितनी संस्थाएं परिवार की संपत्ति बन गई हैं। यदि परिवार के लोग भी भरते, किन्तु योग्यता में कोई कमी न होती, तब भी कोई बात थी। कलकत्ता विश्वविद्यालय को ले लीजिये, आशुतोष मुखोपाध्याय ने उसके लिए बहुत किया; किन्तु आज जान पड़ता है, वह मुखोपाध्याय-परिवार, उसके सम्बन्धियों तथा गांवपुर के रहनेवालों की संपत्ति बन गया है। कभी साला उप-कुलपति बनता है, तो कभी बहनोई। अध्यापकों में भी उनकी भरमार देखी जाती है। विश्व-विद्यालय को जहां सबसे योग्य विद्वानों का केन्द्र होना चाहिए था, वहां थोड़े से-को छोड़कर उसमें बस पिंजरापोल की गायें जमा हो गई हैं। मुझे डर लग रहा है, कि कहीं मालवीयजी के लगाये भव्य पौधे हिन्दू-विश्व-विद्यालय की भी वही हालत न हो; गोविन्दजी को सावधान रहने की आवश्यकता है।

युधिष्ठिर–लेकिन उपाय क्या है? यदि किसी संस्था या मंत्री-विभाग में सिन्धी आता है, तो सिन्धियों को भर देता है; पंजाबी आता है, तो पंजाबियों को; मद्रासी आता है तो चारों-ओर वही-वही दिखाई देने लगते हैं।

१–"एकगोत्रता वा, समानजातिता वा, समं संबर्धन वा, एकदेशानिवासो वा, दर्शनाभ्यासो वा, परस्परानुरागश्रवणं वा, परोक्षोपकारकरणं वा, समान-शीलता वा स्नेहस्य हेतवः।"–हर्षचरित

खोजीराम—और यदि कायस्थ आता है तो कायस्थों को भरना शुरू कर देता है। शायद आप लोगों को मालूम नहीं, कि कलकत्ता हाईकोर्ट को कायस्थों की मिलकियत कहा जाता है। डाक्टर राधाविनोद पाल जैसा योग्य न्यायाधीश कायस्थों के षड्यन्त्र के मारे वहां टिक नहीं सका।

रामी—पटना और प्रयाग हाईकोर्टों के बारे में भी यही बात सुनाई पड़ती है।

युधिष्ठिर—लेकिन जिन जातियों का आप नाम नहीं ले रहे हैं, वह दूध की धुली तो नहीं हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को देखिये, वह ब्राह्मणों का गढ़ बना हुआ है। काशी का गवर्नमेन्ट कालेज ब्राह्मणों का गढ़ तो होना ही चाहिए, क्योंकि अ-ब्राह्मण देश में भारी संख्या में रहने पर भी पुरोहिती और व्यास-गद्दी के अभाव में संस्कृत की ओर खिंचते नहीं। डाक्टर मंगलदेव शास्त्री अपनी योग्यता के कारण किसी तरह वहां प्रधानाचार्य हो गए। ब्राह्मणों ने उनका नाकों दम कर दिया, "जिमि दशनन मँह जीभ बेचारी" बनकर दिन काटना पड़ा।

रामी—काशी संस्कृत कालेज में इतना ही नहीं है। वहां किसी समय ब्राह्मणों का प्रभुत्व था, तो वह औरों को आने देना नहीं चाहते थे, और आज सरयूपारीण ब्राह्मण किसी दूसरे को वहां घुसने देना नहीं चाहते।

मुखपात्री—बड़ा गोत्रोच्चार हुआ, लेकिन रास्ता क्या है?

महीप—सारे गोत्रोच्चार के लिए तो यहां न किसी के पास समय है, न शक्ति। उसके लिए तो कहना चाहिए—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिंधु-पात्रे,
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानामीश, पारं न याति॥

१६

प्रतिद्वन्द्वी के प्रति उदारता

मुखपात्री–आज मुझे ही एक प्रश्न रखने दीजिये। और कुछ नहीं, युद्ध के बारे में मैं कुछ कहना चाहता हूँ। आप जानते हैं ही, कि मैं सारे भूतों (प्राणियों) में अ-द्रोह को मनुष्य का चरम आदर्श मानता हूं। जब प्राणि-मात्र में अद्रोह रखना है, तो मनुष्य की मनुष्य के प्रति तो और भी सहानुभूति होनी चाहिए। युद्ध के समय एक दूसरे पर बड़ी क्रूरता की जाती है, किन्तु विचारवान् पुरुष इस क्ररता को सदा बुरा कहते रहे हैं। आज भारत से हमारी स्वतन्त्रता के दुश्मन विदा हो चुके हैं, पाकिस्तान ने देश के एक भाग को काटकर अपना राज्य खड़ा कर लिया, और मैं यह मानता हूँ, कि वह तब तक छेड़खानी करता रहेगा, जब तक एक मरतबे अच्छी पटकी नहीं खायगा। लेकिन, आज मैं पाकिस्तान के बारे में आपके सामने प्रश्न नहीं करने जा रहा हूँ। हमारे देश में अपनी स्वतन्त्र सरकार है, लेकिन आपस में मतभेद है; उसी मतभेद का भयंकर परिणाम महात्माजी की हत्या हुई। इस लज्जाजनक नृशंस कृत्य का शोक और लांछन भारत कभी नहीं भूल सकेगा। मतभेद का दूसरा रूप आज हमें देश में उथल-पुथल के रूप में दिखाई पड़ रहा है।

खोजीराम–आपका अभिप्राय कम्युनिस्टों की उथल-पुथल से है; जो बंगाल तथा आंध्र में प्रचंड रूप धारण कर रही है।

मुख्पात्री–हां, मेरा मतलब उसी से है। आप जानते हैं, मेरे जैसे धर्म-भीरु और अपनी मान्यता के अनुसार धर्म पर चलने वाले व्यक्ति की नास्तिक कम्युनिस्टों के सिद्धांत के साथ कभी सहानुभूति नहीं हो सकती। अच्छे-बुरे सभी जगह होते हैं, और जिस दल या सम्प्रदाय में चरम उत्सर्ग के लिए जितने अधिक आदमी होंगें, उसमें उसी मात्रा में अच्छे आदमियों की संख्या भी होगी।

भगवानदास–स्वामीजी, शायद आपको कम्युनिस्टों को नजदीक से देखने का मौका नहीं मिला है, यदि वैसा होता तो आपको मालूम होता–

महीप–कि शैतान और कम्युनिस्ट में कोई अन्तर नहीं है; यही कहना चाहते हैं न?

भगवानदास–मुझे अपने शब्दों में कहने देना चाहिए था, खैर, कम्युनिस्टों में, मैं समझता हूँ, सबसे कम भले आदमी मिलेंगे।

मुखपात्री—मेरी दिगम्बर-जैसी मूर्त्ति और त्याग-तपस्या को देखकर यह न समझें, कि मैं किसी व्यक्ति या किसी सम्प्रदाय के सम्बन्ध में सहसा कोई निर्णय कर लूंगा। वृक्ष बीज से पहचाना जाता है। त्याग को मैं मानव का सबसे बड़ा गुण मानता हूँ। मैं इस वक्त न कम्युनिस्टों के लक्ष्य और सिद्धांत के बारे में कहना नहीं चाहता हूँ, और सिवाय सुनी-सुनाई बाजारी बातों के मैं उनके बारे में कुछ जानता भी नहीं; लेकिन, उनकी त्याग की बातें सुनी हैं, और अपने सुहृद्-मित्रों के सम्बन्धी होने से कुछ के बारे में अधिक जानने का भी मौका मिला है। इसलिए मैं यह मानने को तैयार नहीं, कि इतने त्यागवाले व्यक्ति नीच हो सकते हैं। अस्तु, मैंने तो कह ही दिया कि मुझे उनके सिद्धान्त का न ज्ञान है, न उसके बारे में कहना चाहता हूँ, सिर्फ यही जानना चाहता हूं, कि युद्ध लड़ते समय भी युद्ध के कुछ सदाचारिक नियम होते हैं, कुछ शिष्टाचार होते हैं, जिनका पालन करना आवश्यक होता है। कम्युनिस्टों से लड़ते समय हमारी सरकार क्यों इतना नीचे उतरती है ?

भगवानदास—नीचे कहां उतर रही है ? सरकार को जब वह मजबूर कर रहे हैं, तो वह चुपचाप कैसे रह सकती है ?

मुखपात्री—भगवानजी, आपसे और मुझसे और समय भी बात हो सकती है, साथ ही आप कांग्रेस के अत्यधिक पक्षपाती हैं, हाँ ईमानदारी से, इसमें शक नहीं। मैं चाहूंगा कि दूसरे भाई इसके बारे में अपनी राय दें। क्या इन नये शत्रुओं के साथ लड़ने के लिए किसी शिष्टाचार की आवश्यकता नहीं है ?

खोजीराम—मानवता का तकाजा है, कि चाहे कैसे ही शत्रु के साथ युद्ध होता हो, शिष्टाचार की सीमा माननी चाहिए। यद्यपि दुनियां में कहीं पर भी कम्युनिस्टों के साथ किसी शिष्टाचार का पालन नहीं किया गया, सभी जगह उन्हें कानून-बहिष्कृत माना गया; लेकिन इसके कारण संघर्ष ने जैसा वीभत्स और उग्र रूप धारण किया, उससे हमें सीख लेनी चाहिए और मर्यादा बांधनी चाहिए।

युधिष्ठिर—और यह भी सोचना चाहिए, कि ये साधारण प्रतिद्वन्द्वी नहीं हैं, ये ऐसे प्रतिद्वन्द्वी हैं, जो हो सकता है, दस या पन्द्रह वर्ष बाद आज के शासकों का स्थान ग्रहण करें। इसमें कोई संदेह नहीं, कि आज जो जबर्दस्त समस्यायें देश के सामने हैं, उनकी ओर से यदि आंखें मूंदी गईं, तरह दी गई, तो हमारे देश के लिए भी कम्युनिज्म छोड़ दूसरा रास्ता नहीं, वह चाहे प्रिय लगे या अप्रिय।

रामी—यह बात तो साफ मालूम होती है। मैं नहीं कह सकती समस्यायें कितने दिनों तक प्रतीक्षा करने के लिए तैयार हैं और कितने समय बाद भारत आज के चीन की जगह पहुंचेगा, किन्तु कुछ बातें स्पष्ट-सी होती जा रही हैं।

महीप—मैं रामी बहिन, बतलाऊँ कि कब लालभवानी भारत में पधारेंगी ! आज रूपये का सेर भर आटा-चावल बिक रहा है; इस समय लालभवानी हमारी सीमा पर खड़ी केवल झांक रही है। जब बारह छटांक का हो जायगा, तो उसका पंजा भारत की भूमि पर पहुंच जायगा; जब आठ छटांक का हो जायगा, तो एक पैर जम जायगा; जब चार छटांक का हो जायगा, तो लालभवानी कृष्ण की भांति त्रिभंगी मूर्ति धारण करके हमारी भूमि पर अवस्थित हो जायगी और निम्नवर्ग से लेकर सारी साधारण जनता "भइ प्रकट कृपाली, दीन दयाली, बहुजन की हित-कारी" कहते गीत गाने लगेगी। और एक छटांक पहुंचने पर लालभवानी के न मानने वाले नास्तिक और विरोधी भारत-मही में बहुत थोड़े रह जायंगे।

खोजीराम—तुमने तो भाई महीप, क्रांति के नापने का थर्मामीटर बना दिया, जिससे आंख न रखने वाला भी वस्तुस्थिति को जान सकता है।

युधिष्ठिर—लेकिन हमें लालभवानी पर बहस नहीं करनी है, सवाल यह है कि भवानी के सेवकों, कम्युनिस्ट शत्रुओं के साथ सरकार को कैसा बर्ताव करना चाहिए।

मुखपात्री—दूसरे देशों में उनके विरुद्ध कैसे हथियार उठाये जाते हैं, हमें उसका खयाल नहीं करना चाहिए। हमारे देश की संस्कृति और महान् नेता गांधी की शिक्षा हमें बतलाती है कि शत्रु के प्रति भी उदार होना चाहिए।

भगवानदास—अर्थात् शत्रु को प्रहार करने के लिए आते देखकर अपना हथियार छोड़ देना चाहिए।

मुखपात्री—अगर हथियार लेकर आपसे लड़ने आ रहा हो; तो मैं नहीं कहूँगा कि आप शस्त्र त्याग दें, मैं महात्माजी की भाति शस्त्र-त्याग नहीं पसन्द करता; क्योंकि जो बात साधारणतया व्यवहार्य नहीं दीख पड़ती, उसे लोगों से मनवाने का प्रयत्न निष्फल है। युद्ध के समय आये शत्रु के खिलाफ आप भले अपना हथियार उठायें, लेकिन जो बन्दी हो गया है, उसके साथ क्रूरता अच्छी नहीं है।

भगवानदास—क्रूरता नहीं की जाती स्वामीजी, यह झूठा प्रोपेगण्डा है।

मुखपात्री—प्रोपेगण्डा के सब साधन तो कांग्रेस और उसके समर्थकों के पास हैं। जब दो चार व्यक्ति मारे जाते हैं, तब कहीं किसी अखबार में जरा-सी खबर छप जाती है। मैं युधिष्ठिरजी से जानना चाहूँगा, कि जिन कारणों से कम्युनिस्टों ने बङ्गाल के जेलों में भूख-हड़ताल की और उनमें से एक जेल के भीतर मरा, बाहर सड़कों पर असन्तोष प्रकट करने के लिए कई पुरुष ही नहीं स्त्रियां भी गोली से मरीं, तब उनकी मांगों को सरकार ने माना; क्या उनकी शिकायतें उचित नहीं थीं ?

युधिष्ठिर—हां, कम्युनिस्ट बंदियों के साथ उचित बरताव नहीं हो रहा था। १९४९ में भी जब देवली में बंदियों ने भूख हड़ताल की, उस समय वहां चार आना सेर दूध मिलता और चार आना सेर मांस। आज कलकत्ता में मांस का दाम सोलह गुना है और दूध का छ गुना से कम नहीं, अर्थात् जो उस समय का छ आना था, वह आज के दो-ढाई रूपयों के बराबर है। देवली के बंदियों ने छ आना पैसे को भोजन के लिए अपर्याप्त समझकर भूख-हड़ताल की थी और अंग्रेज सरकार ने बिना किसी आदमी को मृत्यु-मुख में ढकेले दैनिक भोजन के लिए बारह आना मंजूर कर लिया, जो आज के चार-पांच रुपये के बराबर है। बंगाल सरकार उससे आधा भी देने के लिए तैयार नहीं, और हर तरह से बंदियों को उत्पीड़ित और अपमानित करना चाहती है। आखिर ये बंदी शिक्षित और संस्कृत हैं। उनमें कई ऐसी मेघावी हैं, जिन्होंने विद्या, विज्ञान या राष्ट्रीय राजनीति में बहुत ऊँचा स्थान पाया होता, यदि उधर का रास्ता लिया होता। वह कोई ऐसा काम नहीं करते, जिसकी अदूर भविष्य में तत्काल वैयक्तिक या दलगत लाभ के लिए संभावना दीख पड़ रही है। उन्हें स्वतन्त्र जीवन से वंचित करके आपने अनिश्चित काल के लिए जेलों में डाल दिया है। जिस आदमी को हाथ-पैर बांधकर पटक दिया गया, उस पर शस्त्र चलाना कोई वीरोचित काम नहीं है।

भगवानदास—तो आपका मतलब है कम्युनिस्टों के लिये जेल में पहुंचते ही वहां राजप्रासाद तैयार कर दिया जाय?

युधिष्ठिर—ढाई रुपया रोज का भोजन आज के जमाने में राजप्रासाद की बात नहीं कही जा सकती, यह आप स्वयं समझते हैं। उनको जीने के लिए तो कुछ बातें करनी जरूरी हैं। आप जिद करके उन्हें यदि कुचलना चाहेंगे, तो वह कुचले जाने के लिए तैयार हो जायंगे; लेकिन अपनी आन से नहीं डिगेंगे। उनके घोर शत्रु भी उन पर कायर होने का दोषारोप नहीं करते। और उनकी मांगें भी ऐसी नहीं थीं—विशेषकर भोजन-छाजन के सम्बन्ध में—जिन्हें असम्भव कहके ठुकरा दिया जाय। स्वदेशी सरकार होने के जोश में अंधेर-खाता नहीं करना चाहिए। लोग सरकार को दोष देते हैं, कि वह अपने प्रतिद्वन्द्वियों और बन्दियों के उत्पीड़न और खामखाह कष्ट देने में अंग्रेजी सरकार से भी ज्यादा क्रूर है, इसका क्या जवाब है?

मुखपात्री—हमारे देश में धर्म-युद्ध की परिपाटी पुरानी रही है। हम समझते हैं, कि उसे बरताव में लाना चाहिए। अधर्म-युद्ध से सारा राष्ट्र पतन की ओर जाता है। धर्म-युद्ध का एक नियम यही होना चाहिए कि बंदी होने पर उनके साथ सहृदयतापूर्ण मानवोचित व्यवहार हो। आखिर वे पराये नहीं हमारे ही हाड़-मांस

हैं, हमारे कितने ही कांग्रेसी नेताओं के सगे-सम्बन्धी भी उनमें हैं, उन्हें क्यों हम हिंस्र जंगली जन्तु समझकर उनके साथ निष्ठुर बरताव करते हैं ?

भगवानदास—वह भी तो तेलंगाना में जंगली जन्तु-सा बरताव करते पांच सौ कांग्रेसियों को मार चुके हैं ?

मुखपात्री—पत्रों से हमें एकतरफा खबरें मिल रही हैं। यह बतलाया जाता है कि उन्होंने पांच सौ कांग्रेसियों को मार डाला, किन्तु यह नहीं बतलाया जाता, कि कम्युनिस्टों में से कितने पुलिस की गोलियों के शिकार हुए। केवल गोलियों के भरोसे उनको दबाने में कोई कहीं सफल नहीं हुआ।

खोजीराम—यदि कभी भारतवर्ष में कम्युनिस्ट अपना शासन स्थापित करने में सफल होंगे, तो मैं कहूँगा, चीन में चाङकैशक की भांति हमारे यहां उसका श्रेय हमारे प्रधान-मंत्री और उप-प्रधान-मंत्री को देना होगा।

भगवानदास—क्या उल्टी बात कर रहे हैं ? हमारे दोनों नेता चाहते हैं कि कम्युनिज्म का संसार में भी नाम-निशान न रह जाय, और आप उन्हें ही उसका आवाहन-कर्त्ता बतला रहे हैं।

खोजीराम—मैं ठीक कहता हूं, ऐसे व्यक्ति को भी श्रेय दे सकते हैं, जो प्रतिरक्षा की क्रियाओं को न करके शत्रु के सफल होने में सहायक होता है। मैं इसी अर्थ में उन्हें आवाहन-कर्त्ता कहता-मानता हूं। आखिर "उल्टा नाम जपे जग जाना, वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।"

युधिष्ठिर—यदि वैसा ख्याल न भी हो, तो भी मानवता के नाते हमें उनके साथ संवेदना रखनी होगी, यद्यपि उसका अर्थ यह नहीं है, कि उनके कार्य में आप सहभागी हों।

महीप—मैं कम्युनिस्टों का प्रशंसक हूं। उनकी ईमानदारी पर मुझे शक नहीं है। उनमें कमियां भी हैं, किन्तु साथ ही यह भी मानना पड़ेगा, कि उनमें कितने ही गुण भी हैं। अनुशासन में तो उनकी पार्टी अद्वितीय है। भारत में यदि कोई विराट् आर्थिक और राजनीतिक क्रान्ति होगी, तो उसमें कम्युनिस्ट ही वीरता दिखलाने में सबसे आगे रहेंगे। जो आज कहते हैं कि सिवाय एक गोली के कम्यु-निस्ट अचिकित्सनीय हैं, उन्हें यह भी देखना होगा, कि आज के शासन का सबसे अधिक शक्तिशाली शत्रु है कम्युनिस्ट पार्टी। सभी वाम-पंथियों का सहयोग लेने पर कम्युनिस्ट पार्टी ऐसा दल है, जो आज के शासकों का स्थान ले सकती है, अर्थात् वही उसके संभवनीय उत्तराधिकारी हैं। यदि इस बात को हमारे कर्णधार समझ लें, तो वह आतंक फैलाने की गलती नहीं करेंगे।

रामी—उनके साथ मानवोचित बरताव करने ही पर आप उनके विश्वासपात्र

होंगे। मैं तो कहूंगा, भारत सरकार को इस पार्टी के प्रति अपने रुख को बदलना चाहिए। इन्हीं के साथ नहीं दूसरे राजनीतिक बंदियों के साथ भी बरताव करने में विशेष सौहार्द्र रखना चाहिए, क्योंकि ये लोग साधारण चोर-डाकू नहीं हैं।

महीप—लेकिन चोर-डाकू बनाकर ही कितने कम्युनिस्टों को फँसाया जा जाता है।

युधिष्ठिर—अंधा-धुंध गिरफ्तारी और नजरबंदी केवल सरकार की अपनी कमजोरी को बतलाती है।

भगवानदास—अंधा-धुंध तो नहीं कह सकते। सरकार के लिए चारा नहीं रह जाता, तभी तो गिरफ्तारी होती है। हाल में देखा ही है, कि डा० लोहिया ने सरकारी कानून की अवहेलना की, न्यायालय ने उनको सजा दी, लेकिन सरकार ने उनको छोड़ दिया।

महीप—"प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दुरादस्पर्शनं वरम्।" डा० लोहिया ने क्या कसूर किया था? यही न कि नेपाल की उस निरंकुश राणाशाही के प्रति विरोध प्रकट किया, जिसने सारे देश को एक जबरदस्त कैदखाना बना रखा है। नेपाली जनता को उतना भी अधिकार नहीं है, जितना अंग्रेजी शासन में भारतवासी रियासती प्रजा को था। इस निकृष्टतम तानाशाही के खूनी हाथों से आज जनतन्त्रता का दम भरने वाले हमारी सरकारों के कर्णधार हाथ मिला रहे हैं; शुभ कामनाएँ ही नहीं भेज रहे हैं, बल्कि उनके शिष्टमण्डल भी वहां पहुंच रहे हैं। दिल्ली और काठमांडू में आजकल बड़ी घनिष्ठता है, यह जानते हुए भी कि नेपाल के स्वेच्छाचारी शासकों का भारतीय सरकार के ऊपर कभी विश्वास नहीं हो सकता, उसे हरदम डर लगा रहेगा, कि कहीं भारतीय जनता का रुख उनके प्रति कड़ा न हो जाय।

भगवानदास—लेकिन नेपाल तो पहले से स्वतन्त्र राष्ट्र है?

युधिष्ठिर—हम इस पर आगे कभी विचार करेंगे, इसलिए यहां अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। नेपाली प्रजा की दासता को देखते हुए कोई सहृदय या राजनीति से परिचय रखने वाला भारतीय उदासीन नहीं रह सकता। जिस समय हमारे पत्रों ने अपनी आवाज बन्द कर रखी थी, हमारे नेता नेपाली शासकों के साथ चोली-दामन बन रहे थे, और स्वतन्त्रता के पुजारियों पर नेपाल में क्रूर अत्याचार हो रहे थे, जेलों में उनके साथ पाशविक बरताव हो रहे थे, उस समय इस निर्भीक योद्धा ने नेपाल की मूक वेदना को प्रकट करने के लिए दिल्ली में प्रदर्शन किया, ताकि दिल्ली के देवताओं की नींद खुले। लेकिन दिल्ली के देवताओं ने लोहिया को पकड़कर जेल में बन्द कर लिया। क्यों जेल में बन्द किया? डा० लोहिया और उनके साथियों ने शान्तिपूर्ण ढंग से विरोधी प्रदर्शन करके भारतीयों

का ध्यान नेपाल की ओर आकर्षित करना चाहा। क्या यह अपराध का काम था ? क्या भारत के शासक दुनिया-भर के तानाशाहों का ढाल बनना चाहते हैं ? हम लोहिया और उनके साथियों का उनकी वीरता के लिए अभिनन्दन कर सकते हैं, किन्तु दिल्ली के शासकों को छोड़ने पर साधुवाद नहीं दे सकते।

भगवानदास—अपनी सरकार के कोई-कोई आचरण तो अवश्य हृदय को खिन्न कर देते हैं, किन्तु उसने कितने ही कार्य बड़े महत्वपूर्ण किये हैं, जो सदा स्मरणीय रहेंगे।

युधिष्ठिर—दीवाल पर जो पलस्तर पीछे लगता है, वही स्थायी माना जाता है। पहले का पलस्तर चाहे कितना ही अच्छा हो, लेकिन पीछे यदि भद्दा काला पोचारा फेर दिया जाय, तो वही आगे दिखाई पड़ेगा। मैं समझता हूँ, हमारे शासकों को दैव से भी अधिक शक्तिशाली तथा न्याय करने में अत्यन्त क्रूर इतिहास का कोई डर नहीं है। वह समझते हैं, आजकल जिस तरह करोड़पतियों के पत्र उनकी विरुदावली गा रहे हैं, समाचार-एजेंसियां उनकी यश गाथाएँ चारों ओर फैला रही हैं, उसी तरह वह इतिहास से भी करवा लेंगे।

महीप—अंग्रेज भी ऐसा ही सोचा करते थे और आज केवल भारतीय जन की इच्छा के विरुद्ध केवल उनके भक्त ही अंग्रेजों का यशोगान करना कर्तव्य समझते हैं। उन्हें अंग्रेजों से शिक्षा लेनी चाहिए। यह ठीक है, यदि उन्हें पांच साल और जीने और राज्य करने का अवसर मिल जाय, तो वह राज भोगकर अपने को कृतकृत्य समझेंगे। हां, लेकिन क्या इसे मानवोचित समझा जा सकता है ? मुझे इतना ही कहना है, कि अपने जिन प्रतिद्वन्द्वियों को वह कुत्तों की तरह समझते हैं, जिनके लिए गाली के अतिरिक्त उनके पास कोई शब्द नहीं है,उनमें बहुतेरे इतने उच्च आदर्श और त्याग के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग कर चुके हैं, जिसकी तुलना हमारे शासकों में शायद ही किसी से हो सके। वह सभी समस्याओं को हल करने में अपने को असमर्थ सिद्ध कर रहे हैं। यह समस्याएँ संभव हैं, उनके यही प्रतिद्वन्द्वी आके हल करें। यदि इंगलैंड के 'टोरी' और मजदूर पार्टी वाले यह जानकर काम करते हैं, कि शायद उन्हें एक दूसरे के लिए स्थान खाली करना हो, तो हमारे शासकों के लिए भी अपने राजनीतिक शत्रुओं के बारे में उदारता से काम लेना चाहिए, क्योंकि "अविवेक: परमपदास्पदम्"। उन्हें मानवता का खयाल करना चाहिए; मानवता का ख़याल न हो, तो इतिहास के क्रूर न्याय का खयाल होना चाहिए।

खोजीराम—चोरबाजारी और रिश्वत में कभी ही कोई करोड़पति सेठ पकड़े जाते हैं, किन्तु अधिकांश बेदाग छोड़ दिये जाते हैं।

महीप–अधिकांश तो पकड़े ही नहीं जाते। सन्देह होते ही किसी तरह उनके पास सूचना पहुंच जाती है।

खोजीराम–खैर, जो पकड़े जाते हैं, वह छोड़ दिये जाते हैं, या अहरन चुराके सूई का दान प्रायश्चित के लिए पर्याप्त समझा जाता है। फिर वह मूंछ पर ताव दे देश को सदाचार का उपदेश देते हैं, आर्थिक योजना के लिए सुझाव पेश करते हैं। समाज के इन घोर शत्रुओं को, जिनकी क्रूरता के कारण देश की अवस्था बदतर होती जा रही है, और कितनी ही जगह कितने ही नर-नारी अकाल के ग्रास बन रहे हैं। जहां उन्हें फांसी पर झुला देना चाहिए था, वहां वह हमारे सरताज बने फिरते हैं। एक ओर समाज के शत्रुओं, निकृष्ट स्वार्थ के लिए जघन्य काम करने वालों के साथ यह बरताव और दूसरी ओर राजनीतिक उच्चादर्श के लिए जीवन अर्पित करने वाले तरुण-तरुणियों को साधारण मनुष्य के अधिकार से भी वंचित रखा जाता है।

१७

समस्याएँ टाली नहीं जा सकतीं

खोजीराम—परिस्थिति बड़ी भयंकर मालूम होती है। मुद्रास्फीति[1] और आहार की हालत देखते हैं, तो जान पड़ता है, भीषण खड्ड के कगार पर खड़े हैं, गिरे तो कहीं ठिकाना नहीं लगेगा। कपड़े की हालत भी वही है। अर्धनग्न हैं। घर की हालत यह है कि लोग भारी संख्या में सड़ी झोंपड़ियों में रहते हैं। हमारे कारखानों की मशीनें और सेना के हथियार सभी मंगनी के हैं, किसी झपट में पड़ते ही आत्मरक्षा करना मुश्किल होगा। ऊपर से हमारे कर्णधार चींटी की चाल से भी चलते नहीं दीख पड़ते। वह अपने ही किनारे चक्कर काट रहे हैं और समझते हैं, कि बड़ी मंजिल मार रहे हैं। वह लोगों के मन को जैसे बात बनाकर दिलासा दे सकते हैं, वैसे ही समझते हैं कि उनके पेट को भी बात से भर सकते हैं। चारों ओर की समस्याओं को देखकर और अपनी अकर्मण्यता से मिलाकर पता नहीं लगता, कि हमारी समस्याओं को हटाने की किसी को फिक्र भी है। निम्नवर्ग तो पहिले ही से पीसा जा रहा था, अब मध्यमवर्ग[2] की अवस्था भी दयनीय हो चुकी है।

युधिष्ठिर—सारी निराशाओं के भीतर बस एक आशा की किरण आ रही है, वह यही, कि समस्याएं टाली नहीं जा सकतीं। आर्थिक कानून बड़े निष्ठुर होते हैं, वह किसी का मुंह नहीं देखते। तराजू की डंडी को देखा है न? यदि एक तरफ जरा भी कोई चीज रख दी जाय, तो दूसरी ओर का पलड़ा उठ जाता है। वैसे ही समस्याएँ गम्भीर होने पर आदमी का पैर उखाड़ देती हैं। जो समस्याओं के साथ खेल करना चाहता है, वह नहीं समझता कि वे उसके पैर उखाड़ देंगी।

महीप—शायद कर्णधारों को खयाल है, कि पैर धीरे-धीरे उखड़ेगा। सारे पैर को जमीन से उठने में दस-पांच साल लगेंगे।

खोजीराम—दस-पांच साल बाद ही सही, किन्तु पैर तो उखड़ेंगे, फिर मुंह के बल गिरना होगा।

महीप—वह समझते हैं, पैर किसी दूसरे के उखड़ेंगे, हम कितने दिनों तक जियेंगे? बस अपनी घानी की परवाह है। अभी तो चैन से बीत रही है। इसी तरह दस-पांच साल और चैन से चले जाने की आशा है। आखिर चीन में लाल-भवानी को आने में २० साल लगे। जैसे पुराने छकड़े को बांध-बूंधकर चलाया

जाता है, जैसे पुरानी नाव को लत्ता ठूंस–ठांसकर चलाया जाता है; उसी तरह हमारे नेताओं को विश्वास है–कुछ साल तो जीना है, उसमें इसी तरह हमारी नाव भी चल ही जायगी। उन्हें भारत में लालभवानी के पहुंचने की जितनी चिंता है, उससे ज्यादा परमाणु-बम वालों को है। वह चीन के रास्ते पर भारतवर्ष को नहीं जाने देंगे।

खोजीराम–चीन में बीस साल लगा, तो यहां भी बीस साल अवश्य लगेगा, यह कोई तर्क नहीं है।

महीप–तर्क नहीं है, किन्तु यह तो हम कह सकते हैं, कि अधिक-से-अधिक इतना ही समय लग सकेगा।

मुखपात्री–महीप बाबू, आप बीस साल के समय को भी अत्यधिक समझते हैं? शायद आपको खयाल नहीं है, कि लालभवानी के रास्ते में और बहुत-सी बाधाएं हैं। देख ही रहे हैं, जिस ओर श्री १००८ जगद्गुरु शंकराचार्य, श्री ब्रह्मानन्द जी महाराज चले जाते हैं, वहीं सब लोग पलक बिछाने के लिए तैयार हो जाते हैं। करपात्रीजी महाराज को देख ही रहे हैं, कितने लोग उनके पीछे श्रद्धा से पागल हो रहे हैं। योगिराज अरविंद, आनंदीमाई जैसे अवतार भारत में व्यर्थ तो नहीं हुए हैं। आप क्या समझते हैं, कि इतने आध्यात्मिक प्रभावों के रहते लालभवानी यहां पधार सकती हैं?

महीप–आध्यात्मिक प्रभाव यदि ईमानदारी का हो तो उससे और लालभवानी से कोई विरोध नहीं है। कौन-सा आध्यात्मिक प्रभाव हमारे देश में है? पश्चिमी देशों में भारत का नाम आते ही या तो फकीर का खयाल आता है, या हाथ और भाग्य देखने वालों का। लेकिन हम तो यहां अपने घर के भीतर कोई ऐसा चमत्कार नहीं देखते। हमें तो कोई ऐसा बांध दिखलाई नहीं पड़ता, जो देश के तख्ते को उलटने में बाधा डाले।

युधिष्ठिर–हां, तूफान आने के पहले समुद्र अत्यन्त शान्त रहता है, आंधी आने से पहले पीपल का पत्ता भी नहीं हिलता; वैसे ही हम भ्रम में रहेंगे यदि आज की नीरवता और निर्जीवता को देखकर इसे चिरशान्ति समझ लेंगे। लेकिन जिन लोगों को इस स्थिति से सबसे ज्यादा हानि होगी, वही मतवाले मालूम होते हैं और अपने आप बाढ़ रोकने वाले बांध पर दोनों हाथों फावड़ा चला रहे हैं।

भगवानदास–यह तो कहना ठीक नहीं मालूम होता। जिनको सबसे ज्यादा भय है, उन्हें तो रात-दिन नींद नहीं आ रही है, उन्हें चारों ओर भूत-ही-भूत दिखलाई पड़ रहे हैं।

महीप–भूत-ही-भूत देखने से शायद उनकी अकल मारी गई है, इसलिए जिधर से भय है उसी ओर भाग रहे हैं। खतरा बहुसंख्यक जनता के असन्तोष से है।

बहुसंख्यक जनता का असन्तोष चरम सीमा तक पहुँचेगा, जब कि उसके पेट भरने की कोई संभावना नहीं रहेगी। हम बतला ही चुके हैं, कि भूख सबसे भयंकर समस्या है। और उसी भूख-निवारक वस्तु के सम्बन्ध में क्या-क्या हो रहा है? चीनी में बालू मिलाया जा रहा है।

खोजीराम—बालू ही मिलाया जाता तब भी गनीमत थी, सुनते हैं उसमें फास्फेट मिलाया जा रहा है, क्योंकि फास्फेट का रंग चीनी से मिलता-जुलता है। यह तो आदमी को सीधे मारना है, फास्फेट अंतड़ियों को खराब करेगा, स्वास्थ्य को चौपट करेगा।

महीप—उन्हें लाख-दो-लाख मिलना चाहिए, किसी का स्वास्थ्य चौपट हो, उससे क्या मतलब? धर्मात्मा सेठ, जिन्होंने सात पीढ़ी से मांस-मछली को छुआ नहीं, सुन्दरवन से अजगर की चर्बी मंगाकर घी में डालते थे। कौन जानता है, उनके इस घी को कितने ब्राह्मण-भोजों में दिया गया, कितनी बार ठाकुरजी को भोग लगाया गया।

मुखपात्री—आजकल तो शुद्ध घी मिलना मुश्किल है। घी के नाम पर वनस्पति बिक रहा है।

महीप—वनस्पति कम-से-कम तेल तो है? मूंगफली, गरी, बिनौला इन्हीं के तेल का तो वनस्पति तेल बनता है। उसके पीछे न जाने लोग क्यों पड़े हुए हैं?

मुखपात्री—जब तक वह रहेगा, तब तक शुद्ध घी मिल नहीं सकता।

महीप—शुद्ध घी सबको किसी तरह से नहीं मिल सकता, क्योंकि जितने खाने वाले हैं, उनके अनुसार दूध देने वाली गायें नहीं। देखते हैं न, नगरों में शुद्ध दूध मिलना मुश्किल है। दस आने की जगह सवा रुपया देने पर भी शायद ही शुद्ध दूध मिले।

युधिष्ठिर—मुझे पानी से कोई चिढ़ नहीं, कुछ दूध भी तो होगा। यदि आधा भाग पानी है, तो सेर की जगह दो सेर ले लीजिये, आग पर चढ़ाकर औटा लीजिये। लेकिन डर है, पानी न जाने कहां का डाला गया है। क्या पता है, वह कीटाणुओं से भरा जल हो।

खोजीराम—जिस पानी का सुभीता रहेगा, वही मिलायेंगे।

महीप—देखिये, चीनी में फास्फेट मिलाया जाता, दूध में अशुद्ध कीटाणु भरा पानी और आटे में सेलखरी डाली जाती है, चावल में पत्थरों की छोटी-छोटी कंकड़ियां पड़ती हैं। मुझे तो अगर कोई शुद्ध चीज मालूम होती है, तो वह है अण्डा। अण्डा गन्दा है, तो उसे फोड़कर आप पहचान के फेंक सकते हैं। जो गन्दा नहीं वह शुद्ध है।

भगवानदास—महीप बाबू, आपको खाना हो तो खाइये, उसे शुद्ध-बुद्ध क्यों कहते हैं ? हमारे कितने भाई हैं, जिन्हें अण्डा फोड़कर दिखाने से वह कै करते-करते जान दे देंगे।

महीप—वह अभागे हैं "सकल पदारथ एहि जग-माहीं, करम-हीन नर पावत नाहीं।" फिर भगवान भाई, मैं धार्मिक शुद्धि-अशुद्धि की बात नही कह रहा था, मैं मिलावट के खयाल से कह रहा था। अण्डा ही एक पदार्थ है, जिसमें मिलावट नहीं हो सकती।

रामी—लेकिन, वह भी तो तीन-तीन आने का हो गया है, कहाँ एक पैसे, दो पैसे में मिलता था। किसी लड़की को कमजोर देखकर मैं उसकी मां से कह दिया करती थी, कि पाव-भर दूध में एक अण्डा फोड़कर पिला दो। दोनों समय तीन-चार पैसे का सौदा था, लेकिन आज सात आना लगेगा, कलकत्ता में तो और भी अधिक।

महीप—महंगाई की बात मत कहिये। जब तीन-तीन महीने में एक अरब रुपया केवल कपड़े में लटके रख लिया जाता है, तो वह क्यों न महंगा होगा ? फिर कपड़े की महंगाई का असर दूसरी चीजों पर क्यों नहीं पड़ेगा ?

भगवानदास—निराशा और अंधकार ही चारों तरफ हैं। भगवान् ही इस देश की रक्षा करें।

महीप—भगवान् तो कहीं दिखाई नहीं पड़ते। वह तो जान पड़ता है चिरकाल के लिए सो गए हैं, अथवा बूढ़े होकर अशक्त हो गए हैं।

भगवानदास—पुण्य का ह्रास हो गया, यज्ञ-हवन का रवाज उठ गया। भगवान् कैसे प्रसन्न होंगे ?

महीप—यज्ञ-हवन करने के लिए शुद्ध घी कहां से मिलेगा ? घी की जगह अजगर की चर्बी या वनस्पति घी मिलेगा। लड़ाई के समय तो करपात्रीजी महाराज बड़े यज्ञ कराया करते थे, आजकल वह चुप क्यों दीखते हैं ?

मुखपात्री—केवल अग्नि-मुंह से ही यज्ञ नहीं हुआ करता। आजकल जब से अन्न का अकाल पड़ने लगा, यज्ञ से सरकार ही नहीं लोगों का भी कान खड़ा होने लगा है।

भगवानदास—हमारे एक सम्बन्धी सेठ काशी में सवा सौ मन घी का यज्ञ कराना चाहते थे। वह निरवंश होते-होते बचे हैं, इसी के उपलक्ष्य में सेठानी की उसके लिए बड़ी लालसा थी। मुझसे सलाह ली। मैंने कहा—"भिड़ के छत्ते में अंगुली न डालें। अंग्रेजों के राज्य में पुलिस पलटन हुकमी थी। करपात्रीजी की भूल थी, जो दिल्ली में यज्ञ करने लगे, और विरोधी चारों ओर काला झंडा उठाके

कहने लगे—"एक तरफ हम लोग खाद्य बिना मर रहे हैं, बंगाल में साठ लाख मर गए, और यह साधु घी और अन्न को आग में फिकवा रहा है।" मैं उस दिन डाक्टर साहब से घी की कलोरी भी सुन गया था। मैं अच्छी तरह समझता था, कि घी जलाने से उसकी सुगंधि देवताओं के पास पीछे पहुंचेगी, पहले धर्म-विरोधियों को महंक मिलेगी। वह हल्ला करने लगेंगे—"यह सेठ आदमियों के आहार को आग में झोंक रहा है।" मैंने उन्हें ब्रह्म-भोज कराने की सलाह दी।

महीप—आपकी सलाह बुरी नहीं थी भगवान भाई, क्योंकि देवता अग्नि-मुखी ही नहीं होते, वह ब्राह्मण-मुखी भी हैं। ब्राह्मण के मुख में हव्य-कव्य डालने से वह देवता-पितर के पास पहुंच जाता है।

खोजीराम—तो सेठ ने ब्राह्मण के मुंह में घी या वनस्पति डाला या अजगर की चर्बी ?

भगवानदास—चर्बी और वनस्पति यह तो बेचने वाले जानें, लेकिन सेठ ने बड़ा भारी यज्ञ किया; भारी संख्या में ब्राह्मणों को भोजन कराया, दक्षिणा दी। भोज कराना कानून-विरुद्ध कहा जाता था, परन्तु कानून के रक्षक भी तो उस भोज में निमन्त्रित थे, फिर "सैयां भये कोतवाल अब डर काहे का ?" आपको महीप भाई, भोज से तो चिढ़ नहीं होनी चाहिए, क्योंकि उसमें अन्न खराब नहीं किया जाता।

महीप—खराब किया जाता है या नहीं यह तो डाक्टर साहब बतलायेंगे। डाक्टर पट्टाभि सीतारामय्या मेहनती पुरुष के लिए तीस सौ कलोरी की आवश्यकता मानते हैं। उस भोज में एक-एक भोजन-भट्ट ने पांच-पांच हजार कलोरी पेट में डाली होगी।

भगवानदास—कलोरी का हिसाब डाक्टर साहब के पास ही रहे, तो अच्छा है। हमको तो देखना है, अन्नपान ठिकाने लगा या नहीं।

महीप—ठिकाने तब लगता जब भूखे मजूरों को खिलाया जाता। यह तो "वृथा वृष्टिः समुद्रेषु" थी।

भगवानदास—सारे ब्राह्मण तो अघाये नहीं होते, उनमें भी कोई-कोई गरीब होते हैं।

युधिष्ठिर—अच्छा तो हमारे सामने आज साधारण समस्याएं नहीं हैं, भयंकर बाढ़ है। एक दो समस्या होती तो आदमी बारी-बारी से उनका हल निकालते, यहां तो चारों तरफ से वह बढ़ती चली आ रही हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं, कि यह बाढ़ सारे देश को रसातल पहुंचा देगी। इसका अर्थ यही है, कि जो लोग समस्या हल करने में बाधा पहुँचा रहे हैं, उन्हीं को वह पहले साफ करेगी। जो के

साथ घुन भी पिसेगा । जानते हैं न, बीस साल पहले चीन की अवस्था उतनी भयंकर नहीं हुई थी । उस वक्त समस्याएं आसानी से हल की जा सकती थीं । किन्तु विरोधी शक्तियां प्रबल होती गईं, उन्होंने हल नहीं होने दिया; आखिर अन्त में उनका वहां से सफाया हुआ । प्रश्न होता है, यदि यही दिन देखना था, तो पिछले बीस सालों में बीस लाख आदमियों को क्यों लड़ाई में मरवाया गया ? उससे भी अधिक संख्या को क्यों भूख से मरने के लिए मजबूर किया गया ?

भगवानदास–चीन को देखकर तो हमारी आंखें खुलनी चाहियें ।

खोजीराम–अभी तो समस्याओं के साथ खिलवाड़ ही किया जाता रहा है ।

भगवानदास–लेकिन अब तो चोरबाजारियों की धर-पकड़ में सरकार तत्परता दिखलाने लगी है । हमारे अपने भाई-बंधु विहार के एक करोड़पति उस दिन गया की सड़कों पर हथकड़ी डाले घुमाये गये ।

खोजीराम–भोले हैं आप । मंत्रियों के अपने और परिवार के नाम पिछले तीन सालों में जो जायदादें ली गई हैं, पहिले उन्हें जब्त करवाइये, तब चोरबाजारी दूर होगी, इस दिखावे से कुछ होने-हवाने की आशा नहीं है ।

भगवानदास–लेकिन योजना की ओर भी तो सरकार का ध्यान गया है ।

महीप–अर्थात् मार्च (१९५०) में योजना कमीशन की जो स्थापना हो गई । यह भी दिखलावा है, क्योंकि कमीशन अपने भारी-भरकम कार्यालयों और नौकरों की पलटनों द्वारा १५ वर्ष तक तो आंकड़े जमा करके बहस करता रहेगा । उसके ऊपर पहिला काम सौंपा गया है–"(१) भौतिक पूंजी और मानव स्रोतों के आंकड़े जमा करना ।" अब तक के जमा किये हुए आंकड़ों पर काम चालू करते यदि और आंकड़े जमा करने की बात होती तो कुछ आशा भी बँधती ।

भगवानदास–और दूसरे क्या काम कमीशन के ऊपर रखे गये हैं ?

महीप–"(२) देश के संपत्तिस्रोत के उपयोग के लिये एक अत्यन्त कार्यकारी और संतुलित योजना तैयार करना, (३) यह निश्चय करना कि कौन काम पहिले हाथ में लिये जायें, कौन जगह पहुंचने पर लिये जायं, और संपत्ति स्रोतों का विनियोग कैसे किया जाये, (४) आर्थिक विकास में बाधा डालने वाले तत्त्वों को बतलायें और योजना की सफलता की सहायक बातों का निर्देश करे; (५) योजना की प्रत्येक मंजिल के लिये सहायक साधनों के रूप-रंग का निश्चय करें; (६) समय-समय पर योजना की सफलता का मूल्यांकन करे; (७) अन्तिरिम सिफारिशें करता रहे ।

१८

समाजवाद की आवश्यकता

मुखपात्री—मैं तो सदा संस्कृत का विद्यार्थी रहा, जबर्दस्ती कोई बात कान में चली आई, तो बाहर की भी सुन ली। तरुणाई में मैंने समाजवाद का नाम कभी नहीं सुना था, किंतु अब वह बहुत सुनने में आता है, और जब अपने प्रधान-मंत्री को भी समाजवाद की प्रशंसा करते सुनता हूँ, तो समझता हूँ, कि यह कोई अच्छी चीज होगी। इधर सुन रहा हूँ, समाजवाद ही एकमात्र हमारी सारी व्याधियों की औषधि है। हम ब्रह्मवाद, मायावाद, अद्वैतवाद, द्वैतवाद आदि बहुत से वादों को सुनते और पढ़ते रहे। उनकी महिमा बहुत है। उनके द्वारा ऐहिक, पारलौकिक बहुत-सी कामनाएं सिद्ध होती हैं, किंतु जिन समस्याओं को मैंने पिछले कितने ही दिनों से सुना है, उन सबकी औषधि न ब्रह्मवाद है, न कोई दूसरा चिरन्तनवाद। यह समाज-वाद क्या है, यह समझ में नहीं आता।

युधिष्ठिर—समाजवाद को महीप जी समझायेंगे।

महीप—समाजवाद का मोटा अर्थ है, वह सिद्धान्त, जिसमें व्यक्ति की प्रधानता नहीं समाज की प्रधानता मानी जाती है।

मुखपात्री—लेकिन समाज तो कोई पृथक् चीज नहीं है, जो कि दुख-सुख का अनुभव व्यक्ति से अलग होकर करे। व्यक्ति से बाहर समाज नहीं है और दुख-सुख व्यक्ति को होता है।

महीप—तो बुद्ध के शब्दों में समझ लीजिए, जिसमें व्यक्ति नहीं बल्कि बहुजन का खयाल सबसे पहले आता है। बहुजन का ही अर्थ समाज समझ लें। "बहुजन-हिताय बहुजन-सुखाय" को जो मानता है, वही समाजवादी है। लेकिन उसको और स्पष्ट करने के लिए कहना पड़ेगा—जिस सिद्धान्त में उत्पादन के साधन—वस्तुओं के निर्माण की उपकरण-सामग्री—का स्वामित्व कुछ व्यक्तियों के नहीं, बल्कि समाज के हाथ में होना माना जाता है, उसे समाजवाद कहते हैं। इसके विरुद्ध जिस सिद्धांत में समाज के स्वार्थ को ठुकराकर कुछ व्यक्तियों के स्वार्थ को निराबाध फलने-फूलने का अवसर मिलता है, वह पूंजीवाद है—किसी तरह भी चोरी, डकैती, सट्टेबाजी, रिश्वत, उत्पीड़न, परशोषण से पूंजी जमा करके पूंजी की प्रधानता से कल-कारखाने खेती-बारी यहां तक कि सरकार पर भी प्रभुत्व स्थापित किया जा सकता है। उसी

राजनीतिक-आर्थिक सिद्धांत को पूंजीवाद कहते हैं। ये दोनों उसी तरह एक साथ नहीं रह सकते, जैसे एक म्यान में दो तलवार। पूंजीवाद में पूंजी या पैसे की प्रधानता है। एक करोड़पति सैकड़ों शिक्षितों-अशिक्षितों को आज्ञाकारी दास बनाके रख सकता है। वहां सबके समान और स्वतन्त्र होने का सवाल नहीं हो सकता—"द्रव्येण सर्वे वशाः।"

मुखपात्री—तो महीपजी, आप हमारी भाषा में भी समझाने की क्षमता रखते हैं। आप समाजवादी समाज को मानवमात्र की समता में विश्वास रखने वाला मानते हैं। गीता में भी तो "समत्वं योग उच्यते" तथा समदर्शिता का उपदेश दिया गया है।

महीप—लेकिन, उस निराकार समता से साकार मानव-समाज में समता स्थापित नहीं हो सकती। उससे तो और अधिक स्पष्ट समानता का उपदेश वेद में मिलता है—"समानी प्रपा सह वो अन्नभागाः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि" जिसमें प्रपा (प्याव) और खाद्य में ही समानता की बात नहीं की गई है, बल्कि जुए में नाधने की बात कहके श्रम में भी समानता की बात बतलायी गई है।

मुखपात्री—अर्थात् यहां भोग-साम्य और श्रम-साम्य की जो बात कही गई है, उसी को समाजवाद कहते हैं।

महीप—लेकिन उस समय अन्न-पान और काम में समानता की बात केवल एक वंश के सगे-सम्बन्धियों के बारे में कही गई, उसमें दासी-दास तथा भृत्य-किंकर सम्मिलित नहीं थे। एक परिवार में समानता की बात कुछ अवश्य थी। समाजवाद मनुष्य को केवल सिद्धान्तरूपेण समान नहीं मानता, बल्कि उस समानता को संभव बनाने के लिए कुछ व्यक्तियों के हाथ से आर्थिक-साधनों को लेकर बहुजन के हित में उन्हें विनियुक्त करता है।

मुखपात्री—तो आपके समाजवाद में आर्थिक-विषमता के लिए स्थान नहीं है ?

महीप—हां, बहुत कुछ ऐसा ही है, वैसे हमें पहली अवस्था में काम के अनुसार पारिश्रमिक देने के कारण थोड़ी-सी विषमता रखनी पड़ेगी, जब तक कि उपभोग की सामग्री इतनी मात्रा में न पैदा होने लगे, कि हरेक को उसकी आवश्यकता के अनुसार वह दी जा सके।

मुखपात्री—तब तो यह धरती पर स्वर्ग लाना है।

महीप—धरती पर स्वर्ग स्वयं नहीं आयेगा, क्योंकि जिनके हाथों में शक्ति अर्थात् सम्पत्ति केन्द्रित हो गई है, उनका हित इसी में है, कि धरती को नर्क बनाये रखा जाय, तभी दूसरे किसी अदृश्य स्थान में अवस्थित स्वर्ग का प्रलोभन दिया जा सकेगा। व्यक्ति से ऊपर समाज के हित को रखने पर स्वदेशी पूंजीपतियों के

द्वारा जो कठिनाई होती है, वह नहीं होगी, फिर चाहे उद्योग-धन्धा हो या आधुनिक खेती, कहीं भी व्यक्ति के स्वार्थ को समाज के ऊपर न होने के कारण, जो काम में सुस्ती आदि देखने में आती है, वह नहीं होगी । आदमी अपने निजी स्वार्थ में भलाई न समझकर सारे समाज की भलाई में अपना भला चाहेगा । समाजवादी देश में एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के श्रम का शोषण नहीं कर सकता, शोषण करने का अधिकार न होने से काम-चोर नहीं हो सकता । व्यापार के भी व्यक्ति के हाथों से निकल कर समाज के हाथ में चले जाने के कारण वहां भ्रष्टाचार, घूस-रिश्वत का बाजार गर्म नहीं होने पाता । शोषण के उच्छिन्न हो जाने के कारण मानव-मानव समान होते हैं, वह एक दूसरे को ठगना नहीं चाहते । मनुष्य एक-दूसरे के साथ धोखाधड़ी से काम नहीं लेता । काम करने में भी वह व्यक्ति से ऊपर समाज के स्वार्थ को रखता है । शोषण के हट जाने पर, हमारे देश में मानव के भीतर की विषमता दूर हो जायेगी, और आज की तरह के लड़ाई-झगड़ों की बहुत कमी हो जायगी ।

भगवानदास—क्या तब व्यक्ति-व्यक्ति के भीतर का झगड़ा स्वप्न-सा हो जायगा ?

महीप—यदि स्वप्न नहीं होगा, तो बहुत कम जरूर रह जायगा । व्यक्ति का ही झगड़ा नहीं बल्कि देश-देश का झगड़ा, अर्थात् युद्धवाद भी बहुत कम हो जायगा । आज शोषण अर्थात् पूंजीवाद ही वह कारण है, जिससे कि जातियों-जातियों के बीच झगड़ा होता है, एक जाति दूसरी जाति को परतन्त्र बनाना चाहती है, या उसका शोषण करना चाहती है, अथवा दूसरी शोषक जाति के शोषण-क्षेत्र में दखल देना चाहती है, जिसका परिणाम युद्ध होता है । युद्ध कितना भयंकर है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं । द्वितीय विश्वयुद्ध हम देख चुके हैं, इस युद्ध की बलि केवल रूस में ७० लाख हुए । १९४२ में बंगाल में जो भूख से साठ लाख आदमी मरे, उन्हें भी युद्ध के लिए बलिदान समझना चाहिए । समाजवाद देश या विदेश कहीं भी मानव द्वारा मानव के शोषण का समर्थन नहीं करता । इसलिए उसके द्वारा मानव-मानव के बीच अच्छा सम्बन्ध स्थापित हो सकता है, समाज और समाज तथा देश और देश के बीच में सद्भाव स्थापित हो सकता है ।

भगवानदास—क्या समाजवादियों में झगड़ा नहीं हो सकता ?

महीप—झगड़े का वहां कोई भौतिक कारण नहीं रह जाता ।

भगवानदास—युगोस्लाविया भी तो समाजवादी देश है, किन्तु उसकी रूस से खटपट चल रही है ।

महीप—मतभेद हो सकता है, लेकिन समाजवादी देश सशस्त्र संघर्ष नहीं कर सकते, जब तक कि उनमें से एक ने समाजवादी सिद्धान्त को छोड़ नहीं दिया है ।

भगवानदास–लेकिन कहते हैं, समाजवादी अपने देश का प्रेम नहीं रखते। अपने देश की कला और साहित्य का आदर नहीं करते। वह बहुत दुर्राष्ट्रीय और दुःसंस्कृत होते हैं।

महीप–यह आप समाजवाद के विरोधियों से सुनी बातें दुहरा रहे हैं। समाजवाद राष्ट्रीयता का विरोधी नहीं है। हां, वह मानव के बन्धुत्व पर भी विश्वास करता है, इसलिए राष्ट्रीयता और मानव-बन्धुता दोनों का समन्वय करना चाहता है। वह अपने इतिहास और संस्कृति का गौरव रखते हुए भी दूसरे देश की संस्कृति को घृणा का पात्र नहीं समझता। क्या आप समझते हैं, रूस के भीतर रहने वाली साठ से अधिक जातियों ने अपने साहित्य, संस्कृति और राष्ट्रीयता को तिलांजलि दे दी? क्या आप समझते हैं, चीन के क़म्युनिस्टों को अपने देश का कम अभिमान है? कोई भी वाद किसी देश में बहुजन-स्वीकृत नहीं हो सकता, यदि वह अपने देश में अपनी जड़ों को बहुत गहराई में नहीं ले जाता।

मुखपात्री–तो क्या आप समझते हैं, कि समाजवाद के कारण विश्व में युद्ध का भय जाता रहेगा?

महीप–नकली समाजवाद भी हो सकते हैं, जिससे हम वैसी आशा नहीं रख सकते।

भगवानदास–किसको आप नकली समाजवाद समझते हैं?

महीप–इंगलैंड की मजदूर पार्टी का समाजवाद नकली समाजवाद है। मजबूर होकर भारत से भागते वक्त भी ये तथाकथित अंग्रेज समाजवादी पाकिस्तान-हिन्दुस्तान का झगड़ा खड़ा करके गये और राजाओं को भी उकसा गए। इधर मलाया में अंग्रेज समाजवादी किस तरह तोपों और जंगी विमानों के भरोसे अपना राज्य कायम रखना चाहते हैं, यह जग-विदित है। उनका समाजवाद साम्राज्यवाद से कोई विरोध नहीं रखता। उनके समाजवाद में एक जाति द्वारा दूसरी जाति का शोषण भी हो सकता है। आजकल देख ही रहे हैं. अमेरिका से अधिक अंग्रेज 'समाजवादी' साम्यवादी रूस के दुश्मन हैं। चीन में कम्युनिस्टों को अधिक आगे बढ़ते देखकर अपना सैनिक पोत यांग्सी नदी के भीतर भेजने वाले यही अंग्रेज 'समाजवादी' थे। अमेरिका का रूस के साथ बराबर बिगाड़ कायम रखने के लिए इनकी सदा कोशिश रहती है।

खोजीराम–आखिर दोनों के झगड़े से ही तो इंगलैंड अमेरिका से डालर और मक्खन-रोटी वसूल कर सकता है।

महीप–हां, इंगलैंड रूस के विरुद्ध अमेरिका का स्थायी विमानवाहक पोत है, इसलिए उसकी देख-भाल करना अमेरिका का कर्तव्य है, यही कहकर अमेरिका

को दूहा जा रहा है। लेकिन कितने दिनों तक यह धोखा चलेगा ? यह समाजवाद नहीं है। जिसमें शोषण हो वह समाजवाद कैसा ? नेहरू भी अपने राज्य को समाजवादी कह सकते हैं। आजकल कई योजनाओं के लिए समाजवाद का दावा किया जाता है। एक भूतपूर्व समाजवादी सज्जन दामोदर-उपत्यका-योजना को समाजवादी योजना कहने की धृष्टता करते हैं। ऐसा कृत्रिम समाजवाद दुनिया में शान्ति स्थापित नहीं कर सकता, बल्कि वह युद्ध का प्रेरक बन सकता है।

भगवानदास—हां, यदि एक जाति दूसरी जाति का शोषण-उत्पीड़न छोड़ दे, तो युद्ध का बहुत भारी कारण दूर हो जाता है। लेकिन हमारी दूसरी समस्याओं को हल करने में समाजवाद कैसे सहायक हो सकता है ?

महीप—एक-एक समस्या को उठाकर देखिए तो मालूम होगा, मानव की सारी समस्याओं को हल करने के लिए ही समाजवाद पैदा हुआ। आहार की समस्या को ले लीजिए। व्यक्तिगत स्वार्थ को प्रधानता न दे सामाजिक हित को प्रथम रखने से सारे गांव के धनी-गरीब, खेतिहर-बे-खेतिहर किसान जनता को काम करने की प्रेरणा दी जा सकती है। एक व्यक्ति दूसरे के लिए, एक गांव दूसरे गांव के लिए, एक इलाका दूसरे इलाकों के लिए कृषि का विकास करने में उदाहरण बन सकते हैं। साल के अधिकांश महीनों में बेकार हाथों को काम में लगाया जा सकता है। समाजवाद पैसे को प्रधानता नहीं, श्रम को प्रधानता देता है। उसके लिए जितने अधिक व्यक्ति, जितने अधिक घंटों को काम में लगा सकें, वह सब पूंजी है। समाजवाद सारी ग्रामीण जनता को उठाके दौड़ने के लिए तैयार कर सकता है, किसी बड़े पूंजीपति के न रहने, और छोटे पूंजीपतियों को भ्रष्टाचार के लिए कड़े-से-कड़ा दण्ड देने के कारण तब आज के चोरबाजारी करोड़पतियों की तरह मूंछ पर ताव देकर खुले घूमने वाले नहीं पैदा हो सकते। यह कल्पना की बात नहीं है। चीन में हम इसे देख रहे हैं। चाङ्. की तानाशाही समाप्त होते ही वहां के नगरों, गांवों से भ्रष्टाचार कितनी तेजी से दूर हो गया ? खाद्य समस्या एक साल में खतम हो गई।

भगवानदास—खेती को कुछ विकसित भी कर लिया जाय, लेकिन उद्योगीकरण में तो भारी बाधा होगी, क्योंकि अमेरिका भड़क जायगा और हमें कल-मशीन के लिए डालर की कोई मदद नहीं देगा।

महीप—निश्चय रखिये, अमेरिका आपकी मदद करनेवाला नहीं है, दिलासा के लिए चाहे मुट्ठी-भर डालर भले ही सामने फेंक दे। समाजवादी भारत के ३५ करोड़ आदमियों को अपना ग्राहक बनाने से कौन बनिया बाज आ सकता है ? अमेरिका में फिर मन्दी के लक्षण दिखाई देने लगे हैं और बेकारी साठ लाख से ऊपर बढ़ गई है। इस बेकारी को दूर करने के लिए साम्यवादी चीन का बाजार

सहायक हो सकता है, अतएव यह साफ है कि चीन में व्यापार करना अमेरिका भी चाहेगा। नहीं भी चाहे, तो समाजवादी समाज जिस तरह लोगों को शारीरिक, बौद्धिक श्रम को लगाने के लिए मुक्त कर देता है, उससे हम आसानी से उद्योगीकरण कर सकते हैं। मनुष्य के हाथों और दिमाग को समाजवाद मुख्य पूंजी मानता है। इसलिए यदि रूस ने अपने बल पर बारह वर्ष में देश की काया पलट दी, उसे कृषि-प्रधान से उद्योग-प्रधान बना दिया, तो हमारे देश को भी उससे अधिक समय की जरूरत नहीं होगी। सचमुच हमारी राष्ट्रीय-शक्ति जो कुण्ठित है, हमारी राष्ट्रीय-प्रतिभा जो बेकार पड़ी है, हमारी प्राकृतिक संपत्ति का जो पूछने वाला कोई नहीं है, उन सभी को काम करने के लिए मुक्त कर देगा।

मुखपात्री—जान पड़ता है, समाजवाद धरती को स्वर्ग बना देगा।

महीप—अगर कहीं स्वर्ग बन सकता है तो धरती ही पर। आसमान का स्वर्ग तो कल्पनामात्र है।

खोजीराम—लेकिन समाजवादियों में जो आपस में मतभेद है, एक दूसरे के साथ इतनी तू-तू मैं-मैं है, इसका फल तो अच्छा नहीं होगा ?

युधिष्ठिर—हां, समाजवाद की स्थापना और सफलता के लिए आवश्यक है कि सभी समाजवाद के माननेवाले दल अपने मतभेदों को कम-से-कम कर डालें और कुछ ऐसे प्रोग्राम एकमत से नियत करें, जिस पर सभी एक होकर चलें। मैं यह भी बतलाना चाहता हूं, कि जो इस एकता में बाधक होंगे, वह भावी महा-संघर्ष में अपने आप दूध की मक्खी की तरह अलग हो जायंगे। अपनी योग्यता और साधना के रहते भी बिलगाव और फूट की नीति बहुत महंगी साबित होगी। दुनिया में ऐसे उदाहरण कम नहीं हैं, जब कि एक समय के प्रभावशाली दल ने समय पर चूक जाने के कारण अपने को निकम्मा बना लिया और अन्त में अस्तित्व तक खो दिया। समाजवाद के मानने वाले कई दल रहें, उनसे उतनी क्षति नहीं होगी, बल्कि सदा-शयता के साथ वह एक दूसरे की कमजोरियों को दूर करा सकेंगे। पूर्ण जनतान्त्रि-कता को कायम रखने में भी वे सहायक सिद्ध होंगे और केवल एक दल के रहने के कारण जो भूलें होती हैं, उनका भी कम मौका रहेगा।

भगवानदास—समाजवाद के लिए कौन-कौन दलों को आप ईमानदार सम-झते हैं ?

युधिष्ठिर—जो शोषण के विरोधी, मानव की समानता के पक्षपाती तथा समाजवाद के पक्ष में लोहा लेने के लिए तैयार हैं, वह सभी व्यक्ति और दल समाज-वाद की सेना की टुकड़ियां, रेजिमेंट और सिपाही हैं। समाजवाद के लिए इन सबको एक हो जाने की आवश्यकता है।

१९

शोषितों का समाजवाद

खोजीराम–दुनिया के सभी देशों के शोषितों में जागृति देखी जाती है। अधिकार-वंचित अपने अधिकार पाने के लिए प्रार्थना नहीं कर रहे, बल्कि उन्हें हाथ में ले रहे हैं। और देशों में शोषितों की धर्म द्वारा निर्धारित कोई जाति-पांत नहीं होती; लेकिन भारतवर्ष ने शोषण का फन्दा बहुत मजबूत बनाया है और शोषितों को हजारों जातियों में बांटकर उन्हें पुश्तैनी शोषित बनाये रखा। सौ ही वर्ष बीते, जब कि भारत में दासता का अखण्ड राज्य चला आया था, शोषितों की बहुत बड़ी संख्या दास थी। जो दास नहीं थे, वे अर्द्धदास थे। दासता-अर्द्धदासता की सीमा निश्चित नहीं थी। भारतवर्ष की सबसे बड़ी विशेषता यदि कोई अपनी है, तो वह यहां की जाति-पांत है, जिसका आधार आर्थिक शोषण पर है; किन्तु उसे छिपाने के लिए कई नाम दिए गए हैं। है कोई ऐसा देश, जहां चमार का लड़का चार हजार वर्ष तक चमार रहा, भंगी का लड़का चार हजार वर्ष तक टोकरी ढोता रहा? समाज के अत्यन्त आवश्यक एवं गंदे काम को करने के बदले उसे प्रशंसा नहीं, घृणा का पात्र बनना पड़ा? हमारे देश में शोषण के वे सारे साधन बरते गए, जो दूसरे देशों में बरते जाते हैं और साथ ही जाति-भेद को फैलाकर देश की तीन-चौथाई जनता को अर्थागम के तरीकों से वंचित कर दिया गया। आज जमींदारी हो या साहूकारी, राज-सेवा हो या सरकार, सभी जगह ब्राह्मण-क्षत्री-लाला का राज्य है।

युधिष्ठिर–कुछ सदियों से नहीं, बल्कि इतिहास के आरम्भ से यही बात चली आई है। इस्लाम आया, हमारे कितने ही तन्तुवाय बड़ी आशा से लाखों की संख्या में मुसलमान जुलाहे हो गए, किन्तु तो भी उनकी अर्द्धदासता छूटी नहीं। इन मोमिन मुसलमानों की वही दशा रही, जो हिन्दुओं में कुर्मी-काछियों की। बड़े-बड़े पीर-सुल्तान, मौलवी-नवाब, सरकारी अफसर, सभी अशरफ–शेख-सैयद-मुगल-पठान–बनते रहे। ब्राह्मण-क्षत्रिय-लाला और शेख-सैयद-मुगल-पठान के राज्य में अंग्रेजों ने कभी दखल नहीं दिया। उनको अपने टोस्ट-मक्खन से काम था। उन्हें क्या आवश्यकता थी भिड़ के छत्ते में ऊँगली डालने की? सरकारी नौकरियों में जहां देखो, इन्हीं का बोल-बाला था। इनके पास पहले से धन जमा था, शिक्षा से लाभ यही उठा सकते थे, अतएव बड़ी-बड़ी नौकरियां और आमदनी

के रास्ते इन्हीं के लिए खुले थे। हिन्दुओं का राज्य रहा, मुसलमानों का राज्य आया, अंगरेज भी राज्य करके चले गए; लेकिन इस सारे समय में ब्राह्मण-क्षत्रिय-लाला का राज्य अक्षुण्ण रहा—लाला पश्चिमी उत्तरप्रदेश में बनियों को कहते हैं और पूर्वी उत्तरप्रदेश तथा बिहार में कायस्थ लोगों को। अंगरेजी सरकार ने तो यहां तक किया, कि गांव की पटवारीगिरी को लालों के लिए रिजर्व कर दिया। पिछले सौ सालों में पटवारियों ने गांव की जितनी "सेवा" की है, वह किसी से छिपी नहीं है।

खोजीराम—अभी मार्च, १९४९ के आरंभ में उत्तरप्रदेश में ग्राम-पंचायतों के चुनाव का जो परिणाम निकला, उसे देखकर इन्द्र का सिहासन हिलने लगा है। धर्म के नाम पर भगवान् के नाम से लिखे गए जाली कागज (पुरुषसूक्त) के सहारे चार हजार वर्ष से तीन-चौथाई जनता को दास बनाकर उनकी मेहनत पर जो मौज उड़ाते आए थे, वे घबरा उठे। उनमें सबसे अधिक समझदार कहे जाने वाले ही सबसे अधिक अपना विवेक खो बैठे हैं। कंस की भांति उन्हें हर जगह कृष्ण-ही-कृष्ण दिखलाई देते हैं। बड़ी गंभीरता से कहा जा रहा है कि वयस्क-मताधिकार—२१ वर्ष से अधिक के सभी स्त्री-पुरुषों को वोट का अधिकार—देना बहुत ही खतरनाक है। कोई कहता है, वयस्क-मताधिकार तब तक देना अच्छा नहीं है, जब तक देश की निरक्षरता दूर न हो जाय। गोया निरक्षरता दूर होने पर ग्राम-पंचायतों का परिणाम कोई दूसरा होता। ये बहाने हैं, जिनसे वे शोषितों को कुछ समय तक और अधिकार-वंचित रखना चाहते हैं। जनता के एक-चौथाई का जब अधिकार रहा, तब कोई खतरा नहीं समझा गया और अब तीन-चौथाई के राज्य की संभावना होने पर इसे भारी खतरा समझा जाने लगा! यदि खतरा है, तो चारों ओर अन्यायियों के लिए हो सकता है। निरक्षरता का बहाना ईमानदारी का बहाना नहीं है। क्या गांवों और शहरों की सारी गन्दगियों—मुकदमेबाजी, जालसाजी, झूठ-फरेब—के कारण ऊँची जाति के साक्षर नहीं हैं?

युधिष्ठिर—इस बहानेबाजी से काम नहीं चल सकता। जिस तरह जवाहरलाल की सरकार राष्ट्रमंडल ही में सही भारत के गणराज्य बनाने को नहीं रोक सकी, उसी तरह अब बालिग-मताधिकार को हटाया नहीं जा सकता। उसको हटाना कानूनी दृष्टि से ही कठिन नहीं है, बल्कि भयंकर गृह-युद्ध को निमन्त्रण देना है। वह ब्राह्मण-क्षत्री-लाला-राज्य के लिए शोषित जातियों को उनके उचित अधिकार से वंचित करना होगा, उन्हें फिर अर्द्ध-दासता में ढकेलना होगा। इसे वे बर्दाश्त नहीं कर सकते। लुक-छिपकर जो हुआ, सो हुआ, अब छोटी जातियों की आंखें खुल चुकी हैं। अंधे ही नहीं देखेंगे कि शोषितों में यह जो एकता आई है,

वह किसी संगठित दूरदर्शितापूर्ण योजना का परिणाम नहीं है। यह जागृति और एकता अपने-आप आई है। अहीर से भंगी, जुलाहे से चमार तक सभी जातियां क्यों एक-सा सोचने लगी हैं, इसे आप ठंढे दिल से सोचें, तब आपको कारण मालूम होगा। केवल 'खतरा', 'निरक्षरता', 'घोर कलियुग' कहकर आप उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकते और न अपना हित ही कर सकते हैं। ब्राह्मण-क्षत्री-लाला एक आर्थिक वर्ग है, जिसके पास धन, शिक्षा और संस्कृति है। छोटी-बड़ी दुकानों (चाहे धार्मिक हों या व्यापारिक), छोटी-बड़ी अदालतों, छोटे-बड़े जिला-बोर्डों, सरकारों तथा राज्यों में वही तिनतग्गे विष्णु की भांति व्यापक हैं। उत्तरप्रदेश की ग्रामपंचायतों के चुनाव में इतिहास में पहले-पहल सारे शोषितों को तिनतग्गों की भांति अपना शासन-यंत्र बनाने का अवसर मिला। जो मूर्तियां मेंबरी के लिए खड़ी थीं, जो मूर्तियां सभापति और पंच होना चाहती थीं, उनके सारे पाप, अपराध, रोज-रोज की गाली-मार और बेठ-बेगार कुछ भी उनसे छिपे न थे। अभी तक वे सभी बातों को भगवान् की लीला समझकर मानते थे; किन्तु आज उनको अधिकार है, कि वे अपने भाग्य का फैसला स्वयं करें।

खोजीराम—गांव के शोषितों को पहले-पहल यह पता भी न लगा, कि यह पंचायत क्या बला है। सरकार ने हुक्म दिया कि २१ वर्ष से अधिक के सभी स्त्री-पुरुषों की नाम-सूची बनाकर भेजो। पटवारियों ने तो बहुत जगह मनमानी सूची बनाई और एक-चौथाई आदमियों को छोड़ भी दिया, जिसमें अधिकांश छोटी जाति के लोग थे। मुझे सारनाथ का पता है। उस समय स्कूल के मास्टर लोग वोटर-सूची में संशोधन करने के लिए गांवों में भेजे गए थे। छोटी जातिवाले लोगों को बतलाया गया था, कि मिट्टी के तेल और कंट्रोल के कपड़े के लिए नाम लिखा जा रहा है। उन्होंने मास्टरों से कहा—हमें नाम-वाम लिखवाने से कोई काम नहीं; मिट्टी का तेल और कंट्रोल का कपड़ा बाबू-भैयों के पेट से बचेगा तब न हम तक पहुँचेगा। मास्टर बेचारे हताश थे। वे समझते थे कि सूची में कुछ घटा-बढ़ा नहीं सकेंगे। किंतु छोटी जायियों में भी दो-चार दर्जे पढ़े जहां-तहां कुछ आदमी मिलते हैं। एक तो मैट्रिक पास भर-नौजवान सारनाथ के पास घर पर बैठा था। नौकरियों में भी तो सिफारिश की जरूरत होती है। ब्राह्मण-क्षत्री-लाला तब न दूसरों की सिफारिश करने जायं, जब सभी अपनों को नौकरियां मिल चुकें। इस-लिए पढ़े-लिखे होने पर भी नान्ह जाति को नौकरियां बहुत कम मिलती हैं। खैर, दो अक्षर पढ़े नान्ह जातिवालों ने भी जोर लगाया और हफ्ता बीतने से पहले नान्ह जातिवालों को कुछ धुंधला-सा दिखलाई पड़ने लगा। जब थाने और कचहरी के दलाल बड़ी जातिवाले अपने लिए घूमने लगे, तो उनकी आंखें खुलीं। फिर गांव

के जमींदार और मालिक के तिकड़म को देखकर उनके मन में और शंका हो उठी। उनको मालूम होने लगा, कि बेखेत वाले सारे मजूर एक ही नाव में बैठे हैं। पोत देकर भी खेत पर अधिकार न पानेवाले, बीसों वर्ष जोतते रहने पर भी निकाल दिए जानेवाले एक ही आफत के शिकार हैं। वे सोचने लगे, कि तिनतग्गे लोगों के यहां हल जोतना पाप है। जेठ की दुपहरी में जलते और सावन में भीगते हमीं हल चलाते हैं, तब मालिक के घर में लक्ष्मी आती है। हमीं दीवार खड़ी करते हैं, ईंट और खपरैल पाथते हैं, तो बाबू लोगों की वह हवेलियां तैयार होती हैं, जिनके ओसारे के नीचे भी खड़े होने की हमें आज्ञा नहीं होती। पानी की छूत और शरीर की छूत की बात तो ऊपर से है ही। यही युगों से चला आता आर्थिक शोषण और सामाजिक अपमान कारण हुआ, जो सभी नान्ह लोगों ने तिनतग्गों से अपने को अलग देखा।

रामी—शोषितों में तो भी भेद-भाव है?

युधिष्ठिर—शोषितों में भी छूत-अछूत दो तरह की जातियां हैं। वैसे होता, तो छूतवाले अपने संख्या-बल पर अछूतों की परवाह न करते—तिनतग्गे सदा छूत-अछूत के नाम पर उनमें फूट डालने की कोशिश करेंगे। लेकिन हमें मालूम है कि वे भी अंत में अंगरेजों की तरह फूट डालकर शासन जमाने में सफल नहीं होंगे। इस वक्त छूत-अछूत का प्रश्न न उठने का एक कारण अछूतों का कौंसिलों और असेम्बलियों में संख्या का निश्चित होना भी है। अम्बेडकर और जगजीवनराम जिस वर्ग के प्रतिनिधि हों, उसे अकिंचन कैसे कहा जा सकता था? मुल्तांपुर, आजमगढ़, बलिया, बनारस, गाजीपुर, इलाहाबाद की जो खबरें मिलीं, उनसे पता लगा कि सभी जगह नान्ह जातियां हिन्दू-मुसलमान, छूत-अछूत का भेद छोड़कर एक साथ रहीं। बड़ी जातिवाले इसे घृणित जातिवादिता कहते हैं, मानो वे दूध के धुले हों। धर्म और छूत-अछूत का ख्याल हट जाना उनके लिए कोई महत्त्व नहीं रखता, बल्कि उल्टा यह भयंकर चीज है। यह उनके युगों के राज्य के लिए चैलेंज है, मौत का वारंट है। शहर के पढ़े-लिखे बड़ी जातिवाले इस नई शक्ति को कोसते हुए अखबारों का कालम रंगते रहे। उनसे पहले गांवों के उनके भाई-बंदों ने भी कोई कोर-कसर उठा नहीं रखी; लेकिन शोषित जनता को उन्होंने संयुक्त और मजबूत देखा। एक गांव के तिनतग्गे यह सोचकर बहुत निश्चिन्त थे, कि तीन-चौथाई भूमि घेरनेवाली उनकी हवेलियों में चुनाव के लिए उठनेवाले हाथ भी अधिक हैं; लेकिन वोटर-सूची में यह देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ, कि उन सिमटी गंदी झोंपड़ियों में ही हाथ अधिक हैं। मुझे विश्वास नहीं है, किन्तु एक दूसरे गांव के ब्राह्मण देवता कह रहे थे—'हमारे गांव में संख्या बराबर थी।' मैंने

पूछा—'फिर आप घबराए हुए शहर से दौड़े-दौड़े गांव में क्यों पहुंचे ?' उन्होंने कहा—'हमारे बहुत-से लोग नौकरी या रोजगार के लिए इधर-उधर चले गए थे और नान्ह जातिवाले सभी गांव में थे। इसके अतिरिक्त हमारे यहां अधिकांश औरतें पर्दानशीन हैं। नई-नवेली बहुएं कैसे वोट के लिए हाथ उठाने जातीं ? शामियाने का प्रबन्ध था, तो भी इसमें सन्देह था, कि बड़ी जाति की सभी स्त्रियां उसमें जाकर वोट देतीं।' मैंने कहा—'पर्दानशीनों को तो वोट का अधिकार नहीं मिलना चाहिए। घूंघट और राज-काज से जमीन-आसमान का अन्तर है।' खैर, वोटर-सूची और नान्ह जाति के लोगों की एकता ने बड़ी जातिवालोंकी आंखें ही नहीं खोलीं, उन्हें किंकर्तव्यविमूढ़ बना दिया। जहां २५ और ७५ का अंतर हो, वहां किस बल पर चुनाव में सफलता की आशा रखी जाय ? एकता के लिए कुछ मत पूछिए। एक ब्राह्मण देवता कह रहे थे—'देखिए न, मेरा ही हलवाहा और मेरी ही बात नहीं सुनता !'

खोजीराम—पंचायतों को अधिकार नाम-मात्र का है। बड़ी जातिवाले शासक फूंक-फूंककर कदम रखना जानते हैं।

युधिष्ठिर—लेकिन ग्राम-सभा के निर्वाचन ने उत्तर-प्रदेश के देहात के युग-युग के उत्पीड़ित लोगों में एक नया आत्म-विश्वास पैदा कर दिया। उनमें एक नई चेतना आई, जिसके बल पर अपने भविष्य को वे अपने हाथों में ले सकते हैं। राज्यों और भारत की संसदों के चुनाव में इस आत्म-विश्वास, इस नवचेतना और इस एकता का बहुत व्यापक प्रभाव होगा, इसमें सन्देह नहीं। जब इनके अपने प्रतिनिधि केन्द्र और राज्यों के हर्त्ता-कर्त्ता होंगे, तब गांव की सभाओं और पंचायतों को अधिकार देने में कंजूसी नहीं होगी। तब पटवारियों के झूठे-सच्चे कागजों और सरकारी खेवटों के बल पर गांव की आधी से अधिक जनता को यह नहीं कहा जायगा, कि तुम्हारा इस गांव की मिट्टी में कोई अधिकार नहीं, न दूसरे चौथाई भाग को यह कहा जा सकेगा, कि तुम खेत के मालिक नहीं, असामी हो, तुम्हें बेगार देनी पड़ेगी और न सामने चारपाई पर बैठने, छाता-जूता लगाकर चलने के लिए देहात की तीन-चौथाई जनता की हड्डी ही तोड़ी जायेगी। जनेऊ के लिए कितने ही नान्ह जातिवालों को पीठ दगानी पड़ी, सिर फुड़वाना पड़ा; लेकिन अब आशा है, वे तिनतग्गों के इस तागे को तोड़ फेंकेंगे।

वोटर-सूची पक्की हो गई। चुनाव सिर पर आ रहा था। बड़ी जातिवालों की चिन्ता बढ़ रही थी। सभी सोचने लगे, कैसे ग्राम-सभा अपने हाथ में रहे, सभापति अपना हो, अदालती पंच अपने हों ? वोट पर इस बात को छोड़ा नहीं जा सकता था, क्योंकि अधिक हाथ नान्ह जातियों के थे। फिर खानगी पंचायतें बैठने

लगीं। सौदा होने लगा। शाम-दाम-दण्ड-विभेद सभी हथियारों का प्रयोग किया जाने लगा—'तुमने यदि हमें वोट नहीं दिया, तो चैत में तुमसे खेत नहीं कटवायंगे, घर-भर भूखे मर जाओगे। यदि हमें वोट नहीं दिया, तो अधिया बँटाई खेत निकाल लेंगे, अपनी जमीन में खलिहान नहीं लगाने देंगे।' एक घोड़ा लादकर जीनेवाले गांव के कांदू को तो धमकी दी गई थी :—तुम्हें अपनी जमीन से घोड़ा नहीं ले जाने देंगे। कुल धमकी देने पर भी वही घोड़ा लादनेवाला गांव का सभापति बन गया। अब देखें, बाबू लोग क्या करते हैं? उपसभापति का पद एक बाबू को दिया जा रहा था, लेकिन उन्हें यह बड़े अपमान की बात जँची कि घोड़ा लादनेवाला सभापति बने और वे उसके नीचे उपसभापति! अधिकांश जगहों में वोटा-वोटी की नौबत नहीं आई और नान्ह जातिवाले अपना बहुमत रखने के लिए डटे रहे। जहां भलेमानस दिखे, वहां नान्ह जातिवालों ने बड़ी जाति का भी सभापति बनाया; लेकिन निर्वाचित सभापति जानते हैं, वे किनके बनाये हुए हैं। ग्राम-सभा के मेम्बर भी जानते हैं कि हर साल एक तिहाई मेम्बर हटेंगे और उनकी जगह नये मेम्बर बनेंगे। जिसने नान्ह जाति का विश्वास खोया, उसे मेम्बर निर्वाचित होने की आशा छोड़ देनी होगी।

रामी—निर्वाचन के समय बहुत डर लग रहा था।

युधिष्ठिर—सारे प्रदेश में शान्ति से निर्वाचन हो गया। लोग अशांति का भय कर रहे थे, किन्तु मुझे उसका भय नहीं था। जो तीन-चौथाई है, उसे अपनी संख्या का बल है। उसके लिए बल-प्रयोग बेकार है। बड़ी जातिवाले इस परिस्थिति से असन्तुष्ट थे। यदि वे सफलता देखते, तो मार-पीट से बाज न आते। उन्होंने कहीं-कहीं धमकी भी दी, किन्तु जल्द ही समझ गए, कि चट्टान से टक्कर लेने में सिर फुड़ाने के सिवा और कुछ हाथ नहीं आयगा। २५ और ७५ की लड़ाई क्या, जब दोनों एक जगह रहते हैं, एक-दूसरों की कमजोरियों को जानते हैं और एक ही तरह का हथियार उनके पास है? बिहार में किसी जगह एक नान्ह जाति के आदमी को जनेऊ पहने देखकर राजपूतों ने कान काट लिया। इस पर दूसरे दल ने एक राजपूत की नाक काट ली। लाठी-डण्डे की बात चलने पर मैंने एक बड़ी जाति के सज्जन से कहा था—'शैतान के वास्ते लाठी का प्रयोग हर्गिज न कीजिएगा और न किसी की झोंपड़ी उजाड़िएगा, नहीं तो इसका दारुण परिणाम भोगना पड़ेगा। आपसे त्रिगुनी लाठियां उधर हैं और लाठी का सबसे अच्छा अभ्यास रखनेवाली कितनी ही जातियां भी उधर हैं। उनकी झोंपड़ी छ महीने में फिर उठकर खड़ी हो जायगी; लेकिन आपकी भस्म हुई हवेली दस साल में भी खड़ी नहीं होगी। अशान्ति का रास्ता लेने पर आप खेत-खलिहान सभी जगह घाटे में रहेंगे।' ग्राम-

पंचायतों के निर्वाचन में अशांति कहीं देखने में नहीं आई। इसे अहिंसा की विजय नहीं समझनी चाहिए, बल्कि हिंसा के प्रतिकार में होनेवाली दारुण प्रतिहिंसा का भय इस शान्ति का कारण हुआ। जैसे भी हो, इसके लिए दोनों को धन्यवाद है।

रामी—अड़ङ्गा तो लगाया ही बड़ी जातिवालों ने।

युधिष्ठिर—पंचायत के निर्वाचन में कितनी ही जगह बड़ी जातिवालों ने बायकाट किया। तीन-चौथाई अधिकार-वंचित जब अपना अधिकार लेने लगे, तो बायकाट की क्या आवश्यकता? क्या बायकाट के हथियार से मुट्ठी-भर लोग भारी संख्या पर अपनी तानाशाही लाद सकते हैं? एक गांव में तो बड़ी जाति के पन्द्रह पंच चार-चार रुपए जमानत भी दे आए थे; लेकिन अन्त में अपनी नाकें कटाकर दूसरों के अपशकुन के लिए तैयार हो गए। उन्होंने ऐन वक्त पर अपना नाम हटा लिया। सोचा था, नान्ह जाति के पास साठ रुपए कहां होंगे, कि वे अपने उम्मीदवार खड़े कर देंगे। लेकिन एक नान्ह जाति के आदमी को जोश आया और वह अपनी कसाले की कमाई के गड़े साठ रुपयों को निकाल लाया। उन जगहों पर भी नान्ह जाति के पन्द्रह आदमी चुन लिए गए और बड़ी जातिवाले मुंह ताकते रह गए! आजमगढ़ के एक गांव में सभापति के लिए दो बड़ी जातिवाले खड़े थे। कोई बैठने का नाम नहीं लेता था। छोटी जातिवालों ने कहा—'बाबू लोगों के झगड़े में हमें पड़ने की जरूरत नहीं। हमें अपने गांव का एक सभापति बनाना है हम अमुक राम को अपना सभापति बनाते हैं।' इस तरह प्राइमरी तक पढ़ा एक नान्ह सभापति बन गया। सभापति के चुनाव में छोटी जातिवालों ने संकीर्ण जाति-पांत का खयाल नहीं किया। भारी बहुमत रहने पर भी उन्होंने कहीं-कहीं बड़ी जातिवालों को अपना सभापति बनाया; लेकिन इन सभापतियों में उन्होंने प्रायः नौजवानों को चुना, बूढ़ों को नहीं, जिनके कि जुल्म और अत्याचार को वे आज तक सहते आए और जो समय की पुकार सुनने को तैयार नहीं। कहीं अहीर सभापति हुआ तो कहीं चमार; कहीं कोइरी तो कहीं कुर्मी (काछी)। एक जगह तो भूमिहार-ब्राह्मण को हराकर उन्होंने मोमिन जुलाहे को अपना पंच बना लिया। जान पड़ता है, आर्थिक भेद के आधार पर बनाए इस जाति-भेद द्वारा होते हुए युगों के अन्याय को मिटाने के लिए यह नई शक्ति सभी संकीर्णताओं को तोड़ फेंकेगी।

रामी—निर्वाचन-फल निकल जाने पर बड़ी जातिवालों ने कहना शुरू किया—'पंचायतें बहुत जल्दी तोड़ दी जायंगी। छोटी जातिवालों के इस रवैये से सरकार बहुत असन्तुष्ट है।'

युधिष्ठिर—इस तरह की खबरें उड़ाने में कितने ही कौंसिल के मेम्बर तथा

दूसरे कांग्रेसी पदाधिकारी भी शामिल थे। उनको आशा थी, कि सरकार आस्तीन में सांप नहीं पालेगी, अपनी जड़ अपने हाथों नहीं खोदेगी। वे अच्छी तरह जानते हैं, कि एक्कावन, बावन, चौवन, जिस सन् में भी बालिग-मताधिकार के अनुसार कौंसिलों और असेम्बलियों का चुनाव होगा, उनके गले में जयमाला नहीं पड़नेवाली है। पहले तो उम्मीदवारों की सफलता का खयाल करके ही आधी जगहें छोटी जातिवालों को देनी होंगी। हर सीट पर कांग्रेसी उम्मीदवार हारें, इसे वे कभी पसन्द नहीं करेंगे। बाकी में भी निश्चय ही कांग्रेस से लड़कर जीतनेवाले छोटी जातिवालों की संख्या अधिक होगी। उनका वोट अधिक है, क्या करेंगे आप? संख्या से वंचित करने का अधिकार आपको है नहीं। वोट के अधिकारों से भी वंचित रखना अब संभव नहीं। ग्राम-सभाओं के कितने ही असफल नेता और दूसरे अग्रसोची कौंसिल-मेम्बर बेचारे मना रहे थे, कि ग्राम-सभाएं तोड़ दी जायें; किन्तु उत्तरप्रदेश की सरकार[1] ने घोषणा निकालकर कह दिया कि पंचायतें नहीं तोड़ी जायंगी। वे आशा रख रहे थे कि गांव-सभा के मुन्शी के नियुक्त करने का अधिकार कलेक्टर और जिला-बोर्ड के प्रेसिडेंट को है, इसलिए वहां से हमारा आदमी चला आयगा। इसमें शक नहीं कि ये दोनों अफसर सभी जगह बड़ी जाति के हैं; लेकिन नियुक्ति में बहुमत की रुचि का ध्यान रखना होगा, नहीं तो कटुता भयंकर हो उठेगी, जिसका परिणाम अगले निर्वाचन और दूसरी बातों में उनके अनुकूल न होगा। कोई-कोई यह भी आशा रख रहे थे, कि कमपढ़ों और अनपढ़ों को पंचायत से निकाल दिया जायगा। मैंने नहीं सुना कि कोई अदालती पंच, सरपंच या ग्राम-सभा का सभापति-उपसभापति निरक्षर चुना गया है। लेकिन साक्षर का यह अर्थ नहीं है कि वे शुद्ध सुन्दर हिन्दी में खर्रे-के-खर्रे लिख डालेंगे। उनको इस बात का अधिकार देना पड़ेगा कि जहां-कहीं पंचायत या ग्राम-सभा चाहे, अपनी कार्यवाही अपनी स्थानीय भाषा में लिखे। ग्राम-पंचायतें सरकार को भोजपुरी, अवधी, ब्रज, बुन्देलखंडी और पहाड़ी की उपयोगिता स्वीकार करने को मजबूर करेंगी। गांव के काम-काज में उससे बहुत सुभीता होगा और फिर तो निरक्षर पंच भी तीन महीने में साक्षर हो अपना कार्य कर सकते हैं।

रामी—अब दूसरी तान छेड़ी जाती है।

युधिष्ठिर—हां, कुछ बड़ी जातिवाले अपने को न्याय का पक्षपाती दिखलाते हुए कहते हैं कि राज-काज का चलाना इतना आसान नहीं है, बच्चे के हाथ में तलवार नहीं देनी चाहिए। यह ठीक वही दलील है, जिसे अंगरेज दिया करते थे। क्या गांव के सरपंच का काम चौथे दर्जे तक पढ़े घूरहू चमार नहीं कर सकते? बहुत अधिकार भी तो नहीं दिया गया है कि कानूनी गुत्थियों को सुलझाने के लिए, वकीली

दिमाग की आवश्यकता हो। यही झूठा प्रोपेगण्डा करके अदालतों में बड़ी जाति के पंच अधिक चले गए हैं। यदि यह स्पष्ट कहा गया होता, कि अदालत अपना फैसला स्थानीय भाषा में करेगी, तो उनमें भी नान्ह जाति के लोग अधिक गए होते। खैर, वे वहां अपने अधिकार का यदि दुरुपयोग करेंगे, तो सदा के लिए तो भेजे नहीं गए हैं। एक बड़े नेता कह रहे थे—'गांव की पंचायतों का क्या, जिला-बोर्डों को भी ये लोग चला लेंगे; लेकिन नान्ह जातिवाले राज्य और केन्द्रीय सरकारों को कैसे चलायेंगे? उनमें न वैसी शिक्षा है, न वैसी योग्यता।' अंगरेज भी जब तक यहां से विदा नहीं हुए थे, तब तक यही कहते थे। क्या अहीर, कोइरी, कुर्मी, चमार, भर, जुलाहा, धुनियां आदि छोटी जातियों में उत्तर-प्रदेश के भीतर इतने बी० ए० एम० ए० नहीं हैं, जो मंत्रियों के स्थान को सम्हाल लें? मैं समझता हूँ, कोई ऐसा राज्य नहीं है, जिसमें छोटी जाति के सौ-दो-सौ ग्रेजुएट न हों। आप कहेंगे, शिक्षा और योग्यता एक चीज नहीं है। मैं भी इसे मानता हूं। इसके उदाहरण हर राज्य और केन्द्र के भी आज के मन्त्रिमण्डलों में अनेक मिलेंगे। आज के मंत्रिमंडलों में एक-तिहाई को ही योग्य मंत्री कहा जा सकता है, नहीं तो बाकी केवल सेक्रेटरियों के बल पर अपने विभाग का कार-बार चलाते हैं। उन्होंने अपने को इस काम के लिए न पहले तैयार किया, न अब तैयार करना चाहते हैं। मैं नहीं समझता, कि नान्ह जातिवाले मन्त्री इनसे कम योग्य होंगे। इनकी कमजोरियां उनमें बहुत कम रहेंगी और तिकड़म का भरोसा भी बहुत कम रहेगा, इसलिए वे बहुत योग्य साबित होंगे। क्या अम्बेडकर चमार के लड़के होने से दिल्ली मन्त्रिमंडल के किसी मंत्री से कम योग्य हैं? नेहरू को ऊपर उठने में किसी के कंधे का सहारा मिला था; लेकिन अम्बेडकर अपने बल पर, अपनी निरीह जाति के बल पर ऊपर उठे हैं। मैं तो समझता हूँ, सारे केन्द्रीय मंत्रिमंडल में उतना योग्य कोई मन्त्री नहीं है। जगजीवनराम दूसरे चमार-पुत्र हैं। मैं समझता हूं, अपने विभाग के संचालन में वे दूसरे मन्त्रियों से अधिक दक्ष हैं। जो बड़ी जातिवाले समझते हैं, कि योग्यता उन्हीं की बपौती है, यह उनका दुराग्रह-मात्र है। अवसर और सहायता मिलनी चाहिए, फिर देखिए कि कितने अम्बेडकर-जगजीवन पैदा हो जाते हैं।

रामी—सभी बहाने हैं।

युधिष्ठिर—सभी पिछड़े हुओं को अवसर और सहायता देना सरकार का कर्तव्य होना चाहिए। यदि इस कर्तव्य को आज की सरकारें नहीं पाल रही हैं, तो भविष्य की सरकारों को पालना होगा। हर साल बीस हजार छात्रवृत्तियां शोषित बालक-बालिकाओं को मिल जानी चाहिएं। फिर देखिए कि उनमें पन्द्रह साल में लाखों की संख्या में शिक्षित और हजारों की संख्या में प्रतिभाशाली ग्रेजुएट,

डाक्टर, इंजीनियर पैदा हो जाते हैं। जहां तक अभी काम सम्हालने की बात है, आवश्यकता से भी अधिक शिक्षित उनमें मौजूद हैं। जो सेक्रेटरी आज के मन्त्रियों की सहायता कर रहे हैं, वे तब भी हुक्मी बंदा रहेंगे। शासन-सूत्र हाथ में लेने का यह मतलब नहीं, कि जो आज सरकारी नौकरियों पर हैं, उन्हें कल जवाब दे दिया जाय। हां, वे यह जरूर करेंगे, कि सरकारी नौकरियों में जब तक संख्या के अनुपात से उनके भी आदमी नहीं आ जाते, तब तक ब्राह्मण-क्षत्री-लाला का एक भी आदमी भर्ती न किया जाय। पन्द्रह साल में वे तीन-चौथाई हो जायंगे। एक सज्जन कह रहे थे--'तब तो सरकारी नौकरियों का तल बहुत नीचे गिर जायगा।' मानो हर तरह के पापों और झूठी-सच्ची सिफारिशों के बल पर आगे बढ़े बड़ी जाति के गदहे, जो मोटी-मोटी तनखाहें उड़ा रहे हैं, वह योग्यता के कारण ही। उन्होंने पूछा—'तो क्या अब हमारे लड़के सरकारी नौकर नहीं हो पायंगे?' मैंने कहा—'हां, कुर्सी तोड़नेवाले नौकर नहीं हो सकेंगे। वे यदि अपनी प्रतिभा दिखलाना चाहें, तो डाक्टरी, इंजीनियरी आदि क्षेत्र उनके लिए खुले हैं। देश के उद्योगीकरण के लिए लाखों इंजीनियरों की आवश्यकता होगी, वहां उनके लिए भी काम है।' सच तो यह है कि बेकारी के बिलकुल मिटा देने पर ही अब सबको काम मिलेगा। इस प्रकार छोटी जातिवालों का शासन बड़ी जातिवालों की अपेक्षा अयोग्य सिद्ध होगा, इसका कोई कारण नहीं मालूम होता।

महीप—लेकिन शासन से भी बढ़कर आज के भारत के लिए आर्थिक नवनिर्माण की आवश्यकता है। बड़ी जातिवाले पुराण पर जीते आए हैं। वे नवनिर्माण से मन में घबराते हैं, सिर्फ जीभ से कभी-कभी उसकी बात करते हैं। हमारी सरकारें, यह ठीक है, अभी तीन-चार ही वर्षों से बिलकुल स्वतन्त्र हुई हैं; किंतु इतने से ही मालूम होता है, कि वे पुराण को बहुत कम हिलाना-डुलाना चाहती हैं। राजाओं को हटाया जा रहा है, तो लाखों महीना देकर राजप्रमुख बनाकर उन्हें फिर बैठाया जा रहा है। जमींदारी उठाने में तरह-तरह की शर्तें लगाई गई हैं। पहले खूब बढ़ा-चढ़ाकर कीमत लगाई जाती है, फिर कहा जाता है कि इतना रुपया देने पर रुपये का भाव गिर जायगा, चीजों का मोल कई गुना बढ़ जायगा। असल बात तो यह है, कि जमींदार भी भाई-भतीजे-भांजे हैं। उनके ऐशो-आराम में कोई खलल न पड़े, इसका ध्यान मारे जा रहा है। नहीं तो एकमुश्त इतना रुपया देने की क्या आवश्यकता? जमींदारी-खाते से उनका नाम काट दीजिए और दया-दान के तौर पर कुछ सालों तक थोड़ा रुपया देते जाइए। वह रुपया उनकी वार्षिक मालगुजारी से कम होगा, तो रुपए के भाव गिरने का डर कहां है?

रामी—और सरकारी फजूलखर्ची?

युधिष्ठिर—नान्ह जाति की सरकार कभी नेहरूशाही बेदर्दी से लोगों का पैसा नहीं खर्च करेगी; क्योंकि बेदर्दी से खर्च करने की उनकी बान नहीं है। वह कभी अपने राज्यपालों और राष्ट्रपति के रखने में अंगरेजों का अनुकरण नहीं करेगी; क्योंकि उसे मालूम है कि हमारे भाई दरिद्र झोंपड़ों में रहते हैं। यह गवर्नर-जनरल के विलास-भवन को कल राष्ट्रीय संग्रहालय का रूप दे देगी। वह कभी बर्दाश्त नहीं करेगी कि लखनऊ, इलाहाबाद, नैनीताल और कहां-कहां राज्यपाल के मील-मील-भर के प्रासाद और उद्यान सैकड़ों नौकर-चाकर रखकर, लाखों सालाना खर्च करके सजाए जाते रहें। सचमुच ही समझ में नहीं आता, साल-भर में सात दिन के लिए इलाहाबाद का विशाल गवर्नर-प्रासाद और उससे भी विशाल उसका हाता क्यों नहीं नगर की बस्ती बढ़ाने के लिए दे दिया जाता। शोषितों की सरकार कभी ऐसी फजूलखर्ची नहीं बर्दाश्त करेगी और न वह अपने अधिकांश निकम्मे राजदूतों एवं कौन्सलों पर नाना प्रकार पानी की तरह रुपया बहाना चाहेगी। दुनिया के सभी देशों के राजदूत इस बारे में इंगलैंड और अमरीका के कान काटना नहीं चाहते। शोषितों को जहां अपने भाई-बन्दों को किसी बड़े पद पर रखना होगा, तो वे किफायत के खर्च से भी रख सकेंगे; क्योंकि वे आज के छोटे-बड़े मन्त्रियों और महामन्त्रियों के भाई-बन्दों की तरह लिफाफिए नहीं होते। तीन सौ से तेईस सौ के वेतन पर एकाएक ले जाना उस वक्त कभी संभव नहीं होगा। निश्चय है कि शोषितों की सरकार सरकारी फजूलखर्ची को बहुत कम कर देगी—बल्कि कहा जा सकता है कि खर्च में किफायत करने की क्षमता ब्राह्मण-क्षत्री-लाला की सरकारों में कभी नहीं हो सकती, वह हो सकती है केवल शोषितों की सरकार में।

रामी—और नव-निर्माण ?

युधिष्ठिर—दामोदर-योजना-जैसी एक दर्जन योजनाएं हमारे देश के लिए परम आवश्यक ह; किन्तु कुदाल से कोसों दूर रहनेवाले उन बाबुओं से क्या आप कोई आशा रख सकते हैं, जो पंखा, मेज और कुर्सी से कहीं इधर-उधर हटना नहीं चाहते ? कल-कारखानों के बढ़ाने और सारे भारत में उनके जाल बिछा देने की लम्बी-लम्बी बातें की जा रही हैं; लेकिन उसमें भी वही रफ्तार बेढंगी दिखाई पड़ती है। कारखानों में बहुत नफा देखकर एक राज्य के मन्त्रियों ने एक बड़े कारखाने का काम अपने सगे-सम्बन्धियों के हाथ में दे दिया। सरकार की ओर से लाखों की सहायता मिलने वाली थी, फिर बहती गंगा में हाथ कौन नहीं धोता ? भाई-बन्द ऐसे थे, जिन्होंने किसानों पर लाठियां भले ही तुड़वाई हों, लेकिन किसी कारखाने का मुंह तक नहीं देखा था। केन्द्रीय सरकार के एक विशेषज्ञ बतला रहे थे—'यदि दालमिया को ही दे दिया गया होता, तो शोषण चाहे होता लेकिन कार-

खाना धरती पर खड़ा तो हो जाता, जिसे आप फिर राष्ट्रीय बना सकते थे।' इस तरह की न-जाने कितनी कपड़े, कागज और दूसरी मिलों की योजनाएं खटाई में पड़ी हुई हैं और लाखों रुपए भी बरबाद हो रहे हैं। हां, उद्योगीकरण में सरकार सबसे ज्यादा जिसके बारे में फुर्ती दिखला रही है, वह है भारत के पूंजीपतियों को अभयदान देना। छोटे-से-बड़े तक सभी मंत्रियों ने 'हुँआ', 'हुँआ' किया है। लेकिन पूंजीपति ही क्या उद्योग-निर्माण के एक-मात्र साधन हैं? क्या मजूरों की उपेक्षा करके यह काम निराबाध आगे बढ़ सकता है? पूंजीपतियों की लूट के लिए इतनी चिन्ता क्यों? इसमें केवल अमरीका को खुश करने की ही प्रवृत्ति नहीं है, बल्कि खून पानी से गाढ़ा होता है, यह भाव भी काम कर रहा है। आखिर सभी पूंजीपति बड़ी जाति के हैं, उनका ध्यान होना ही चाहिए। नान्ह जाति की सरकार कभी इस तरह पक्षपात नहीं कर सकती। वह उद्योग-धंधे का मालिक शरीर और दिमाग से काम करने वाले मजूरों को मानती, अमरीका की सहायता का स्वागत करती, किन्तु अपनी गर्दन बचाते हुए। अन्धा ही आशा कर सकता है कि ब्राह्मण-क्षत्रिय-लाला की सरकारें पूंजीपति घड़ियालों के प्रभाव से अलग रह सकती हैं? अन्दाज तो यही मालूम होता है, कि दस-पांच साल और कागजी घुड़दौड़ तथा लम्बे-लम्बे दिलासों में बिता दिए जायंगे। दस साल में हमारे बहुत-से बूढ़े निर्वाण का आनन्द लेने चले जायंगे, उनको क्या परवाह? किन्तु इसी दस साल में हमारे देश में ६ करोड़ और नए मुख आ जायंगे। उन्हें खाना-कपड़ा क्या इन कागजी योजनाओं से दिया जा सकेगा? पूंजीपतियों के जाल से निकलकर शीघ्रता से देश का उद्योगीकरण नान्ह जाति की सरकार अच्छी तरह कर सकती है, बल्कि उसी से इसकी एक-मात्र आशा है। नान्ह जाति में सभी पुरुष और सभी स्त्रियां काम करने वाले हैं। सभी हँसुआ-कुदाल चला सकते हैं। वे नियम बना सकते हैं, कि कोई लड़का परीक्षा में पास न समझा जाय, जब तक कि वह एक सांस में आध घण्टा कुदाल न चला सके, मन-भर का बोझ लेकर घण्टे में दो मील न जा सके। इस बात की क्या बड़ी जातियों से आशा हो सकती है, जिनका आदर्श है मक्खन-मलाई की तरह का कोमल हाथ। दामोदर, कोसी, घग्घर, नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी और महानदी की विशाल योजनाओं में जो सैकड़ों पहाड़-जैसे बांध बाँधे जायंगे, वे क्या इन मेहनती करोड़ों हाथों के लिए भार मालूम होंगे? बड़ी जातिवालों को यह समझना भी मुश्किल है, कि पचास करोड़ हाथों का प्रतिदिन आठ घण्टे चलना रोज एक अरब पूंजी पैदा करना है। उस वक्त तो सारे देश में जोश फैल जायगा और राज्य-राज्य, जिले-जिले, गांव-गांव में तालाब, नहर और बांध तैयार होते देखे जायंगे। उनका तालाब खुदवाने का जोश १९४८ के उत्तरप्रदेश के कागजी जोश-जैसा नहीं होगा।

रामी—भोजन और बेकारी का क्या उपाय हो सकता है ?

युधिष्ठिर—खाना और कपड़ा दो चीजों की समस्या आज भी हमारे देश की अधिकांश जनता के लिए भयंकर है, जो पचास लाख प्रतिवर्ष बढ़ती आबादी के लिए दिन-पर-दिन और भयंकर होती जायगी। देश में भरण-पोषण की क्षमता है, लेकिन रिश्वत और चोरबाजारी के राज में हम किसी समस्या को हल नहीं कर सकते। अन्न की समस्या मुश्किल नहीं है, यदि सब परती जमीन को आबाद करके खेतों को सवाया बढ़ा दिया जाय, यदि साल में एक फसल की जगह दो और दो की जगह चार फसलें पैदा की जायं। यदि खाद, पानी और बीज के सुभीते से फसल की उपज दुगुनी भी कर दी जाय, तो आज से पांचगुना अधिक अन्न होगा, जो हमारे लिए एक नहीं, दो साल के खाने के वास्ते पर्याप्त होगा। लेकिन यह क्या जमींदारी-प्रथा के पोसने से होगा या गांव के छोटे-छोटे जमींदारों को मनमानी करने के लिए छोड़ देने से होगा ? इसके लिए खेतों में आधुनिक सिंचाई के यंत्र या नहरें, जोतने के लिए सुधरे यन्त्र, बोने के लिए अच्छे बीज और खेत को उर्वर बनाने के लिए प्रचुर परिमाण में रासायनिक खाद होनी चाहिए। यह सब चीजें दो-दो बिस्वा (कट्ठा) के कोलों में नहीं इस्तेमाल की जा सकतीं। इसके लिए गांवों में पंचायती खेती का रवाज देना होगा। लेकिन पंचायती खेती के लिए ब्राह्मण-क्षत्री-लाला कभी तैयार नहीं हो सकते। नान्ह जाति ही उसमें आगे बढ़ सकती है। उनके पास खेत से भी अधिक अपना जांगर (शरीर की मेहनत) है, जो साल-भर में अधिकतर बेकार पड़ा रहता है। वे चाहेंगे कि वैसाख-जेठ में भी खेत खाली न रहें और जमीन के भीतर बहते पानी को पम्पों से ऊपर लाकर खेतों को फसल की हरियाली से ढँक दिया जाय। जिनमें न जमींदार हैं, न तालुकेदार, न दूसरे की कमाई पर जीनेवाले बाबू या निठुर सूदखोर, वे ही नान्ह वस्तुतः खेती का नवनिर्माण कर सकते हैं। वे ही राष्ट्र-निर्माण में कार्य करने के लिए सबको मजबूर कर सकते हैं; क्योंकि उनमें कोई कामचोर नहीं।

रामी—तो शोषितों से आशा है ?

युधिष्ठिर—वे युगों से चले आते शोषण का अन्त करेंगे; क्योंकि उनमें शोषक नहीं। शोषित जातियों को आगे बढ़ते देख बड़ी जाति के ईमानदारों को घबराने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि शोषित जातियां जो भी करेंगी, वह देश के सभी शोषित मानवों के लिए एक-सा लाभदायक सिद्ध होगा। वस्तुतः उनका हित उन्हें मजबूर करेगा, कि वे मानव की समता और एकता की ओर आगे बढ़ें। हर तरह की प्रगतिशील धाराओं का समर्थन और सहयोग उनका लक्ष्य रहेगा। हां, सनातन के नाम से डराकर जो कुरीतियां इस देश में आज तक चलती आ रही हैं, वे अब

चलने नहीं पायंगी और हिन्दू-कोड में मामूली-से सुधारों को भी जो सह्य नहीं समझते, उन्हें जरूर यह पृथ्वी कांटों से भरी मालूम होगी। अभी तक वे अपने आचार को ही सदाचार और हिन्दू-धर्म मानते थे। चूंकि इन तिनतग्गों में विधवा-विवाह नहीं, बल्कि भ्रूण-हत्या स्वीकृत थी, इसलिए हिन्दू-धर्म विधवा-विवाह के खिलाफ है। जनतन्त्रता बतलाती है, कि किसी देश और जाति का वह धर्म और सदाचार नहीं हो सकता, जिसे दस फीसदी जनता मानती है। हिन्दू-धर्म वह है, जिसे ७५ प्रतिशत लोग मानते हैं। और ७५ फीसदी नान्हों में विवाह-विच्छेद भी होता है, विधवा-विवाह भी होता है, इसलिए हिन्दू-कोड में ये बातें आनी चाहिएं। डा० अम्बेडकर ने ठीक ही कहा था—दस फीसदी के आचार को सारे हिन्दुओं पर मत लादो।

खोजीराम—छूत-अछूत का रोग बड़ी जातिवालों ने लगाया है। उसे हटाने की उनमें क्षमता नहीं है। यद्यपि छूत-अछूत का कुछ थोड़ा-सा प्रसाद बड़ी जातिवालों ने नान्ह जातिवालों को भी दे दिया है, किन्तु इस चालाकी का पता लगते देर नहीं लगेगी। सूअर पालना खराब है, इसलिए पूर्वी उत्तर-प्रदेश के लाखों भरों ने सूअर पालना छोड़ दिया। उनकी नई पीढ़ी जानती भी नहीं, कि उनके यहां कभी सूअर पाला जाता था। यह काम आर्थिक क्षति का था, क्योंकि मांस के लिए पाले जाने वाले जानवरों में सूअर सबसे अधिक लाभदायक है। साल-भर में बीस बच्चे और तीन महीने में हर बच्चा १५ सेर का, तीन महीने में एक सूअर से सात मन मांस और कहां मिल सकता है? इस भूल को मिटाना होगा और नई जाति के सूअरों का पालन बड़े पैमाने पर करना होगा। सौभाग्य से प्रायः सभी नान्ह जातियां सूअर का मांस खाती रही हैं। हां, जब सूअर पालना बुरा समझा जाने लगा, तो भरों ने इतना स्वार्थत्याग किया। चमड़ा निकालना बुरा होने से कुछ जगह चमारों ने भी यह काम छोड़ दिया। यह देश के लिए आर्थिक हानि की चीज है। लेकिन इसके छोड़ने का दोष किसको दिया जाय? निश्चय ही इसके लिए बड़ी जातियां दोषी हैं, जिन्होंने इसे घृणित काम बतलाया। वह समय बहुत नजदीक है, जब एक भी आदमी भंगी का काम करने को तैयार नहीं होगा। उसकी इस सेवा का बदला आपने उसे परम अछूत बनाकर दिया है। म्युनिसिपेल्टियों और शहर वालों को आज ही सजग होने की जरूरत है। उनको खयाल रखना चाहिए कि १९६५ ई० में मैले की टोकरी सिर पर ले जानेवाला एक भी नर-नारी भारत-भूमि में नहीं रह सकेगा। वेतन दूना-तिगुना और अच्छे मकान के लालच से आप इतने दिनों तक और उन्हें ले चल सकेंगे। किन्तु आप उन्हें अनिवार्य शिक्षा भी देने जा रहे हैं। उनके लड़कों को सरकारी अफसर ही नहीं, मन्त्री भी बनाने के लिए

मजबूर हैं।-उनमें छात्रवृत्तियां भी बढ़ाने जा रहे हैं। फिर कैसे आशा रखते हैं कि वह इस साधारण नीति-वाक्य का अनुसरण नहीं करेंगे–'स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।' बस, दो गजेटेड अफसर और एक मंत्री बन जाने दीजिए, जिसे रोकने की किसी में शक्ति नहीं है; फिर देखिए कि वे अपनी जाति में किसी को मैले की टोकरी सिर पर उठाने लायक रहने देते हैं। इससे घबराने की जरूरत नहीं। हर एक मानव को मानवोचित अधिकार मिलना चाहिए। शहरों और कस्बों के लिए यदि उनके पास अक्ल है, तो समय काफी है, जिसमें वे स्वयंबह नाबदान बनवा सकते हैं।

युधिष्ठिर–हमारे देश में युगों से शोषितों के हित की बात सुनने की कभी चेष्टा नहीं की गई। बुद्ध ने जोर लगाया, किन्तु थोड़े ही दिनों तक उसमें कुछ सफलता रही। रैदास और कबीर मुक्तभोगी थे। उनकी भी बातें मनोरंजन-मात्र रह गईं। किन्तु आज उन बातों की अवहेलना नहीं की जा सकती। आज शोषित शक्तिधर हैं, कल वह शक्ति साकार रूप लेने जा रही है। यह शक्ति एक नवीन और अत्यन्त सुन्दर दुनिया का निर्माण करने जा रही है। उस दुनिया में मानव-मात्र के सुख और शान्ति का ध्यान रहेगा। आज के शोषकों–ब्राह्मण-क्षत्री-लालों–की सन्तानें भी उससे लाभ उठायंगी। इसलिए सबको इसका स्वागत करना चाहिए।

खोजीराम–१९५१ के निर्वाचन में हमारी आज की ३३ करोड़ ७० लाख जनता में आधे १७ करोड़ वोटर (मतदाता) हैं, इनमें चार साढ़े चार करोड़ से अधिक ब्राह्मण-क्षत्री-लाला नहीं हैं।

भगवानदास–फिर तो शोषित १२ करोड़ से किसी प्रकार कम नहीं होंगे, जिनमें साढ़े तीन करोड़ हरिजन होंगे ही, क्योंकि उनकी संख्या ७ करोड़ से ऊपर है।

महीप–आज तक वोट द्वारा क्रान्तिकारी शक्तियों ने कहीं अधिकार प्राप्त नहीं किया।

युधिष्ठिर–तो भी यदि छूत-अछूत दोनों प्रकार के शोषित वोटर अपने दो-तिहाई वोटों को समझ-बूझ कर इस्तेमाल करें, तो निर्वाचन में ब्राह्मण-क्षत्री-लाला की पराजय तो निश्चित है।

———

२०

भाषा और प्रदेश

भगवानदास–भारत के स्वतंत्र होके दो साल बीत गए, तब बड़ी मुश्किल से हमारे स्वतन्त्र देश की राष्ट्रभाषा का निश्चय हो पाया।

महीप–कठिन-से-कठिन या आसान-से-आसान जिस किसी समस्या को उठाइए, यही हालत है। जान पड़ता है, हमारे नेतृत्व को काठ मार गया है, वह किसी बात पर कोई निश्चय नहीं कर पाता।

मुखपात्री–आखिर राष्ट्रभाषा की आवश्यकता को भी वह लोग अनुभव करते थे या नहीं ?

रामी–क्यों अनुभव करेंगे, जब वह समझते हैं, कि अंग्रेजी से काम चला जा रहा है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानकर भी अभी पन्द्रह साल के लिए पनाला वहीं है।

महीप–राष्ट्रीय अपमान का खयाल न भी हो, तो भी यह तो सोचना चाहिए, कि इसी वक्त कालेजों में अंग्रेजी के माध्यम द्वारा शिक्षा देना अध्यापकों के लिए कठिन हो गया है। विद्यार्थी अंग्रेजी व्याख्यान नहीं समझ पाते। आज, जब यह हालत है, तो पांच बरस बाद जो मैट्रिक पास करके आयेंगे, उनकी क्या हालत होगी ?

रामी–हालत क्या होगी, पल्ले पड़ेगा सो पड़ेगा। हमारे विश्वविद्यालय तो विद्यार्थियों के लिए कसाईखाने हैं ही–आज १९५१ में भी परीक्षाओं में ३० और ३५ सैकड़ा विद्यार्थी पास किये जा रहे हैं।

महीप–राष्ट्रीय सम्मान की बात करनी भी भूल है। लाज-शरम धोकर हम लोग पी चुके हैं।

भगवानदास–राष्ट्रभाषा के बारे में जो निश्चय नहीं हो रहा था, उसमें कठिनाइयां थीं।

महीप–कठिनाइयां किसमें नहीं हैं ? अमेरिका से दो-चार अरब डालर मिलना जितना कठिन है, दामोदर और कोसी का बांध बांधना जितना कठिन है, आहार में स्वावलंबन जितना कठिन है, क्या उतना ही राष्ट्रभाषा का प्रश्न भी कठिन था ? फिर छोटी-बड़ी समस्याओं को कठिन कहकर आप जमा करते जायंगे, तो क्या नैया और बोझिल नहीं करेंगे ?

युधिष्ठिर–किसी बात का भी निर्णय करना इन्हें मुश्किल मालूम होता है।

क्या हिन्दी भाषा और नागरी लिपि को छोड़कर भारत की कोई दूसरी राष्ट्रभाषा राष्ट्रलिपि हो सकती थी ? संख्या में देखे तो (१) प्राय: आधे भारतवासी इसी भाषा को बोलते हैं और दो-तिहाई उसे समझ लेते हैं, (२) आधे से अधिक भारत का भूभाग हिन्दी बोलनेवालों का निवासस्थान है; (३) सत्तर, अस्सी और नब्बे प्रतिशत हिन्दी के शब्द भारत की दूसरी भाषाओं में मिलते हैं; (४) जब-कभी भी सारे भारतको एक भाषा की आवश्यकता पड़ी, तो हिन्दी-भाषा-भाषी क्षेत्र में प्रचलित भाषा ही सारे भारत की भाषा स्वीकार की गई; (५) अब भी कलकत्ता-बंबई-जैसे बहुभाषा-भाषी नगरों में भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी लोग हिन्दी को ही विचार-विनिमय का माध्यम बनाते हैं।

मुखपात्री—सोया हो तो उसे जगाया जा सकता है; जो सोने का बहाना किये हुए है, उसे कैसे जगाया जा सकता है ?

महीप—अंग्रेजी जाननेवाले बाबू, अंग्रेजों के जाने पर उनके झंडे को अब भी पकड़े हुए हैं, उनकी इच्छा है, कि कम-से--कम उनके जीवन-भर अंग्रेजी बनी रहे। उधर पाकिस्तान को फिर हिन्दुस्तान में आ जाने का स्वप्न देखनेवाले समझते हैं, कि यदि उर्दू के लिए स्थान नहीं रखा गया, तो मुसलमान फिर अखण्ड हिन्दुस्तान बनाने में सहायक नहीं होंगे। तीसरे वह अदूरदर्शी भारतीय नागरिक मुसलमान हैं, जो विदेशीयता की प्रतीक अरबी लिपि और उर्दू भाषा को अब भी सारे भारत की कम-से-कम द्वितीय राष्ट्रभाषा बनाये जाने की दृढ़ लालसा रखते हैं। लेकिन व्यवहार की दृष्टि से, अधिकार की दृष्टि से, भारत की एकता की दृष्टि से, इतिहास की दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट है, कि हिन्दी को छोड़कर हमारे स्वतंत्र राष्ट्र की कोई दूसरी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती।

युधिष्ठिर—अछता-पछता कर हिन्दी को राष्ट्रभाषा और नागरी लिपि को मानना ही पड़ा, लेकिन पंद्रह साल और उसे टालने की कोशिश की गई। खैर, उसके बारे में हम अन्त में राहुलजी का एक लेख सुनायंगे।

भगवानदास—ठीक, किंतु हमारे सारे स्वतंत्र देश की एक भाषा एक लिपि होनी चाहिए।

मुखपात्री—एक भाषा एक लिपि और एक संस्कृति भी होनी चाहिए।

खोजीराम—एक भाषा एक लिपि एक संस्कृति और एक जातिपांत होनी चाहिए।

मुखपात्री—जातिपांत धर्म से संबन्ध रखती है, धर्म में राजनीति को दखल नहीं देना चाहिए।

महीप—और राजनीति में धर्म को दखल देना चाहिए, क्यों ?

युधिष्ठिर—फिर बहके जा रहे हो ? हमारा देश न एक भाषावाला देश है

न एक जातिवाला। बंगला, उड़िया, तामिल, तेलगू, मलयालम् और कन्नड़ परम्परा से चली आई अपनी लिपि रखती हैं। जो भाषा या लिपि किसी प्रदेश में पहले से चली आ रही है, उसको हटाने का प्रयास बेकार ही नहीं बल्कि हानिकारक है। किसी बंगाली से आप कहें, कि बँगला छोड़ दो, तो वह भी आपसे कह सकता है, आप ही क्यों न हिन्दी को छोड़ दें। दूसरों को यदि आप देश की एकता के नाम पर अपनी भाषा छोड़ने के लिए कहते हैं, तो घर ही से क्यों न उसे शुरू करें।

भगवानदास—फिर तो कई भाषाओं के कारण हमारा देश बहुत से टुकड़ों में छिन्न-भिन्न हो जायगा।

युधिष्ठिर—बहुत क्या, सौ-दो सौ भाग हो जायँगे? हिन्दी छोड़कर बाकी ग्यारह ही दूसरी प्रधान भाषाएँ[२] हैं! आसामी, बंगला, उड़िया, तेलगू, तमिल, मलयालम, कन्नड़, मराठी, गुजराती, पंजाबी और कश्मीरी। यूरोप से तुलना करके देखिये, तो मालूम होगा, वहां के भाषा-क्षेत्रों से हमारे भाषा-क्षेत्र क्षेत्रफल और जनसंख्या दोनों में बहुत बड़े हैं।

भगवानदास—तो आप समझते हैं, कि भाषाओं के अनुसार प्रदेशों[१] को बांट दिया जाय?

युधिष्ठिर—यह सिद्धान्त तो कांग्रेस ने २७ वर्ष पहले ही मान लिया था और कभी किसी ने आपत्ति भी नहीं उठाई। अब जब सिद्धान्त को व्यवहार में लाने का अवसर आया और बात अधिकार के भीतर भी है, तो बहानेबाजी की जा रही है। लेकिन यह समझ लेना चाहिए कि भाषाएँ अपने क्षेत्र में उससे कहीं अधिक मजबूत बैठी हुई हैं, जितने कि हमारे आज के भाग्य-विधाता। भाषाओं की स्वतन्त्र स्थिति और उन्हींके अनुसार प्रदेशों के विभाजन को स्वीकार करना गांधीजी की एक बड़ी दूरदर्शिता थी। आज प्रदेश के नवनिर्माण की बात चलने पर कह दिया जाता है, हमारे ऊपर बड़े-बड़े काम आ पड़े हैं। जो बड़े-बड़े काम बतलाये जाते हैं, उनमें भी सबकी यही हालत है। तीन वर्ष हो गए, अभी भी लाखों शरणार्थी आसमान के नीचे वर्षा में भींगने के लिए छोड़ दिये गए हैं और उनकी जो गति हो रही है, उसे कहने की आवश्यकता नहीं। चालीस-चालीस लाख आदमियों के हाथ और दिमाग काम करने के लिए मौजूद हैं, लेकिन उनका कोई उपयोग नहीं हो रहा है। सदाव्रत खिला देने से हमारी सरकार समझती है, उसने अपने कर्तव्य को पूरा कर दिया। प्रदेशों को भाषानुसार बनाने में कठिनाई क्या है? कहते हैं, सब जगह सीमान्तों के झगड़े हैं; कहीं-कहीं एक प्रदेश की भाषा में दूसरी भाषा का द्वीप आ जाता है, जिसके लिए झगड़े खड़े हो जाते हैं। लेकिन, मैं नहीं समझता,

यह भारत के बँटवारे जैसी कोई बड़ी समस्या है। यह केन्द्रीय नेतृत्व का कार्य है, कि सीमा के लिए सिद्धान्त निर्धारित कर दे। लगातार जहां तक एक भाषा बोली जाती है, वह एक प्रदेश है; बीच में यदि कोई दूसरी भाषा का द्वीप है, तो वह जिस प्रदेश के भीतर है, उसी का अंग माना जाय। शिक्षा के लिए तो जहां भी पर्याप्त संख्या में बच्चे मिलें, वहां उनको अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए। यदि मद्रास के चारों तरफ तमिल भाषा बोली जाती है तो उसे तमिलनाड़ का भाग मानना होगा। यदि बंबई मराठी भाषा-क्षेत्र के भीतर द्वीप के तौर पर है, तो उसे महाराष्ट्र का अंग मानना होगा। बहुमत के लिए वयस्क मताधिकार से फैसला कर लेना चाहिए। भाषाओं के अनुसार प्रदेशों का निर्माण करने में जितनी देर की जा रही है, भाषानुसार नये सीमान्त के निर्धारण में जितनी ही टालमटोल की जा रही है, उतना ही बंगाली-बिहारी, उड़िया-आंध्र, आंध्र-तमिल, तमिल-मलावारी, मलावारी-कर्नाट, कर्नाट-मराठा, मराठा-गुजराती, गुजराती-हिन्दी (राजस्थानियों), हिन्दी-पंजाबी, हिमाचली-अहिमाचली, बंगाली-आसामी के बीच में कटुता बढ़ती जायगी। इसके लिए सीमा-निर्धारक कमीशन बना दिये जायँ, जिनमें विवादी प्रदेशों के सदस्य न हों।

खोजीराम—अभी हैदराबाद के बारे में तो कुछ फैसला ही नहीं हुआ।

युधिष्ठिर—क्या अब भी फैसला बाकी है? भारत-सरकार की ओर से तो कहा जा चुका है, कि हैदराबाद के भविष्य का निर्णय वहां की जनता करेगी। आन्ध्र निश्चय कर चुके हैं। वह नहीं चाहते, कि उनका एक भाग मद्रास प्रदेश में रहे, दूसरा हैदराबाद में। मराठे भी आन्ध्र-वन्धुओंसे पीछे नहीं हैं। आखिर आन्ध्र के—जिसके क्षेत्र में हैदराबाद नगर है—निकल जाने पर क्या मराठे और कर्नाट, हैदराबाद का चिराग जलाये रखेंगे? मराठों में फूट डालने की कोशिश की जा रही है। बरार वालों को अलग रखने की सलाह दी जा रही है। यदि विदर्भ वाले कुछ अपनत्व को बनाये रखना चाहते हैं, तो उसके लिए वृहत्तर महाराष्ट्र का उसे उपप्रदेश रखकर भी वैसा कर सकते हैं। सारी मराठी-भाषा-भाषी भूमि को एक प्रदेश के रूप में परिणत होना चाहिए और जिस तरह भूतकाल में राष्ट्र से बढ़कर उसने महाराष्ट्र का नाम अपनाया था, उसी तरह उसे अब वृहत्तर महाराष्ट्र को अपनाने में आनाकानी नहीं करनी चाहिए। बंबई, हैदराबाद तथा मध्यप्रदेश में बिखरे महाराष्ट्र को एक इकाई के रूप में शक्तिशाली बन सारे भारत को शक्तिशाली बनाना चाहिए।

महीप—कर्नाटक की तो और भी फजीहत है।

युधिष्ठिर—हां, आंध्र तो केवल दो भागों में बँटा है, महाराष्ट्र तीन भागों में, लेकिन कर्नाटक के तो चार-चार टुकड़े हुए हैं—दो भाग बंबई और मद्रास के प्रदेशों

में है और दो भाग मैसूर और हैदराबाद के राज्यों में। अधिक दिनों तक इस पुरानी अन्धेरगर्दी को कायम नहीं रखा जा सकता। भारत का स्वाभाविक प्रदेश-विभाजन होना आवश्यक है। हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशों को भी हम तो कहेंगे एक महाप्रदेश तथा अनेक उपप्रदेश या जनपद के रूप में संगठित होना चाहिए। आबू को हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश से हटाकर न जाने किस आधार पर गुजरात में ले जाने की धृष्टता की गई। सिरोही की भाषा गुजराती नहीं है। खामखाह क्यों विवाद का बीज बोया जा रहा है।

भगवानदास--पंजाब में भी तो हिन्दी और पंजाबी का झगड़ा चल रहा है।

युधिष्ठिर--झगड़ा चलेगा ही, यदि औचित्य का ध्यान न करके तोपताप किया जायगा। हिन्दी-भाषा-भाषी अम्बाला-कमिश्नरी पंजाबी-भाषी पंजाब और पहाड़ी हिन्दी-भाषी कांगड़ा (हिमाचल के अंग) को मिलाकर अंग्रेजों ने अपने मतलब से एक प्रान्त गढ़ा था। अब हिन्दी भाषा-भाषी अम्बाला-कमिश्नरी को पंजाब में रखने की क्या आवश्यकता है? जितनी पंजाबी बोलीवाली भूमि है, उसको एक प्रदेश बना देना चाहिए।

भगवानदास--पंजाब की रियासतों का संघ बनाया गया है?

युधिष्ठिर--राजाओं को खुश करने के लिए संघ बना दिया गया था, लेकिन अंतिम फैसला तो जनता के हाथ में है। हमारे नेताओं को कम-से-कम भाषानुसार प्रदेश के संबंध में निर्णय लेते वक्त जनता की भावनाओं की अवहेलना नहीं करनी चाहिए, और पंजाबी जनता के वयस्क-मत-निर्णय पर उसे छोड़ देना चाहिए। सारी पंजाबी-भाषा-भाषी जनता का एक प्रदेश होना अच्छा है। सिक्खों के लिए मैं यह राय दूंगा, कि वह पंजाब की भाषा पंजाबी और उसकी लिपि नागरी स्वीकार कर लें, गुरुमुखी को धार्मिक लिपि के तौर पर जिसकी इच्छा हो भले ही सीखे। भारत की राष्ट्रलिपि को अपनाने में पंजाबी-भाषा-भाषियों को बहुत सुभीता रहेगा। तो भी यदि पंजाबी की लिपि गुरुमुखी मान ली जाय, तो भी कोई हरज नहीं है। जो पंजाबी होते हुए गुरुमुखी का विरोध करते हैं, उनको समझ लेना चाहिए, कि गुरुमुखी नागरी से बहुत भेद नहीं रखती, दोनों में थोड़ा-सा अंतर है और जब धर्मान्धता का दोष ढीला हो जायगा, तो नागरी लिपि स्वीकार कर ली जायगी। हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि सारे भारत-संघ की भाषा होने के कारण वह अनिवार्य पाठच विषय के तौरपर पंजाब में भी पढ़ाई जायगी, तब वह हिन्दी खुशी से पढ़ सकते हैं, लेकिन किसी पंजाबी को अपनी मातृभाषा से विरक्ति क्यों होनी चाहिए? उसको तो और उदारता दिखलाते हुए कहना चाहिए, कि पंजाब के भीतर पंजाबी भाषा गुरुमुखी लिपि चले और सारे भारत के लिए हिन्दी

भाषा नागरी लिपि । यदि कोई उन्हें अनौचित्य या हठधर्मी दिखाई पड़ती है तो उसे समय पर छोड़ देने में कोई हानि नहीं होगी ।

भगवानदास–लेकिन पंजाबी लोग हरियाना और कांगड़ा को समेट के रखना चाहते हैं, और वहां के लोगों को भी पंजाबी पढ़ाना चाहते हैं ।

युधिष्ठिर–समेट के रखना निर्जीव पदार्थों का ही हो सकता है । सजीव मानव को उसकी इच्छा के विरुद्ध नहीं समेट के रखा जा सकता । बहुभाषीय प्रदेश बनाने की हानि को समझना चाहिए, और उसके लिए दुराग्रह नहीं करना चाहिए । पंजाब के हिन्दू यदि समझते हैं, कि हरियाना और हिमाचल के भाग को मिलाकर हिन्दू बहुमत बनाये रखेंगे, तो यह बहुत तुच्छ ही नहीं हानिकारक मनोवृत्ति है । इसका अर्थ सिक्ख क्या लगायेंगे ?

भगवानदास–मैं तो समझता हूँ, पहाड़ और हरियाना छोड़ देने पर भी बहुमत हिन्दुओं का ही रहेगा ।

युधिष्ठिर–सिक्खों और हिन्दुओं के बहुमत की बात सुनकर मुझे बहुत खेद होता है । मुसलमानों और हिन्दुओं के झगड़े को क्या इस तरह फिर से दुहराना चाहते हैं ? समझ लेना चाहिए कि यहां झगड़े का कारण दो संस्कृतियों का विरोध नहीं है । जब भारत के हिन्दुओं और बौद्धों में कोई सांस्कृतिक विरोध नहीं है, तो क्या सिक्खों और हिंदुओं का सांस्कृतिक विरोध माना जायगा ? वैसे तो पंथों और उपपंथों के आपसी मतभेद रहते ही हैं, लेकिन उसे सांस्कृतिक विरोध नहीं माना जा सकता । यदि किसी हिन्दू या सिक्ख में यह भावना काम कर रही हो, तो वह कल्याणकारिणी नहीं है । यदि यह भावना छिपी हो, तो उसके लिए भी यह आवश्यक है, कि पंजाब से अपंजाबी-भाषा-भाषी भूभाग को अलग कर दिया जाय और केवल पंजाबी भूभाग का ही एक प्रदेश रहने दिया जाय ।

महीप–अर्थात् कांगड़ा और शिमला के सारे जिले तथा होशियारपुर और गुरदासपुर के पहाड़ी भागों को हिमाचल प्रदेश में जाना चाहिए ।

युधिष्ठिर–हां, और अम्बाला कमिश्नरी के हिन्दी भाषा-भाषी जिलों को यौधेय-गण में जाना चाहिए, जिसकी राजधानी वहां दिल्ली मौजूद ही है ।

रामी–यौधेय गण का अवश्य पुनरुज्जीवन होना चाहिए ।

युधिष्ठिर–यदि हमारे आज के कर्णधारों को अपने इतिहास का गौरव होता, अपनी संस्कृति का प्रेम होता, तो वह यौधेय का नाम सुनते ही उछल पड़ते । इसी अम्बाला कमिश्नरी की भूमि में दुर्जेय यौधेय जैसा गण था, जिसने यवनों और शकों के छक्के छुड़ाये और जिसने चौथी सदी तक अपने अस्तित्व को एक यशस्वी वीर-शक्ति के तौर पर कायम रखके गुप्तों के प्रचण्ड शासन में अपने-आपको खो दिया ।

रामी—पूर्वी पंजाब नाम भी कुछ ऊटपटांग रहेगा, क्योंकि पश्चिमी पंजाब पाकिस्तान में चला गया है।

युधिष्ठिर—पूर्वी पंजाब को अभी पञ्जाब नाम छोड़ने की आवश्यकता नहीं, पाकिस्तान में इस्लामिस्तान की बाढ़ आई हुई है, क्या जाने वही पश्चिमी पंजाब और पूर्वी बंगाल का कोई दूसरा नाम रख दें, फिर पंजाब नाम केवल हमारे लिए बच रहेगा। नहीं तो पुराने नामों में से मद्र को अपना सकते हैं, अथवा प्राचीनकाल से बहुत पीछे तक गणों की प्रधानता होने से उसे आदिगण या आदिजन कह सकते हैं।

रामी—और हिमाचल प्रदेश के बारे में क्या होना चाहिए? मैं तो समझती हूँ, उसका एक स्वतन्त्र प्रदेश बन जाना चाहिए, जो बहुत लम्बा जरूर होगा, किंतु वह स्वाभाविक है; भाषा और प्रादेशिक संस्कृति के खयाल से उसकी आवश्यकता है।

युधिष्ठिर—हिमाचल प्रदेश पर हम अलग ही बात करें तो अच्छा है। हिंदी-भाषा-भाषी प्रदेशों के बारे में कोई विवाद का सवाल नहीं है। बहुत विशाल होने से जैसलमेर से पूर्णिया तक सब हिंदी-भाषा-भाषी भूमि का एक प्रदेश बनना कोई बुरा तो नहीं है, न इससे प्रबन्ध-सम्बन्धी कोई दिक्कत ही उठ सकती है। तो भी यदि तत्काल इसे एक महाप्रदेश का रूप न दिया जाय, तो कम-से-कम शिक्षा-संस्थाओं, सांस्कृतिक, साहित्यिक परिषदों के द्वारा इसकी एकता बनाए रखने की आवश्यकता है। हिंदी-भाषा-भाषी बिहार और पश्चिमी बंगाल का मानभूम (पुरलिया) को लेकर झगड़ा बेकार है। उसका निर्णय बालिग-मताधिकार से वोट द्वारा कर लेना चाहिए। जितना लगातार इलाका बिहार में रहना चाहता है, उसे वहां रहने देना चाहिए, जो बंगाल में जाना चाहता है, उसे बंगाल में जाने देना चाहिए। कूचबिहार और त्रिपुरा को लेकर आसाम और बंगाल का झगड़ा भी बेकार है, वहां भी बहुमत द्वारा फैसला करना ठीक है। दोर्जेलिङ्. को केवल इसीलिए बंगाल में रखा जा सकता है, कि वहां की जनसंख्या पर्याप्त नहीं है, लेकिन दोनों में भाषा का जितना भेद है तथा पिछड़े इलाके वालों को आगे बढ़े इलाकेवालों से जो स्वाभाविक डर है, उससे यही अच्छा है कि जब तक दोर्जेलिङ्. बंगाल में रहे; भाषा और शिक्षा की दृष्टि से उसे स्वतन्त्र माना जाय और वहां के भीतरी मामलों में कम-से-कम दखल दिया जाय। एक तरह उसे बंगाल के भीतर स्वायत्त-प्रदेश मान लिया जाय। लेकिन मैं तो समझता हूँ वृहत्तर हिमाचल के ही द्वारा दोर्जेलिङ्, सिक्किम और भूटान की समस्या ठीक से हल की जा सकती है।

रामी—और राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में जो लेख सुनाने वाले थे।

युधिष्ठिर—लीजिये उसे भी—

संविधान-सभा और हिंदी

हिन्दी के लिए अब नया युग आरंभ हुआ है । स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाष क्या हो इसके लिए अंतिम युद्ध १४ सितम्बर १९४९ को होकर हिन्दी के पक्ष निर्णय हो गया, किंतु अभी विरोधियों ने अपने हथियार डाल नहीं दिये हैं आखिरी समय तक उन्होंने लड़ाई लड़ी और यह नहीं कहा जा सकता कि वह बिल कुल असफल रहे । वस्तुतः जहां अंग्रेजी को कल से ही सिंहासन-च्युत होना चाहि था, वहां उसके स्थान को १५ वर्ष के लिए अचल बना दिया गया और भारती अंकों को अन्तर्राष्ट्रीय रूप कहकर अंग्रेजी अंकों को भी हिंदी पर लाद दिया गया शायद विरोधियों ने यह भी सोच रखा है "उत्पत्स्यते तु मम कोपि समानधर्मा" और यहां एक नहीं सैकड़ों, हजारों समानधर्मा अभी भी प्रयत्नपूर्वक पैदा किये जा रहे हैं । अंग्रेजी को सरकारी भाषा बनाने का लाभ इण्डो-आंग्लियन वर्ग को यह हुआ, कि सभी सरकारी नौकरियां उनकी और उनकी आनेवाली पौध की बपौती हो गईं । क्या आई०सी०एस० जैसा दिमाग गरीबों की झोपड़ियों में नहीं पैदा होता? लेकिन गरीबों के लड़कों के लिए तो अपनी मातृभाषा में मिडिल तक भी पहुंच पाना मुश्किल है । उनके पास फीस और किताब का पैसा कहां ? जो कुछ लोग पढ़ भी जाते, उन्हें भी कान्वेन्ट या यूरोपियन स्कूलों की खर्चीली पढ़ाई से अंग्रेजी को मातृभाषा समान बोलने का सुभीता कहां ? हमारे पब्लिक-सर्विसेस-कमीशन केवल ज्ञान ही नहीं देखते, बल्कि वहां, "गुड-ब्रीडिंग" भी देखी जाती है, और गुड-ब्रीडिंग का अर्थ है, रहन-सहन, बोल-चाल, कपड़े-लत्ते में पूरा साहब होना । यह सब सुभीता उसी वर्ग ने प्राप्त किया । वह वर्ग न केवल मलावार में है, न केवल बंगाल में । कहीं अधिक और कहीं कम, वह वर्ग अंग्रेजों की दया से सारे भारतवर्ष में पैदा हुआ । वह अंग्रेजों के औरस पुत्र समान था, इसलिए उसे परम राजभक्त होना ही चाहिए था । इसमें शक नहीं कि कभी-कभी उनमें से भी हिरण्यकशिपु के यहां प्रह्लाद पैदा हो जाते थे, किंतु वह अपवाद स्वरूप ही । इस वर्ग का अपना निहित स्वार्थ है, जिसके लिए वह आज हिन्दी का विरोध करता है । और उसने अंग्रेजी के स्थान को १५ साल के लिए अक्षुण्ण बनाके छोड़ा । यह वर्ग केवल हिन्दी का ही शत्रु नहीं है, वह वस्तुतः अपने-अपने प्रदेशों में वहां की भाषाओं का भी उतना ही विरोधी है । यदि बंगला ही योग्यता की कसौटी रही, तो कान्वेन्ट में दूध पिये, युरोपियन स्कूल में शिक्षा पाये, "गरम-घर" के पोसे इनके बच्चों को कौन पूछेगा ? इस वर्ग की कृपा से कान्वेन्ट, युरोपियन स्कूल, जुनियर-केम्ब्रिज, सिनियर-केम्ब्रिज को भी १५ साल का और जीवनदान मिल गया । इसी बीच में हमारे

इण्डो-आंग्लियन साहबों की अगली पौध तैयार होके निकल आयगी। क्या इनके लिए वह कुछ करना नहीं चाहेंगे? उस दिन इन्हीं में से एक गोपालस्वामी अय्यंगार ने राष्ट्रभाषा पर बहस करते समय संविधान सभा में कहा था—

"देश अंग्रेजी भाषा को तुरंत नहीं छोड़ सकता। कितने ही वर्षों तक हमें अंग्रेजी को जारी रखना होगा—अंग्रेजी का छोड़ना संभव नहीं होगा। इसलिए करीब १५ साल तक अंग्रेजी उन सभी कामों में प्रयुक्त होती रहेगी, जिनके लिए वह आज प्रयुक्त होती है—जहां तक मेरा विचार है, अंग्रेजी आगामी बहुत वर्षों तक यहां रहेगी, उसको रहना है, क्योंकि हम मानते हैं कि संघ या राज्य के काम के लिए हिन्दी इतनी काफी विकसित नहीं हुई है, कि न्यायालयों में उसके द्वारा कानून या कानून की व्याख्या के लिए निश्चित भाव व्यक्त किया जा सके। हम संघ की राजकीय भाषा की तरह हिन्दी को स्वीकार कर सकते हैं, किंतु हमें मानना पड़ेगा, कि आज वह भाषा इतनी पर्याप्त विकसित नहीं हुई है।"

हिन्दी के विकास में वाधा पैदा करने के संदेह का एक यह भी कारण है कि इण्डो-आंग्लियनशाही हमारे यहां अब भी सर्वेसर्वा हैं। क्या आप आशा रखते हैं, कि जिस वर्ग का इतना स्वार्थ अंग्रेजी के भीतर निहित है और जो ही आज वस्तुतः हमारे ऊपर शासन कर रहा है, वह कभी भारत-संघ में हिन्दी और आसाम में आसामी, बंगाल में बंगला, आन्ध्र में तेलगू, उड़ीसा में उड़िया, तमिलनाड में तमिल, केरल में मलयालम्, महाराष्ट्र में मराठी, गुजरात में गुजराती, पंजाब में पंजाबी को अपना स्थान लेने देगा? इसलिए हिन्दी को अभी भी सावधानी से रहने की आवश्यकता है। हमें यह नहीं समझ बैठना चाहिए, कि नाबालिगी के कारण छिना हुआ हिन्दी का सिंहासन १९६६ ई० में अपने-आप उसे मिल जायगा।

कितने ही अहिन्दी-भाषी हिन्दी की स्थिति को गलत समझते रहे, कि हिन्दी सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए लड़ रही है। किंतु वास्तविकता यह थी, कि हिन्दी ने भारत की सभी प्रादेशिक भाषाओं की लड़ाई लड़ी। यदि आज संविधान में मंजूर करना पड़ा—"कोई राज्य (प्रदेश) कानून द्वारा राज्य के भीतर प्रयुक्त होनेवाली भाषाओं में से किसी या हिन्दी को उस राज्य के सभी या कुछ राजकीय कामों के लिए प्रयुक्त की जानेवाली भाषा या भाषाएं स्वीकृत कर सकता है—राष्ट्रपति की सम्मति से निर्णय, डिग्री और आदेश के अतिरिक्त कोई राज्य अपने राज्य के उच्च न्यायालय की कार्रवाई तथा सरकारी काम के लिए हिन्दी भाषा या किसी और भाषा को स्वीकृत कर सकता है।" इस प्रकार व्यवस्थापिका-सभा से हाईकोर्ट तक तथा दूसरे सरकारी कामों में जहां हिन्दी-प्रदेशों में हिन्दी का अधिकार स्वीकार करना पड़ा, वहां हिन्दी के इस युद्ध में बंगाल में बंगला, उड़ीसा में

उड़िया, और तमिलनाड में तमिल को भी वह स्थान अनायास ही प्राप्त हो गया। हिन्दी के विरुद्ध जितना जोर-शोर से प्रचार और आंखों में धूल-झुंकाई चल रही थी, उसके कारण हिन्दी के पक्ष को जो नहीं समझ पाते थे, वह भी आगे उसके कृतज्ञ होंगे।

राष्ट्रभाषा के लिये लड़े गये अभिनव महाभारत के अंतिम दिनों की बातों का सिंहावलोकन कर देना व्यर्थ नहीं होगा, क्योंकि वहा कितनी ही बातें ऐसी कही गईं, जिन पर हमें आगे ध्यान रखकर चलना होगा।

अंग्रेजी का स्तुतिगान—पंडित जवाहरलाल ने अंग्रेजी की अंधभक्ति नहीं दिखलाई। उन्होंने सिर्फ यही कहा—"अंग्रेजी ने जो हमें सिखलाया, उसके लिए हम कृतज्ञ रहेंगे। हमारे लिए अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अंग्रेजी का महत्त्व अवश्य बना रहेगा।" मेरी समझ में यदि नेहरूजी के इस विचार को स्वीकार किया जाय, तो हमें अंग्रेजों की दासता का भी कृतज्ञ रहना पड़ेगा और क्लाइव-हेस्टिंग से लेकर डायर-ओडायर तक का भी, क्योंकि उनकी कृपा से हमें अंग्रेजी जैसा हीरा मिला। यदि अंग्रेजी न मिली होती, तो हम अंधकार-युग में रहते, गुहामानव की स्थिति से ऊपर न उठ पाते! मेकाले से भी हमें रुष्ट होने की आवश्यकता नहीं, जो कि उसने भारतीय भाषाओं के विरुद्ध अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनवाया और जिसको दुनिया के योग्यतम शिक्षा-विशेषज्ञ हमारे मौलाना आजाद अभी १५ सालों तक और रखना चाहते हैं:—"पटना विश्वविद्यालय के भाषण में मैंने जोर दिया था, कि शासन-प्रबन्ध और शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजी को तुरंत उठा नहीं देना चाहिए और यह भी कि पांच वर्ष और अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम रहना चाहिए। किंतु अब मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूँ, कि पांच वर्ष का समय काफी नहीं है। मैं अय्यंगारजी से सहमत हूं, कि अंग्रेजी को १५ वर्ष तक और जारी रहना चाहिए। जिन प्रदेशों और विश्वविद्यालयों ने मनमाने तौर पर अंग्रेजी को हटा देने का निश्चय किया है, उनका निश्चय गलत है। इस तरह की जल्दबाजी शिक्षा के उद्देश्य को हानि पहुंचायेगी और देश के शिक्षातल को गिरायेगी। कचहरियों में भी वही कठिनाई है। यह अफसोस की बात है, कि देश की कोई भाषा ऐसी नहीं है, जिसके पास कानूनी शब्द हों तथा जो न्यायालय की भाषा के तौर पर काम दे सके।"

मेकाले और उसकी सात पीढ़ियों की आत्माएं स्वतन्त्र भारत के सुयोग्य शिक्षा-मंत्री मौलाना आजाद को दुआएं देती होंगी, इसमें कोई संदेह नहीं। अस्तु।

हमें अंग्रेजी भाषा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है। रूस, जापान, जर्मनी सबने अंग्रेजी भाषा के माध्यम से ज्ञान-विज्ञान नहीं सीखा। जिस देश को अवसर मिला, उसने अपनी भाषा को समृद्ध किया। यदि अंग्रेजी

हमारे ऊपर लादी न गई होती, तो हमारी भाषाएं, जिनके बोलनेवाले करोड़ों की संख्या में हैं और जिनका दिमाग किसी से कम नहीं है—वह कबकी आगे बढ़ गई होतीं। अगले कुछ ही सालों में हम देखेंगे कि वह किसी भाषा से पीछे नहीं है।

अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमारे लिए अंग्रेजी का महत्त्व जो नेहरूजी बतलाते हैं, वह तभी हो सकता है, जब कि हमारा अंतर्राष्ट्र केवल इंगलैंड तथा अमेरिका तक ही सीमित हो। अंग्रेजी का स्थान युक्तराष्ट्र-अमेरिका, कनाडा, दक्षिण-अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, और न्यूजीलेंड तक सीमित है, जिनकी आबादी मुश्किल से २० करोड़ होगी। हमारे कुछ देश-भाइयों का भी विचार है, कि अंतर्राष्ट्रीयता या विश्व यहीं तक सीमित है। कुछ लोग तो समझते हैं, कि अंग्रेजी और डालर पर्यायवाची शब्द हैं, इसलिए जहां तक डालर वहां तक अंग्रेजी। इस तर्क को समझना बहुत मुश्किल है। लेकिन आजकल का डालर राज्य क्वार के बादलों की छाया से बढ़कर नहीं मालूम होता। ४५ करोड़ का चीन हमारी आंखों के सामने किस तरह डालर की छाया से बाहर निकल गया, इसे हमने अपनी आंखों देखा। यदि हम ३५ करोड़ की राष्ट्रभाषा हिन्दी को अकिंचन मान भी लें, और १५ वर्ष बाद भी चीनी भाषा को नगण्य श्रेणी में रखें, तो भी विश्व में एक अंग्रेजी ही अन्तर्राष्ट्रीय भाषा नहीं है। रूसी भाषा पोलंद और चेकोस्लावाकिया से प्रशान्त-महासागर के द्वीपों तक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा स्वीकृत की जाती है, और अब लालचीन भी उसी को अन्तर्राष्ट्रीय मान रहा है। यह आसानी से समझी जानेवाली बात है, कि विश्व के दो ब्लाकों की भांति उनकी अन्तर्राष्ट्रीय भाषाएं भी दो हैं, इसलिए केवल अंग्रेजी को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र का सर्वेसर्वा मानना भूल है, और हमारे लिए तो केवल अंग्रेजी के झरोखे से विश्व को देखना और भी खतरनाक तथा एकांगिता का शिकार होना है। इसका अर्थ यह नहीं, कि हम अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अंग्रेजी की उपयोगिता को नहीं मानते। वस्तुतः रूसी और अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक क्षेत्र की दो सबसे अधिक महत्त्व रखनेवाली भाषाएं हैं, और अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में जर्मन और फ्रेंच का उनसे कम महत्त्व नहीं है।

लेकिन हमारे इण्डो-आंग्लियन अय्यंगार अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ही नहीं राष्ट्रीय क्षेत्र में भी अंग्रेजी के महत्त्व और अनिवार्यता की बात करते हैं। वह नेहरूजी की इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं हैं—"अंग्रेजी ने जो हमें सिखलाया उसके लिए हम कृतज्ञ रहेंगे, लेकिन साथ ही उसने अंग्रेजी-पढ़ों और अंग्रेजी-न-पढ़ों के बीच में भारी खाईं पैदा कर दी। इसे हम आज बर्दाश्त नहीं कर सकते। अंग्रेजी चाहे कितना ही महत्त्व रखती हो, किंतु हम इस विचार को नहीं मान सकते, क्योंकि हमारे यहां एक ओर अंग्रेजी-पढ़ा एक आभिजात्य वर्ग हो, और दूसरी ओर एक बड़ी संख्या अंग्रेजी-न-पढ़े साधारण जनों की हो।"

हिन्दी अविकसित—"यह मानी हुई बात है, कि हिन्दी एक प्रादेशिक भाषा-मात्र है।"—गाडगिल।

प्रादेशिक या प्राविंशियल भाषा के दो अर्थ हैं, (१) एक प्रदेश की भाषा, तथा (२) फ्रांसीसी प्रयोग के अनुसार ग्रामीण भाषा। हिन्दी के लिए इन दोनों अर्थों में प्रादेशिक का प्रयोग अयुक्त है। हिन्दी एक प्रदेश नहीं अनेक प्रदेशों की भाषा है। आज भी (१) उत्तरप्रदेश, (२) बिहार (३) मध्यप्रदेश, (४) विंध्यप्रदेश, (५) मालव (मध्यभारत), (६) राजस्थान, (७) हिमाचलप्रदेश, तथा (८) आधे पंजाब—इनआठ प्रदेशों की वह स्वीकृत राजभाषा है। वस्तुतः हिन्दी का राष्ट्रभाषा स्वीकृत होने का यही कारण हुआ, कि वह सिरोही-जैसलमेर से लेकर कठिहार-पूर्णिया तक, तथा हिमालय-गंगोत्री के पास से लेकर वस्तर-रतलाम तक पहले ही व्यापक थी। यह वह विशाल भूभाग है, जिसमें पुराने वैभवशाली १६ जनपदों के उत्तराधिकारी (१) मगध, (२) मैथिल-अंग, (३) भोजपुरी (काशी, मल्ल), (४) कोसल (अवध), (५) पंचाल, (६) कुरु, (७) यौधेय, (८) ब्रजवासी (९) मत्स्य, (१०) मरु, (मारवाड़), (११) वागड़, (१२) मालव, (१३) निमाड़ी, (१४) बुन्देले (दशार्ण) और (१५) खश (हिमाचलीय) रहते हैं, जिनकी मैथिली, मगही, अवधी, ब्रज तथा मरु (डिंगल) भाषाओं के पास बड़ा यशस्वी लिखित साहित्य है, और दूसरों के पास भी लिखित या अलिखित साहित्य का अभाव नहीं है। हिन्दी-भाषियों पर आक्षेप किया जाता है, कि वह भाषा के सम्बन्ध में पक्षपाती, संकीर्ण-हृदय तथा मतान्ध होते हैं। मैं हिन्दी भाषा का समर्थक हूँ, यद्यपि मेरी मातृभाषा भोजपुरी, कुरुदेशीया (मेरठ कमिश्नरी की) हिन्दी की अपेक्षा बंगला के नजदीक की भाषा है, दोनों के प्राचीन मागधी की संतान होने से ऐसा होना स्वाभाविक है। बंगाली भाई हिन्दी पढ़ने में जो कठिनाई पाते हैं, भोजपुरी बालकों को उन सारी कठिनाई से गुजर कर हिन्दी पर अधिकार प्राप्त करना पड़ता है। यहां हिन्दी के सम्बन्ध में जो अवस्था हमारी है, वही मैथिलों-मगहियों की भी है। विशाल हिन्दी-भाषा-भूभाग की चौदह भाषा वालों ने आज अपनी मातृभाषा का मोह छोड़कर उसकी सीमाओं को तोड़कर हिन्दी को अपनाया है, उसे मातृभाषा कहने में भी संकोच नहीं किया और उस पर उतना ही अधिकार प्राप्त किया, जितना कि कुरुवासियों का मातृभाषा होने के कारण हिन्दी पर है। इस पर भी हमारे ऊपर उक्त आक्षेप क्या उचित हो सकता है?

हिन्दी को ग्रामीण के अर्थ में प्रादेशिक कहना तो अत्यन्त हास्यास्पद और सत्य का अपलाप करना है। इसे वही कह सकते हैं, जिन्होंने हिन्दी के उसके आठवीं सदी से लेकर आज तक के विशाल तथा वर्धमान साहित्य का जरा भी परिचय

नहीं प्राप्त किया। "हिन्दी कविता-साहित्य दुनिया के किसी भी साहित्य का मुकाबला कर सकता है, सरह-स्वयंभू, पुष्पदत्त-अब्दुर्रहमान से लेकर कबीर-जायसी, सूर-तुलसी, मीरा-बिहारी होते निराला-पंत-प्रसाद तक बहती हिन्दी काव्य-सरिता अपनी पावन गंगा की भांति ही प्रांजल और विशद, गंभीर और विशाल, सुन्दर और मधुर है। और उसका आधुनिक गद्य-साहित्य भारत की किसी भाषा से पीछे नहीं है; तो भी अभी कितने ही भाई ३० वर्ष पहले की बात दुहराये जा रहे हैं, कि हिन्दी से अमुक और अमुक भाषा का साहित्य बहुत आगे बढ़ा हुआ है। श्री नजीरुद्दीन अहमद (पश्चिम बंगाल) ने तो यहां तक कह डाला; "हिन्दी अत्यन्त आरम्भिक अवस्था (रुडिमेंट्री) है।" बिना कुछ भी देखे-सुने ऐसी अनर्गल बात कह डालना शोभा नहीं देता। साहित्य के बारे में रूस कोई पिछड़ा देश नहीं है और भारत की नई-पुरानी भाषाओं, यहां के साहित्य और संस्कृति की जानकारी में रूसी विद्वान् दुनिया के किसी देश से भी पीछे नहीं हैं। वहां पर आधुनिक भारत के महान् साहित्य-निर्माताओं में रवीन्द्र और प्रेमचन्द्र को ही बहुत ऊँचा माना जाता है। लेनिनग्राद-विश्वविद्यालय में दोनों की जयंतियां मनाई जाती हैं। इसलिए नजीरुद्दीन साहब का हिन्दी को "रुडिमेंट्री" कहना उनकी अज्ञता का ही परिचायक है।

अय्यंगर महाशय का यह भी कहना गलत है—"हम जानते हैं कि संघ या राजकीय काम के लिए हिन्दी इतनी काफी विकसित नहीं हुई है।" विकसित भाषा वह है, जिसमें सभी भावों को प्रकट किया जा सके, यदि सभी पारिभाषिक शब्द मौजूद हों। २२वीं सदी के लिए आवश्यक लाखों पारिभाषिक शब्दों के आज न होने से अंग्रेजी अविकसित भाषा नहीं है। हिन्दी भाषा और हमारी बाकी ११-१२ भाषाएं भी पूर्णतया विकसित हैं। उनमें सभी तरह के भावों को प्रकट करने की क्षमता है। मैं तो समझता हूँ, हाईकोर्ट का कोई भी जज, जो अपनी भाषा और साहित्य को अच्छी तरह जानता है, कल से अपने फैसले को, परिभाषाओं को अंग्रेजी में रखकर, अपनी भाषा में द्रुतलिखित करा सकता है। परिभाषाओं का कोश काफी तैयार हो चुका है। प्रयत्न किया जाय तो छ महीनों में वह पूर्णतया तैयार हो सकता है। यदि हमारे बूढ़े जज नई परिभाषाओं को सीखना नहीं भी चाहें, तो भी वह अंग्रेजी परिभाषाओं के साथ अपने फैसले को डिक्टेट करा सकते हैं। उनका क्लर्क वैधानिक-परिभाषा-कोश देखकर अंग्रेजी की जगह हिन्दी परिभाषाओं को बैठा सकता है। मैं यह बात सिर्फ हिन्दी के पक्ष में ही नहीं बल्कि सबके लिए कह रहा हूँ, क्योंकि संस्कृत से लिये जाने के कारण उर्दू को छोड़कर भारत की सभी भाषाओं की परिभाषाएं एक हैं।

एक ओर कलकत्ता के बाजार में बोली जाने वाली हिन्दी को सुनकर हिन्दी-

साहित्य पर जरा भी दृष्टि डालने की तकलीफ किये बिना नजीरुमुद्दीन साहब उसे अत्यंत प्रारंभिक या रुडिमेंट्री कह देते हैं। दूसरी ओर साहित्यिक भाषा के लिए स्वयं वर्षों लगाने के बाद या खुद अंग्रेजों को लगाते देखकर भी शिकायत की जाती है कि हिन्दी बहुत संस्कृतमय है और उसे समझना मुश्किल है।

पंडित जवाहरलालजी ने राष्ट्रभाषा में दो गुणों का होना आवश्यक बतलाया है—"यदि हिन्दी को बहुत बड़ी भाषा बनाना है, तो दो बातें मन में रखनी होंगी। प्रथम उसे ग्राहिका भाषा होना चाहिए, और दूसरे त्याजिका नहीं होना चाहिए।" हिन्दी ग्राहिका भाषा रही है और सदा रहेगी। यदि तुलसी की एक-एक पंक्ति हमारे लिए अमर है, तो सारी जड़ता और कूपमंडूकता के जोर डालने पर भी हम तुलसी की पंक्तियों में आए "गरीब नेवाजू", "लायक" आदि सैकड़ों विदेशी शब्दों को नहीं छोड़ सकते। जो शब्द किसी देश की भी साधारण जनता की भाषा में घुल-मिल गए हैं, उनके परित्याग करने का प्रयत्न बेकार है। लेकिन ग्राहिका भाषा का यह अर्थ नहीं हो सकता, कि संविधान सभा की सूची में उल्लिखित १२ भाषाओं में जो शब्द प्रचलित और एक-से हैं, उन्हें संस्कृत का होने की वजह से त्याग दिया जाय और उनकी जगह उर्दू वालों के आग्रह के कारण अरबी के शब्दों को भरा जाय। इसी तरह ग्राहिका का अर्थ यह नहीं हो सकता, कि अंग्रेजी पढ़े हुओं के सुभीते के लिए अंग्रेजी शब्दों को हिन्दी में भर दिया जाय, क्योंकि अंग्रेजीवाले हिन्दी परिभाषाओं को सीखने के लिए तैयार नहीं हैं। हम वर्तमान पीढ़ी के बूढ़ों को यह रियायत दे सकते हैं, कि वह अपने व्यवहार में कितने ही अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करें, किन्तु उनके लिए आनेवाली पीढ़ी का रास्ता बिगाड़ना अच्छा नहीं है। उन्हें तो नई परिभाषाएं पढ़नी ही चाहिएं। हिन्दी केवल, अंग्रेजी, फारसी, और अरबी जैसी विदेशी भाषाओं के सम्बन्ध में ही उचित रूप से ग्राहिका नहीं रहेगी, बल्कि, प्रादेशिक भाषाओं से भी हिन्दी को बहुत लेना है। जैसे हिन्दी मातृभाषा न रखनेवाले हम भोजपुरी, मालवीय या मागध हिन्दी को अपनी मातृभाषाओं की देन से विकसित करते रहे हैं, अब वही काम आसामी, बंगला, उड़िया, गुजराती और मराठी ही नहीं, बल्कि तमिल, तेलगू, मलयालम्, कन्नड़वाले भी करने जा रहे हैं। क्योंकि अब हिन्दी उनके लिए पराई भाषा नहीं रही। हिन्दी ने तमिल भाषा के शब्द 'पंदल' को पंडाल के रूप में ले लिया है, ऐसे ही कितने ही शब्द दूसरी भाषाओं से भी आयंगे। हम भाषा के सम्बन्ध में कभी शुद्धिवादी नहीं हो सकते। प्रादेशिक भाषाओं का प्रभाव पड़ेगा, उनसे हिन्दी का शब्द-भंडार समृद्ध होगा। कितनी ही जगह पर हिन्दी के व्याकरण का सरलीकरण भी होगा, किन्तु जिनको सीखने में आलस्य है, उनके लिए हिन्दी में परिवर्तन कर देना किसी भाषा में नहीं

हुआ है। हम संधिकाल में श्री श्यामाप्रसाद मुकर्जी-जैसे बड़े-बूढ़ों से यह आग्रह नहीं करेंगे, कि वह कलकत्ता के बाजारों की हिन्दी को छोड़कर शुद्ध हिन्दी बोलें, लेकिन आगे आनेवाले तरुणों से तो अवश्य आशा रखते हैं, कि वह हिन्दी के सीखने में उसका दशांश समय तो अवश्य देंगे, जितना कि अंग्रेजी के लिए दिया जाता था।

अतीत और संस्कृति की मांग—नेहरूजी ने अपने भाषण में कहा था "हमारे देश में आजकल अत्यधिक पुरातन की ओर देखने की आदत पाई जाती है। ......जब देश नवयुग के संधिकाल में हो, तो सदा अतीत और अतीतयुग की बातें करना युग-प्रवेश के लिए सहायक नहीं हो सकता। राष्ट्र और जनता की संस्कृति होती है, किंतु साथ ही युग की संस्कृति और युगधर्म भी होता है।" इस वचन में तथ्य है, इसे मानना पड़ेगा। चरमश्रेणी की प्राचीन-पंथिता को ही कुछ लोग परमकल्याण का मार्ग समझते हैं, किन्तु यही लोग थे, जिन्हें कल के अंग्रेज शासक धर्मावतार मालूम होते थे। वह इसी प्राचीन-पंथिता के कंचुक से अपने हजारों काले कर्मों को छिपाना चाहते थे। बाकी रहा अपने प्राचीन इतिहास और संस्कृति के प्रति सम्मान तथा उससे उत्प्रेरणा लेने की बात, तो उससे कौन इनकार कर सकता है? नेहरूजी भी उसे स्वीकार करते हैं:—"अपने अतीत से संबंध-विच्छेद करने का कोई प्रश्न नहीं है। वैसा करना निरर्थक ही नहीं अत्यन्त हानिकारक भी होगा, क्योंकि हमारा निर्माण अतीत द्वारा हुआ है, हमारी जड़ें अतीत में हैं। यदि हम अतीत से अपने को विच्छिन्न कर लें, तो हम बेजड़ के हो जायंगे, निस्संदेह राष्ट्र की संस्कृति की स्थापना के लिए सुदृढ़ नींव की आवश्यकता है।"

इसी बात को डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने भी हिन्दी के राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिये जाने पर अपने हर्षोद्रेक को प्रकट करते हुए कहा था—"केन्द्र में प्रयोग की जाने वाली यह भाषा (हिन्दी) हमें एक दूसरे के और समीप लायेगी।...अगर अंग्रेजी के स्थान में हमने एक भारतीय भाषा को स्वीकार किया है, तो यह अवश्य हमें एक दूसरे के और भी समीप लायेगी, क्योंकि हमारी परम्परा एक है, हमारी संस्कृति एक है। जो बड़ी-से-बड़ी महत्त्व की बात हो सकती थी, उसे हमने आज संपादित किया। आज मुझे बड़ी प्रसन्नता और आनंद है। मुझे विश्वास है, आनेवाली पीढ़ियां हमें आशीर्वाद देंगी।" आनेवाली पीढ़ियां सारी संविधान सभा को आशीर्वाद नहीं देंगी, विशेषकर उन लोगों को, जिनका पूरा प्रयत्न इस बात के लिए था, कि जैसे भी हो अंग्रेजी के स्थान को अक्षुण्ण रखकर अपने वर्ग-स्वार्थ को बचाया जाय। हां, आनेवाली पीढ़ियां जिनको सबसे अधिक आशीर्वाद देंगी, उनमें सर्व प्रथम नाम बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन का होगा। जिनके दृढ़ नेतृत्व ने विरोधियों

को झुकाया। दूसरे जिस व्यक्ति को सबसे पहले आशीर्वाद मिलेगा, वह हैं डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद। कितनी ही सीमाओं से बद्ध होने पर भी हिन्दी का हित उनके हृदय में सदा रहा और हिन्दी को जल्दी-से-जल्दी राष्ट्रभाषा के योग्य सभी नवीन शब्दावलियों से अलंकृत करने में जिस व्यक्ति से अधिक आशा है, वह भी राजेन्द्र बाबू हैं।

आजाद का विलाप—एक ओर संस्कृतियों की एकता और महिमा की बात चल रही थी, स्वतंत्र भारत की अपनी राष्ट्रीय भाषा के स्वीकार करने का आनंद मनाया जा रहा था, तो वहीं कुछ की छाती पर सांप भी लोट रहा था, जिनकी कि मर्मवेदना मौलाना आजाद के मुंह से फूट निकली :—"मैंने कांग्रेस असेम्बली पार्टी से कहा था, कि राष्ट्रभाषा की लिपि देवनागरी हो, किंतु सरकारी सूचना के लिए उर्दू लिपि का भी प्रयोग होना चाहिए। यह मध्य का रास्ता था, और मैंने समझा था, कि इसे सब स्वीकार करेंगे, लेकिन मैं अपने भावों को छिपाना नहीं चाहता। मुझे यह देखकर बहुत निराशा हुई, कि पार्टी ने उसे स्वीकार नहीं किया। ....अगर सदस्यों के २०वीं सदी के मस्तिष्क इस तरह के हैं, तो स्वाभाविकतया यह प्रश्न उठता है, कि हम कहां जा रहे हैं ?....यहां हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करने का उतना प्रश्न नहीं है, जितना कि इस बात का, कि इस काम को असहिष्णुता-पूर्ण संकीर्ण भावना के साथ किया जा रहा है। ऐसे वातावरण में आगे के लिए यह सोचना बहुत कठिन है, कि राष्ट्रभाषा कभी भी सभी तरह के प्रभावों को आत्मशात् कर सकेगी, दूसरी भाषाओं को अपनायेगी, और इस देश की सामूहिक संस्कृति का प्रतिनिधित्व करेगी।....सरकारी सूचनाओं के प्रकाशन के लिए भी उर्दू लिपि को न मानते हुए हिन्दी के पक्ष में कांग्रेस असेम्बली पार्टी ने जो निश्चय किया, और उसका जो धक्का मेरे हृदय पर लगा, उसे मैं सहन नहीं कर सकता।"

राजेन्द्र बाबू के उद्गार और मौलाना के इस विलाप में कितना अन्तर है ? मौलाना को सदस्यों के २०वीं सदी के मस्तिष्क पर खेद है। लेकिन, इस उद्गार से पता लग जाता है, कि मौलाना का मस्तिष्क अवश्य अब भी सातवीं सदी से आगे नहीं बढ़ा। अरब के जेहादियों ने कभी किसी संस्कृति से समझौता[1] करने की आदत नहीं सीखी। वह उच्च संस्कृतियों और उनकी कला और साहित्य को पैरों तले रौंदते, नष्ट करते आगे बढ़ते गए। शायद उन्हीं की रूह मौलाना के मुंह से बोल रही थी। किसी ईसाई को तो ऐसा क्षोभ नहीं हुआ, न उसने किसी अलग भाषा का आग्रह किया। एंग्लो-इण्डियन नेता फ्रेंक अन्थोनी ने

१—देखिये, परिशिष्ट अध्याय २० सांस्कृतिक समझौता।

हिन्दी के क्लिष्ट रूप की शिकायत की, रोमन लिपि की सिफारिश की, किंतु हिन्दी के स्वीकृत हो जाने पर उन्होंने कोई विलाप नहीं किया। संविधान सभा के उप-प्रधान ईसाई होते हुए भी भारतीयता, हिन्दी और अपनी मातृभाषा बंगला के पक्षपाती हैं। आखिर उर्दू क्या बला है ? क्या वह इस्लामिक जेहादियों के भारत-विजय के उपलक्ष में खड़ा किया क़ीर्तिस्तम्भ नहीं है ? क्या स्वदेशी शब्दों की जगह अरबी शब्दों को भाषा में रखना देश में दुर्राष्ट्रीयता का बीजारोपण करना नहीं था ? हम मानते हैं कि उनके लिए भारत में यह कोई नई चीज नहीं थी ? इस्लाम ने जो भी कहा हो, किंतु मुसलमानों ने अपने को देश की धारा का अंग बनने से सदा इनकार किया। इसी के कारण दो राष्ट्रों का अंकुर उत्पन्न हुआ, और उसी के कारण अन्त में भारत का विभाजन होके रहा। मौलाना के मनोभाव को देखने से पता लगता है, कि वह उक्त साधारण मनोभाव से ऊपर नहीं उठ सके। सच्ची जातीयता, धार्मिक संकीर्णता से ऊपर उठने की मांग करती है। आखिर किस सिद्धान्त के आधार पर मौलाना उर्दू की मांग कर रहे थे। सरकारी सूचनाओं में उर्दू की मांग का अर्थ था अभी तक उर्दू में सरकारी सूचनाएं हिंदी-भाषा-भाषी कुछ प्रदेशों तक ही सीमित थीं, किन्तु अब उन्हें सारे भारत के लिए निकाला जाय। असल में तो मौलाना समझ रहे थे, स्वतंत्र भारत इस प्रकार अपनी टूटी हुई इतिहास-शृंखला, सांस्कृतिक परम्परा को फिर से जोड़कर उसे उज्जीवित कर रहा है। सहस्राब्दियों का कूड़ा-कर्कट इस विशाल देश से लुप्त होने जा रहा है। एक जातीयता और सांस्कृतिक परम्परा इस देश के प्रत्येक प्रदेश को एक दूसरे से घनिष्ठतया संबद्ध और एक ही नहीं कर देगी, बल्कि भावी भारत का प्रत्येक व्यक्ति भारतीय जाति का अपने को समान अंग समझेगा। जिन विषमताओं ने भारत को राजनीतिक परतंत्रता दी, जिन विषमताओं के कारण पश्चिमी जेहादियों को फलने-फूलने का मौका मिला, और अन्त में अंग्रेजों की सहायता से जिसने भारत के दो टुकड़े करने में सफलता पाई, उसे दूर होते देखकर एक जेहादी कैसे विचलित हुए बिना रह सकता था। उसे तो अभी और अपने धर्म के फैलाये कितने ही जालों द्वारा भारत में आगे बढ़ना था। उसने आशा की थी–"सात सौ बरस में यदि कुछ हजार से दस करोड़ बनकर हमने भारत के पंचमांश को काटकर अपना कर लिया, तो उन्हीं के द्वारा हम अभी और काफी आगे बढ़ेंगे। किन्तु यदि नवीन भारत में भारतीयता सर्वेसर्वा हो गई, तो हमारी हालत चांदनी में चोर जैसी होगी।"

हिन्दी पर दोषारोपण–"हिन्दी एक प्रादेशिक (प्रांतीय) भाषा-मात्र है" अय्यंगार।

इसका यह अर्थ नहीं है, हम इस्लाम या किसी धर्म के साथ किसी प्रकार की कड़ाई या असहिष्णुता दिखलाना चाहते हैं। किसी भी धार्मिक विचार के लिए हर एक व्यक्ति को स्वतन्त्रता रहनी चाहिए। भारत ने इसे सदा से माना। यद्यपि पुरानपंथी जब तब इसके विरुद्ध जोर लगाते रहे, लेकिन इस बात का इतिहास साक्षी है, कि भारत ने कभी उदार भावना को नहीं छोड़ा। अरबों द्वारा उत्पीड़ित पारसियों को किसने अपनाया? यहूदियों और सीरियन ईसाइयों को किस उदार भावना से भारत ने अपनी गोद में लिया? यहां बौद्ध और जैन जैसे ईश्वर-विरोधी धर्म पैदा हुए, फले-फूले, उनका सम्मान हुआ। इस्लाम के लिए भी कोई डर नहीं। किन्तु जो भाव मौलाना की वाणी से फूट निकले, वही यदि इस्लाम के हैं, तो इससे उस धर्म के अनुयायियों को लाभ नहीं होगा। भारत के मुसलमान इस वक्त एक चौरस्ते पर खड़े हैं, यहां उन्हें स्पष्ट निश्चय करना होगा, कि वह भारतीयता को अपनायेंगे, या अपना प्रेम और आदर्श भारत-भूमि से बाहर रखेंगे। भारतीयता को अपनाने का यह अर्थ नहीं है, कि वह हिन्दुओं की देवमाला को मानें, हिन्दू बनें। वह भले पांच बार नमाज पढ़ें, लेकिन क्यों फ़ारसी के खुदाबख्श को तो पसन्द करें, किंतु भारतीय ईश्वरदत्त नाम को नहीं? इस्लाम का भारतीयकरण करना ही हितकर होगा। मौलाना आजाद की यह मनोवृत्ति यदि भारतीय मुसलमानों में रही, तो उनकी भक्ति तथा सहानुभूति हमेशा भारत की अपेक्षा पाकिस्तान के साथ रहेगी। यह भावना भारतीय मुसलमानों को छिपा पंचमांगी बनाके छोड़ेगी। आखिर ११ वीं शताब्दी से १६वीं शताब्दी तक अब्दुर्रहमान (मुल्तानी), कबीर और मलिक मुहम्मद जायसी, जैसे हिन्दी के महान् कवि मुसलमानों में हुए थे। भारतीयता का मुसलमानों से आग्रह है, कि वह उसको अपनी चीज समझें।

मौलाना आजाद के हाथ में शिक्षा और संस्कृति-जैसा बहुत महत्त्वपूर्ण विभाग है। हम नहीं समझते कि उनके जैसे मनोभाव रखनेवाले के हाथ में यह विभाग सुरक्षित है। कांग्रेसवालों ने कुछ मुसलमान नेताओं की नाजबरदारी आवश्यकता से से अधिक केवल इसलिए की थी, कि वह हिन्दुस्तान की एकता को कायम रखने में सहायक होंगे, किन्तु मुसलमानों के इतिहास ने इन्हें वैसा पाठ पढ़ाया था, कि इन नेताओं के किए कुछ नहीं हो सका। मौलाना में भारतीयता के प्रति अवहेलना और मुस्लिम साम्प्रदायवाद भरा हुआ है, इसमें तो संदेह ही नहीं।

अपने भाषाण में मौलाना ने यह भी कहा:—"व्यक्तिगत तौर से मैं अनुभव करता हूं, कि भारत के लिए रोमन-लिपि सबसे उपयुक्त है। इस समस्या पर मैंने ३० बरस पहले ही विचार किया था, और इस परिणाम पर पहुंचा था, कि इस अन्तर्राष्ट्रीय लिपि को यहां इस्तेमाल करना चाहिए। मुझे मालूम है, ऐसा समय

आयेगा, जब कि परिस्थितियां भारत को रोमन-लिपि स्वीकार करने के लिए मजबूर करेंगी।

मौलाना की इस रोमन-लिपि-भक्ति में भी नागरी लिपि के प्रति विरक्ति काम कर रही है—अपनी नाक कटे तो कटे, दूसरों का असगुन तो हो। किस वक्त भारत रोमन-लिपि स्वीकार करने के लिए मजबूर होगा? लक्षण तो बतला रहे हैं, कि पूर्वी यूरोप से लेकर प्रशान्त महासागर और चीन तक रोमन लिपि नहीं बल्कि ग्रीक-लिपि से निकली रूसी लिपि का बोल-बाला होने जा रहा है। क्या यूरेसिया महाद्वीप के लिए जब रूसी लिपि मान्य हो जायगी, उस समय भारत रोमन लिपि को स्वीकार करेगा? मध्यएसिया की भाषाओं को रोमन लिपि में लिखने का परीक्षण रूस ने कर लिया। उसे २६ अक्षर की रोमन-लिपि में बहुत-से पैबंद लगाकर काम चलाने के लिए जगह ३२ अक्षर की रूसी लिपि से काम चलाना आसान मालूम हुआ, इसलिए रोमन लिपि को रूसी लिपि के लिए स्थान खाली करना पड़ा।

हिन्दी की जय—आजाद के विलाप और कितनों के प्रलाप के बाद संविधान सभा ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकृत किया। मौलाना हिफजुर्रहमान ने हिन्दुस्तानी के लिए १४ वोट प्राप्त किये और मुहम्मद ताहिर ने उर्दू के लिए १२। रामलिंगम चेट्टियार ने पांच बरस बाद वाले कमीशन को हटाने का संशोधन रखा था, जिसे ९ वोट मिले।

(भारत की राज स्वीकृत १४ भाषाएं हैं—आसामी, बंगला, उड़िया, तेलगू, तमिल, मलयालम्, कन्नड, मराठी, गुजराती, पंजाबी, कश्मीरी, उर्दू, हिन्दी और संस्कृत)।

हिन्दी राष्ट्र की भाषा—किसी समय हिन्दी मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर तथा आधे देहरादून एवं चौथाई बुलन्दशहर अर्थात् पुराने कुरुदेश की भाषा थी, जिसे १९वीं सदी के अन्त तक प्राचीन सोलह जनपदों के उत्तराधिकारियों ने अपना लिया। भोजपुरी भाषी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, हरिऔध; अवधीभाषी महावीरप्रसाद द्विवेदी, बालकृष्ण भट्ट, ब्रजभाषी राजा लक्ष्मण सिंह, श्रीधर पाठक, सत्यनारायण; यौधेय (हरियाने) के बालमुकुन्द गुप्त, उत्तर-पंचाल के पद्मसिंह शर्मा ने उसके भव्य साहित्य-मंदिर का निर्माण किया। आज तो उसके यशस्वी कवियों और साहित्यकारों में मैथिली, मगही, भोजपुरी, कोसली (अवधी), खश (पहाड़ी) ब्रज, कौरवी, यौधेयी (हरियाना), पंजाबी, राजस्थानी, मालवी, बुन्देली सभी मातृभाषाओं के लाल पाये जाते हैं,और सभी राष्ट्रभाषा-प्रेम में एक दूसरे से प्रतियोगिता करने के लिए तैयार हैं। जिस तरह कौरव्यों ने उनकी मातृभाषा हिन्दी

को अपनी राष्ट्रभाषा ही नहीं, मातृभाषा कहने पर भी हमारा विरोध नहीं बल्कि इसे अभिमान की चीज समझा; उसी तरह अब समय आ गया है, जब कि आसामी, बंगला, उड़िया, तेलगू, तमिल, मलयालम्, कन्नड, मराठी, गुजराती भाषाभाषी हिन्दी को अपनी कहेंगे, अपनी अनमोल कृतियों द्वारा राष्ट्रभाषा को सजायेंगे, इसके लिए हमें क्षोभ नहीं हर्ष है।

साहित्य-निर्माण—अब प्रोपेगंडा का युग खतम हो गया, प्रचार का लक्ष्य पूरा हो गया, अब हिन्दी के साहित्य को अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी भाषाओं की श्रेणी में लाने के लिए एक विशाल और सर्वतोमुखीन योजना द्वारा साहित्य का निर्माण करना है। इसमें साहित्यकारों, पाठकों, प्रकाशकों का सहयोग आवश्यक है। 'थिकर्स लाइब्रेरी', 'ऐवरी मैन्स लाइब्रेरी', 'पेंगुइन', 'पेलिकन' जैसी अंग्रेजी ग्रन्थमालाओं की भांति हम भी अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखी गंभीर कृतियों को सस्ती प्रकाशित करके कुछ सालों के भीतर विश्व की ज्ञानराशि से अपनी भाषा को भर सकते हैं।

परिभाषा-निर्माण—किन्तु आज के साहित्य का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग वैज्ञानिक साहित्य है, जिसकी रचना तथा अध्ययनाध्यापन के लिए सबसे पहली आवश्यकता है, हिन्दी में वैज्ञानिक परिभाषाओं की। सभी विज्ञानों को हिन्दी में लाने के लिए पांच लाख पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता होगी। हम जितनी जल्दी उनका निर्माण कर सकें, उतनी ही जल्दी अंग्रेजी के जुए से मुक्त हो सकेंगे। परिभाषाओं की संख्या पांच लाख कहने से घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है। यदि राष्ट्रीय सरकार तथा हमारी सारी प्रादेशिक भाषाओं के विशेषज्ञों तथा प्रादेशिक भाषा-संस्थाओं का पूरा सहयोग मिले और पचास विद्वान् काम में लग जायं, तो पांचों लाख परिभाषाएं साल भर में बन सकती हैं, १९५२ तक उन्हें बना डालना बिलकुल आसान है, किंतु परिभाषाएं एक विद्वान् के बूते की चीज नहीं हैं, न किसी एक भाषा के मान की। "हां, हिन्दी भी अकेली इस काम को ठीक से नहीं कर सकती। वैज्ञानिक परिभाषाएं हमें सिर्फ हिन्दी के लिए नहीं, बल्कि सारी भारतीय भाषाओं के लिए एक-सी बनानी हैं। संस्कृत से बनाने के कारण हमारा कार्य आसान है।" जिस तरह वेदान्त की परिभाषाएं हिन्दी, आसामी, बंगला, उड़िया, तेलगू, तमिल, मलयालम्, कन्नड, मराठी, गुजराती, पंजाबी में एक हैं; उसी तरह जीव-रसायन प्रत्यक्ष-शरीर-शास्त्र की परिभाषाएं भी एक बनाई जा सकती हैं, बनाई जानी चाहिएं। यह तभी हो सकता है, जब कि परिभाषा-निर्माण में सभी भाषा-भाषी विद्वानों का हाथ हो। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन इसी नीति पर अपने परिभाषा-निर्माण का काम किया। उसके 'शासन-शब्दकोश' में बंगला तथा

उड़िया का सहयोग लिया जा सका था। आजकल जो कोश बनते जा रहे हैं, पीछे उनमें सभी भारतीय भाषाओं का सहयोग आवश्यक मान लिया जायगा।

यहां अप्रासंगिक न होगा, यदि संचालक के तौर पर सम्मेलन के परिभाषा-निर्माण की प्रगति पर मैं कुछ कह दूं। इस समय २४००० परिभाषाओं के निम्न परिभाषा कोश बनकर छप रहे हैं:—

(१) जीव-रसायन	५५०० शब्द		(६) रंग-परिभाषा	२५० शब्द
(२) रसायन इंजीनियरी	५०० "		(७) प्रत्यक्षशरीरशास्त्र	१०००० "
(३) चीनी परिभाषा	९०० "		(८) भौतिक शरीर,	२०००० "
(४) आसव-परिभाषा	६०० "		(९) तेल परिभाषा	१००० "
(५) खनिज तेल,,	३५० "		(१०) काच परिभाषा	२५०० "

निम्न परिभाषा-कोश (३२००० शब्द) आगे प्रेस में जायेंगे—

(११) पशु-पालन	६००० शब्द	(१४) आहार विज्ञान	५००० शब्द
(१२) औषध विज्ञान	५००० "	(१५) दर्शन शास्त्र	६००० "
(१३) भूतत्त्व	६००० ,,		

निम्न परिभाषा-कोशों (४४००० शब्द) में भी हाथ लग चुका है—

(१६) औषध मिश्रण (फार्मेसी)	३०००० "	(१८) मनोविज्ञान	५००० शब्द
(१७) प्लास्तिक	४००० "	(१९) ललित कला	५००० "

ये सब मिलकर एक लाख शब्द होते हैं। इनके अतिरिक्त १६००० शब्दों का 'शासन-शब्दकोश' प्रकाशित हो चुका है।

विद्वानों से विचार-विनिमय करके परिभाषा-निर्माण के लिए निम्न नियम निर्धारित किये गए हैं:—

(१) प्रादेशिक भाषाओं में प्रचलित शब्दों को कायम रखने का प्रयत्न किया जाय।

(२) हमारे साहित्य में जो विदेशी शब्द आत्मवशात् कर लिये गए हैं, उन्हें कायम रखा जाय।

(३) शब्दों के निर्वाचन में सर्वभारतीय दृष्टिकोण रखा जाय।

(४) जनता तक चले गए स्टेशन, रेल, इंजन-जैसे शब्दों को न हटाया जाय।

(५) हमारी आधुनिक भाषाओं में जो शब्द नहीं हैं, उन्हें संस्कृत से बनाया जाय, और शब्द बनाने में निम्न बातों का ध्यान रखा जाय :—

(क) हमारी भाषाओं में 'तत्सम या तद्भव' के रूप में मौजूद या सुपरिचित संस्कृत शब्दों तथा धातुओं से ही नई परिभाषाएं बनाई जायं।

(ख) संस्कृत या प्रादेशिक में प्रादेशिक पर्यायों को स्वीकार किया जाय, यदि वह कई भाषाओं में पाये जाते हैं।

(ग) शब्दों के लिए सुखोच्चारण का ध्यान रखा जाय।

(घ) शब्दों के लेने में उनके ऐतिहासिक अर्थ तथा रूढ़ियों की अवहेलना न की जाय।

(ङ) महान् वैज्ञानिकों तथा विचारकों से संबंध रखनेवाले शब्दों को अंतर्राष्ट्रीय रूप में ले लिया जाय।

(च) अंतर्राष्ट्रीय संकेत-चिह्नों को विकल्प के तौर पर स्वीकार किया जाय।

(६) प्रत्येक विषय का परिभाषा-कोष अलग-अलग छापा जाय, जिसमें जल्दी नये संस्करण और परिवर्धन करने में सुविधा हो।

(७) प्रत्येक कोश का प्रूफ आसामी, बंगला, उड़िया, तेलगू, तमिल, मलयालम्, कन्नड, मराठी, गुजराती और पंजाबी भाषा के विशेषज्ञों के पास उनके सुझाव के लिए भेजा जाय।

(८) प्रत्येक परिभाषा के लिए जितने प्रतिशब्द प्राप्त हों, सबको कोश में छापा जाये, केवल अधिक प्रांतों में प्रचलित शब्दों का टाइप मोटा कर दिया जायगा।

हमें विज्ञान की (१) चिकित्सा, (२) इंजीनियरी, (३) भूतत्त्व, (४) नौ-विमान-चालन, (५) प्रायोगिक रसायन, (६) कृषि, (७) शुद्ध विज्ञान, (८) ललित कला, (९) कला तथा, (१०) युद्ध शास्त्र के सौ के करीब विषयों पर उतने ही परिभाषा-कोश तैयार करने हैं। इनमें अभी (१), (२), (३), (५), (६), (८) और (९) में ही हाथ लगा है।

जैसा कि मैंने पहले कहा, यह परिभाषाएं सभी भारतीय भाषाओं के लिए बन रही हैं, इसलिए इनके तैयार होने से हिन्दी ही नहीं, बल्कि साथ ही प्रादेशिक भाषाएं भी उन्नत हो उच्च न्यायालय तथा उच्चशिक्षा के माध्यम का काम बहुत सुगमता से कर सकेंगी। इस प्रकार हमारे देश के वाङमय की सब जगह सर्वतोमुखीन प्रगति होगी।

हिन्दी पत्रों के लिए काम—न्यायालय, शिक्षणालय तथा सरकारी कार्यालयों में ही हिन्दी को बैठा देने से काम नहीं चलेगा। हमें पत्र तथा पत्रकारिता-क्षेत्र में भी हिन्दी को प्रभुत्व दिलाना है। हिन्दी भाषा-भाषी पाठक इच्छा न रहते भी अंग्रेजी पत्रों को पढ़ने के लिए बाध्य होते हैं, क्योंकि हमारे हिन्दी पत्र उतनी पाठ्य-सामग्री नहीं दे पाते। जब तक यह त्रुटि रहेगी, तब तक हिन्दी पत्र अंग्रेजी पत्रों को अपने रास्ते से हटा नहीं सकते।

———

२१

शिक्षा

युधिष्ठिर—सार्वजनिक शिक्षा देश के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। किसी समय संगीत आदि की भांति पढ़ना-लिखना भी सांस्कृतिक जीवन के लिए एक शोभा की चीज था, अथवा युद्ध या राजनीतिक-संबंधी विद्या का अध्ययन ही जातीय जीवन के लिए विशेष महत्व रखता था, लेकिन आज तो शिक्षा और रोटी की समस्या एक दूसरे से सम्बद्ध है। अधिक अन्न उपजाने, कपड़ा तैयार करने आदि सभी बातों के लिए उपयोगी शिक्षा की हमें आवश्यकता है।

रामी—स्त्री-शिक्षा तो वस्तुतः पहले अलंकार के तौर पर ही आरंभ की गई। जैसे स्त्री के मूल्य बढ़ाने के लिए उसके सौंदर्य को आकर्षक बनाने के हेतु अच्छे वस्त्राभूषण की आवश्यकता है, उसी तरह शिक्षा[१] भी सौंदर्य-वृद्धि का एक अंग मानी गई। शिक्षित तरुणों ने अशिक्षित लड़की के साथ ब्याह करने से इनकार कर दिया अथवा ब्याह करने पर त्याग दिया, इससे लड़कियों की शिक्षा की अनिवार्यता होने लगी। लेकिन उस शिक्षा का क्या लाभ, जो स्त्री को वही काम करने के योग्य रखे, जो कि उसके बिना भी वह कर सकती थी ?

महीप—शिक्षा की आवश्यकता हरेक नर-नारी के लिए है, अब इस बात को सभी समझने लगे हैं। हमारे स्वतंत्र देश के लिए तो शिक्षा की और भी आवश्यकता है। दुनिया में शिक्षा के लिए सबसे अयोग्य किंतु भारत के लिए सबसे योग्य समझे जाने वाले हमारे शिक्षामंत्री मौलाना आजाद ने केन्द्रीय-शिक्षा-परामर्शक-बोर्ड का सभापतित्व करते हुए (जनवरी १९४९ में) इलाहाबाद में कहा था—"जनतंत्रता के युग में आधारिक (बेसिक) शिक्षा का बंधान बहुत आवश्यक है ? बिना शिक्षित मतदाताओं के जनतांत्रिकता अपने अनुरूप कार्य नहीं कर सकती। इसके लिए हमें केवल साक्षरता ही की आवश्यकता नहीं है, बल्कि वयस्क व्यक्तियों का मानसिक विकास होना भी अपेक्षित है, जिसमें कि वह राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बातों के संबंध में समझते हुए दिलचस्पी ले सकें।"

खोजीराम—हरेक साक्षर या आरंभिक शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों में सूझ रखने लगेगा, यह आशा बहुत अधिक है। साधारण शिक्षा-प्राप्त लोग भी करोड़पतियों के अज्ञान-प्रसारक पत्रों को पढ़कर और भी भ्रम में पड़ सकते हैं।

महीप–सरकार शिक्षा के बारे में कितना प्रयत्न कर रही है, इसको और अपनी कठिनाइयों को बतलाते हुए शिक्षा-मंत्री ने कहा–"आप लोगों को मालूम है, कि पिछले वर्ष के उत्तरार्द्ध में देश के सामने जो भारी आर्थिक- संकट उपस्थित हुआ, मुद्रास्फीति बढ़ी, चीजों का मूल्य इतना ऊपर-से-ऊपर चढ़ता गया, कि सरकार को जांच करने के लिए आर्थिक समिति नियुक्त करनी पड़ी। समिति ने सभी मंत्रि-विभागों के खर्च को कम करने की सिफारिश की और जोर डाला, कि सभी विकास के प्रोग्रामों को रोक दिया जाय।...अपनी इच्छा के विरुद्ध मैंने भी अपने शिक्षा-संबंधी विकास की गति को मंद कर दिया।....आर्थिक कठिनाई ने हमारे प्रोग्राम को, देश में शिक्षा-विकास की गति को बहुत-से क्षेत्रों में मंद कर दिया।.... मुझे स्मरण है, कि भारत में सभी प्रकार की शिक्षाओं के लिए पर्याप्त बंधान नहीं हैं। दूसरे देशों के शिक्षा के खर्च के आंकड़ों से तुलना करने पर मैं अनुभव करता हूँ, कि हमने राष्ट्रीय शिक्षा के प्रोग्राम को वस्तुतः अभी आरंभ भी नहीं किया है।.... मुझे यह कहते अफसोस होता है, कि पिछले वर्ष हमारे सारे केन्द्रीय बजट के ३९५ करोड़ (रेलवे-विभाग को छोड़कर) में ३.८५ करोड़ अर्थात् एक सैकड़ा से भी कम शिक्षा पर खर्च किया गया। इसी वर्ष में प्रान्तों के २४७ करोड़ रुपये में केवल साढ़े तीस करोड़ शिक्षा पर खर्च हुआ। इस प्रकार सारे भारत की सरकारी आय का पांच सैकड़ा ही शिक्षा पर व्यय हुआ।"

खोजीराम–पुलिस और सेना पर कितना व्यय होता है, इसे हम कह आए हैं, और केन्द्रीय सचिवालय में जिस तरह सेक्रेटरियों और लिखनीचंदों की वृद्धि करके अंधाधुन्ध खर्च बढ़ाया गया है, उसे भी हम जानते हैं। अपने उसी व्याख्यान में मौलाना आजाद ने बतलाया है, कि इंगलैंड के बजट में ११ सैकड़ा–(२९७५-६७९०००पौंड में से २१४८९६००० पौंड) शिक्षा पर खर्च होता है। युक्तराष्ट्र अमेरिका में शिक्षा पर १२०५ करोड़ डालर खर्च होता है। हमारा देश शिक्षा में कितना पिछड़ा हुआ है, और उसका क्या कारण है, यह हम समझ सकते हैं।

महीप–मौलाना ने सामाजिक शिक्षा और बेसिक (आधारिक) शिक्षा की भी चर्चा की है–"राष्ट्रीय सरकार का सबसे प्रथम आवश्यक कर्त्तव्य है, सबके लिए निःशुल्क तथा अनिवार्य बेसिक शिक्षा देना।....माननीय ब० ग० खेर की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की गई, जिसने अपनी अन्तरिम रिपोर्ट दी है। उसके अनुसार सार्वजनिक अनिवार्य बेसिक शिक्षा का प्रसार दो पंचवार्षिक और एक छ वार्षिक योजनाओं द्वारा सोलहवें वर्ष में पूरा कराया जा सकता है। पहली पंचवार्षिक योजना ६ से ११ वर्ष वाले बच्चों के अधिकांश भाग को बेसिक-शिक्षा के अन्दर ले आयगी। दूसरी पंचवार्षिक योजना उसी आयु के बच्चों के लिए अनिवार्य

करेगी। इस प्रकार दस वर्ष के अन्त में ६ से ११ साल वाले सारे बच्चे अनिवार्य शिक्षा में सम्मिलित होंगे। छ वार्षिक योजना सोलहवें वर्ष के अन्त में १४ साल तक के सारे बच्चों को अनिवार्य शिक्षा में ले आयगी।.....समिति ने आर्थिक दृष्टिकोण से विचार करके सुझाव दिया है कि शिक्षा में तीस सैकड़ा व्यय केन्द्र को देना चाहिए और बाकी ७० सैकड़ा स्थानीय सरकारी संस्थाओं को।"

रामी—मुझे तो यह कलियुग के अन्त तक पूरी होनेवाली योजना मालूम होती है। जब तक आर्थिक संकट है, तब तक न पहली योजना आरम्भ होगी, न दूसरी ही। आर्थिक संकट की कुञ्जी या तो अल्ला मियां के पास है या अमेरिका के पास। यदि कुञ्जी आ जाती, तो शायद १९६५-६६ तक कुछ काम बनता। यह बेसिक-शिक्षा का रहस्यवाद न जाने किसको भरमाने के लिये तैयार किया गया है।

महीप—मौलाना बेसिक (आधारिक) शिक्षा की भी बात करते हैं और सामाजिक की भी। वह कहते हैं—"यह आपको सूचित करते वक्त मुझे प्रसन्नता हो रही है, कि दिल्ली-प्रदेश में (प्रायः ३०० गावों में) बेसिक और सामाजिक दोनों तरह की शिक्षा का प्रोग्राम आरम्भ किया गया है।.......जल्दी-से-जल्दी प्रोग्राम को कार्यरूप में परिणत करने के खयाल से मैं इसके बोर्ड की प्रायः सभी बैठकों में उपस्थित रहा हूँ। ट्रेनिंग-प्राप्त काफी शिक्षकों के पाने में कठिनाई न हो, इसके लिए दिल्ली की जामिया-मिल्लिया में थोड़े समय की कक्षाएं खोल के पश्चिमी पंजाब के ट्रेनिंग-प्राप्त शरणार्थी शिक्षकों को तैयार किया गया।......१ जुलाई १९४८ से पहले ४७ स्कूल खोले गये, नवम्बर १९४८ के उत्तरार्द्ध से ५० दूसरे स्कूल भी आरम्भ कर दिये गए। १ अप्रैल १९४९ से ५० तीसरे स्कूल आरंभ होंगे और आशा है, कि १९४९-५० के आर्थिक वर्ष के अन्त तक सारे दिल्ली प्रदेश में बेसिक-स्कूल छा जायंगे।" इस प्रयत्न की प्रशंसा करनी चाहिए। लेकिन मौलाना इस बेसिक शिक्षा के स्वरूप को बतलाते हुए कहते हैं—"बेसिक और सामाजिक शिक्षा के प्रोग्राम में ग्रामीणों की तुरन्त दिलचस्पी और उपयोगिता के लिए यह निश्चय किया गया है, कि ये ग्रामीण स्कूल ग्रामीण बच्चों के पठन-स्थान-मात्र ही न हों, बल्कि ग्राम के सामाजिक जीवन के केन्द्र भी हों। वह बच्चों, अल्प-वयस्कों और वयस्कों को शिक्षा देने के साथ-साथ मनोरंजन और खेल के स्थान का भी काम दें। यह भी तै किया गया है, कि उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारने, संगठित खेलों और मनोरंजनों द्वारा सामूहिक और सामाजिक चेतना को बढ़ाने के लिए ग्रामीणों को किसी शिल्प की व्यावहारिक शिक्षा दी जाय। हमने स्वास्थ्य, श्रम, सूचना-ब्राडकास्ट और कृषि-मंत्रि-विभागों की भी सहायता ले के एक पंचमेल पाठ्यक्रम तैयार किया है, जो कि इन स्कूलों में क्रमशः लागू किया जायगा।"

भगवानदास–शिक्षा में तो सचमुच ही बहुत व्यापक दृष्टि रखी गई है।

महीप–हां, यह शिक्षा की बड़ी योजना कम-से-कम वर्तमान मंत्रिमंडल के जीवन में नहीं आरम्भ होगी, और जो अनेकों भांति की बातें यहां पेश की गई हैं, उनको तो ऐसे ही भरतू बातें समझ लीजिए। हां, यदि १९५०-१९६० तक दिल्लीके ३००के करीब गावों के सभी बच्चे साक्षर हो जायं, तो बहुत सन्तोष की बात होगी। मौलाना ने विश्वविद्यालय की शिक्षा पर भी अपने भाषण में कहा है, लेकिन उनका मन अधिकतर बेसिक-शिक्षा में रमता है। वह कहते हैं–"मैंने आप लोगों से इतनी देर तक बेसिक और सामाजिक शिक्षा के बारे में कहा। विश्वविद्यालय-शिक्षा भी देश की भावी प्रगति के लिए उतना ही महत्त्व रखती है। हाल के विश्व-युद्ध ने उच्चशिक्षा के उद्देश्य और लक्ष्य के सम्बन्ध में दुनिया के प्रत्येक देश में नये प्रश्न खड़े कर दिये हैं। ऐसी जांच सद्यःप्राप्त हमारी स्वतन्त्रता के कारण और भी अधिक महत्त्व रखती है। तो भी आज इस प्रश्न पर में कुछ भी विचार नहीं करूंगा, क्योंकि उच्च शिक्षा के हरेक अंग की समस्याओं की जांच करने के लिए कमीशन नियुक्त किया जा चुका है।........सेडलर कमीशन विशेषतः एक विश्वविद्यालय (कलकत्ता) तक सीमित था, लेकिन यह कमीशन भारतीय विश्वविद्यालयों तथा अध्ययन और अनुसंधान की दूसरी उच्चशिक्षण-संस्थाओं के सारे ढांचे की जांच के काम में लगाया गया है। मुझे बड़ी खुशी है, कि हमें प्रोफेसर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्-जैसा महान् शिक्षा-शास्त्री कमीशन के अध्यक्ष-पद के लिए मिला है। उन्हें भारत और विदेश के योग्य सहायक मिले हैं। यह और भी खुशी की बात है, कि इंगलैंड और युक्तराष्ट्र अमेरिका के यशस्वी शिक्षा-धुरंधरों ने इस काम के लिए अपनी सेवाएं अर्पित की हैं।"

खोजीराम–तो इस कमीशन में अवश्य बहुत-सी बातें मालूम होंगी, और देश के लिए तो शिक्षा-समस्या हल ही हो जायगी।

महीप–शिक्षा-समस्या हल करने के लिए कमीशन बैठाया गया है या किसी और काम के लिए, यह नहीं कहा जा सकता। हमारी शिक्षा की समस्या चाहे कालेज की हो या स्कूल की, उत्पादन से सम्बन्ध रखती है। कृषि के यन्त्रीकरण और देश के उद्योग-प्रधान बनाने तथा दोनों के विकास में संतुलन रखने में जो शिक्षा उपयोगी हो सकती है, वही हमारी सबसे पहली आवश्यकता है। इस कमीशन में शायद कोई भी ऐसा आदमी नहीं है, जिसे इस दृष्टि से समस्या को देखने का तजर्बा है। कमीशन भारत के बड़े-बड़े शिक्षा-केन्द्रों में गया और वहां के अपने जैसे लोगों से मिला। कुछ शिक्षण-संस्थाओं की रिपोर्ट भी लीं। कुछ बातें सवाल-जवाब से भी मालूम कीं। अंग्रेजी में ठाठ के साथ एक रिपोर्ट छापी गई, लेकिन तो भी हम वहां के-वहां ही रहे।

रामी–मैं तो शिक्षा का ही काम कर रही हूं, लेकिन जो हमारे शिक्षा-विशेषज्ञ हैं, उनके देखने से तो मुझे कोई आशा नहीं होती। उनके दिमाग में शिक्षा के लिए सबसे पहली जो जरूरी बात आती है, वह है, खर्च बढ़ा-चढ़ाके कुछ प्रदर्शन उपस्थित कर देना, जिसमें उनके ऊपर के सज्जन देखकर वाह-वाह कर दें।

महीप–और यदि खर्च न पूरा पड़ता हो तो, 'हम परिमाण नहीं गुण चाहते हैं', कहके फोटो खींचने और सूचना-विभाग के फिल्म दिखाने के लिए दस-पांच स्कूल इधर-उधर खोल दिये जायं। न जाने किसको धोखा देने के लिए यह सारा आयोजन ?

भगवानदास–कमीशन ने कुछ तो काम की बातें बतलाई होंगी ?

महीप–कितनी ही बातें तो हमारी आज की अवस्था में शौकीनी की चीजें हैं। घर में आग लगी हो और शहनाई बजाई जाये तो क्या यह सह्य होगा ? बतलाया है, कि विश्वविद्यालय के पहिले (स्कूली) शिक्षा बारह साल की हो, ग्रेजुयेट के लिए तीन साल और ऑनर्स के साथ ग्रेजुयेट को एम० ए० एक साल का रहे। विश्वविद्यालय में प्रादेशिक भाषा के अतिरिक्त संघ की भाषा (हिंदी) और अंग्रेजी भी अवश्य पढ़ाई जाय।

भगवानदास–तो हिन्दी स्वीकार की गई न ?

युधिष्ठिर–कमीशन ने स्वीकारा, केन्द्रीय शिक्षा-परामर्श-बोर्ड ने भी माना कि उच्च शिक्षा प्रादेशिक भाषाओं में दी जाये, यदि कोई विश्वविद्यालय चाहे तो वह संघ की भाषा (हिन्दी) में सभी या कुछ विषयों की पढ़ाई कर सकता है। संघ की भाषा की लिपि देवनागरी हो, जिसकी त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न किया जाये। बोर्ड ने शिक्षा कमीशन की इस सिफारिश को भी मंजूर किया कि वैज्ञानिक परिभाषाओं के निर्माण के लिए वैज्ञानिकों और भाषातत्वज्ञों का एक बोर्ड बनाया जाये। जो सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक सी माने जाने वाली परिभाषायें बनाये। लेकिन, सवाल यह है, क्या मौलाना आजाद से इन सब बातों के पूरा होने की आशा रखी जा सकती है, जिसके हिंदी द्वेष को सभी जानते हैं। कमीशन और शिक्षा-बोर्ड दोनों अपनी भाषा को शिक्षा का माध्यम जल्दी से जल्दी बनाने की बात कही है।

भगवानदास–हमारे शिक्षा-मंत्री शिक्षा के माध्यम के बारे में क्या कहते हैं ?

महीप–मौलाना कहते हैं–"आप लोगों ने जो सिफारिश की थी, उसे भारत-सरकार ने स्वीकार कर लिया; कि प्रारम्भिक शिक्षा मातृभाषा में हो। सभी प्रांतों ने इस बात को मान लिया। लेकिन मैं समझता हूँ, आप लोग यह मानेंगे, यह साधारण नियम रखा गया है। उस सिद्धांत के विशेष विवरण तथा व्यावहारिक

रूप से कठिनाई उपस्थित हुई है। जहां विद्यार्थी की मातृभाषा राज्य की भी भाषा है, वहां कोई कठिनाई नहीं है, किंतु जहां ऐसा नहीं है, वहां कई बातें उठ खड़ी होती हैं। यह साफ तौर से नहीं बतलाया गया, कि किस कक्षा में राज्य की भाषा द्वितीय भाषा के तौर पर आरंभ की जाय। यह भी स्पष्ट नहीं किया गया था, कि कब स्कूल की शिक्षा के माध्यम के तौर पर मातृभाषा का स्थान राज्यभाषा ले लेगी।" शिक्षा के माध्यम के बारे में परामर्शक-बोर्ड की बैठक में निश्चित हुआ कि प्रारंभिक कक्षाओं में मातृभाषा को स्थान मिले। परामर्शदाताओं को साधुवाद देना चाहिए। प्रारंभिक ४ वर्षों के लिए मातृभाषा का उपयोग स्वीकार करना उन बूढ़ों के लिए भी छोटा काम न था। छोटे-छोटे पाकेटों को छोड़कर हिन्दी, आसामी, बंगला, उड़िया, तेलगू, तमिल, मलयालम्, कन्नड, मराठी, गुजराती, पंजाबी, पहाड़ी, कश्मीरी यही मातृभाषाएँ हैं। इनकी कुछ उप-भाषाएं भी ऐसी हैं, जिन्हें प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम बनाने में दिक्कत नहीं था। राजभाषा का प्रश्न हमारे देश के लिए ही नया नहीं है, बल्कि दूसरे देशों में भी इसका हल निकालना पड़ा। हमारे देश में तो राजभाषा का निश्चय प्रांतों ने अपने-अपने क्षेत्रों में कर लिया है। राजभाषा और मातृभाषा जहां एक नहीं है, वहां रास्ता हमारे शिक्षा-विभाग को बीहड़ मालूम होता है, किंतु दिल्ली में बैठकर भले ही बीहड़ मालूम हो, स्थान पर जाने में कोई बीहड़ नहीं मालूम होता। हिमाचल का एक छोर तिब्बत से मिलता है, जहां एक दर्जन से अधिक गांव तिब्बती भाषा-भाषी हैं। हिमाचल प्रदेश की राजभाषा हिन्दी घोषित है। तिब्बती भाषा-भाषी स्पू या हङ्गो गांव के लिए प्रारंभिक शिक्षा के लिए क्या कठिनाई है? उनको अपनी मातृभाषा में पढ़ाइये। तीसरी या चौथी कक्षा (अथवा ९-१० वर्ष की अवस्था) में अनिवार्य द्वितीय भाषा के लिए उपयुक्त है, उस वक्त हिंदी को दूसरी भाषा बना दीजिये। प्राइमरी शिक्षा से ऊपर जाने वाले बच्चे उत्तरी भारत के किसी कोने में भी तीन साल में कामचलाऊ ज्ञान कर लेंगे। भरसक कोशिश कीजिये कि मातृभाषा में आगे की पुस्तकें भी तैयार हो जायं, जिससे हाई स्कूल तक के लड़के अपनी मातृभाषा से आगे बढ़ें। यदि विद्यार्थियों की संख्या कम है, जैसे ऊपरी सतलज के इन गांवों के लड़कों की, तो उन्हें चिनी जाना होगा। ऐसी अवस्था में लड़के आपस के संपर्क से जल्दी हिन्दी सीख जायेंगे। यही अवस्था भारत के किसी भी कोने की होगी। लेकिन मौलाना शिक्षा के माध्यम में मातृभाषा तक ही जाते हैं। भारत के कितने ही राज्य-क्षेत्रों की राजभाषा हिन्दी घोषित हो गई है, किंतु आजाद उसका नाम भी अपनी जीभ पर लाना नहीं चाहते।

भगवानदास—क्या जाने पाप लग जाये!

महीप—मौलाना बेचारे जबर्दस्ती इस गद्दी पर बैठाये गए हैं। एक अरबी के मदरसे के मौलवी होने योग्य व्यक्ति को ३५ करोड़ लोगों की शिक्षा का हर्ता-कर्त्ता बना दिया गया है, यह भारत में ही संभव हो सकता है। या तो हमारे सरताज शिक्षा के महत्त्व को नहीं समझते या फिर कोई और कारण ढूंढ़ना पड़ेगा, नहीं तो मौलाना को प्रांतों के गवर्नरों की इतनी गद्दियां खाली हो रही हैं, उनमें से किसी पर बैठा दिया जाता। मैं समझता हूं, लखनऊ की गद्दी उनके लिए बड़ी अनुकूल होती। लेकिन भाग्य को क्या किया जाय? तो भी मौलाना क्षमा के पात्र हैं।

युधिष्ठिर—रसायन परिषद् के जुबली-महोत्सव के अध्यक्ष प्रो० प० राय की राय शिक्षा के माध्यम के बारे में सुनकर दुनिया के किसी भी देश का आदमी आश्चर्य-चकित और खिन्न हुए बिना नहीं रहेगा, और संस्कृत का श्लोक 'शास्त्राण्यधी-त्यापि' याद आयगा। राय महाशय ने वर्तमान काल की जबर्दस्त समस्या—शिक्षा के माध्यम पर अपने भाषण में काफी कहा है—"एक शताब्दी से कुछ कम ही हुआ, जब भारतीय कालेजों में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से साइंस की पढ़ाई आरंभ हुई। कहा जा सकता है, अंग्रेजी का उपयोग जबर्दस्ती लादा गया; किंतु और दूसरा चारा क्या था? केवल वैज्ञानिक शब्दावली और परिभाषा की कमी ही कारण नहीं थी, बल्कि भारत की कोई सार्वत्रिक भाषा नहीं थी। इसके परिणाम-स्वरूप विज्ञान का ज्ञान अब तक कालेज या विश्वविद्यालय के शिक्षित वर्ग के बहुत ही थोड़े भाग तक सीमित रहा। विज्ञान देश की जनता के दिमाग तक पहुँचने में सफल नहीं हुआ। लेकिन दूसरी ओर अंग्रेजी के द्वारा साइंस की शिक्षा से यह फायदा हुआ, कि वह सारा भारतव्यापी होके विकसित हुआ।....भारतीय विचार-धारा के नेताओं ने अंग्रेजी शिक्षा के हितकारी प्रभाव को मानने से इनकार नहीं किया, जिसने कि इस जन-बहुल महाद्वीप के भिन्न-भिन्न-भाषा-भाषी क्षेत्रों के शिक्षितवर्ग के भीतर राजनीतिक और सांस्कृतिक एकता संपादित की।—"

भगवानदास—सांस्कृतिक एकता भी हमारे देश में अंग्रेजों ही की देन है, क्यों?

महीप—डाक्टर राय जो कह रहे हैं। उनका कहना ठीक भी है, क्योंकि जान पड़ता है, अंग्रेजी द्वारा प्राप्त संस्कृति के अतिरिक्त किसी और संस्कृति से वह परिचित नहीं हैं। शायद अंग्रेजी की सहायता बिना जिन देशों ने ज्ञान-विज्ञान सीखा, वह सब संस्कृतिहीन रहे—जापान, रूस का उदाहरण दिया जा सकता है, जिन्होंने अपनी भाषा द्वारा शिक्षा पाई।- मैं तो कहता हूं, यह औंधी खोपड़ियां कभी किसी चीज को ठीक से समझ नहीं सकतीं। इन पर अंग्रेजों की छाप इतनी अधिक पड़ी है, कि अंग्रेजी के बिना वह अपने को अनाथ समझते हैं। और आगे क्या फरमाया है युधिष्ठिर भाई!

युधिष्ठिर—"आइये हम उस प्रभाव पर विचार करें, जो कि अंग्रेजी के स्थान पर किसी भारतीय भाषा के शिक्षा के माध्यम बनाने के बाद हमारी वैज्ञानिक शिक्षा और अनुसंधान के ऊपर पड़ेगा। हमें इस बात को ध्यान से नहीं हटाना चाहिए, कि अभी (जनवरी १९४९) तक आपको कोई सार्वत्रिक या राष्ट्रभाषा नहीं मिली है। नागरी अक्षरों में हिन्दी या हिन्दुस्तानी भारतीय संघ की सार्वत्रिक राष्ट्रीय भाषा हो, यह सुझाव रखा गया है। अगर एक नई या राष्ट्रीय भाषा में साइंस की पढ़ाई-लिखाई करनी है, तो हमें पहले वैज्ञानिक परिभाषाएं और संकेत उस भाषा में बनाने होंगे। उसके बाद भिन्न-भिन्न साइंस की शाखाओं के नाना नामों के लिए पाठ्य-पुस्तकें उसी भाषा में प्रकाशित करनी होंगी। यह निश्चय बहुत विशाल श्रम द्वारा साध्य होगा, जिसे सम्भवतः आठ-दस साल से भी अधिक समय में योग्य वैज्ञानिक तथा भाषा-तत्त्व के विशेषज्ञों को लगाकर करना होगा। इसके अतिरिक्त इस नई व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक प्रांत में बहुत भारी संख्या में अध्यापकों को सिखलाना होगा।"

महीप—है न यह नौ मन तेल वाली बात! काम कितना बड़ा है? कहां इतने विशेषज्ञ मिलेंगे? कहां इतना समय मिलेगा? प्रकाशन का काम और भी सिर दर्द पैदा करेगा। नाहक बैठे-ठाले बूढ़ों के सिर में दर्द पैदा करना है। छोड़ दो महीप, बूढ़ों की जिन्दगी चैन से पार हो जाने दो। इन बूढ़ों को यह पता नहीं है, कि साइंस और भाषातत्त्व के १० योग्य विद्वान् चाहिएं, उनको कुछ साधारण लेखकों की आवश्यकता होगी। फिर तो दो साल के भीतर आपके सारे साइंसों के शब्द तैयार करके दिये जा सकते हैं। हां, परिभाषाओं को सारे भारत की दृष्टि से बनाना चाहिए और सभी प्रांतों के तत्तद् विषय के विद्वानों का सहयोग प्राप्त होना चाहिए। परिभाषा-निर्माण में कितने ही साधारण नियमों का निर्णय अखिल भारतीय विशेषज्ञों की परिषद् कर दे। इसे सभी प्रांतों के महान् विद्वान् चार-पांच दिनों में निर्धारित कर सकते हैं। कहीं नौ मन तेल की शर्त राधा के नाचने के लिए नहीं है। हिन्दुस्तान ही अकेला ऐसा देश नहीं है, जापान को भी यह करना पड़ा था; उसने तो शुरू में भी इस तरह निराशा नहीं प्रकट की। हां, जापान को लाभ था, कि वह प्रो० राय और उनके साथियों की तरह अंग्रेजी चश्मे से ज्ञान-विज्ञान नहीं देखता था। जापान के विद्यार्थी साइंस पढ़ने फ्रांस भी गये, जर्मनी भी गये, इङ्गलैंड-अमेरिका भी गये। लेकिन उन्होंने लौटकर फ्रेंच, जर्मन या अंग्रेजी में अपने विद्यार्थियों को शिक्षा नहीं दी। राय महाशय आठ-दस वर्ष की बात कर रहे हैं। तब भी अगर ऐसे लोग जिन्दा रहें, तो तेली के कोल्हू की तरह जहां-के-तहां रहेंगे।

भगवानदास–कहते हैं ये लोग हमें कूपमंडूक, लेकिन ये भी अंग्रेजी कूप-मंडूकता में नाक तक डूबे हैं।

युधिष्ठिर–आगे राय महाशय कहते हैं–"इस नई व्यवस्था के अनुसार सभी प्रांतों में उनके स्कूलों, कालेजों, विश्वविद्यालयों में राष्ट्रभाषा की शिक्षा अनिवार्य कर देनी पड़ेगी; किन्तु बहुत-से अहिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों में, विशेषकर दक्षिण भारत में, हिन्दी को अंग्रेजी की भांति ही विदेशी विषय समझा जाता है। जहां तक कम-से-कम इन प्रदेशों का सम्बन्ध है, अंग्रेजी की जगह पर हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बना देने पर विदेशी भाषा सीखने में जो श्रम और समय का अपव्यय होगा, उसे कम नहीं किया जा सकता।"

महीप–देह में आग लग गई है युधिष्ठिर भाई, और केवल आपके संकोच से कठोर शब्द नहीं बोल रहा हूँ। दक्षिण भारत में तेलगू, कन्नड, मलयालम्, तीन भाषाएं ऐसी हैं, जिनमें प्रतिशत जितने शुद्ध संस्कृत के शब्द हैं, उतने न बंगला में हैं न हिन्दी में। परिभाषाएं ९९ प्रतिशत से भी अधिक सरल संस्कृत से बनेंगी और यह प्रोफेसर कहते हैं, कि उनके सीखने में उतना ही समय लगेगा, जितना अंग्रेजी में लगता है।

खोजीराम–शिक्षा के माध्यम के लिए बंगाल, उड़ीसा, आंध्र या कर्नाटक में हिंदी की क्या आवश्यकता है, केवल परिभाषाएं एक तरह की बनानी हैं। कालेजों, विश्वविद्यालयों में वहां की भाषा में शिक्षा होनी चाहिए। इससे कितना समय बचेगा, और अपनी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य के प्रचार होने पर कालेज और विश्वविद्यालय से वञ्चित कितने ही लोग साइंस का ज्ञान प्राप्त करेंगे, इसकी तरफ इनका कुछ भी खयाल नहीं है।

युधिष्ठिर–अभी ही महीप, देह में आग लगने की बात खतम नहीं हुई, और सुनो–"अहिंदी भाषा-भाषी प्रांतों की बहुसंख्यक जनता के लिए सभी बातों में राष्ट्रभाषा अंग्रेजी की भांति अजनवी भाषा रहेगी। लोग अपनी प्रांतीय भाषा छोड़कर किसी नई भाषा के पढ़ने का प्रयत्न नहीं करेंगे, क्योंकि उसके प्रयोग का उन्हें कम समय मिलेगा।

महीप–इसे कहते हैं "मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी।" जहां तक साइंस और दूसरे प्रकार के ज्ञान का संबंध है, कोई हरज नहीं है, यदि लोग अपनी प्रांतीय भाषा छोड़ दूसरी भाषा न पढ़ें। किंतु उस भाषा को उस योग्य तो बना दें, कि सारा ज्ञान-विज्ञान उसमें लिखा जा सके। ऐसी योग्यता लाने के लिए वह पारिभाषिक शब्दावली लेनी होगी, जो कि सारे भारत की भाषाओं में एक-सी हो। राय महाशय को मालूम नहीं है, कि वैज्ञानिक तथा दूसरे विषयों के चार लाख

शब्दों में साढ़े तीन लाख से अधिक सारे भारत की भाषाओं में एक समान होंगे। बाकी ५० हजार में भी दर्शनादि की भाषा को लेते तीन-चौथाई से अधिक तत्सम और तद्भव एक-से शब्द मिलेंगे। क्या अंग्रेजी भी इतनी ही नजदीक है? राष्ट्र-भाषा का जहां तक संबंध है, अखिल भारतीय कार्य के लिए उसकी आवश्यकता होगी। आज भी मद्रास, काञ्ची और रामेश्वरम् के लोगों को घर बैठे हिन्दी सुनने-बोलने का मौका मिलता है। राष्ट्रभाषा घोषित न होने पर भी केवल आंध्र में लाखों स्त्री-पुरुषों ने हिन्दी को पढ़ा है। यदि राय महाशय हिंदी के विरुद्ध हैं, तो अच्छी बात है, वह बंगला ही को राष्ट्रभाषा बनाएं। बंगला में भी संस्कृत के उसी परिमाण में अखिल भारतीय शब्द मिलेंगे। यदि स्वतंत्र देश के आत्म-गौरव का खयाल है, तो कुतर्कों द्वारा अंग्रेजी को सिर पर बैठाये रखने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।

युधिष्ठिर–आगे प्रो० राय ने कहा है–"इन परिस्थितियों में मालूम होता है, साइंस के अध्ययन में अंग्रेजी की जगह हिन्दी या हिन्दुस्तानी रखने पर कोई वास्तविक लाभ नहीं होगा, बल्कि यह बिलकुल संभव है, कि इसके कारण हमारी प्रगति में भारी बाधा हो। और भी अंग्रेजी तो हर हालत में हमें स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों में अनिवार्य द्वितीय भाषा रखनी ही होगी; यदि हम दुनिया की वैज्ञानिक प्रगति के ज्ञान से अपने को अलग नहीं रखना चाहते। हमें वैज्ञानिक साहित्य और पत्रिकाओं के देखने के लिए अंग्रेजी पर निर्भर रहना पड़ेगा, हमें अपनी वैज्ञानिक परिषदों की मुख्य पत्रिकाओं को अंग्रेजी में प्रकाशित करना ही होगा, यदि यूरोप और अमेरिका की उसी तरह की परिषदों के साथ अपने विनिमय का सम्बन्ध हम अक्षुण्ण बनाये रखना चाहते हैं, और यदि हम चाहते हैं, कि हमारे प्रकाशन को उनके विषय-संक्षेपों में उचित स्थान मिले। वस्तुतः यदि हमारे पाठ्यक्रम से अंग्रेजी को हटा दिया जाय, तो वैज्ञानिक ज्ञान के प्राप्त करने का एक अत्यन्त आवश्यक साधन–विचारों का विनिमय और मानसिक संपर्क–खतम हो जायगा। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण बातें हैं, जिनकी हम बिलकुल उपेक्षा नहीं कर सकते, यदि हम यह नहीं चाहते कि अभिमान और पक्षपात के कारण हमारे राष्ट्रीय कल्याण और राष्ट्रीय प्रगति रुक जायं।" अब कहो महीप?

महीप–इस आदमी को मालूम नहीं है, दुनिया में रूस भी एक देश है, जहां के वैज्ञानिकों में मुश्किल से कोई अंग्रेजी बोल सकता हो। उनके ग्रन्थ और पत्रिकाएं अपनी ही भाषा में छपती हैं। बड़े-बड़े वैज्ञानिकों के पैदा करने में वह किसी देश से पीछे नहीं है। वहां क्यों नहीं अभिमान-पक्षपात के कारण राष्ट्रीय-प्रगति खतम हो गई?

युधिष्ठिर–अच्छा प्रो० राय की और भी कुछ गम्भीर बातें सुन लीजिए– "भारत ने अभी ही वैज्ञानिक जगत् में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली है। उसे अपनी शिक्षा-व्यवस्था में कोई भी ऐसा जल्दी का तजर्बा नहीं करना चाहिए, जो कि उसके वैज्ञानिक कार्यकर्त्ताओं के कार्य में बाधक हो। हमारा वर्तमान वैज्ञानिक शिक्षा-क्रम प्रायः तीन-चौथाई सदी से चल रहा है। कोई उग्र परिवर्तन या रूपान्तर इसमें ऐसा नहीं किया जा सकता, जिससे कि उसकी प्रगति रुक जाय।.......हमारे लिए यह निश्चय ही बड़े लाभ की बात होगी, कि अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक परिभाषाओं और नामों को बिना बदले कायम रखें, तथा वैज्ञानिक अनुसंधानों के प्रकाशन तथा अखिल भारतीय वैज्ञानिक संस्थाओं में बहस करने के लिए अंग्रेजी के माध्यम का उपयोग जारी रखें।........चाहे जो भी हो, अध्यापकों को भाषा के चुनने में स्वतन्त्रता होनी चाहिए, और शिक्षण-योग्यता में हानि पहुंचाने के लिए कोई बाधा नहीं डालनी चाहिए। यह भी बतला देना है, कि दुनिया के वैज्ञानिक प्रकाशन आधी शताब्दी से ऊपर से अंग्रेजी में निकल रहे हैं, और बहुत-से यूरोपीय देशों में अपने वैज्ञानिक परिणामों को अंग्रेजी में प्रकाशित करने का रुझान बढ़ रहा है।" आप लोगों ने देखा न कि राय साहब यह सोचने की तकलीफ गवारा नहीं करते, कि एक रूसी या जापानी उनकी इस बात को सुनकर हमारे प्रोफेसर के प्रति कोई अच्छी धारणा नहीं रखेगा। एक जर्मन उनकी बात को अपने लिए अपमान की बात समझेगा, फ्रेंच भी यही कहेगा, कि ऐसी बात एक हिन्दुस्तान का प्रोफेसर ही कह सकता है। एक विदेशी मित्र ने उच्च शिक्षा और भाषा के माध्यम तथा साहित्य के बारे में हमारे एक प्रमुख मन्त्री के साथ बात करते वक्त यही दलीलें सुनीं और उनको इस बात का बहुत खेद हुआ, कि भारतीय शिक्षित अब भी अपनी कूपमंडूकता से बाहर नहीं आना चाहते। जो दलीलें प्रो० राय ने दी हैं, और जिन हानियों की भविष्यद्वाणी की है, उनके अनुसार तो साइंस के सम्बन्ध में फ्रांसीसियों, जर्मनों और रूसियों को अफ्रीका के हब्शियों की तरह होना चाहिए। रही विदेशी भाषा पढ़ने की बात, सो अंग्रेजी ही क्यों? हमारे साइंस के अनुसन्धान-कर्ताओं को यूरोप की चार भाषाओं में कम-से-कम तीन का इतना ज्ञान होना चाहिए, कि वे उनमें निकलती अनुसन्धान-पत्रिकाओं को समझ सकें। राय महाशय अध्यापकों को भाषा की स्वच्छन्दता प्रदान करना चाहते हैं, लेकिन उनको पता नहीं है, १९४८ से दो-तीन बरस पहले मैट्रिक पास करके यूनिवर्सिटी में पहुँचे लड़के मुश्किल से अपने अध्यापक के अंग्रेज़ी-व्याख्यानों को समझ पाते हैं। प्रयाग-विश्वविद्यालय के दर्शन के प्रोफेसर को यह दिक्कत इतनी आई, कि अन्त में उन्हें हिन्दी माध्यम को स्वीकार करना पड़ा। पांच बरस और बीतने पर अंग्रेजी के ज्ञान का तल और भी

नीचे चला जायगा। राय महाशय अपने अध्यापक-बन्धुओं के लिए स्वतन्त्रता चाहते हैं, चाहे विद्यार्थी चूल्हे-भाड़ में जायं। कोई निश्चय नहीं है, कि जो अंग्रेजी में अपने विचार को प्रकट कर सकता है, वह अपने विषय का अच्छा जानकार भी हो। जो अपने विषय का जानकार है, उसके लिए अनिवार्य नहीं, कि अंग्रेजी में अपने विचारों को ठीक से प्रकट कर सके। राय की तरह भारत में अब भी बहुत-सी ऐसी औंधी खोपड़ियां हैं, जो अपनी कूपमंडूकता, अतीतकाल की दास-मनोवृत्ति, भविष्य के प्रति दायित्वहीनता, देश में सार्वत्रिक विज्ञान-प्रचार की आवश्यकता को न समझते हुए अपनी बातें दुहराए जाती हैं। इससे यह भी पता लगता है, कि हमारी दूसरी समस्याओं को जिस तरह पकड़ के रख छोड़ने की कोशिश की जाती है, वैसी ही शिक्षा और विज्ञान के विषय में भी चेष्टा हो रही है।

२२

बृहत्तर हिमाचल

युधिष्ठिर ने कहा—प्रदेशों के अस्तित्व को स्वीकार करने में हमारे यहां दूर-दर्शिता से काम नहीं लिया जा रहा है। जब कोई प्रान्त अपने कटे हिस्सों को मिलाने, या अंग्रेजों द्वारा जबर्दस्ती दूसरों के साथ मिले-जुड़े होने पर अपने स्वतंत्र अस्तित्व की मांग करता है, तो इसे संकीर्ण प्रान्तीयता कहकर दबा देने की कोशिश की जाती है। भाषासंबंधी प्रान्तों के स्वतंत्र अस्तित्व को मान लेने पर भारत की एकता छिन्न-भिन्न हो जायगी, यह बड़ी गलत धारणा है। मध्यप्रदेश, हैदराबाद और बम्बई में बँटा महाराष्ट्र यदि एक हो जाय, तो इससे भारत की एकता पर कहां आघात लगता है? इसी तरह हैदराबाद, मैसूर, बम्बई और मद्रास के चार प्रान्तों में बँटा कर्नाटक एक हो जाय, तो इससे कहां हमारा देश छिन्न-भिन्न हो रहा है? हमें भाषा के अनुसार प्रान्तों की इकाई अन्त में माननी पड़ेगी। एक भाषा-भाषी जनता को एक प्रान्त के रूप में संघटित करके जो हम उसकी शक्ति को बढ़ा देते हैं, वह हमारे सारे देश की अपनी शक्ति है। प्रान्तों की स्वाभाविक इकाई को छिन्न-भिन्न करके ही हम वस्तुतः प्रान्तीय संकीर्णता का बीज बोते हैं।

रामी—हिमाचल के बारे में आप क्या समझते हैं?

युधिष्ठर—हिमाचल की समस्या को और गहराई में उतरकर देखने की आवश्यकता है। प्रदेशों के निर्माण की समस्या में हिमाचल को भी सम्मिलित करना है। अभी इस ओर हमारा ध्यान नहीं गया है। हिमाचल का छिन्न-भिन्न होना, उसके अधिकांश भाग का शिक्षा और राजनीति में पिछड़ा होना भी इस उदासीनता का कारण है। तो भी शिमला से तिब्बत की सीमा तक के दस लाख की आबादी वाले भूभाग को हिमाचल-प्रदेश का रूप देना बतलाता है, कि चाहे अनजाने ही सही, स्वतंत्र हिमाचल-प्रदेश की नींव पड़ गई है। हिमाचल-प्रदेश सिर्फ शिमला की ३०-३१ रियासतों तक ही सीमित नहीं है। वह जम्मू से आसाम की सीमा तक फैला हुआ है।

उसका क्षेत्रफल और जनसंख्या (१९३१ ई०) हैं—

	जनसंख्या (हजार)	**क्षेत्रफल** (वर्गमील)
शिमला की रियासतें	३३१	४९६०
पंजाब की "	४३८	५२९२

	जनसंख्या (हजार)	क्षेत्रफल (वर्गमील)
पंजाब के जिले–		
कांगड़ा	८०१	९८५८
गुरदासपुर[1] (हिमालय)	६१	२३०
होशियारपुर[2] (")	१२९	५४४
उत्तरप्रदेश के जिले–		
अलमोड़ा	५८३	५३८९
गढ़वाल	५३४	५६१२
नैनीताल	२७७	२७२१
टेहरी गढ़वाल	३५०	४१८०
नेपाल	५६००	५४०००
सिक्किम	११०	२८१८
दोर्जेलिङ्	३२०	१२१२
भूटान	३००	१८००
योग	९८,३४,०००	९८६१६

सिर्फ हिमाचल पर्वत के कारण मैं यह नहीं कह रहा हूँ ! इस सारे प्रदेश में एक तरह की संस्कृति, एक तरह का इतिहास और लोगों के जीवन में बहुतेरी एक-सी बातें मिलती हैं। यहां जातियां-उपजातियां और भाषाएँ अधिक बतलाई जाती हैं; लेकिन सबका समावेश सिर्फ दो भाषाओं और जातियों में हो जाता है—खस (खश) और भोट। उत्तर में भोट (तिब्बत) से घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण हमारी उत्तरी सीमा के सदा हिमाच्छादित डांडों से निकलकर भारत की ओर आनेवाली नदियों के ऊपरी भाग में सभी जगह भोट-भाषा-भाषी गांव मिलते हैं, और बाकी स्थानों में खस-जाति बसती है—यह सुनकर आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं है। आसाम के पास तक फैले हुए गोरखा लोगों की भाषा को खसकुरा (खस-भाषा) कहा जाता है। कुमायूं-गढ़वाल शिमला-कांगड़ा-मण्डी-चम्बा—सभी इलाकों में बसनेवाली जातियां अभी कुछ समय पहले तक और बहुत जगह आज भी खस या खशिया कहके पुकारी जाती हैं। सारा हिमाचल इन्हीं खस और भोट जातियों से बसा है (कनौरों और नेवारों में भी यह तत्त्व अधिक हैं)। भोट-भाषा-

१–गुरदासपूर जिले का पाकिस्तान विभाजन से पहले क्षेत्रफल का आठवां और २–होशियारपुर की जनसंख्या का सोलहवां भाग हिमालय में था।

भाषी यहां पांच-ही-सात सैकड़े होंगे, तो भी वृहत्तर हिमाचल-प्रदेश में भोट-भाषा-भाषियों को समुचित स्थान देना होगा। कोई-कोई इलाके, जैसे स्पिती, लाहुल, ऐसे भी हैं, जहां तिब्बती भाषा ही मुख्य भाषा है। तिब्बती भाषा बहुत समृद्ध भाषा है। वह संस्कृत की भांति सभी तरह के विचारों को व्यक्त करने की क्षमता रखती है। तिब्बती भाषा की अवहेलना नहीं की जा सकती। उसके बाद जो भाषा इस वृहत्तर हिमाचल-प्रदेश में बोली जाती है, वह वृहत्तर खस (खश) भाषा है, जिसकी स्थानीय भाषाओं में आपस में कम ही अन्तर है। गोरखा, कुमाऊंनी (अल्मोड़ा-नैनीताल), गढ़वाली भाषा, बुशहर, कांगड़ा आदि की बोलियों में बहुत अन्तर नहीं है। ये सभी खस-भाषा की बोलियां हैं।

खोजीराम—हिमाचल की एकता सिद्ध है।

युधिष्ठिर—भाषा और भौगोलिक एकता के अतिरिक्त वृहत्तर हिमाचल की सांस्कृतिक एकता भी है। खसों के गीत-नृत्य, उनकी स्त्रियों में स्वतन्त्रता का अधिक सम्मान, भोजन-छाजन में भी बहुत हद तक उन्मुक्तता, उनका परिश्रमी स्वभाव और सैनिक मर्दानगी, जीवन और धन के प्रति उदारता तथा बेफिक्री—यह सभी चीजें सारे हिमाचल की सन्तानों में एक-सी पाई जाती हैं। यह तो मानना ही पड़ेगा, कि परिश्रम और निर्भयता में हिमाचलवासी अद्वितीय हैं।

भगवानदास—हिमाचल की प्राकृतिक संपत्ति अकूत है।

युधिष्ठिर—हिमाचल अपनी प्राकृतिक सम्पत्ति—कृषि, खनिज, जंगल की उपज—सभी स्थानों में एक-सा रखता है। यहां की कृषि को बहुत विकसित नहीं कहा जा सकता, किन्तु भारत के दूसरे भागों से यह पिछड़ा भी नहीं है। हिमालय के नर-नारियों ने खून-पसीना एक करके दुरारोह पर्वतमालाओं के डांडों तक को खेतों की सीढ़ियों से सजा दिया है। यहां जनसंख्या की वृद्धि के अनुसार खेतों को बढ़ाया गया और जंगलों के महत्त्व को न समझकर अदूरदर्शिता से काम लिया गया है; किन्तु इसके लिए सिर्फ उन्हीं को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। पुराने शासकों ने लोगों की शिक्षा की ओर ध्यान ही कहां दिया था? हिमाचल के जंगलों में देवदार-जैसी श्रेष्ठ लकड़ी है। अंग्रेज-सरकार ने बहुत पीछे ही सही, इसकी ओर थोड़ा-बहुत ध्यान दिया; लेकिन लकड़ी को छोड़ जंगल की अन्य उपज से देश को समृद्ध बनाने की कोशिश नहीं की।

रामी—फलों की तो हिमाचल खान है।

युधिष्ठिर—हिमाचल में फलों के लिए बड़ी संभावना है, किन्तु उसकी पैदावार बढ़ाने के लिए कभी उचित ध्यान नहीं दिया गया। कुल्लू-कोटगढ़ के सेबों तथा

सिक्किम की नारंगियों का श्रेय सरकार को नहीं, बल्कि कुछ निजी तौर से प्रयत्न-शील व्यक्तियों को देना होगा। मेवों का स्रोत पेशावर, बलूचिस्तान अब हमारे देश में नहीं है; लेकिन वहां के सारे मेवों को और पहले से अधिक मात्रा में हिमा-चल का एक खंड–किन्नर देश (ऊपरी सतलज-उपत्यका)–दे सकता है। सारा हिमाचल तो प्रयत्न करने पर कुछ ही वर्षों में सारे भारत को सेब, नासपाती, नारंगी, आड़ू, आलूचा आदि से पाट सकता है।

रामी–और श्वेत ईंधन।

युधिष्ठिर–हिमाचल की सबसे बड़ी सम्पत्ति है बिजली और खनिज पदार्थ; इन्हें तो अभी छुआ तक नहीं गया है। इनके स्रोतों और आंकड़ों को अभी हम जमा नहीं कर पाए हैं। हिमाचल अपने उदर में सब तरह की खनिज-सम्पत्ति छिपाए हुए है। कलिंपोङ्. के इलाके में चार-ही-पांच साल से कोयले की खानों में काम होने लगा है। नेपाल में नरम कोयला थोड़े ही दिनों से जलाने के काम में लाया जा रहा है। हिमाचल की तांबे, सीसे, लोहे, गंधक, अभ्रक आदि की खानें तो अभी उस भविष्य की प्रतीक्षा में है, जब कि हमारे वैज्ञानिक ऐटमिक दौड़ का खयाल छोड़ इनकी सुधि लेंगे, सरकार बड़ी-बड़ी योजनाएं बनायेगी और हिमाचल की परिश्रमी जनता उससे भी अधिक उत्साह के साथ पहाड़ों के उदरों को अपने हाथों से विदारण करेगी, जैसा कि उसने इन पहाड़ों को खेतों से ढांककर किया है? बिजली के लिए तो हिमाचल भारत ही नहीं, संसार का एक अद्वितीय खजाना है। पेट्रोल से वंचित हमारे देश के लिए उसकी बड़ी आवश्यकता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं, कि हिमाचल में आज जो दरिद्रता दिखलाई पड़ रही है, उसके रहने का कोई कारण नहीं है। हिमाचल की कुक्षि से दरिद्रता और अज्ञान को भगाना हमारे हाथ में है, और उन्हें भगा के ही रहना होगा!

भगवानदास–हिमाचल का भविष्य उज्ज्वल है।

युधिष्ठिर–हिमाचल का भविष्य उज्ज्वल है, यह कहते हुए हमें उसके रास्ते की अड़चनों को भी हटाना होगा। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आर्थिक इकाईवाले हिमाचल को हमें राजनीतिक तौर से भी एक इकाई में परिणत करना पड़ेगा। आजकल दस-पांच लाख आबादी का भूखंड कोई बड़ी योजना बनाकर चालू नहीं कर सकता। योजनाओं के लिए जो आरम्भिक खोज की आवश्यकता होती है, वह भी उसके बूते की बात नहीं होती। नये बने हिमाचल-प्रदेश के सामने ये अड़-चनें दिखलाई पड़ रही हैं। सारा वृहत्तर हिमाचल आसाम की सीमा से जम्मू की सीमा तक, तिब्बत की सीमा से तराई तक फैला हुआ है। इसकी जनसंख्या करोड़ से ऊपर होगी। इतनी भूमि और इतनें हाथों के एक होने पर हम हिमाचल

की बड़ी-से-बड़ी समस्या को आसानी से हल कर सकते हैं। लेकिन इस राजनीतिक एकता को वास्तविकता का रूप देने में कई बाधाएं हैं। पहले तो सभी छोटे राजा अपने को चक्रवर्ती समझते थे और पांच गांव की सीमा को भी हिलाने-डुलाने के लिए तैयार नहीं थे। जिन जगहों में राजाओं की निरंकुशता दूर हो गई, वहां भी प्रजा के नेताओं में मंत्री और प्रधान-मंत्री बनने का लोभ इतना बढ़ा, कि वे बड़ी इकाई में मिलने के लिए तैयार नहीं होते थे। पांच लाख की रियासत टेहरी के प्रजापक्षी मंत्री तक इस संकीर्णता से ऊपर नहीं उठ सके और वे डेढ़ ईंट की मस्जिद अलग रखने के लिए पूरा जोर लगाते रहे। वही हालत सिक्किम की है, जिसकी जनसंख्या एक लाख से कुछ ही अधिक होगी। अभी तक तो वहां के महाराजा यह भी नहीं तय कर पाये थे, कि प्रजा को अधिकार देने चाहिएं या नहीं। किन्तु अब तो गोबरगनेशी भारत सरकार की ओर से की गई, जब कि उसे भारत की सीमा से बाहर कर दिया गया। भला यह समझने की बात है, कि इतना छोटा इलाका कैसे अपने यहां की बिजली-खान-जंगल-फल की योजनाओं पर करोड़ों लगा सकेगा और कैसे काम के लिए विशेषज्ञों की सहायता प्राप्त कर सकेगा। सिक्किम को दूरदर्शिता से काम ले दोर्जेलिङ्. में मिल जाना चाहिये था।

रामी—हिमाचल का विस्तार बहुत है।

युधिष्ठिर—पश्चिमी हिमाचल में कांगड़ा जिला, होशियारपुर तथा गुरदासपुर की पहाड़ी तहसीलें पूर्वी पंजाब में हैं। शिमले का भी कुछ भाग पंजाब में रखा गया है। वहां भी उक्त भूभाग को हिमाचल से अलग रखने के पक्ष में तरह-तरह की थोथी दलीलें दी जा रही हैं। जिस प्रकार दोर्जेलिङ्. निवासियों को अपने को किसी स्वतंत्र हिमाचल-प्रदेश का अंग बनने से रोकने का प्रयास पूर्वी बंगाल की ओर से नहीं होना चाहिए, उसी तरह पश्चिमी पंजाब के हिमाचल के टुकड़ों की ओर लालचभरी निगाह से देखना उचित नहीं है। यह दूषित मनोवृत्ति पंजाब के लिए भी स्थायी हित की बात नहीं होगी। उसके इस भाग के निवासी हिमाचल-प्रदेश में जाना चाहते हैं, तो उन्हें खुशी से जाने देना चाहिए। जमींदारी-जागीरदारी का जमाना लद गया, इसे याद रखना चाहिए।

खोजीराम—और उत्तर-प्रदेश में जो हिमाचल का अंश है।

युधिष्ठिर—टेहरी राज्य का उत्तर प्रदेश में मिलना अवश्यम्भावी था; किन्तु हिमाचल की इकाई को अक्षुण्ण रखने और उसे दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक है, कि अलमोड़ा-नैनीताल-गढ़वाल के तीनों जिले टेहरी रियासत तथा देहरादून बृहत्तर हिमाचल-प्रदेश का अभिन्न अंग बने। किसी समय कुमाऊँवाले हिमाचल का एक प्रदेश बनाने के लिए सबसे आगे थे, लेकिन अब वहां किसी की

आवाज इसके पक्ष में नहीं निकलती। शायद वे समझते हैं, कि पन्तजी छ करोड़ के उत्तर-प्रदेश के मुख्य मंत्री हैं। अलग होने पर हमारा आदमी ऐसे पद पर कैसे पहुंचेगा ? लेकिन हिमाचल में प्रतिभा की कमी नहीं है। हिमाचल के सपूत उत्तर प्रदेश क्या, सारे भारत के कर्णधार बन सकते हैं। फिर कुमाऊँवालों को यह भी तो सोचना चाहिए, कि पन्तजी के बाद भी बराबर उन्हीं के यहां के मुख्यमंत्री नहीं हुआ करेंगे। सचमुच ही कुमाऊँ की इस विषय की चुप्पी बहुत खेदजनक मालूम होती है और यह उसकी अदूरदर्शिता की परिचायक है।

महीप—हिमालय को एक करना होगा ?

युधिष्ठिर—बंगाल, उत्तर प्रदेश, पंजाब और कई रियासतों में बिखरे हिमाचल के भागों को एक कर देना चाहिए, तभी उसकी चौमुखी उन्नति हो सकती है, इस बात को माननेवाले काफ़ी मिलेंगे और वे यह भी मानेंगे, कि सिक्किम-सहित दोर्जेलिङ् को भी हिमाचल-प्रदेश में मिला देना चाहिए। कोई-कोई आपत्ति कर सकते हैं, कि बीच में नेपाल के कारण दोर्जेलिङ्.वाले हिमाचल को पश्चिमवाले हिमाचल से कैसे मिलाया जा सकता है ? लेकिन यह शंका करनेवाले भूल जाते हैं, कि अलग प्रदेश होने का अर्थ यह नहीं है, कि वह भारतवर्ष से अलग है और हमारे लिए भारत का हरएक प्रदेश एक-दूसरे से असम्बद्ध परम स्वतंत्र इकाई का रूप रखता है। क्या हर्ज है, यदि बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश के भीतर से होकर हिमाचल-प्रदेश के दोनों भाग एक-दूसरे से संबंध रखें ?

खोजीराम—क्या यही स्थायी हल है ? और नेपाल ?

युधिष्ठिर—इसे हमें स्थायी हल मानना होगा। अन्ततोगत्वा तो हमें सारे हिमाचल को बृहत्तर हिमाचल का रूप देना होगा, जिससे नेपाल और भूटान को अलग नहीं किया जा सकता। नेपाल का नाम लेना कुछ लोगों के लिए कुफ़ है। वे खयाल करते हैं, कि नेपाल को भारत का समकक्ष स्वतंत्र अस्तित्व रखने का अधिकार है। हमारे कितने ही राजनीति-धुरंधरों के लिए अंग्रेजों की खींची सारी रेखाएँ सीता की कुटिया के किनारे लक्ष्मण द्वारा खींची रेखा की भांति दुर्लंघ्य हैं। लेकिन क्या हमें मालूम नहीं है, कि अंग्रेजों ने रियासतों को जिस अभिप्राय से पाल-पोस के रखा था, उसी कूटनीति का एक अंश नेपाल का अस्तित्व भी है। समय पर न चेतने पर नेपाल हमारे लिए भारी खतरे की चीज सिद्ध होगा। हैदराबाद की स्वतंत्रता के षड्यंत्र को हमने अपने पेट में छुरी भोंकना समझा, किन्तु नेपाल की स्वतंत्रता का षड्यंत्र हमारी खोपड़ी में पिस्तौल का निशान है इसे हम नहीं समझ पाये। नेपाल का राजवंश हिन्दू है और निजाम मुसलमान था, इसलिए दोनों में भारी भेद हो गया ? नेपाल की जनता उसी तरह हमारे रक्त-

मांस से सम्बन्ध रखती है, जिस तरह हैदराबाद की जनता। निजाम की निरंकुशता के विरुद्ध बोलनेवाले किस मुंह से नेपाल के मुट्ठी-भर राणाओं की तानाशाही को सह्य मान सकते थे ?

रामी—नेपाल की जनता उठ खड़ी हुई है।

युधिष्ठिर—नेपाल की जनता आज अपने अधिकारों के लिए लड़ी है और बड़ी कुर्बानियां की है। भारत के नेता और उसके समाचार-पत्र क्रूर चुप्पी साधे रहे। मालूम होता था डचों के इन्डोनेशिया और फ्रांसीसियों के हिन्दचीन में स्वेच्छाचार के विरुद्ध आवाज उठाने ही तक हम अपनी न्यायप्रियता को सीमित रखना चाहते थे ? अपने बन्धुओं की सौ साल पहले खून की होली खेलकर नेपाल को हाथ में करके अंग्रेजों के वरदान पर जीते आते राणा-वंश को कायम रखना कभी उचित था ? नेपाल के बारे में हमारा रुख प्रतिगामी रहा।

खोजीराम—नेपाल की शासन-व्यवस्था तो असह्य रहा है।

युधिष्ठिर—नेपाल में दो राजा हैं, एक का नाम महाराजाधिराज है, जिसे राज-काज में कोई अधिकार नहीं था। हां, उसे एक मोटी रकम पेंशन के रूप में मिल जाती थी। नेपाल के वास्तविक शासक राणा जंगबहादुर के भाइयों की सन्तान होते रहे जिनमें से हर एक नेपाली प्रजा के जान-माल को अपनी निजी सम्पत्ति समझता था। वहां सरकारी पैसे-कौड़ी का कोई हिसाब नहीं, प्रजा की गाढ़ी कमाई में से कितना लोगों की शिक्षा, स्वास्थ्य और दूसरे उपयोगी काम में खर्च किया जाय इसका कोई नियम नहीं। सारी आमदनी राणा-वंश की मिल्कियत थी। राणा-खान्दान एक तरफ प्रजा को निहत्थी, निरीह और अशिक्षित बना के रखना चाहता रहा और दूसरी ओर आपसी षड्यंत्रों से भी जनता के ऊपर भार डालता। कुछ ही वर्षों के भीतर राणा-खान्दान के दो-दो राजा निकाल बाहर किये गए, और आगे भी यही होता, किन्तु भारत सरकार की सहायता से पांच सरकार और कांग्रेसी नेता भी अब लूट में सहभागी बन गये।

महीप—नेपाल अन्तर्राष्ट्रीय नीति का अखाड़ा बन रहा है।

युधिष्ठिर—हां, नेपाल हमारी घरू राजनीति की ही दृष्टि से, अपने रक्त-मांस-सम्बन्धी बन्धुओं के ऊपर किये जाते अत्याचारों के कारण ही, हमारे ध्यान को आकृष्ट करने का हक नहीं रखता; बल्कि हमारी वैदेशिक राजनीति में वह हमारे लिए अन्तर्राष्ट्रीय अखाड़ा बन चुका है। हैदराबाद के निजाम की कमर तोड़ने की, उसे शासनहीन बनाने की, जरूरत हमें इसलिए पड़ी कि अंग्रेज उसे ट्रान्सजार्डन बनाना चाहते थे, हमारी छाती पर वहां सैनिक हवाई-अड्डा तैयार करना चाहते थे। वही बात 'स्वतंत्र' नेपाल कर रहा था। वहां के राणाओं को

जनतांत्रिक भारत पर उतना विश्वास नहीं है, जितना बाहरी साम्राज्यवादियों पर। इसीलिए वह उनसे और अधिक घनिष्ठता स्थापित करना चाहते रहे। खनिज विशेषज्ञों के नाम पर बाहर से सैनिक विशेषज्ञों को बुला के नेपाल की सर्वे करा रहे थे। फिर वहां खनिज के कामों के लिए करारनामे-पट्टे लिखे जायंगे। व्यापारिक अड्डों के नाम से सैनिक हवाई अड्डों को बनने से कौन रोक सकेगा? और अब तो चीन में कम्युनिस्टों का प्रभुत्व हो जाने पर तिब्बत को चीन का अभिन्न अंग माना जाने के कारण नेपाल की उत्तरी सीमा ही कम्युनिस्ट चीन की दक्षिणी सीमा है। फिर कम्युनिस्ट दुनिया के चारों ओर सैनिक अड्डों के बनाने का जिस तरह काम चला रहा है, नेपाल भी उसका अंग होगा। नेपाल अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का हमारे लिए एक भयंकर अखाड़ा बनके रहेगा, क्योंकि हम स्वतंत्र नेपाल के नाम पर राणा तानाशाहों की पीठ ठोकते रहे। यह राजनीति का अजीर्ण होगा, यदि हम इतनी बात को भी नहीं समझ पाए और नेपाल के राष्ट्रसंघ के सदस्य होने में सहायता भी करने गये। इसलिए नेपाल को वहां आना होगा, जहां ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक और स्वयं वहां की प्रजा उसे रखना चाहती है। उसे वृहत्तर हिमाचल-प्रदेश का अंग बनना है, मुट्ठीभर राणाओं और उनके पिछलग्गुओं को छोड़ सारी नेपाली प्रजा का हित इसी में है। हां, माननी होगी वहां की प्रजा की इच्छा अंतिम निर्णय।

भगवानदास—भूटान के बारे में क्या करना है?

युधिष्ठिर—भूटान के बारे में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। वह नेपाल से भी छोटा राज्य है। वहां भी निरंकुशता का अखंड ताण्डव हो रहा है, जो अंग्रेजों के लिए मनोरंजक हो सकता था, किन्तु हमारे लिए कभी नहीं। भूटान हिमाचल का सबसे पिछड़ा भाग है। उसकी अकल तो उसी वक्त दुरुस्त हो जायगी, जिस वक्त उसकी उत्तरी सीमा पर चीन की नई शक्ति का प्रदर्शन होने लगेगा। भूटान की जनता में भीतर-ही-भीतर आग सुलग रही है। आशा है, अपनी भलाई का खयाल करके भी वहां के शासक प्रजा और भवितव्यता के सामने सिर झुकाने से आनाकानी नहीं करेंगे। इस प्रकार भीतरी-बाहरी राजनीतिक स्थिति तथा हित, भारत की समृद्धि और सुरक्षा इस बात की मांग कर रही है, कि भूटान से जम्मू तक का सारा हिमवंत वृहत्तर हिमाचल का रूप ले। हिमाचल की जनता अब जाग उठी है। फिर कोई शक्ति उसके रास्ते में बाधक नहीं हो सकती।

२३

प्रवासी भारतीय

भगवानदास—दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के ऊपर जैसी गुजर रही है, उसकी खबरें समाचार-पत्रों से मिलती रहती हैं। विश्व के दूसरे भागों में भी भारतीय जा बसे हैं, आज उनके बारे में विचार करना चाहिए।

युधिष्ठिर—यद्यपि हमारे यहां समुद्र पार जाना कई शताब्दियों तक निषिद्ध रहा। पंडित लोग व्यवस्था देते रहे, कि समुद्र पार होते ही हिन्दू का धर्म नहीं रह जाता। लेकिन यह कूपमंडूकता देश में सदा से नहीं थी। ब्राह्मणधर्मी हिन्दू जावा-सुमात्रा, बाली-बोर्नियो, चम्पा-कम्बोज से फिलिपीन द्वीप तक फैले हुए थे, उनके जगह-जगह उपनिवेश थे; इसलिए यह कहना, कि हिन्दू समुद्र पार नहीं जाते थे, अपनी अज्ञता को प्रकट करना है। यह इतिहास-प्रसिद्ध बात है। उस समय भारतीय स्वतन्त्र मानव के तौर पर एक उच्च संस्कृति को लेकर द्वीप-द्वीपान्तरों में पहुँचे थे। बीच में सूत्र टूटने के बाद पिछले सौ वर्षों में भारतीय दुनिया के बहुत से भागों में मियादी कुली बनकर गये। आजकल उनकी तथा कुछ स्वतन्त्र रूप से भी बाहर जा बसे भारतीयों की संख्या ३७ लाख से ऊपर है।

रामी—३७ लाख से ऊपर है? वह कहां-कहां पहुंचे हैं?

युधिष्ठिर—सबसे अधिक अपने पड़ोसी बर्मा में गये हैं। उसके बाद लंका, मलाया, दक्षिणी अफ्रीका, मारीशस, ट्रीनीडाड, ब्रिटिश-गायना आदि में हैं। उनकी आजकल की संख्या तो मालूम नहीं है, किन्तु पुराने कागजों से भारतीयों की जो संख्या मालम हुई है, वह निम्न प्रकार है—

प्रवासी भारतीयों की संख्या

(क. ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर)

(१) एसिया में—

लंका[१]	६,८२,५७०	(१९३८)	अदन	८,१६८	(")
मलयद्वीप	५५०	(१९३३)	हाङ्.काङ्.	४,७४५	(१९३१)
बर्मा	११,२०,०००	(")	उ० बोर्नियो (ब्रि०)	१२९८	(")
मलाया	७,५४,८४९	(१९३७)			

१. चायबगान के कमकरों को छोड़कर।

(२) अफ्रीका में–			(३) अमेरिका में–		
केनिया[२]	४२,३६८	(१९३७)	ट्रीनीडाड	१,५४,०८३	(१९३७)
तंगानिका[२]	२३,४२२	(१९३१)	जमैका	१८,६६९	(१९३६)
युगांडा[२]	१८,८००	(१९३७)	ग्रेनाडा	५०,०००	(१९३२)
जंजीबार[२]	१४,२४२	(१९३१)	सेंटलुइस	२१८९	(१९२१)
न्यासालैण्ड	१,६३१	(१९३७)	ब्रिटिशगायना	१,४२,९७८	(१९३७)
नटाल	१,८३,६४६	(१९३६)	ब्रिटिश होंडूरास	४९७	(१९३१)
ट्रान्सवाल	२५,५६१	(")	कनाडा	१५,९९	(")
केपकालोनी	१०,६९२	(")	(४) आस्ट्रेलिया में–		
दक्षिणी रोडेसिया	२,१८४	(")	आस्ट्रेलिया	२,४०४	(१९३३)
उत्तरी "	४२१	(१९३७)	न्यूजीलैंड	१०,६६	(१९३२)
मारीशेस	२,६९,७०१	(")	फीजीद्वीप	८९,३३३	(१९३७)

(ख. ब्रिटिश साम्राज्य के बाहर)

(१) एसिया में–			(२) अफ्रीका–		
इन्डोनेसिया	२७,६३८	(१९३०)	मदगास्कर (फ्रांस)	७,९४५	(१९३१)
इण्डोचीन	६,०००	(१९३१)	पोर्तगीज पश्चिमी अफ्रीका	५,०००	(")
स्याम (थाई)	५,०००	(१९३१)	रियुनियां (फ्रांस)	१,५३३	(१९३३)
इराक	२,५९६	(१९३३)	(३) अमेरिका–		
ईरान	२,०००	(")	डच गायना	३७,९३३	(१९३२)
बहरैन	५००	(")	उत्तरी अमेरिका के राज्य	५,८५०	(१९३०)
मस्कत	४४१	(१९३३)	ब्राजील	२,०००	(१९३१)

३६,८८,२०२

खोजीराम–यह संख्या काफी है और मैं समझता हूँ, लंका में चाय, रबर के बगीचे में काम करने वाले तथा दूसरे भारतीय कमकरों को लेकर आज संख्या करीब ५० लाख पहुंच जाती है।

महीप–संख्या कितनी ही पहुंच जाती हो, लेकिन हमारे ये भाई गुलाम देश से गये थे, इसलिए उन्हें बराबर अपमानित होना पड़ा है। अंग्रेजी साम्राज्य में तो और भी। दक्षिणी अफ्रीका में हम जानते हैं, उनकी क्या हालत हो रही है। उन्हें

२. पूर्वी अफ्रीका में अब १६८ हजार भारतीय रहते हैं।

मनुष्य नहीं समझा जाता । शहरों में उन्हें साधारण सड़कों से हटाकर किसी कोने में बसने के लिए मजबूर किया जाता है । यूरोपीय होटलों में बड़े-से-बड़े भारतीय को ठहरने का अधिकार नहीं । रेलों और ट्रामों में उनके बैठने के लिए अलग डब्बे और स्थान बने हुए हैं । उन्हें कोई नागरिक अधिकार नहीं है । भारतीयों का जो अपमान दक्षिणी अफ्रीका के गोरों ने किया है, वैसा कभी किसी स्वतन्त्र देश के साथ किया जाता, तो युद्ध घोषित हुए बिना नहीं रहता । नेहरूजी उसी साम्राज्य से हमें चिपका रहे हैं, जहां कि हमारा इतना अपमान हो रहा है । हमें उन्हीं बूटों को चाटने के लिए कहते हैं, जो कि हमें ठोकर लगाते आ रहे हैं ।

खोजीराम—दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों की संख्या नेटाल में १,८३,६४६, ट्रान्सवाल में २५,५६१ और केपकालोनी में १०, ६५२ कुल २ लाख से ऊपर है । अब सुनते हैं, कि दक्षिणी अफ्रीका वाले गोरे भारतीयों को वहां से भगाना चाहते हैं । जब दक्षिणी अफ्रीका आबाद नहीं था, सिंह और जंगली दरिन्दे वहां फिरा करते थे, जंगलों को काटकर बस्तियां बसानी थीं, उस वक्त हमारे भाई कुली बनाकर वहां भेजे गए । अब, जब वह आबाद हो गया, तो वहां के गोरे पहले तो लांछित अपमानित करते रहे, अब भाग जाने के लिए कह रहे हैं । यह खून का घूंट पीना है । युक्तराष्ट्र-संगठन में यह मामला गया, वहां से अफ्रीकन सरकार से न्याय करने के लिए कहा गया, लेकिन निर्बल के साथ दुनिया में कोई न्याय करने के लिए तैयार नहीं ।

रामी—भारतीय स्वतंत्रता का कोई प्रभाव नहीं पड़ा ?

युधिष्ठिर—क्या प्रभाव पड़ेगा, नेहरू-जैसे पारगामी राजनीतिज्ञ ब्रिटिश-साम्राज्य के देशों के सम्मेलन में लन्दन गये, भारतीयों के साथ दक्षिण-अफ्रीका में होते अपमान की बात कहने तक को उनकी हिम्मत नहीं हुई । मजदूर साम्राज्य-वादी एटली ने कह दिया—खबरदार, दक्षिण-अफ्रीका का मामला मत ले आना । नेहरू ने अच्छे शिष्य की तरह मौन धारण किया । भारतवर्ष को ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बनवा के उन्होंने अपने को सफल समझा । अंग्रेजी अखबारों ने उनकी प्रशंसा की, जिस पर वे पुल-पुल हो गए और समझने लगे, कि मैं २०वीं शताब्दी का बिस्मार्क हूं । भला इस तरह देश के अपमान को दूर किया जा सकता है ? नेहरू को कहना था, दक्षिण-अफ्रीका का कान पकड़ो, उसे न्याय करने के लिए मजबूर करो, या इस सम्मेलन से काला मुंह करके भगा दो, तभी भारत साथ रहने की बात कर सकेगा । लेकिन वह तो गरजू बन गए थे ।

महीप—मलाया में जो नंगा नृत्य अंग्रेजी साम्राज्यवाद कर रहा है, उसे छिपाने

की कोशिश हमारे पत्र और समाचार-एजेन्सियां कर रही हैं; तब भी कभी-कभी कोई सच्ची खबर आ पहुंचती है। उस दिन गणपति को फांसी चढ़ाए जाने की खबर कानों में पड़ी, तो सारा भारत चौंक उठा। भारत ने ब्रिटिश सरकार के पास गणपति के बचाने के लिए जोर लगाया, लेकिन उस तरुण को बचाया नहीं जा सका। कितनी धृष्टता की बात—मलाया के चीफ सेक्रेटरी अलेकजेण्डर न्युबोल्ट ने १२ मई (१९४९) को सिंगापुर में वक्तव्य देते हुए कहा—"गवर्नमेण्ट को इस पर संतोष है, कि गणपति के संबंध में न्याय किया गया है।" न्याय यही था, कि झूठ या सच हथियार के साथ पकड़े जाने के आरोप में मलाया के मजदूरों के इस महान् नेता को, जो पहले ही से अंग्रेजों की आंखों का कांटा बना हुआ था, फांसी पर लटका दिया गया। न्यूबोल्ट ने सलेंगा के सुलतान को न्याय का जिम्मेदार बनाके छुट्टी ले ली। उसने तपाक से कहा—"प्राणदान करने के लिए (ब्रिटिश) राजमंत्री को कोई वैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं है, न भारत-सरकार को ही वैसा अधिकार है।" जब इस ब्रिटिश तानाशाह से पूछा गया, कि गणपति के मामले के बारे में भारतीय सरकार को क्यों नहीं सूचना देते रहे, तो उसने जवाब दिया—मलाया की संघ-सरकार अपनी अदालतों में होते हुए किसी मामले के बारे में दूसरी सरकार को सूचित करने के लिए बाध्य नहीं है। बाध्य तो ब्रिटिश गवर्नमेण्ट और उसकी पुछल्ली मलाया-सरकार का बाप होता; यदि भारत के राजनीतिज्ञों में आत्म-सम्मान होता और भारत की भुजाओं में बल होता। यह है अंग्रेजों के साम्राज्य के भीतर भारत के रहने की बात स्वीकार कर नेहरू के भारत लौटने के तुरन्त ही हमारे मुख पर चपत! न्युबोल्ट ने गणपति के अपराध के बारे में कहा—"वह गैर-कानूनी तरीके से बारूद और हथियार रखने का अपराधी था, जिसके लिए मृत्यु-दंड का विधान माना गया है।"

खोजीराम—और यह नेहरू की विलायत-दिग्विजय के तुरन्त बाद हुआ।

महीप—डा० पट्टाभि सीतारमैया को भी इस अत्याचार और अपमान को देखकर कहना पड़ा—"ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के भारत के सदस्य होने के हस्ताक्षर के होने और भारत सरकार तथा उसके मलाया में मौजूद विदेश-विभाग के उपमंत्री डा० केसकर के विरोध करने पर भी हमारे आदमी को फांसी पर चढ़ा दिया गया। यह बतलाता है, कि भारत के शब्द और विचारों के सम्बन्ध में अपने अधीन देशों में अंग्रेज शासक कैसा व्यवहार करते हैं।"

खोजीराम—तो अंग्रेजों के लिए मलाया के जंगलों को काटकर रबर के बगीचे लगाने वालों, जमीन का उदर बिदारकर टिन निकालने वाले भारतीयों के साथ यह है बर्ताव अंग्रेजी साम्राज्यवाद का, जिसे नेहरू 'खतम हो गया' कहते हैं। हमारे

आठ लाख भाइयों का भविष्य मलाया में अन्धकारपूर्ण है; यदि अंग्रेजी साम्राज्य वहां जम के बैठा रहा।

महीप—अंग्रेजी साम्राज्यवाद मलाया और बर्मा में भी जमकर बैठा रहे, यही तो हमारे देश के कर्णधार करना चाहते हैं; वह मलाया की स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाले देश-भक्तों को अंग्रेजों की ही भांति डाकू कहके अपने पत्रों में छापने दे रहे हैं।

भगवानदास—खबर देने वाली तो रूटर की एजेन्सी है।

महीप—रूटर कहके आप छुट्टी ले लेना चाहते हैं? अब तो रूटर के आप भागीदार बन गए हैं। रूटर पराई चीज नहीं है; इसीलिए रूटर में आपको भागीदार बनाया गया; जिसमें ब्रिटिश साम्राज्य की राजनीतिक एकता में सहायता करने वाली इस साम्राज्यवादी समाचार-एजेन्सी को आपका भी समर्थन मिले। रूटर जो खबर देगा, उसी को ठीक समझकर मानना होगा।

रामी—बर्मा में भारतीयों की अवस्था के बारे में क्या कहा जा सकता है; जब कि अभी बर्मा का भाग्य स्वतंत्रता और ब्रिटिश मायाजाल के बीच में लटक रहा है।

महीप—कोशिश की जा रही है कि ब्रिटिश मायाजाल बर्मा में सफल रहे। अंग्रेजों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर हमारी सरकार भी थाकिन नू की सरकार को कायम रखने की कोशिश कर रही है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की छाया किसी रूप में भी बर्मा में रह जाने पर आशा नहीं रखनी चाहिए, कि वहां अधिकांश भारतीयों के साथ न्याय होगा। दक्षिणी अफ्रीका की भांति अपमानजनक कानून न भी बनाया जाय, किंतु बहुत-से भारतीयों को बर्मा छोड़ने को मजबूर किया जायगा।

भगवानदास—दूसरे देशों में बस गए भारतीयों को कैसे रहना चाहिए?

युधिष्ठिर—भारतीय जहां स्थायी तौर से बस गए हैं, उन्हें उस देश को अपना देश समझना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं कर सकते, तो कैसे आशा रख सकते हैं, कि उस देशवाले बिना भेद-भाव के उन्हें अपना सहनागरिक मान लेंगे। सिंहल (लंका) में ७ लाख के करीब भारतीय बस गए हैं और उससे कम चाय, रबर के बगीचों में काम करनेवाले भारतीय मजदूर नहीं हैं। पीढ़ियों से बस गए भारतीय भी सिंहल लोगों के साथ उतना बंधुता का संबंध नहीं रखते, जितना कि उस देश का निवासी होने के कारण रखना चाहिए। यहीं से भेद-भाव शुरू होता है। स्मरण रखिए लंका के लोग भारत-संतान हैं; लंका-निवासी भारतीय संस्कृति की औरस संतान हैं। यदि हमारे भारतीय भाई मुसलमानों का अनुकरण करना चाहेंगे, तो लंका और बर्मा के प्रतिगामियों के हाथ खेलेंगे। इन दोनों देशों के निवासियों

को इस बात का खतरा मालूम होता है कि, "भारतीय अधिक संख्या में आकर हमारे देश में छा जायंगे; एक ओर हमें उनके विदेशीयता से मुकाबला करना पड़ेगा, दूसरी ओर अपने निम्न जीवन-तल के कारण भारतीय हमारे देश के मजदूरों के बुरे प्रतिद्वन्द्वी होंगे, और सस्ती मजदूरी के कारण उनका भी जीवन-तल गिर जायगा।" भारत को खयाल रखना होगा कि जब हमारी संख्या हर साल ५० लाख बढ़ रही है, तो दो-चार लाख के बर्मा या लंका में भेज देने से हमारी समस्या हल नहीं होती; दूसरी ओर हम ऐसा करके बर्मा और लंका-निवासियों की उचित शिकायत पर ध्यान न देकर उन्हें अपना विरोधी बना लेंगे। यदि भारत का जीवन-तल लंका के जीवनतल से अधिक ऊँचा होता, तो शायद यह सवाल भी नहीं उठता। यह भी स्मरण रखने की बात है, कि लंका बहुत दिनों तक ब्रिटिश साम्राज्य का नौसैनिक अड्डा नहीं रह सकता। ट्रंकोमाली (त्रिकोणमलय) का नौसैनिक अड्डा आखिर भविष्य में किसके विरुद्ध इस्तेमाल करने के लिए है? चीन वहां से बहुत दूर है, भारत ही उसके नजदीक है। नई परिस्थितियों में उसे भारतीय समुद्र पर अपना प्रभुत्व रखने के लिए अंग्रेजों का नौसेनिक अड्डा मानना पड़ेगा। जिस तरह अंग्रेजों ने थाकिन नू को बर्मा में पाया है; उससे भी बढ़कर अंग्रेजों का पिट्ठू लंका का प्रधान-मंत्री सेनानायक है। जब तक वह नायक रहेगा, तब तक भारत के साथ वैमनस्य के कारणों के दूर होने की संभावना नहीं है। भीतर-बाहर जैसे भी हो मुस्लिम लीगियों की तरह वह भी भारतीयों के विरोध में अपने को अग्रणी रखके अपना नेतृत्व कायम रखना चाहेगा। यह दूसरी बात है, कि मौका पड़ने पर वह मीठी-मीठी बातें भी करेगा—"वचने का दरिद्रता"। जिन हाथों ने लंका के जंगलों को काटकर वहां काफी, चाय और रबर के बगीचे लगाके देश के धन को बढ़ाया, उनके बारे में सेनानायक कहता है—"मैं नहीं समझता, कि मैं यह कहकर ऐतिहासिक तथ्य का अपलाप करता हूं, कि भारतीय मजदूर सदा के लिए बस जाने के खातिर लंका नहीं आये, बल्कि उनका मुख्य प्रयोजन यही था, कि काफी, चाय और रबर के बगीचों में जो उदारतापूर्वक मजदूरी दी जा रही है, उससे फायदा उठाएं। स्वतन्त्र भारत के ऊपर यह कोई आक्षेप की बात नहीं है, यदि कहा जाय, कि उसके कितने ही पुत्र विदेशी पूंजीपतियों के शासन के अधीन किये गए प्रबन्ध के अनुसार काम और अच्छा पारिश्रमिक ढूंढ़ने के लिए लंका आए। उस समय प्रवासी जिन असंतोष-जनक शर्तों के साथ यहां आये, उनके लिए स्वतन्त्र लंका को भी दोषी नहीं ठहराया जा सकता।" सेनानायक को केवल इतना ही खयाल है, कि भारतीय मजूर अंग्रेज प्लांटरों के प्रलोभन पर ही लंका पहुंचे थे। इन मजूरों ने अपने हाथों से जो लंका

में निर्माण का काम किया, अपना खून-पसीना एक करके दुर्गम पहाड़ियों को आबाद किया, उसके बाद उस भूमि में उनका कोई हक नहीं रह गया। सेनानायक के दिमाग में भी वही मनोवृत्ति काम कर रही है, जो दक्षिणी अफ्रीका के गोरी ताना-शाही में—आये और यहां सारी जवानी लगाके काम किया, तो अच्छा किया। अब भला इसी में है, कि तुम अपने घर चले जाओ।

रामी—वहां चले गए हमारे भाइयों को नागरिकता का अधिकार देने में क्या उजुर है ?

युधिष्ठिर—वही तो उजुर की सबसे बड़ी बात है। वह चाहते हैं, कि कम-से-कम भारतीय लंका के नागरिक हो सकें। हमें अधिक-से-अधिक भारतीयों के वहां के नागरिक बनने का आग्रह नहीं करना चाहिए, जिन्होंने वहां काम नहीं किया और जो न बसे; उनके नागरिक बनने का आग्रह नहीं होना चाहिए, किन्तु जिन्होंने काम किया और बस गए, उनके नागरिक होने में क्यों हीला-हवाला किया जाता है ? वस्तुतः हमारा झगड़ा भारतीयों के हक का झगड़ा है, सिंहल-कमकरों और नागरिकों से नहीं है। अभी तक वहां बस गए भारतीयों को एक बार अधिकार मिल जाने पर फिर झगड़े की गुंजाइश नहीं रह जाती, क्योंकि भारत अपने और आदमियों को वहां नहीं भेजना चाहता। लेकिन स्मरण रहे, लंका में भारतीय उपनिवेशों का विरोध करना प्रतिगामियों के लिए राष्ट्रीयता का परिचायक है, वहां के वाम-पंथी करीब-करीब सेनानायक के दल को हटाने में सफल हो गए थे, लेकिन आपस की फूट ने काम बनने नहीं दिया।

महीप—तो हमें लंका और बर्मा में गये अपने भाइयों के अधिकार के बारे में बात करते यह ध्यान रखना होगा, कि यह दोनों देश हमारे पड़ोसी हैं। दोनों का भविष्य हमारे साथ घनिष्टता से सम्बद्ध है। इसीलिए तात्कालिक लाभ के लिए कोई गलती नहीं करनी चाहिए। विशेषकर निम्न जीवन-तल के भारतीय कमकरों का उन देशों पर धावा बोलना, जो अधिक उच्च जीवन-तलवाले वहां के कमकरों के सामने खतरा है।

रामी—और दूसरे द्वीपों में जो हमारे भाई गये हैं, उनकी अवस्था को कैसे सुधारा जा सकता है ?

युधिष्ठिर—उनकी अवस्था के बिगड़ने का कारण भारत की परतंत्रता थी। स्वतन्त्र भारत इस बात की गारंटी है, कि सर्वत्र हमारे भाइयों के साथ मानवोचित सम्मानपूर्ण व्यवहार हो। १५ मई (१९४९) को लंदन में ब्रिटिश गायना, ट्रीनी-डाड और मारिशस के भारतीयों के नेता एकत्रित हुए थे। उन्होंने बतलाया, कि भारत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने की भावना रखते हुए भी भारतीयों

को अपने चिर निवासवाले देशों की नागरिकता को स्वीकार करना पड़ेगा। सभी मानते थे, कि भारत की स्वतंत्रता से हमारा भविष्य उज्ज्वल है। वस्तुतः जैसा कि पोर्टलुई (मारिशस) के 'एडवान्स' पत्र के सम्पादक अनाथबी जादू ने कहा था—"हमारे लिए दो-दो राज्यों की नागरिकता स्वीकार करना अच्छा नहीं है।" मारिशस द्वीप अब भारतीयों के बहुमत का द्वीप है, वहां ४,४०,००० की जनसंख्या में २,७०,००० भारतीय हैं।

महीप—दक्षिण अमेरिका में गायना तो भारतीयों का एक अच्छा उपनिवेश है—ब्रिटिश गायना की ३,८०,००० की जनसंख्या में १,७६,००० भारतीय हैं (बहुमत से थोड़ा ही कम)। पास में डच गायना है। वहां भी भारतीयों की संख्या आधे लाख के करीब पहुँच गई है। ब्रिटिश गायना चीनी, चावल और मूल्यवान् धातुओं से सम्पन्न है। वहां की जलवायु भी भारत से मिलती-जुलती है। राजनीतिक अवस्था में सुधार तो होगा, किन्तु नवीन भारत का यह भी आवश्यक कर्तव्य है, कि वहां हमारे सांस्कृतिक दूत भेजे जायं, और मातृभूमि के साथ लोगों का सम्बन्ध घनिष्ठ किया जाये।

युधिष्ठिर—आस्ट्रेलिया के पास फीजी द्वीप भी भारतीय उपनिवेश है। यह मारिशस और गायना की तरह भारतीयों की पिछली एक शताब्दी की तपस्या का फल है। वहां के हमारे बंधु कई बातें नवीन भारत से सीखना चाहेंगे। उपनिवेशों में कहीं-कहीं भारतीय राज-प्रतिनिधि भेजे गये हैं, लेकिन आवश्यकता इस बात की है, कि हम उनके बारे में अधिक जानें।

रामी—विदेशी राज्यों में फ्रांस के अधीन मदगास्कर द्वीप है। अभी सुना था, कि वहां के पन्द्रह हजार भारतीयों के ऊपर फ्रेंच सरकार ने कोप किया है।

युधिष्ठिर—उस दिन (७ मई १९४९) मदगास्कर के भारतीय व्यापारी श्री फिदाली कादिर भाई ने कहा—फ्रेंच सरकार की ओर से भारतीयों को उस द्वीप से भगाने की कोशिश की जा रही है। बीस भारतीय व्यापारी द्वीप छोड़ने के लिए मजबूर किए गए, उन्हें यह भी नहीं बतलाया गया, कि क्यों बाहर किया जा रहा है। यह हमारे भाई अपने परिवार के साथ सबसे पहले द्वीप छोड़ने वाले स्टीमर से भेज दिये गए। उन्हें ५०-५० साल के वासी होने पर भी अपनी सम्पत्ति में से १२-१३ सौ रूपये से अधिक साथ ले जाने की आज्ञा नहीं दी गई। कादिर भाई ने बतलाया, कि राजधानी तनानरिव तथा तमानवे, सम्बबे आदि नगरों में बसे हुए भारतीयों की स्वत्व-रक्षा के लिए एक भारतीय कौंसल की आवश्यकता है। भारतीयों को वहां १९४७ में आर्डिनेन्स निकाल कर सम्पत्ति रखने की मनाही कर दी गई। भारतीय लड़कों को प्राइमरी से अधिक पढ़ने का सुभीता नहीं; क्योंकि

फ्रेंच स्कूलों में उन्हें भरती नहीं किया जाता। कादिर भाई का कहना था, कि भारत के भीतर के फ्रांस-अधिकृत इलाकों से फ्रेंच सरकार को बोरिया-बधना बांध-कर लौटने के लिए जो मजबूर किया जा रहा है; उसी का बदला लेने के लिए फ्रेंच शासक मदगास्कर में ऐसा कर रहे हैं। फ्रांस के हाई कमिश्नर ने मदगासी लोगों की सभा में कहा था—"भारतीय तुम्हारे शत्रु हैं, उन्हें कह देना होगा, कि तुम द्वीप से चले जाओ।"

महीप—मदगास्कर दुनिया का पांचवां सबसे बड़ा द्वीप है, जिसका क्षेत्रफल २, २८, ००० वर्गमील है। हमें मालूम है कि मदगासी लोगों ने अपनी जन्म-भूमि को विदेशियों के चंगुल से निकालने के लिए चीन की भांति कुर्बानियां कीं। फ्रांस ने सारी शक्ति लगाके उन्हें दबा दिया। यदि हम मदगासी लोगों के साथ सहानु-भूति दिखायंगे, जो कि हमारे लिए उचित है, तभी हमारे देश भाइयों का वहां मान बढ़ेगा।

२४

नव-एसिया

भगवानदास—हमारी गोष्ठी अब समाप्त होती मालूम हो रही है। अब वर्षा भी होने लगी है, कल आषाढ़ पूर्णिमा भी होने वाली है। कल के बाद स्वामीजी चातुर्मास्य के कारण अस्सी के इस पार नहीं आयंगे। वह बहुत चाहते हैं, कि आज एसिया की राजनीति के बारे में बातचीत हो।

युधिष्ठिर—बहुत बेस, विश्व-राजनीति की बातचीत में कुछ संकेत तो इसके बारे में हो ही गया था, किंतु इस विषय में हमें और स्पष्ट विचार करने की आवश्यकता है। देख रहे हैं न, हमारी आंखों के सामने विश्व का नकशा बदल रहा है। यूरोप ने एक शताब्दी से अधिक राहु बनकर एसिया को ग्रस रखा था; किन्तु दो विश्व-युद्धों ने यूरोप के राहु के मुख में से एसिया को निकाल कर बाहर करने में धाई का काम किया। द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद भारत का अंग्रेजों के पंजे से निकलना एक बड़ी घटना है। महीपजी शायद कहना चाहेंगे, कि अभी भारत अंग्रेजों के पंजे से अलग नहीं हुआ। मैं कहूंगा अलग होने पर भी अपनी इच्छा से उसे पंजे के भीतर रखने की कोशिश की जा रही. है, जिसके लिए तरह-तरह के बहाने ढूंढ़े जाते हैं। किंतु, एक बात स्पष्ट होती जा रही है, कि यदि ऐसा हुआ तो भारत एसिया-वासियों के प्रति अपने कर्तव्य को पूरा नहीं कर सकेगा, उनका विश्वास खो देगा।

खोजीराम—आश्चर्य तो यह है, कि जिन बातों को पहले स्पष्ट शब्दों में शपथ-पूर्वक दोहराते रहे, अब निःसंकोच हो उनसे उलटा जाने को ही हम अपनी गति-शीलता का प्रमाण मानते हैं।

रामी—अब भी समझते हैं, कि एसिया की स्वतंत्रता के अग्रदूत और उसकी प्रगति के नेता हम हैं।

महीप—अब तो अंग्रेजों और अमेरिकनों की समाचार-एजेंसियां जो भी कहती हैं, उसी पर इनको विश्वास होता है। वेद को प्रमाण मानने पर शायद क्या निश्चय ही हमारे कर्णधार मजाक उड़ावें, किंतु ऐंग्लो-अमेरिकन पत्र इनके लिए स्वतः प्रमाण हैं। भारतवर्ष अब एसिया में एंग्लो-अमेरिकन-साम्राज्यवाद का समर्थक बन गया है, इसलिए उनके समाचार-पत्र क्यों नहीं सारी उपाधियों की वर्षा हमारे नेताओं पर करेंगे।

खोजीराम—पहले अंग्रेज हर नव वर्ष और राजा के जन्म-दिनों पर उपाधि-वर्षा किया करते थे। जिन्हें दो अक्षर मिल जाते, गद्गद् हो जाता। आज उपाधि-वितरण समाचारपत्र करते हैं।

भगवानदास—तो एसिया में किसका नेतृत्व भारतवर्ष कर रहा है ?

महीप—एंग्लो-अमेरिकन साम्राज्यवाद के हित-साधन के सिवा और किसी बात में भी भारतवर्ष नेतृत्व करता नहीं दीख पड़ता। द्वितीय विश्व-युद्ध की अग्नि से भड़की बहुत-सी स्वतंत्रता की चिनगारियां एसिया के परतंत्र देशों में फैली हुई हैं। उनको बुझाने में वहां के प्रतिगामियों का नेतृत्व अवश्य भारत कर रहा है। बर्मा में इसे देख रहे हैं। मलाया में भी वही बात है। स्याम के फासिस्त विपुल-संग्राम अब हमारी मित्रता के पात्र हैं। सात आँवें का पका टोरी लंका का प्रधान-मंत्री सेनानायक भूरि-भूरि प्रशंसा का पात्र है। ईरान में प्रतिगामी शक्तियों का फिर से प्रचंड प्रभुत्व जम जाना उनके लिए आराम की सांस है। चीन में कम्यु-निस्टों की विजय से अंग्रेजों और अमेरिकनों के अफसोस में हम भी शामिल हुये। कौन अमेरिका ? जिसका कि अब तक का भारत के प्रति व्यवहार बतला रहा है, कि वह केवल हमें काठ का उल्लू बनाना चाहता है—(१) दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के सद्व्यवहार का प्रश्न आने पर युक्तराष्ट्र संघ में अमेरिका ने हमारे विरुद्ध वोट दिया; (२) काश्मीर पर पाकिस्तान के आक्रमण की बात आने पर युक्तराज्य अमेरिका ने लातिन अमेरिका पर भी जोर देकर हमारे खिलाफ वोट दिलवाया; (३) गोवा और पांडीचेरी पर पोर्तुगीज तथा फ्रांस का प्रभुत्व आज भी यदि है, तो उसके पीछे अमेरिका की शक्ति है; (४) हमारे देश के उद्योगीकरण में सहायता देने में वह उतनी भी पूंजी लगाने या सहायता देने को तैयार नहीं, जितना कि दिवालिया इंगलैण्ड ने किया है। इन बातों को लिखते हुए "संजय" ने नेशनल हेरल्ड (२६-६-५०) में लिखा है—"अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों में युक्तराज्य सरकार ने प्रत्येक बार भारतीय हित के विरुद्ध काम किया है। दक्षिण अफ्रीका के रंगभेद के विरुद्ध उसने नैतिक समर्थन भी देने से इनकार किया; कश्मीर में भारतीय हित के विरुद्ध इसने चाल चली। अब भी यह भारत की भूमि पर पोर्तुगीज और फ्रेंच साम्राज्यवाद को कायम रखने की कोशिश कर रहा है; आर्थिक बातों में अमेरिकन सरकार ने भारत को कोई भी सहायता देने से इनकार किया है।... द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रत्येक प्रश्न पर युक्तराज्य प्रतिगामिता के पक्ष में रहा है। सारे अफ्रीका में यह यूरोपीय साम्राज्यवाद का पृष्ठपोषक है। किंतु खैर, अकल कुछ दुरुस्त हुई, जब कि कम्युनिस्ट चीन को मान्यता देने पर जोर दिया जा रहा है। इंगलैण्ड के मजूर साम्राज्यवादी अभी

भी कम्युनिस्ट पार्टी को वैध रखे हुए हैं, किंतु भारतवर्ष में कुछ प्रांतों में वह प्रकट अवैध घोषित है और कुछ में अप्रकट।

भगवानदास—लेकिन जब वह हिंसा और विध्वंसन पर उतर आये, तो गवर्नमेन्ट के लिए चारा क्या है?

महीप—वह हिंसा और विध्वंसन पर नहीं उतर आये, बल्कि उन्हें इसके लिए मजबूर किया गया, उनके लिए दूसरा रास्ता नहीं रखा गया। आखिर इंगलैंड में भी कम्युनिस्ट पार्टी है, उसके भी वही ध्येय और साधन हैं। वहां उनको लिखने-बोलनें, काम करने का मौका है, इसलिए वहां तो कहीं ध्वंस या हिंसा नहीं दिखलाई पड़ती।

भगवानदास—क्या भावी एसिया में चीन का कोई स्थान रहेगा?

रामी—जनसंख्या और क्षेत्रफल दोनों में चीन एसिया का सबसे बड़ा देश है। वह भावी एसिया में महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं रखेगा तो कौन रखेगा?

महीप—लेकिन अमेरिकन साम्राज्यवाद अभी वास्तविकता के सामने सिर झुकाने को तैयार नहीं है। भारत ही नहीं इंगलैण्ड भी जोर दे रहा है, कि नवीन चीन को युक्तराष्ट्रसंघ का सदस्य मान लिया जाये, किंतु वह टस से मस होने को तैयार नहीं। यही नहीं, उसने फिर चाङ्.कैशक की पीठ ठोकनी शुरू की है, जिसके कि विरुद्ध ट्रूमेन सरकार एक बड़ा पोथा छापकर कह चुकी है, कि उसकी सरकार में भ्रष्टाचार चल रहे थे।

खोजीराम—पीठ ठोकना ही क्यों, अब तो चीन के द्वीप फारमूसा—जहां चाङ्.-कैशक ने शरण ग्रहण की है—की रक्षा का काम अमेरिका ने अपने हाथ में ले लिया है। मुझे तो मालूम होता है, अमेरिकन पूंजीपति तृतीय युद्ध के लिये अधीर से हो गये हैं।

महीप—कोरिया पर अमेरिकन आक्रमण यह अवश्य सिद्ध करता है, किंतु अमेरिका को यह नहीं भूलना चाहिये, कि तृतीय युद्ध में रूस ही नहीं चीन के साथ भी भुगतना पड़ेगा। कोरिया के झगड़े को वह शांति से निबटाना नहीं चाहता। रूस और चीन युद्ध के भयंकर नरसंहार को नहीं चाहते, दोनों देशों में निर्माण और नवनिर्माण इतनी तेजी से हो रहा है, जिससे अमेरिका की नींद हराम हो रही है।

रामी—चतुर्थ पंचवार्षिक योजना तो रूस ने समाप्त कर ली?

महीप—पूरी सफलता के साथ, किंतु वहां के लोगों ने वक्षु-कस्पियन नहर तथा पनबिजली, एवं वोल्गा दक्षिणी तट (स्तालिनग्राद) और वोल्गा-वाम तट (कुबिश्येफ) की विशाल नहर-पनबिजली योजनाओं का काम हाथ में लिया है, जिनके

द्वारा करोड़ों एकड़ कृषि-भूमि रेगिस्तान के पेट से निकाल ली जायगी। कुवि-श्येफका पनबिजली स्टेशन दुनिया का सबसे बड़ा स्टेशन होगा। वक्षु की नहर स्वेज से आठगुनी बड़ी होगी। आज जिस तरह रूस के लोग इस महान निर्माण में लगे हैं उसी का अनुकरण चीन की जनता भी कर रही है। साल ही भर हुए नवीन चीन की स्थापना हुये, किन्तु इस साल पिछले साल से ७० लाख टन अधिक अनाज वहां पैदा किया गया। अन्न की हाय-हाय की जगह उसने ५० हजार टन चावल हमें दिया है। पुराने कल कारखानों का पुनर्निर्माण कर डाला। वहां पंचवार्षिक योजनाओं की वैसी ही बाढ़ आने जा रही है, जिसने रूस को एक महाशक्ति में परिणत कर दिया। पेकिङ्., नानकिङ्. वही नहीं रहने जा रहे हैं। सारा देश नव कलेवर धारण करता जा रहा है।

भगवानदास—लोग समझते हैं, कि पेकिङ्. और नानकिंङ हमसे बहुत दूर हैं।

युधिष्ठिर—पेकिंङ और नानकिंङ दूर होंगे, किंतु शिपकी, मानसरोवर और टोमो दूर नहीं हैं, दोनों का सीमान्त हिमशिखरों पर मिलता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि तिब्बत चीन के भीतर है।

मुखपात्री—तो हमारा मानसरोवर तीर्थ और सदाशिव का कैलास चीनी कम्युनिस्टों के हाथ में है?

महीप—उनके लिए चिंता न करें स्वामीजी, कम्युनिस्टों के आ जाने पर तो हम काशी से दो घंटे में उड़कर मानसरोवर पहुँच जायंगे। सबेरे आठ बजे जलपान करके चलने पर कैलाश-मानसरोवर का दर्शन ही नहीं परिक्रमा भी करके दो बजे काशी लौट आयंगे।

मुखपात्री—बड़ा आनन्द रहेगा नारायण, मेरी बड़ी इच्छा है कैलाश-दर्शन की; किंतु सुनता हूं वहां जाना मुश्किल है, रास्ते में बहुत बर्फ पड़ती है।

महीप—उसकी चिंता न करें; कैलाश-मानसरोवर की परिक्रमा भी विमान पर बैठे-बैठे हो जायगी। सर्दी थोड़ी मालूम होगी, उसके लिए जरा कम्बल लपेटने की आवश्यकता पड़ेगी। आठ बजे काशी से चले, दस बजे मानसरोवर के किनारे पहुंचे, फिर उस अच्छोद-सरोवर के हिमशीतल जल में, हिम्मत हुई तो, एक डुबकी लगाई, और विमान पर बैठे कैलाश-मानसरोवर की परिक्रमा करके लौटकर काशी।

मुखपात्री—इसी वक्त क्यों नहीं विमान-यात्रा का प्रबंध हो जाता? हमारे भाई करपात्रीजी तो आजकल केवल विमान ही की यात्रा करते हैं, मैं तो केवल कैलाश-मानसरोवर की लालसा रखता हूँ।

महीप—वह तिब्बत की सीमा के भीतर है, तिब्बती सरकार विमान के आने की आज्ञा नहीं देती।

भगवानदास–बेवकूफ हैं, यदि उनके देश और भारत के बीच में विमान उड़ने लगें, तो कम्युनिस्टों के आने पर भागनेवालों को बहुत सुभीता रहेगा।

महीप–कोई-कोई चाहते भी हैं, किंतु दूसरों के डर के कारण मुंह खोलकर कहते नहीं। तिब्बत भी चीन के भीतर है। चीन सारा कम्युनिस्टों के हाथ में है। अब हमारा आसाम से लेकर लद्दाख तक चीन के साथ एक सीमान्त है, इसे देखते हुए हमें नवीन चीन का स्वागत करना ही चाहिये था।

भगवानदास–और हमने किया तथा दूसरों पर भी वैसा करने के लिये जोर दे रहे हैं।

मुखपात्री–अवश्य। मुझे तो कैलाश-मानसरोवर का खयाल आता है।

महीप–उसके लिए निश्चिन्त रहें स्वामीजी, चीनी कम्युनिस्ट सभी ऐसे दुर्गम स्थानों में वैमानिक यातायात स्थापित करेंगे। ल्हासा से मानसरोवर तक उनके विमान उड़ते रहेंगे। वह खुशी से भारतीय तीर्थयात्री-विमानों को मान-सरोवर जाने की इजाजत दे देंगे, और अपने विमान भी गया और बनारस ले आया करेंगे।

मुखपात्री–फिर तो कैलाश-मानसरोवर की यात्रा भारतीयों के लिए बहुत सुगम हो जायगी और हर साल पचासों हजार आदमी वहां जाया करेंगे।

महीप–उनके लिए यह कोई घाटे का सौदा नहीं रहेगा; जो यात्री जायंगे, वह वहां खर्च करेंगे ही। विदेशी सिक्का जमा करने के लिए यात्रियों का आना बहुत लाभदायक होता है।

युधिष्ठिर–हमने नवीन चीन का स्वागत[1] करके बहुत अच्छा किया। वह हमारा शक्तिशाली[2] पड़ोसी है। उसका हमारा पुराना सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सम्बन्ध है। हम दोनों मिलकर यूरोपीयनों के दुःशासन को एसिया से सदा के लिए खतम कर सकते हैं।

खोजीराम–बर्मा, स्याम, इन्दोचीन में हमारी नीति क्या होनी चाहिए?

युधिष्ठिर–उदीयमान सूर्य को लोग अर्घ्य देते हैं, अस्त होनेवाले को नहीं। एसिया के सभी देशों में नई शक्ति उदीयमान हो रही है। सारे एसिया की मुक्ति अवश्यम्भावी है। एसिया अपने ऊपर यूरोपीय प्रभुता को बर्दाश्त नहीं कर सकता। हमें तै करना होगा, कि हम इस उदीयमान शक्ति का साथ दें या अस्त होनेवाली शक्ति का।

महीप–मुझे जान पड़ता है, अस्त होनेवाली शक्ति का साथ देना हमारी सरकार पसन्द करती है। वह कम्युनिज्म के विरोध में इतनी पागल और अन्धी हो गई है, कि उचित-अनुचित, संभव-असंभव का विचार नहीं कर सकती। कोरिया

में दोनों शक्तियों का संघर्ष था। उत्तरी कोरिया में नवीन कोरिया का जन्म हुआ, और दक्षिणी कोरिया में जापानी साम्राज्यवादियों का स्थान अमेरिका ने लिया है। हमारे प्रतिनिधि वहां अमेरिका का साथ देते रहे।

भगवानदास—वह तो युक्तराष्ट्र-संगठन की ओर से नियुक्त होकर गये थे।

महीप—किसी युक्तराष्ट्र-संगठन के नियुक्त रहे हों, किन्तु रहे वह अमेरिकन गुट के साथ। नवीन कोरिया के निर्माण को उसके उत्तरी इलाके तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता था, वह अवश्य दक्षिण में जाकर रहता। कोरिया दो टुकड़ों में सदा बँटा नहीं रह सकता। सड़ी-गली सामन्ती-पूंजीशाही व्यवस्था को अमेरिकन तोपें बहुत दिनों तक कोरिया में नहीं कायम रख सकतीं। हमारे व्यवहार का प्रभाव कोरिया के ऊपर कैसा पड़ेगा?

भगवानदास—हम तो कोरिया को स्वतंत्र देखना चाहते हैं?

महीप—और हमने कोरिया पर आरंभ हो गये अमेरिकन आक्रमण का समर्थन किया! उस वक्त समझे, अमेरिकन पूंजी-राक्षस धर्मयुद्ध करने जा रहा है। उत्तर ने आक्रमण किया था, अमेरिका आक्रमणकारियों को ३८ वें अक्षांश के पार ढकेल कर हाथ समेट लेगा।

भगवानदास—हमारी सरकार ने तो उत्तरी आक्रमण का ही विरोध किया!

महीप—दुधमुही बच्ची थी न? आज देख रहे हैं न, न ट्रूमेन तुम्हारी ३८वें अक्षांश के पार करने के विरोध की परवाह करता है, न फारमूसा पर हाथ साफ करने के विरोध को सुनता है।

भगवानदास—क्या जंगल का कानून ही चलता रहेगा? क्या खून की नदियां अन्तिम फैसला करेंगी? मुझे भी अमेरिका की नीयत पर संदेह होने लगा है।

महीप—जानते होंगे, बनिया इतना खून का प्यासा नहीं होगा। देखा न, अमेरिकन विमानों ने उत्तरी कोरिया के ग्रामों और नगरों पर बमवर्षा करते समय वही किया, जो कि बर्बर युग में ही संभव था—स्त्री-बच्चे-बूढ़े-बीमार—की कोई परवाह नहीं की। एक ओर से बम गिराकर ध्वंसलीला शुरू की।

रामी—और जापान?

युधिष्ठिर—आज की दुनिया में कोई सभ्य-शिक्षित देश अधिक दिनों तक गुलाम नहीं रखा जा सकता, न उसे विद्या और संस्कृति के निम्नतल पर उतारा जा सकता है। अमेरिका को जापानी स्कूल जारी रखने पड़े। कुछ समय तक अमेरिका जापान के बड़े-बड़े कारखानों—विशेषकर अस्त्र-शस्त्र के कारखानों—को उखाड़ ले जाना चाहता था, पर अब उसका रुख बदल गया है। अमेरिकन साम्राज्यवाद समझ रहा है, कि रूस के मुकाबिले के लिए जापान और जर्मनी को सैनिक तौर से

मजबूत करना चाहिए। अमेरिका की इस चाल से आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड बड़े चिन्तित हो उठे हैं। एक बार जापान फिर उठा, तो वह चीन की ओर नहीं आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड की ओर जायगा, और एक महाद्वीप के बराबर के आस्ट्रेलिया को एक करोड़ से भी कम श्वेताङ्ग छेंके नहीं रह सकते। जापान के आक्रमण के समय डर लग रहा था, कि आस्ट्रेलिया की भी वही हालत न हो, जो इन्डोनेसिया, इन्डोचीन और बर्मा की हुई। आज अमेरिका के जापानी-सैनिक-शक्ति के प्रोत्साहन देने से न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया उसी तरह चिन्तित हैं, जैसे जर्मन सैनिक-शक्ति को प्रोत्साहन देने से फ्रांस। जापान में भी नवीन और प्राचीन स्वार्थों का संघर्ष है। सभी जगह प्राचीन स्वार्थों की रक्षा के लिए अमेरिका तत्पर दिखाई पड़ता है, लेकिन जापानी जनता अमेरिका के परमाणु-बम का मजा भी चख चुकी है और जापानी सामन्तों और उनके सूर्यवंशी मिकादो की तानाशाही का भी। प्रगतिशील शक्तियां वहां सिर उठा रही हैं। "सोवियत रूस ने एक लाख से भी अधिक कैदियों को अपने यहां बन्द करके दास बना रखा है", कहते उन्हें वापस भेजने की मांग जापानी सरकार और उनके अमेरिकन संरक्षकों ने बड़े जोर-शोर के साथ की; लेकिन जब कुछ हजार जापानी सैनिक जापान में पहुँच कम्युनिस्ट नारे और गीत गाते नगर की सड़कों से गुजरे, तो जापानी सरकार और मेकआर्थर के सिर में दर्द होने लगा। जान पड़ता है, रूसियों ने अपने यहां इन जापानी सैनिकों को रख के उनकी मति फेर दी।

खोजीराम—जान पड़ता है, यह महामारी किसी देश को नहीं छोड़ेगी। आस्ट्रेलिया के कोयला की खानवाले मजूर एक हड़ताल कर देते हैं, कि "कम्युनिस्ट" "कम्युनिस्ट" कहकर त्राहि-त्राहि मच जाती है। यदि इंगलैण्ड में रेलवे मजर या बन्दर के खलासी काम छोड़ देते हैं, तो वहां भी कम्युनिस्टों का नाम लिया जाता है। हमारे यहां भी हर हड़ताल का दोष कम्युनिस्टों के ऊपर थोपा जाता है।

युधिष्ठिर—कम्युनिस्टों को इतना सर्वशक्तिमान दिखलाना अपने पक्ष को निर्बल करना है। दरअसल सभी जगह कम्युनिस्ट नहीं पहुँचते, न वह प्रेरक ही होते हैं, लेकिन उचित तकलीफों को दूर करने की मांग जब की जाती है, तो कम्युनिस्टों की आड़ में पूंजीपति अपना काम बनाना चाहते हैं। यह "भेड़िया आया भेड़िया आया" की गुहार बहुत बुरी है। सवाल यह है, चाहे कम्युनिस्ट के मत्थे या किसी दूसरे प्रगतिवादी दल के मत्थे थोपिये, यदि आप उन तकलीफों को दूर करना नहीं बल्कि केवल बल से दबाना चाहेंगे, तो इससे कोई फायदा नहीं होगा।

भगवानदास—सभी जगह तो परस्पर विरोधी शक्तियां देखने में आ रही हैं,

एसिया का कोई देश नहीं, जहां यह द्वन्द्व न चल रहा हो। हमारे लिए यही निश्चय करना मुश्किल है, कि किसके साथ सहानुभूति दिखलाई जाय।

युधिष्ठिर–भगवान भाई, आप सिर्फ अपनी बात कह रहे हैं। जिनको नीति निर्धारित करनी है, वह तो निश्चय करके उस पर अमल भी करने लगे हैं। सवाल इतना ही है, कि भारतवर्ष का हित किसमें है–एसिया की प्रतिगामी शक्तियों और उनके पोषक एंग्लो-अमेरिकन साम्राज्यवादियों का साथ देने में, या एसिया की नई शक्तियों के साथ होने में? कौन-सी नई शक्तियां हैं और कौन प्रतिगामी, इसे समझना मुश्किल नहीं है। जो एंग्लो-अमेरिकन-साम्राज्यवाद के बल पर खड़ी हैं, वह सभी प्रतिगामी शक्तियां हैं। एंग्लो-अमेरिकन-साम्राज्यवाद की ओर से इतना बल पाने पर भी उनके पक्ष में विजय के होने का कोई ठिकाना मालूम नहीं होता। पूर्वी एसिया में यह समझना मुश्किल नहीं है, कि हमारा क्या रुख होना चाहिए। पश्चिमी एसिया में एंग्लो-अमेरिकन-साम्राज्यवादियों की भांति हम भी सामन्ती अरब प्रतिगामियों का मुंह जोहते हैं, और जहां हमारे गुरु इशारा कर देते हैं, उधर ही जयमाला ले दौड़ते हैं। वहां इस्राईल की एक नई शक्ति स्थापित हुई है। यहूदी जाति अपने अध्यवसाय और अद्भुत प्रतिभा का चमत्कार विश्व को दिखला चुकी है। उसका पश्चिमी एसिया में एक स्वतंत्र राष्ट्र के तौर पर मूलबद्ध होना एक बड़ी घटना है। निश्चय ही इसका प्रभाव अपनी सीमा से बाहर तक पड़ेगा। इस्राईल को दूसरे राष्ट्र स्वीकार कर चुके हैं, लेकिन हमारे राजनीतिक मुल्ले अंधे मुल्लों की बात का खयाल करके 'क्या करना है' इसे देर तक सोच नहीं पाये। खैर, अब इस्राईल सरकार स्वीकार कर ली गई, सवेरे का भूला शाम को घर आगया।

महीप–जान पड़ता है, हम नई कमाई तो कुछ करने से रहे, पुरानी कमाई को भी मुफ्त में लुटा देना चाहते हैं।

युधिष्ठिर–प्राचीन भारत का पूर्वी एसिया के साथ बहुत घनिष्ठ और मधुर संबन्ध रहा है। सात सौ वर्षों की परतंत्रता भी उस संबन्ध को धूमिल नहीं कर सकी। देश की स्वतंत्रता के साथ बड़ी-बड़ी आशाएं उठीं, किंतु हमारे पथ-प्रदर्शक, जान पड़ता है, केवल कठपुतली का नाच-भर कर सकते हैं। लेकिन निराश होने की आवश्यकता नहीं महीप, भारत अपनी आत्मा को प्राप्त करके रहेगा, और रास्ते की बाधाएं और बाधक अपने आप काई की तरह छंट जायंगे।

२५

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान

रामी ने कहा—जिस वक्त भारत का विभाजन घोषित हुआ, उस वक्त हम लोगों को बहुत धक्का लगा। कितने ही लोगों को तो विश्वास नहीं होता था, कि कैसे एक ही भारत दो देशों में बँट जायगा। लेकिन आज चार साल होने को आये। अब देखते हैं, न कोई विभाजन का नाम लेता है, न अखंड हिन्दुस्तान का। पहिले साल तक कुछ लोग गंभीरतापूर्वक कहते थे—अखंड हिन्दुस्तान फिर से स्थापित करके रहेंगे, लेकिन अब उसकी कोई बात नहीं करता।

युधिष्ठिर—विभाजन[1] को फिर से मिटाना और अखंड हिन्दुस्तान बनाना वस्तुतः अब हमारे लिए चर्चा की भी बात नहीं है। हम जानते हैं, कि पाकिस्तान को मिटाके फिर भारत को एक करना सारी दुनिया के विरुद्ध है और उसे केवल अपनी मजबूत सैनिक शक्ति के बल से ही किया जा सकता है। अंग्रेजों को देख ही रहे हैं, वह पाकिस्तान की सीमा उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांत की सीमा तक ही नहीं मानते, बल्कि कबीलों को भी पाकिस्तान के अन्तर्गत बतला रहे हैं। पश्तो बोलने वाली जनता दो राज्यों में बँट रही है, इसके लिए वह कहेंगे—यह तो पहले से भी था।

भगवानदास—यदि कहीं पाकिस्तान की मत मारी जाय, और वह स्वयं ही सैनिक छेड़खानी शुरू कर दे?

युधिष्ठिर—छेड़ाखानी तो शुरू किये हुए है। कश्मीर में अपनी सेना भेजकर वह कुछ दिनों तक इन्कार करता रहा, जब अंग्रेजों की शह मिली, तो उसने स्वीकार कर लिया, कि हमारी सेना स्वतंत्र कश्मीर के लिए लड़ रही है। लेकिन उसका उत्तर क्या हमने पाकिस्तान पर आक्रमण करके दिया? यद्यपि इसका हमें पूरा अधिकार था,—यदि उसने हमारी भूमि पर आक्रमण किया है, तो हम दुश्मन के देश पर आक्रमण कर सकते हैं।

भगवानदास—तो क्या हम सदा पाकिस्तान की इस तरह की छेड़खानी को बर्दाश्त करते रहेंगे?

युधिष्ठिर—नहीं बर्दाश्त कर सकते। यदि कहीं पाकिस्तान ने कश्मीर के बाहर भी भारत की सीमा के भीतर आक्रमण कर दिया, तो इसमें शक नहीं, तब हमें पाकिस्तान से लड़ना होगा।

महीप—मैं तो समझता हूँ, एक बार शस्त्र-परीक्षा अच्छी तरह हुए बिना पाकिस्तान की अकल ठिकाने नहीं लगेगी। यह माना, कि अंग्रेजों ने पाकिस्तान को अच्छे सैनिक-विमान—बमवर्षक और योधक—दे रखे हैं, जिनसे हमारे नगरों को नुकसान पहुँचेगा, किन्तु तो भी इसके डर के मारे हम पाकिस्तान की छेड़खानी पर चुप नहीं रह सकते। पाकिस्तानी मुल्लों को बतला देना होगा, कि भारत के साथ युद्ध कोई खेल नहीं है। लेकिन तब भी यह आशा न रखें, कि आप सारे पाकिस्तान को हड़प कर जायंगे। हां, यह निश्चित है, कि उसके फलस्वरूप पठानिस्तान अलग हो जायगा। यह भी निश्चत है कि पूर्वी पाकिस्तान पश्चिमी पाकिस्तान से अलग होकर भारत से मित्रता रखने वाला एक स्वतन्त्र राष्ट्र बन जायेगा। इस युद्ध का यह भी परिणाम हो सकता है, कि अंग्रेज कमीशन ने भारत-पाकिस्तान की सीमा निर्धारित करने के समय खामखाह भारत को दिक करने तथा झगड़े की जड़ बनाये रखने के लिए जो गड़बड़ी की है, वह मिट जाय,—पूर्वी पाकिस्तान में जाती कलकत्ता-दोर्जेलिङ्. रेलवे लाइन सारी भारत में आ जाय, और कटिहार से अमीनगाँव जानेवाली लाइन भी भारत की हो जाय। पूर्वी पंजाब की सीमा भी पश्चिम की ओर कुछ हट जाय। इन परिवर्तनों के अतिरिक्त. मैं नहीं समझता, अखण्ड भारत को फिर से बनाने के लिए इस पीढ़ी को कोई मौका मिलेगा।

भगवानदास—क्या कभी भी ऐसा अनुमान कर सकते हैं, कि भारत फिर से अखण्ड हो जायगा?

युधिष्ठिर—यह तो भगवान भाई, आप ज्योतिषियों से पूछी जानेवाली बात मुझसे पूछ रहे हैं। मैं ज्योतिष पर विश्वास नहीं रखता, इसलिए इस बात में आपकी कोई सहायता नहीं कर सकता। हां, एक ही रास्ता मालूम होता है, जिससे फिर भारत एक हो जाय। वह है भारत में पूर्ण समाजवाद की स्थापना और उसके बाद सारी शक्ति लगाकर अपने देश को उद्योग-प्रधान देश बना डालना। भारत के पास उद्योग-धन्धे के जितने साधन हैं, पाकिस्तान के पास उतने नहीं हैं—उतने क्या दशांश भी नहीं हैं। समाजवादी तथा उद्योग-प्रधान देश होने पर हमारे जनसाधारण का जीवनतल ऊँचा हो जायेगा। यदि वह तल इतना ऊँचा हो, जितना कि सोवियत-रूस में है, तो सीमा के परले पार के लोगों पर उसका भारी असर होगा और बहुत मुश्किल से वहां क्रान्ति को रोका जा सकेगा। लेकिन इसके लिए साथ ही भारत में साम्प्रदायिकता का जोर न बढ़ना चाहिए। सरकार धर्म के सम्बन्ध में निष्पक्ष रहे। भारतीय-संस्कृति को अक्षुण्ण रखते धार्मिक विचार रखने में हरेक व्यक्ति स्वतन्त्र रहे और साथ ही पाकिस्तान की प्रतिगामी शक्ति की पीठ ठोकने के लिए बाहरी शक्तियों में सामर्थ्य न रह जाय।

रामी—यह तो नौ मन तेल की शर्त है।

युधिष्ठिर—तो समझ लें, "न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी।" लेकिन यदि कोई भारत के एक होने का कारण हो सकता है, तो शर्त है शोषण-विहीन समाजवादी अर्थनीति द्वारा देश के धन में बहुत भारी वृद्धि, और उसमें सारी जनता का सहभागी होना।

महीप—ऐसा होने पर तो लंका और बर्मा को भी भारतीय प्रजातन्त्र में सम्मिलित होने में कोई बाधा नहीं रहेगी।

युधिष्ठिर—ठीक कहा। फिर तो सारे एसिया को एक युक्तराष्ट्रसंघ में सम्मिलित किया जा सकता है।

भगवानदास—तो हमारे जो भाई पाकिस्तान से भाग आये हैं, जो अत्याचार उन पर हुए हैं और उनकी जो करोड़ों की सम्पत्ति वहां छूट गई है, इन सबका कुछ नहीं होगा?

युधिष्ठिर—हमारे भाइयों को जो अत्याचार सहना पड़ा और मुसलमानों को भी हमारे सीमान्त के भीतर, चाहे पीछे ही सही, कम जुल्म नहीं सहना पड़ा, यह कुछ भी नहीं होता, यदि बँटवारे के लिए काम करने वाली शक्ति के बल और छल को हमारे लोग समझ पाये होते। कितने ही लोग इसका सारा दोष कांग्रेस नेताओं के ऊपर थोपते हैं, लेकिन यह ठीक नहीं है। देश के नेताओं के लिए चारा क्या था, जब कि अंग्रेज भारत को बांटने पर तुले हुए थे। सैनिक शक्ति उनके हाथ में थी और उनके शह देने पर मुसलमान बहुमतवाले भूखंडों में और भी खूनखराबी होती। अंग्रेज द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण अत्यंत निर्बल हो गए थे, ऊपर से अमेरिका और दूसरे देशों का दबाव पड़ रहा था, कि तुम हिन्दुस्तान को छोड़ दो। भारत के भीतर भी स्वतन्त्रतापक्षीय बड़ी शक्ति तैयार हो गई थी। यह सभी मजबूरियां उन्हें भारत छोड़ने के लिए संकेत कर रही थीं। तो भी इस बात को अंग्रेजों ने मजबूती से पकड़ रखा था, कि मुस्लिम बहुमतवाले प्रदेशों को हिन्दुओं के हाथ में नहीं देंगे—"या तो देश का बँटवारा स्वीकार करो, नहीं तो हम तुम्हारी छाती पर बैठे रहेंगे। यदि हमसे झगड़ा करोगे, तो मुसलमानों को भड़काकर सारे भारत को खून में डुबो देंगे, और निःशस्त्र तुम हमारी सेना और इस्लामी जहादियों का मुकाबला नहीं कर सकते।" यह ऐसी स्थिति थी, जिसमें बह छोड़ और कुछ नहीं किया जा सकता था, जो कि कांग्रेस के नेताओं ने किया।

भगवानदास—कुछ लोग कहते हैं, कि हमें विभाजन न स्वीकार करके लड़ाई जारी रखनी चाहिए थी।

युधिष्ठिर—यह उन लोगों की तरफ से कहा जाता है, जो कि विश्व-युद्ध में

अंग्रेजों के सहयोगी बने रहे, और जिनमें से कुछ तो अंग्रेजों की अधिक खुशामद और सद्भावना से स्वराज्य पाने की आशा रखते थे। हिन्दू-सभा के पदवीधारी, अंग्रेजों के खुशामदी जमींदार और सामंत, सेठ और पंडित कहां लड़ाई जारी रखने की हिम्मत रखते थे, सो भी अंग्रेज तथा मुसलमान दोनों के विरुद्ध। छोड़िए इन अंग्रेजों के पिट्ठुओं की बातें। अब बीती बात की चिंता फजूल है। आज जो बहादुरी की डींग मारते कांग्रेस के नेताओं को विभाजन स्वीकार करने के लिए बदनाम करते हैं, वह उनकी केवल बकवास है।

भगवानदास--तो हमें मानना होगा, कि कांग्रेस नेतृत्व ने बँटवारे को स्वीकार किया, वह इसीलिए, कि उनके सामने और कोई रास्ता नहीं था। यदि अब भी कुछ लोग समझते हैं, कि भारत को अखण्ड रखा जा सकता था, तो कांग्रेसियों ने देश को स्वतन्त्र कराके तीन साल तक सुरक्षित रखके जो लोगों में एकता और सैनिक-शक्ति दृढ़ कर दी है, अब वह मैदान में आके और इस शक्ति को लेकर फिर भारत को अखण्ड बनाने की कोशिश करें।

रामी--आप कह रहे थे बंटवारे के समय की खूनखराबी के बारे में, क्या उसे रोका जा सकता था ?

युधिष्ठिर--हां, बहुत हद तक रोका जा सकता था। जब बंटवारा निश्चित-सा मालूम हो चुका, तो आवश्यकता इस बात की थी, कि दोनों ओर के निवासियों का विनिमय कर लिया जाता, अर्थात् पाकिस्तान क्षेत्र में पड़े हिन्दुओं को हिन्दुस्तान भेज दिया जाता, और सारे मुसलमानों को इधर-से-उधर भेज दिया जाता। सत्ता हस्तान्तरित करने के पहले यह किया जा सकता था। लेकिन हमारे नेताओं ने इस विषय में दुनिया के इतिहास को कम पढ़ा, जान पड़ता है, वह सोते रहे। यूनान और तुर्की में सीमाओं का हेर-फेर होते समय निवासियों का परिवर्तन किया गया था। पोलैंड के भीतर २० साल से रहने वाले उक्रैन और पश्चिमी बेलोरुसिया के भाग को मिलाकर जब भाषा की सीमा को सीमांत माना गया, उस समय भी निवासियों का विनिमय किया गया; यद्यपि रूस और पोलैंड दोनों समाजवादी तथा एक संस्कृति के देश थे; लेकिन डर था कि कहीं शताब्दियों के छिपे वैमनस्य के कारण झगड़ा न हो। हमारे लिए भी यह ध्यान रखना आवश्यक था, और बंटवारे के साथ-साथ निवासियों का विनिमय करना चाहिये था। पहले ही से घोर अशांति के लक्षण दीख रहे थे, इसलिए यह समझ लेना मुश्किल नहीं था, कि निवासियों का विनिमय करना प्रथम करणीय है। उस समय वह खून-खराबी होने की कम संभावना थी। लेकिन हमारे नेता तो अखण्ड भारत के अस्तित्व को ध्रुव मानते थे, और मीठी-मीठी बातें करके आशा रखते थे, कि शताब्दियों के वैम-

नस्य को वह फूट निकलने नहीं देंगे। आज भी खतरा गया नहीं है। मुसलमानों की मनोवृत्ति बदली नहीं है। भाषा और संस्कृति के विषय में उनके घोर साम्प्रदायिक भाव बतला रहे हैं, कि वे अवश्य पंचमांगी बनकर रहेंगे।

खोजीराम—हमने समस्याओं पर काफ़ी विचार करके, अपनी कमजोरियों तथा दोषों को भी दिखलाया। क्या उन्हें देखकर पाकिस्तान को हमारे ऊपर कुदृष्टि डालने की संभावना नहीं है?

युधिष्ठिर—पाकिस्तान कभी भांग खा ले और घातक मूर्खता कर बैठे, यह बिलकुल असंभव नहीं है; क्योंकि पाकिस्तान के नेता अब भी वृहत्तर इस्लामवाद को बड़े गर्व के साथ पकड़े हुए हैं, और लियाकत अली तथा खलीकुज्ज़मा जैसे उत्तर-दायी नेता बंगाल की खाड़ी से, बल्कि इन्डोनेसिया को लेते हुए, मराको तक इस्लामिस्तान बनाने का खब्त सोच रहे हैं। इतिहास बतलाता है कि धर्म के नाम पर इस्लामी मुल्कों को एक राष्ट्र के रूप में कभी नहीं परिणत किया जा सका। अफगानिस्तान-पाकिस्तान के झगड़े को हम देख रहे हैं। इराक, ट्रांसजार्डन और सऊदी अरब के बीच के उग्र वैमनस्य को भी हम जानते हैं। काबा की मस्जिद में १३ सौ वर्ष पहले की तरह देश-देशान्तरों के मुसलमानों का तहमद बांध नमाज पढ़ डालना दूसरी बात है, और सारे मुसलमानों को एक संगठित राज्य में परिणत करना बिलकुल दूसरी बात। हां, इस वृहत्तर इस्लामवाद से एक जरूर लाभ या हानि हुई है, वह यह कि मुसलमान दुनिया की सबसे पिछड़ी जातियों में रह गए हैं।

रामी—पिछड़ी क्या, जंगली जातियों में।

युधिष्ठिर—जंगलीपन से मेरा मतलब नहीं, बल्कि इस्लामिक स्वतन्त्र जातियों को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से लाभ उठाकर जितना आगे बढ़ने का अवसर था, उनकी धर्मांधता ने उन्हें वैसा करने नहीं दिया। "अरब जातियों में क्रान्ति की आवश्यकता है। इस्राईल के ६ लाख यहूदियों ने उन्हें हरा दिया, क्योंकि वह अब भी सामन्ती युग की उद्योग-धंधे में पिछड़ी जातियां हैं।"[१] कितने हिन्दू अब भी पाकिस्तान को बड़े भय की दृष्टि से देखते हैं, उनको मालूम होता है, कि मुसलमान बहुत लड़ाके हैं, और उनकी पीठ पर मिश्र और तुर्की तक के सारे इस्लामिक राज्य हैं।

भगवानदास—क्या यह बात ठीक नहीं है? क्या धार्मिक कट्टरता के नाम पर सभी जहाद करने के लिए तैयार नहीं हो जाते? क्या हमारे यहां रह गये साढ़े तीन करोड़ मुसलमान अपनी अपरिवर्तनीय मनोवृत्ति से हमारे लिए खतरे की चीज नहीं हैं?

युधिष्ठिर—छुरेबाज जहादियों का जमाना लद गया। आज के समय में

१—लुई फिशर "हिन्दुस्तान टाइम्स" (दिल्ली ३१-७-४९)।

बंदूक और तमंचे को भी छुरा ही समझ लीजिए। आधुनिक ढंग के सैनिक अस्त्र-शस्त्र के उत्पादन का जितना सुभीता और औद्योगिक साधन[२] हमारे पास है, उतना पाकिस्तान को नहीं है। सेना-संचालन और यंत्रीकरण को सफलतापूर्वक पूरा करने और उसके इस्तेमाल करने की क्षमता जितनी और जितने परिमाण में हमारे पास है, वह पाकिस्तान के पास नहीं है। हम जितने सुशिक्षित यंत्र-निष्णात सैनिक मैदान में ला सकते हैं, उसका एक चौथाई भी पाकिस्तान नहीं ला सकता।

भगवानदास—लेकिन दूसरे इस्लामिक-देश भी अगर मिल जायें, तो ?

युधिष्ठिर—दूसरे इस्लामिक देश कहने से आपको आधे दर्जन नाम सुनाई देते हैं, लेकिन आपको यह नहीं मालूम है, कि वह सब मिलकर पाकिस्तान की जनसंख्या के आधे ही होंगे; सैनिक शिक्षा प्राप्तों में तो वह पाकिस्तान के चौथाई से भी कम होंगे। तुर्की छोड़कर और किसके पास आधुनिक ढंग की सेना है ? फिर आपको मालूम नहीं है, कि इस्लामिक देशों में आपस में कितना वैमनस्य है।

खोजीराम—अफगानिस्तान और पाकिस्तान का झगड़ा हमें मालूम है।

युधिष्ठिर—और उसके मिटने की तब तक संभावना नहीं, जब तक कि पाकिस्तान के भीतर के पश्तो-भाषा-भाषी पठान उससे निकल न जायं, अथवा अफगानिस्तान को भी पाकिस्तान जीतकर अपने भीतर मिला न ले। एक ही जाति को दो टुकड़ों में बांटके अलग राज्यों में रखना भयंकर झगड़े की जड़ है। तुर्की फिर वृहत्तर इस्लामवाद के फेर में पड़ने नहीं जा रहा है, न छुरा-युग में अब भी वर्तमान शिया-ईरान ही इस्लामी देशों के साथ मिलकर भारत के विरुद्ध अभियान करने के लिए तैयार हो सकता है। हमारे भाई जिस वक्त पाकिस्तान से मिश्र मराको तक के इस्लामी राज्यों की बात करते हैं, तो समझते हैं, कि उनमें से एक-एक करोड़ों जनसंख्या वाले महान् आधुनिक राष्ट्र हैं। इस्लामिक राज्यों में सुलतान अब्दुल्ला का ट्रांसजार्डन भी है, जो हमारी एक छोटी-सी तथा गरीब तहसील (सब-डिवीजन) से बढ़कर नहीं है। उससे थोड़े ही बड़े ईराक और शाम के राज्य हैं।

रामी—फिर तो यह झूठा भ्रम है।

युधिष्ठिर—और क्या ? हमारे अनजाने भाई इस्लामिक राष्ट्रों के नामों को सुनकर रोब में आ जाते हैं। उन्हें यह पता नहीं, कि तुर्की को छोड़ ये सारे इस्लामी राज्य पुराने युग में हैं। वहां आधुनिक साइंस के बड़े शिक्षणालयों का पता नहीं है, न उनकी भाषाओं में आधुनिकतम विज्ञान के ग्रंथों का नाम है।

भगवानदास—फिर पाकिस्तान किसके बल पर कूदता है।

युधिष्ठिर—न इस्लाम के बल पर, न इस्लामी देशों के बल पर। वह कूदता है एंग्लो-अमेरिकन साम्राज्यवादियों के बल पर, जो चाहते हैं, कि हिन्दुस्तान पाकि-

स्तान का वैमनस्य जारी रहे, जिसमें दोनों हमारी मुट्ठी से बाहर न जायें। चीन में आधी शताब्दी तक यूरोपीय साम्राज्यवादियों को सफलता रही—वहां गृहयुद्ध बनाये रख कर। भारत में भी इस वैमनस्य को स्थायी रूप देने के लिए अंग्रेजों ने भारत का बँटवारा कराया। अब लियाकत अली ईद (जुलाई १९४९ ई०) के अवसर पर भारत में रह गए अपने परतंत्र भाइयों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते उनकी स्वतंत्रता की कामना करते हैं। यदि हिंदी मुसलमानों के मन से अब भी दो राष्ट्रों की भावना दूर नहीं हुई, तो हमारे लिए यह होगी बड़ी खतरे की बात। धर्म में ईसाइयों की भांति स्वतंत्र रहते हुए भाषा और संस्कृति में दूसरे देशभाइयों से एक हो जाने में ही हमारा और उनका दोनों का कल्याण है।

महीप—धार्मिक कट्टरता तो जान पड़ता है, जातियों के लिए महंगी चीज है। इस्लामी जातियां अपनी कट्टरता का गर्व करती हैं, किंतु उसके कारण उन्हें कूप-मंडूकता और पिछड़ेपन के सिवा कुछ नहीं हाथ आया।

भगवानदास—लेकिन यदि यह दोष था, तो इस्लाम ने सफलता कैसे प्राप्त की?

युधिष्ठिर—इस्लाम की सफलता किसी उच्च दार्शनिक विचार, महान् सदाचार या भव्य आदर्शवाद के कारण नहीं हुई। आप कुरान को उठाकर किसी धर्म के प्रमुख ग्रंथ से मिलाके देख लीजिए, वह हर तरह से बहुत निम्नकोटि का जंचेगा। हां, पीछे इस्लामी देशों में महान् आदर्शवादी कवि और दार्शनिक पैदा हुए, लेकिन उन्हें इस्लाम की उपज नहीं कह सकते। उनमें कितने ही ईरान के थे, जो पहले ही से बहुत उच्च संस्कृति का धनी था। कितने ही मध्य-एसिया के थे, जहां ईरान और भारत ने मिलकर संस्कृति की ऊंची अट्टालिका खड़ी की थी। यही बात इस्लामिक स्पेन के बारे में कह सकते हैं, जहां के दार्शनिक ग्रीक-प्रभाव से प्रभावित हुए थे। यदि इस्लामी सफलता का कारण ढूंढ़ें, तो यही मालूम होगा, कि विजित देशों की जनता अत्यन्त पतित सामंतों के जुए के नीचे कराह रही थी। इस कमजोरी का लाभ अरबों ने बड़ी होशियारी से उठाया। दूसरी सफलता की कुंजी थी: जैसे भी हो स्त्रियों को रखके औलाद को पैदा करके बढ़ाना। धर्मप्रचार का इस अनूठे ढंग को आप किसी धर्म के लिए शोभा की बात नहीं कह सकते। अस्तु। पाकिस्तान से, सिवाय छोटी-मोटी पंचमांगी कठिनाइयों के, हमारे लिए भय का कोई कारण नहीं है, यद्यपि उसका यह अर्थ नहीं है, कि हम अपने सैनिक बल को न बढ़ाएं तथा अपनी सामाजिक विषमताओं और सहस्राब्दियों की सड़ी-गली रूढ़ियों को पकड़े रहें।

भगवानदास—पाकिस्तान से डरने की बात न हो, लेकिन पाकिस्तान की पीठ ठोंकनेवाले उसे हथियारबंद करनेवाले अंग्रेज तो मौजूद हैं।

युधिष्ठिर—तो क्या आप अंग्रेजों के असली रूप को पहचानने लगे ? पहचानते तो उनके साम्राज्य में रहने के लिए लालायित क्यों ? वस्तुतः अंग्रेज अभी अपनी चाल से बाज नहीं आये। अदन, त्रिकोमली (लंका), सिंगापुर और हांगकांग से चिमटे, हमारे समुद्र पर हावी रहते अब भी वह अपनी साम्राज्य-वासना में मस्त हैं। हमें यदि किसी से डर है, तो उन्हीं से। भारत के किनारे ही नहीं, एसियां के किनारे से भी इन्हें विदा करके ही हम निश्चिन्त रह सकते हैं। पाकिस्तान अपनी पिछड़ी मनोवृत्ति के कारण पिछड़ा और अंग्रेजों के हाथ का खिलौना रहेगा। एसिया को उसके इस दारुण शत्रु से मुक्ति तभी मिल सकती है, जबकि नवीन चीन और नवीन भारत मित्रता के घनिष्ठ सूत्र में बँध जायं। हमें पाकिस्तान से डरने की आवश्यकता नहीं है। यदि उसे पागल कुत्ता काट जाय, तो हम घाटे में नहीं रहेंगे, और साथ ही एक ही झोंक में पाकिस्तान के तीन टुकड़े हो जायँगे।

महीप—आपकी बातों में क्या इस्लाम-विरोधी धार्मिक पक्षपात नहीं काम कर रहा है ?

युधिष्ठिर—जो कुछ मैंने कहा, उसे तथ्य और ऐतिहासिक घटनाओं के अनुरूप कहा। मैं यदि इस्लामिक धर्मांधता का विरोधी हूँ, तो हिन्दू धर्मांधता, उसके जाति-पांत और सैकड़ों हानिकारक रूढ़ियों का भी उससे कम शत्रु नहीं हूँ। भारतीय संस्कृति और उसके भव्य इतिहास के प्रति मेरा सम्मान है, किन्तु साथ ही मैं ईरान की संस्कृति और इतिहास, ग्रीस की संस्कृति और इतिहास, दुनिया की किसी भी संस्कृति और इतिहास का सम्मान करता हूँ; स्वयं इस्लाम के भीतर भी बनी-अब्बासिया और अकबर के यशस्वी कार्यो का प्रशंसक हूँ। वस्तुतः हमें धार्मिक-संकीर्णता छोड़कर किसी निर्णय पर पहुँचना चाहिए।

भगवानदास—भारत के भीतर रह गए मुसलमानों की मनोवृत्ति अब भी बदली नहीं मालूम होती। अब भी वह भारतीयता के अपनाने को तैयार नहीं हैं। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के संघर्ष में यह मनोवृत्ति उन्हें पंचमांगी बनाये बिना नहीं रहेगी। क्या यह भारत के लिए खतरे की चीज नहीं है ? क्या जो लोग मुसलमानों को इस जिद के लिए प्रोत्साहन देते हैं, वह वस्तुतः उनके हितैषी हैं ?

युधिष्ठिर—वैसे "रिपु रुज पावक पाप, इनहि न गनिये छोट करि" का नीति-वाक्य गलत नहीं है, किंतु मैं तो मुसलमानों के लिए इसे भयंकर अदूरदर्शिता कहूंगा, यदि वह भारतीयता-विरोधिनी अपनी पुरानी मनोवृत्ति को कायम रखते हैं। १९४७ के दंगों को हम देख चुके हैं, जब एक बार साम्प्रदायिक वैमनस्य की बाढ़ फूट निकलती है, तो उस समय उसे रोकना असंभव हो जाता है। यदि कहीं पाकिस्तान-हिन्दुस्तान में शस्त्र-परीक्षा होने लगी, तो मुसलमानों की यह मनोवृत्ति उनके लिए भारी खतरे का कारण होगी।

भगवानदास–किन्तु, वैसी साम्प्रदायिकता से तो हमें लड़ना है।

युधिष्ठिर–एक सांप्रदायिकता दूसरी सांप्रदायिकता को पैदा करती है। मुसलमान इस्लाम को मानें, इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, किन्तु यदि वह वेशभूषा, भाषा, संस्कृति में अपने को विदेशी रखना चाहते हैं, तो समझ लें, यह उनके लिए आफत की चीज है।

भगवानदास–युधिष्ठिर भाई, आप जानते हैं, मैं महात्मा जी की सारी बातें मानता था, किन्तु मुस्लिम साम्प्रदायिकता के साथ समझौता मुझे पसंद नहीं था। क्या सात सौ वर्षों में एक-चौथाई लोगों को मुसलमान करके जैसे उन्होंने पाकिस्तान बना लिया, उसी तरह उनकी सांप्रदायिकता को इसी तरह घात लगाये बढ़ने देकर हम और भी अपने भूभाग को पाकिस्तान को देते जायंगे ? यह कभी नहीं हो सकता।

युधिष्ठिर–इतना उत्तेजित होने की आवश्यकता नहीं, अब बंदर-बाट के लिए यहां अंग्रेज बने नहीं हैं। बाकी अपने स्थायी हित के लिए मुसलमानों को इसी तरह भारतीयता को अपनाना पड़ेगा, जैसे ईसाइयों और बौद्धों ने अपनाया है।

२६

तृतीय विश्व-युद्ध

आज गोष्ठी का अंतिम दिन था। मुखपात्रीजी आज की गोष्ठी में भी नहीं शामिल हुए और वही आदि के पांचो पंच रह गए थे। गोष्ठी आरम्भ करते हुए युधिष्ठिर ने कहा—आज की राजनीतिक समस्याओं में विश्वयुद्ध का आतंक भी एक बड़ी विचारणीय बात है।

रामी—परमाणु-बम ने हिरोशिमा का जो भयानक संहार किया था, उसे सुनकर मैं तो स्तब्ध हो गई थी। इधर बिकिनी-खाड़ी में जो नये ढंग के परमाणु-बमों के तजरबे हुए हैं, उनकी बातें सुनकर डर लगता है, कि मानव के भाग्य में क्या बदा है? यदि कहीं तीसरा विश्व-युद्ध छिड़ गया, तो सौ परमाणु-बम[1] एक करोड़ को मारने के लिए पर्याप्त होंगे।

महीप—रामी बहन, तुम समझती हो, कि परमाणु-बम से भयानक[2] पहले कोई हथियार नहीं थे। ऐसी विषैली गैसें तैयार हो चुकी हैं, जिनको उड़न्तू बमों के भीतर डालकर फेंक देने पर लंदन जैसे नगरों के कई लाख आदमी चंद घंटे में मर जायँगे। भयंकर रोग-कीटाणुओं के दस उड़न्तू बम सारे इङ्गलैंड को दो सप्ताह में साफ करने के लिए पर्याप्त हैं।

रामी—मैं तो समझती हूँ, कि यदि कोई तृतीय विश्वयुद्ध रूस और ऐंग्लो-अमेरिकन गुट्टों के बीच हुआ, तो इंगलैंड की तो खैरियत नहीं, यदि इस तरह के दस भी उड़न्तू बम वहां गिरा दिये गए। उड़न्तू बमों को तो कोई रोक भी नहीं सकता, वह तो दस क्या सौ भी गिराये जा सकते हैं। लेकिन आश्चर्य तो यह है, कि वही इङ्गलैंड लड़ाई की बात करने में अमेरिका से भी आगे बढ़ा क्यों है?

महीप—यदि तीसरी लड़ाई निश्चित होती, तो इङ्गलैंड कभी बढ़-बढ़कर बातें न करता। बेविन का "युद्धं देहि" का चिल्लाना यही बतलाता है, कि उस मजूर-साम्राज्यवादी के दिल में तृतीय विश्वयुद्ध के न होने का पूरा विश्वास है।

भगवानदास—तब फिर इतना चिल्लाने से क्या फायदा?

महीप—इंगलैंड को बहुत फायदा है। इसी तृतीय युद्ध के नारे के भरोसे तो इंगलैंड की चार साल से मक्खन-रोटी चल रही है।

खोजीराम—हां, यदि रूस और अमेरिका का मनोमालिन्य न रहता, तो अमेरिका क्यों अरबों रुपयों का खाद्य-पदार्थ तथा दूसरी चीजें इंगलैंड को देता।

रामी—तब तो इंगलैंड कभी नहीं चाहेगा, कि अमेरिका और रूस का मनोमालिन्य दूर हो।

महीप—जिसके भरोसे पेट चल रहा हो, उसे कैसे कोई मिटने देगा। जब तक अमेरिका का डालर आता रहेगा, तब तक इंगलैंड के राजनीतिज्ञ तथा समाचार-पत्र तृतीय महायुद्ध की बात दोहराते रहेंगे। इसके अतिरिक्त युद्ध के हल्ले का एक और भी फायदा है। "तीसरा युद्ध होगा, उसमें अधिक शक्तिशाली होने से ऐंग्लो-अमेरिकन गुट्ट जीतेगा। यदि रूस ने कुछ भी विरोध किया, तो अमेरिका परमाणुबमों द्वारा थप्पड़ का जवाब घूसों से देगा।" इन बातों ही के कारण इटली और फ्रांस के प्रतिगामियों को हिम्मत हुई। जर्मनी की पराजय के बाद यूरोप के सबसे बड़े इन दोनों देशों में साम्यवादी दल सभी दलों से अधिक शक्तिशाली और संगठित हैं। उसके मारे इन देशों के सारे प्रतिगामी दल और व्यक्ति हाथ-पैर ढीला कर चुके थे। वह बिना प्रतिरोध के आत्म-समर्पण करने जा रहे थे। युद्ध के हल्ले की चर्चा से ही जनता सहमी और इनकी हिम्मत हुई। इस प्रकार आज दोनों देशों में प्रतिक्रियावादियों का जोर है।

भगवानदास—यह तो अमेरिका का दूसरे देशों में हस्तक्षेप करना है; यदि रूस में शक्ति होती, तो वह इसका उसे जवाब देता।

महीप—यदि इससे रूस को अशक्त साबित करना चाहते हैं, तो मैं और भी बातें बतला सकता हूँ, जिनसे आप अपनी बात को और भी पुष्ट कर सकते हैं। तुर्की रूस की सीमा पर है। उसने १९२० ईसवी में निवासियों के भयंकर हत्याकांड के बाद अर्मेनिया के दो जिले दखल कर लिये। उस समय जो भी अर्मेनियन पुरुष या स्त्री हाथ आये, उन्हें तुर्कों ने मार डाला,। लेकिन सोवियत् अर्मेनिया अब एक यंत्रीकृत कृषि और उद्योग-प्रधान प्रजातंत्र है। जर्मनी जनता अपने उन दोनों जिलों को वापस मांगती है, जिन्हें क्रान्ति के समय निर्बल देखकर तुर्कों ने बड़े खूनी जुल्म के साथ हड़प लिया। आधुनिक अर्मेनिया की मांग से तुर्की घबड़ाने लगा, फिर सारे न्याय और शिष्टाचार की बात को ताक पर रखके अमेरिका ने तुर्की की पीठ ठोंकी। आज वह तुर्की को हथियारों और सैनिक परामर्शदाताओं द्वारा मदद दे रहा है। यह तो रूस की बिलकुल सीमा पर आकर ताल ठोंकना है। ईरान में भी अमेरिका के दखल और प्रोत्साहन के कारण ईरानी आजुबाईजान से जनता का स्वायत्तशासन नष्ट हुआ—ईरान में भी गोया सीमा पर पहुंच के अमेरिका ताल ठोक रहा है। भारत के ऊपर भी वह डोरा फेंक रहा है; यहां यदि थोड़ी सहायता से काम चलता, तो वह बड़ी खुशी से देता, किंतु चीन की तरह यहां का मामला चार-छ अरब डालर का है। तो भी हिन्दुस्तान और पाकि-

स्तान से चिपककर अमेरिका रूस से लाग-डांट लगाना चाहता है। और तो और नेपाल में भी वह अपने हवाई अड्डे बनाने की तदबीर में है, जिसमें कम्युनिस्ट संसार की सीमा पर पहुँचा रहे।

खोजीराम—नेपाल के उत्तरी सीमान्त पर तिब्बत कम्युनिस्ट चीन के भीतर है ही।

महीप—चीन में अब दाल गलती दिखाई नहीं देती, यद्यपि अमेरिका ने ढाई अरब डालर दाव पर लगाकर चीन से साम्यवाद को उखाड़ फेंकना चाहा। जापान में भी वहां की प्रतिगामी शक्तियों को अमेरिका मजबूत कर रहा है। केवल रूस के विरोध में ही तो कोरिया के उत्तरी भाग को भी हड़पने के लिये वह उधर भी रूस की सीमा पर पहुँच गया; और रूस केवल जबानी विरोध भर करता रह गया। उत्तरी अमेरिका में अलस्का की मोर्चेबन्दी रूस ही के खिलाफ की गई है और रूस पर ही हवाई आक्रमण के सुभीते के लिए उत्तरी कनाडा में अमेरिका ने बहुत-से सैनिक हवाई-अड्डे तैयार किये हैं। इंगलैंड को तो अमेरिका रूस के विरुद्ध विमानवाहक पोत मानता है। पश्चिमी यूरोप को जो एक गुट्ट में अटलान्टिक संधि-पत्र के अनुसार बांधा गया है, यह भी रूस के विरुद्ध ही। बल्कान में घुसकर ग्रीस में अमेरिका ने गृह-युद्ध कराया, जिसका इसके अतिरिक्त कोई अर्थ नहीं है, कि वह रूस और रूस के साथियों की सीमा पर हथियार लेके पहुँचा रहे। इस चारों ओर के घेरे को देखकर आप कह सकते हैं, कि रूस डर रहा है। तभी तो दुश्मन के घर में आकर ताल ठोंकने पर भी सिर नीचा करके पड़ा हुआ है।

भगवानदास—महीप बाबू, मैं जो कहता, उससे कहीं अच्छा आपने कह दिया। सचमुच ही इससे तो मालूम होता है, कि रूस युद्ध से भाग रहा है।

महीप—भाग रहा है, इसमें संदेह नहीं है, क्योंकि वह एक और भीषण नर-संहार में सहायक नहीं बनाना चाहता। लेकिन युद्ध से भागने की उसकी एक सीमा है, जहां तक वह युद्ध में पड़ना नहीं चाहेगा। वह जानता है, कि द्वितीय महायुद्ध की विपत्तियों को भोगी हुई इंगलैंड और अमेरिका की जनता युद्ध करना नहीं चाहती, लेकिन वहां के लाशखोर पूंजीपति आगा-पीछा देखने के लिए तैयार नहीं हैं। कोई बहाना मिलते ही वह फिर तीसरे महायुद्ध में ढकेल देंगे। तो भी रूस खास सीमा के आगे हस्तक्षेप को नहीं सह सकता, इसे अमेरिकन साम्राज्यवाद भी जानता है।

रामी—तो तुम्हें विश्वास है, कि उस खास सीमा के आगे घुसने पर रूस पैर पीछे नहीं हटायगा?

महीप—जरूर। अमेरिका इसीलिए रूस और तथाकथित लोहपरदे के भीतर

पैर रखना नहीं चाहता। बर्लिन में रूस ने नौ-दस महीने रास्ता बन्द कर दिया, यह तो अमेरिका के लिए ललकार थी, फिर क्यों वह कोयला तक हवाई-जहाज पर ढो-ढो बर्लिन में उतारते रहे ?

भगवानदास—लेकिन अन्त में रूस को झख मारके अपना घेरा हटाना भी तो पड़ा।

युधिष्ठिर—मैं बतलाऊँ भगवान भाई, रूस समझता है, कि पूंजीवादी देश के लिए गोले से भी भारी घाव डालर के लुटने का है। वह समझता है, कि अमेरिका के पास अनंत डालर-राशि नहीं है, कि पचासों बरसों तक वह दुनिया के सभी देशों में डालर-वर्षा करता रहे। चीन में हमने देख ही लिया, ढाई अरब स्वाहा करने के बाद उसने टें बोल दिया। रूस को तो कुछ खर्च करना है नहीं। चीन को देख लीजिए, वहां रूस ने न पैसे-धेले से न सेना से ही मदद की, जब कि अमेरिका का मदद करने में दीवाला निकलने लगा। रूस विश्वास रखता है, कि साम्यवाद को बाहर से नहीं टपकना चाहिए, बल्कि उसे देश के भीतर जड़ जमाके बढ़ना चाहिए।

रामी—चीन में ऐसा ही हुआ। चीन अपने आत्मत्याग और साहस से आगे बढ़ा है। अमेरिका का अरबों रुपयों का सैनिक सामान चीनी कम्युनिस्टों को मिला, यद्यपि यह उसकी इच्छा के बिलकुल विरुद्ध था। लेकिन चाङ्. की सेना ने अमेरिकन हथियारों को चीनी कम्युनिस्टों के पास पहुंचाने का काम किया। ग्रीस में भी वहां के देशभक्त कम्युनिस्ट लड़ते रहे। वह अपने पैरों पर खड़े थे, जब कि उनके प्रतिक्रियावादी शत्रु अमेरिकन डालर और हथियार के भरोसे लड़ रहे थे। अमेरिका के नमक को हलाल करने के लिए ब्रिटिश सेना वहां पर खड़ी हुई जहां-तहां हस्तक्षेप भी करती थी, किंतु तो भी हमारे दो जिले भर के छोटे-से देश ग्रीस के गोरिल्ले पांच साल तक लड़ते रहे।

भगवानदास—साम्यवादी देश के भीतर पैदा होते हैं। लेकिन उनके बारे में तो कहा जाता है, कि वह रूस की मदद से सब काम करते हैं।

युधिष्ठिर—किसी का मुंह कैसे छेंका जा सकता है ? साम्यवादी देश के भीतर पैदा होते हैं। गीता के शब्दों में कहिए, "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।" जब-जब मानवता का उत्पीड़न और कष्ट चरम सीमा पर पहुंच जाता है, तब-तब उससे निकलने का कोई साधन वहीं तैयार होता है; और आज वही साधन है यह साम्यवाद। आप चोरबाजारी बन्द करने में असमर्थ हैं, मंत्रियों तक की रिश्वत को रोक नहीं सकते, सरकार के अंधाधुंध खर्च को और बढ़ाते जा रहे हैं, जिसके बोझ के मारे लोग दाने-दाने को मुहताज हैं। इन सब आफतों से निकलने का कोई रास्ता तो होना चाहिए ?

भगवानदास–हां, इससे तो मालम होता है, कि साम्यवाद के लिए क्षेत्र उसके विरोधी तैयार कर रहे हैं।

रामी–अच्छा, तो रूस की सैनिक शक्ति कैसी मालूम होती है ?

युधिष्ठिर–जिस वक्त अटलांटिक पैक्ट को बारह राज्यों ने स्वीकार किया, उसी समय पूंजीवादी देशों के पत्रों ने बड़ा संतोष प्रकट करते हुए दोनों पक्षों की सैनिक शक्ति की तुलना की। १९ मार्च (१९४९) को वाशिंगटन से भेजे रूटर के संवाददाता का कहना था[१]–

(१) अटलांटिक राज्यों के पास सोवियत् से १५ सैकड़ा अधिक जन-शक्ति है।

(२) सोवियत् से तीन गुना अधिक जहाजों, विमानों, टैंकों, तोपों और दूसरे सैनिक साधनों के बनाने के लिए इस्पात के उत्पादन करने की क्षमता है।

(३) कारखानों, प्लांटों और रेलों में जलाने के लिए दो गुना कोयले का उत्पादन है।

(४) लातिन अमेरिका तथा सारे अटलांटिक देशों के पास आठगुना अधिक पेट्रोल है।

(५) सैनिक सामान और दूसरी चीजों को ढोने के लिए ३४ गुने टनवाले भारवाही पोत हैं।

(६) कार, लारी और बस प्रायः तीसगुना अधिक हैं।

हां, रूसी गुट्ट के पास पश्चिमी राज्यों से सवाई सेना है। इसके ऊपर अमेरिका के पास परमाणु-बम और नये ढंग के अमेरिका के ३६ नम्बरवाले बमवर्षक की अमोघ शक्ति है। इसी तरह उसके ७३१ सैनिक पोत अटलांटिक में हैं। अमेरिका अटलांटिक-संधि के बाद के पहले बारह महीने के भीतर साढ़े तीन करोड़ डालर का हथियार अपने सहायकों को भेजने के लिए तैयार था।

रामी–इससे तो मालूम होता है, कि रूसी जमात के पास सवाई अधिक सेना रहकर भी बेकार है, यदि नये-से-नये हथियार उसके पास नहीं।

महीप–लेकिन सुना न रामी बहन, अमेरिकन ट्रूमेन ने स्वयं रूस के पास परमाणु-बम होने की घोषणा[२] की।

१–१९ अप्रैल १९५० को अमेरिका के विमान सचिव साहू मिजून ने कहा—(१) लौह प्राचीर के पीछे परमाणु विस्फोट हुआ। (२) सोविग्रत वायु-साधन युक्त-राज्य के किसी भाग में परमाणु आक्रमण कर सकता है। (३) युक्तराज्य अमेरिका के पास ऐसे आक्रमण की प्रतिरक्षा के पर्याप्त साधन नहीं हैं।

रामी—लेकिन कुछ अमेरिकन पत्रों ने ही यह भी कहा है, कि बम फूटने का यह अर्थ नहीं, कि युद्धोपयोगी परमाणु-बम रूस ने तैयार कर लिये।

भगवानदास—यह हास्यास्पद बात है रामी बहन, जब शक्तिशाली परमाणु-बम पूर्वी रूस के किसी भाग में छोड़े गए हैं, तो वह खाली दीवाली के पटाके नहीं हो सकते। रूसियों ने पहले ही कह दिया था, कि परमाणु-बम अब रहस्य की चीज नहीं रह गया।

भगवानदास—तब तो दुनिया-भर के पूंजीवादियों की जो एकमात्र आशा अमेरिका के परमाणु-बम पर लगी थी, वह भी खतम हो गई।

महीप—उनकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया है। रूस की सेना लड़ने में कितनी वीर है, इसे द्वितीय विश्व-युद्ध ने बतला दिया है। हिटलर को परास्त करने में ९० प्रतिशत से अधिक श्रेय रूसी सेना को है। अमेरिकन और अंग्रेज रणबांकुरों की वीरता और युद्ध-कौशल की तुलना हम उस वक्त अच्छी तरह कर रहे थे, जब पूरब से लाल सेना और फ्रांस के समुद्री तट से एंग्लो-अमेरिकन सेना जर्मनी पर आक्रमण कर रही थी। जर्मनी की तीन-चौथाई से अधिक सेना रूस से लड़ रही थी, तो भी जिस गति से रूसी आगे बढ़े, उसके सामने एंग्लो-अमेरिकन सेना का बढ़ाव चींटी की चाल की तरह था।

खोजीराम—यह बात तो स्पष्ट देखी जा रही थी, एंग्लो-अमेरिकन साम्राज्य-वादी चाहे मुंह से कुछ भी कहते हों, लेकिन दिल से वह भूल नहीं सकते, कि रूसियों के साथ लड़ना हँसी-ठट्ठा नहीं है।

महीप—पूंजीवादी-जगत में सर्व-स्वीकृत एक सैनिक-विशेषज्ञ कर्नल भिक्स्बे का भी अनुमान दोनों पक्षों की सेनाओं के बारे में सुनिए। वह कहता है—यदि संसार तीसरे विश्व-युद्ध से नहीं बच सका, तो पूरब और पश्चिम के युद्ध में रूसी गुट्ट अपने प्रबल जनबल के आधार पर पश्चिमी शक्तियों के सभी पोतों, विमानों और स्थल-सेना के अड्डों पर अधिकार कर लेगा। अपनी विशाल जन-शक्ति के कारण यद्यपि रूस स्थल-भाग पर अधिकार कर लेगा, किन्तु वायु और समुद्र पर अधिकार करने की उसमें क्षमता नहीं है और अन्तिम विजय इन्हीं दोनों के आधार पर होगी।

भगवानदास—विमान तो रूसी तिगुना बना रहे हैं, यह अमेरिकन ही स्वीकार कर चुके हैं।

खोजीराम—बच्चों की-सी बात है, हम जानते हैं अगर रूस की स्थल-सेना नहीं होती तो एंग्लो-अमेरिकन सेना यूरोप के तट पर न उतर सकती, हिटलर को हराने की बात तो दूर रही।

भगवानदास–हिटलर का रूस के ऊपर आक्रमण करना भयंकर भूल थी, इसे सभी मानते हैं।

महीप–कर्नल आगे कहता है–चाहे सारे स्थल-भाग (अर्थात् सारे यूरेसिया महाद्वीप) पर रूस का अधिकार हो जाय, तो भी पश्चिमी राज्य बड़े शक्तिशाली शत्रु रहेंगे, क्योंकि उनके पास अमेरिका महाद्वीप, ब्रिटिश द्वीप, आस्ट्रेलिया और अफ्रीका का भी अधिक भाग रहेगा।

भगवानदास–कर्नल तो भी स्वयं पश्चिमी शक्तियों की कमजोरी प्रकट कर रहा है।

महीप–यह भी समझिए, यह ऐसा-वैसा कर्नल नहीं है, इसे बिड़ला के पत्र 'हिन्दुस्तान टाइम्स' और दूसरे देशों के पत्र भी 'प्रसिद्ध युद्ध-विद्या-विशारद' कहके उसके लेखों को उद्धृत करते हैं।

रामी–तब तो और भी पश्चिमी गुट्ट के लिए अधिक आशा नहीं मालूम होती, सारा एसिया और यूरोप-खण्ड तथा उत्तरी अफ्रीका तक को रूसी पक्ष ले लेगा–अर्थात् अदन, मस्कत, बसरा, कराची, लंका, सुमात्रा, सिंगापुर, सैगोन, कोरिया तक सारे विशाल भूखण्ड में रूसी सेनाओं के पहुंच जाने पर फिर अमेरिका शायद यही समझ लें, कि झगड़ा छोड़ो, चलो अपने घर बैठें।

खोजीराम–सच तो यह है, आखिर किस आशा पर वह लड़ेगा और फिर कर्नल ने अपने अनुमान में साम्यवादी चीन पर पूरा ध्यान नहीं दिया।

महीप–इसीलिए कहा–"इतने बड़े भूभाग को अधिकार में रखना सम्भव नहीं, क्योंकि इससे भी मुश्किल है सैनिक महत्त्व के स्थानों में पर्याप्त सेना का रखना।" चीन की ४७ करोड़ जनता के साम्यवाद के भीतर आ जाने से अब ऐसी शंका की गुंजाइश नहीं रह जाती। कर्नल का कहना है–"यह असंभव मालूम होता है, कि एक ही समय सर्वत्र सेना मौजूद रहे और यह भी असंभव-सा ही है, कि केवल यंत्रों के बल पर यूरेसिया जैसे महान् भूखण्ड पर आधिपत्य रखा जा सके। निस्सन्देह ऐसी परिस्थिति में पूरब और पश्चिम के बीच का युद्ध जन-बल और यन्त्रोत्पादन के बीच लम्बे संघर्ष के रूप में परिणत हो जायगा।" युक्तराष्ट्र अमेरिका के उद्योग-धन्धे के बारे में कर्नल ने कहा है–"द्वितीय विश्व-युद्ध ने युक्तराष्ट्र अमेरिका की आर्थिक और औद्योगिक शक्ति को इतने ऊँचे तल पर पहुंचा दिया, जिसका इतिहास में दृष्टान्त नहीं मिलता। हमारे युग में कोई दूसरा राज्य वहां तक नहीं पहुंच सका, अमेरिका के उद्योग-धंधे आज दुनिया की उपज का आधा पैदा करते हैं, जो उपज लड़ाई के वक्त में और भी बढ़ जायगी। सोवियत्-संघ एंग्लो-अमेरिकन उद्योग-धन्धे के पंचमांश से अधिक उत्पादन नहीं कर सकता;

लेकिन सारे यूरेसिया पर अधिकार हो जाने पर जर्मनी, बेल्जियम, फ्रान्स आदि के उद्योग-धन्धों की सहायता से रूस का उत्पादन एक-तिहाई तक जा सकता है।

रामी–फिर तो एंग्लो-अमेरिकन साम्राज्य के लिए कोई डर नहीं है।

महीप–लेकिन कर्नल फिर कहता है–"किन्तु यदि रूस ने पश्चिमी यूरोप को ले लिया, तो उसका अर्थ है, ब्रिटिश-चेनल के तट पर उसकी वायु-सेना का रहना, जो इंगलैंड के उद्योग-धन्धे को बहुत हानि पहुंचा सकता है। ऐसी अवस्था में सोवियत् वायुसेना का काम पश्चिमी राज्यों की अपेक्षा बहुत आसान होगा, क्योंकि कैले से लन्दन बहुत नजदीक है, जब कि इंगलैंड से उड़ने वाले विमानों के लिए रूस बहुत दूर है। यह बिल्कुल सम्भव है, कि तीसरे विश्वयुद्ध में पूरब की अपेक्षा इंगलैंड को हवाई हमले से बहुत अधिक क्षति उठानी पड़े, क्योंकि उड़न्तू बम तथा दूसरे युद्ध-साधन तब से अब बहुत आगे बढ़ गए हैं,। यह भी हो सकता है, कि भीषण वायु-संघर्ष में रूसी अंग्रेजों के उद्योग-धन्धे को चौपट कर दें।"

भगवानदास–बेविन-एटली अथवा उनके उत्तराधिकारी एडन-चर्चिल के लिए कर्नल का फैसला बहुत रुचिकर नहीं मालूम होगा।

महीप–रुचिकर ? चर्चिल तो तैयार ही हैं, इंगलैंड को युक्तराष्ट्र अमेरिका से मिला देने को। इंगलैंड उंचासवीं रियासत बन जायगा, फिर टोरी तो बाल-बच्चे सहित अटलांटिक पार भाग जायंगे; केवल इंगलैंड के कमकर अपनी बेवकूफी का फल भोगने को रह जायंगे। कर्नल को अब चीन का भी कुछ होश आ गया है, इसलिए जन-बल के बारे में कहता है–"सोवियत् संघ में प्रायः बीस करोड़ आदमी बसते हैं। मास्को के पुछल्लों के ९ करोड़ ७ लाख और चीन के ४५ (४७॥) करोड़ कुल मिलाकर प्रायः पौने ७५ करोड़ (७४७० लाख) आदमी। पश्चिमी राज्यों के निवासियों में अमेरिका, ब्रिटिश साम्राज्य और दक्षिणी अमेरिका की जनसंख्या प्रायः ६० करोड़ है।

रामी–हमारे भारत के ३४ करोड़ को क्यों गिन रहा है ?

महीप–क्योंकि नेहरूजी ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के हाथ में हमारे ३४ करोड़ों को बेंच आये हैं ! कर्नल फिर आगे कहता है–?"रूस के पुछल्लों का सैनिक के तौर पर बहुत कम मूल्य रहेगा; हां, वह कमकर शक्ति के तौर पर महत्त्व रखेंगे। लेकिन उद्योग-धंधों में बहुत अधिक विकसित जर्मनी, फ्रांस, बेलजियम और हालैंड के निवासी सोवियत् अर्थनीति के हरएक भाग में करोड़ों शिक्षित मिस्त्री, इंजीनियर बेतार-मिस्त्री और दूसरे विशेषज्ञ बन के काम करेंगे।"

युधिष्ठिर–पश्चिमी शक्तियों की जन-बल की समस्या के बारे में कर्नल ने कहा है–"पिछले युद्ध में युक्तराष्ट्र ने ११० लाख आदमी सेना के लिए संचालित

किये थे, किंतु उनमें से ७७ लाख ही को विमान, पोत तथा सेना में लिया जा सका। सारे युक्तराष्ट्र ने ९७ डिवीजन सैनिक संगठित किये और सारे ब्रिटिश साम्राज्य ने ६८ डिवीजन, अर्थात् सारी एंग्लो-अमेरिकन सेना १६५ डिवीजन थी।....यदि १६५ डिवीजनों को यूरोप, मध्यपूर्व और सुदूरपूर्व के तीन युद्ध-क्षेत्रों में बांटने की आवश्यकता हुई, तो यूरोपीय महाद्वीप की रक्षा के काम के लिए केवल ५० या ६० डिवीजन रह जायंगे, जो कि इस काम के लिए बिलकुल अपर्याप्त होंगे, क्योंकि यूरोप की रक्षा के लिए कम-से-कम १२० से १५० डिवीजन तक चाहिए। सोवियत्-संघ के ऊपर आक्रमण करने के लिए तो ३०० डिवीजनों से कम की सेना बेकार होगी। जर्मनों ने २४० डिवीजनों से यह काम करना चाहा, जिसका परिणाम स्तालिनग्राद में उनकी हार हुई।"[१]

भगवानदास—यह तो बुरा है। इससे पता लग जाता है, कि एंग्लो-अमेरिकन आसानी से मैदान में नहीं उतरेंगे। लेकिन सुनते हैं, रूस की पंचवार्षिक योजनाएं भी जितनी प्रोपगन्डा में मजबूत मालूम होती हैं, उतनी उनमें वस्तुतः सफलता नहीं हो रही है।

युधिष्ठिर—इसके लिए 'न्यूज रिव्यू' ने बर्मिंघम विश्वविद्यालय के सोवियत्-अर्थशास्त्र-विभाग के अध्यक्ष डाक्टर अलेक्सन्दर बाइकोफ की पुस्तिका ('सोवियत् संघ में औद्योगिक विकास') की आलोचना करते हुए लिखा है—"डाक्टर बाइकोफ ने चतुर्थ पंचवार्षिक योजना (१९४६-५०) के आंकड़ों के बारे में इस पुस्तिका में लिखा है, सोवियत् नेता आंकड़े के अंदाज के बारे में सदा सच बोलते हैं, यद्यपि कभी-कभी उनके वक्तव्य में परस्पर विरोध भी होता है। पश्चिमी अर्थ-शास्त्रियों का विश्वास है, कि रूसी वक्तव्यों से वहां के आर्थिक विकास का काफी शुद्ध स्वरूप खींचा जा सकता है।....डाक्टर बाइकोफ ने बतलाया है, कि (१९४० के आंकड़े को सौ लेने पर) सभी उद्योगों की उपज १९४६ में ७६.२, १९४७ में ९२·८ और १९४८ में ११८ हो गई।" उनकी गणना से पता लगता है, कि लड़ाई के अंत में उपभोग-वस्तुओं, ईंधन, लोहे और इस्पात का उत्पादन अत्यन्त कम हो गया था, जब कि इंजीनियरी-उद्योग युद्ध द्वारा बढ़े होने के कारण बहुत अच्छी हालत में था। डाक्टर ने आंकड़ों के बल पर यह निष्कर्ष निकाला है—"आम तौर से १९४६ में उद्योग-धंधों को युद्ध से शान्तिकाल के उत्पादन में परिणत कर दिया गया। शायद १९४८ की पहली तिमाही में युद्धपूर्व के समान उत्पादन होने लगा। उस साल के अंत में अभी भी उपभोग-सामग्री के उत्पादन का तल नीचा था। लेकिन पूंजीमाल विशेषकर इंजीनियरी-उद्योग की उपज युद्धपूर्व से काफी

१—हिन्दुस्तान टाइम्स (दिल्ली ३-७-४९)

ऊपर थी।" बाइकोफ ने १९४६-५० की योजना में पहले तीन वर्षों की औद्योगिक प्रगति को संतोषजनक बतलाया और कहा–यदि बाकी दो वर्षों तक योजना के उत्पादन की गति इसी तरह रही, तो १९५० तक मुख्य लक्ष्य पूरा हो जायगा।

रामी–तो रूसी योजना भी एंग्लो-अमेरिकन गुट्ट की इच्छा के अनुसार शिथिल और दोषपूर्ण नहीं है। युधिष्ठिर भाई ! मुझे तो यह सम्भव मालूम नहीं होता, कि सारी दुनिया के संत्रस्त पूंजीशाह जिस तृतीय विश्वयुद्ध की बाट जोह रहे हैं, वह कभी आयगा भी।

युधिष्ठिर–तुमको मालूम है रामी बहन, क्यों अमेरिका ने परमाणु-बम हिरोशिमा पर गिराया और क्यों बर्लिन पर नहीं गिराया ?

रामी–मैं समझती हूँ, बर्लिन पर परमाणु-बम गिरता, तो हिटलर के उड़न्तू बम भयंकर रोग-कीटाणु और विषैली गैसों को लेकर इंगलैंड के शहरों पर गिरते, फिर इंगलैंड की हालत हिरोशिमा से भी बदतर होती।

युधिष्ठिर–सैनिक विशेषज्ञों का कहना है, कि तृतीय महायुद्ध छिड़ने पर दो महीने के भीतर सारे यूरोप पर लाल सेना का अधिकार हो जायगा। फ्रांस और बेलजियम के तटों से इंगलैंड पर सोवियत् सेना अपने परमाणु बम भी गिरायेगी, गैसबम, कीटाणुबम भी गिरायेगी। अभी तक पिछले दोनों हथियार प्रतिषिद्ध ठहराये गए हैं। युद्ध आरम्भ करने से पहले तीसरे को भी प्रतिषिद्ध मान लिया जायगा, तभी इंगलैंड का चिराग बुझने नहीं पायगा। युद्ध तब बाकी बचे हथियारों से होगा, जिसमें एंग्लो-अमेरिकन-गुट्ट सोवियत्-गुट्ट का बिलकुल मुकाबला नहीं कर सकता। मुफ्त में यदि सारे यूरेसिया और उत्तरी नहीं सारे अफ्रीका को साम्यवाद को भेंट चढ़ाना हो, तो ही तीसरा महायुद्ध छिड़ेगा।

महीप–और यह स्पष्ट ही है, कि उत्पीड़ित देशों में भारी जनसंख्या की ओर से रूसी और चीनी सेना का विरोध नहीं होगा।

भगवानदास–विरोध कहते हैं ? हमारे चीनी मिल के मजदूर तो लाल-झंडा लेकर पहले ही स्वागत करने चल देंगे।

युधिष्ठिर–हम अपनी सारी समस्याओं पर संवाद नहीं कर पाये, वह संभव भी नहीं था, परन्तु जो कुछ हमारी गोष्ठी में विचार हुआ, उससे यह स्पष्ट तो है, कि तृतीय युद्ध की ९९ प्रतिशत सम्भावना नहीं है, जिसका श्रेय रूस को देना होगा। एंग्लो-अमेरिकन ग्रह के पूंजीशाहों के लिए मनुष्य के प्राण का कोई मूल्य नहीं है। अमेरिका ने कोरिया पर दक्षिण ही नहीं उत्तर पर भी –आक्रमण कर तृतीय विश्व-युद्ध का आरंभ कर दिया था, लेकिन रूस ने अपने ऊपर संयम कर सारे विश्व में युद्धाग्नि को भड़कने नहीं दिया। लेकिन, हमारे देश के भीतर जो आर्थिक समस्याएं

उठ खड़ी हुई हैं, अन्न-वस्त्र का अभाव और बढ़ता ही जा रहा है, जनसंख्या ऊपर से और बढ़के नाव को बोझल कर रही है, पतवार अनाड़ियों के हाथ में है, यदि समय पर नहीं संभले तो लाल भवानी के आने में देर नहीं होगी; और उनके स्वागत में न जाने कितने लाख निरीह नर-नारी आपसी संघर्ष में बलि चढ़ेंगे। अंत में जो बच रहेंगे, वह बहुत सुन्दर और समृद्ध भारत का निर्माण करेंगे, इसमें संदेह नहीं; किन्तु लाखों के रक्त से भारत मही को पंकिल करके फिर वही करना क्या अच्छा है ?

———

परिशिष्ट

परिशिष्ट-अध्याय २

विश्व-राजनीति

"इसमें जरा भी संदेह नहीं, सबसे अच्छा तो यही होता कि गुटबंदी तथा राजनीतिक चालोंसे अलग रहा जाता और हम अपनेको भविष्यके विश्व-संघर्षसे अलग रख सकते, लेकिन सच तो यह है, कि व्यवहारमें पूर्ण तटस्थता वास्तविक नहीं केवल काल्पनिक बात है। हमारे चारों तरफ जो अग्नि भड़क रही है, उसमें दूसरे राष्ट्र हमें अगले युद्धमें ढकेल सकते है। हरेक गुट भारतके सामरिक महत्त्व को समझता है, और वह उसे अपनी ओर खींचना चाहता है। देखना है, कि जब हंडा खौलने लगेगा, उस समय पड़ने वाले दबावको हम कैसे रोकते हैं।"

जब जापान हार सा गया था और 'मरे को मारे मियां मदार' के अनुसार उसके हराने के लिए किसी असाधारण कार्रवाईकी आवश्यकता न थी, उस समय ट्रूमैनने अनावश्यक और अत्यन्त क्रूरतापूर्ण लाखों मनुष्योंकी हत्या, हिरोशिमा और नागासाकीपर परमाणु बम गिरा कर की। यदि ट्रूमैन अमरीकी साम्राज्यवादका आदर्श प्रतिनिधि है, तो इससे यह भी मालूम हो जाता है कि अमरीकी साम्राज्यवाद कितना निकृष्ट कोटिका है। उसे ऐसा होना भी चाहिए, क्योंकि पूंजीवादका चरम स्वरूप—साम्राज्यवाद—अपने अन्तिम दिनोंमें चरम क्रूर, चरम निकृष्ट छोड़ और कुछ हो ही नहीं सकता। परमाणु बमका उस वक्त चलाना केवल विश्व-राजनीतिमें अपनी धाक रखनेके लिए ही हुआ था, क्योंकि सभी जानते थे कि हिटलरको हरानेका ९० सैकड़ा श्रेय रूसको है।

कोरियामें आगका भड़क उठना बिलकुल अमरीकाकी युद्धके बादकी आक्रमणकारी नीतिका परिणाम है। यह बेशर्मीकी हद है, यदि अमरीका ३८ वीं अक्षांश रेखा ही नहीं, बल्कि भारतके गिलगित, ईरानके काकेशस, तुर्कीके आरमेनियासे १९१८ में छिने दो जिलों, ग्रीस, इटली (और अब युगोस्लाविया), आस्ट्रिया, जर्मनी, स्वीडन आदिकी सीमाओंको अपनी सीमा बतलाए; बतलाए ही नहीं, बल्कि वहाँ सैनिक तैयारियाँ करे और हर

तरहसे ऐसी घटनाओंको उत्पन्न करे, जिनके कारण एक चिनगारीसे सारी मैगजीनमें आग भभक उठे।

अमरीका निश्चय ही विश्वको उसी तरह अपने अधिकारमें करना चाहता है, जैसा कि हिटलरने सोचा था। हिटलरके सारे मनसूबोंको सोवियत् शक्तिने छिन्न-भिन्न कर दिया, यह अमरीका जानता है। वह अपने बड़े ऊंचे प्रोपगन्डेके भरोसे विश्वको भयभीत करना और अपने अनुचरों-की छाती फुलाना चाहता है, लेकिन वह और उसकी जूठी पत्तलोंको चाटने वाले दावा करते हैं, कि हम उच्च संस्कृतिके अनुयायी अपनी संस्कृतिकी रक्षा कर रहे हैं। आज कोरिया इस दावेको बिलकुल झूठा साबित कर रहा है। दक्षिणी कोरियाके सैनिओं और राजनैतिक नेताओंको अमेरिका क्यों नहीं उसी तरह फौलादका बना सका, जैसा कि सोवियत्ने उत्तरी कोरिया-के लोगोंको बनाया। निश्चय ही कोरियामें जो कुछ हुआ, उसके देखने-से "चिड़ियोंसे मैं बाज लड़ाऊं" वाली कहावत बिलकुल सच्ची सिद्ध होती थी। कोरियन लोगोंके ऊपर पिछली कई शताब्दियों से यह सन्देह भी नहीं किया जा सकता था, कि उनमें सैनिक शौर्य छिपा हुआ है। द्वितीय विश्व-युद्धतक इंगलैण्डने ठीका लिया हुआ था कि दुनियाके दूसरे देशोंकी सैनिक-शक्ति और सूझ-बूझपर वही फैसला दे। हालमें यह काम अमरीकाने अपने कन्धोंपर उठा रखा है। एक बार अमरीकनोंको वहाँसे भागते दम नहीं मिल रही थी। एक-एक करके कोरियाके बड़े-बड़े शहर और उपजाऊ इलाके अमरीकाके पिट्ठू तथा हद दर्जेके पतित री और उसके गुट्टके हाथ से निकलते गये।

यदि अमरीकाने निःस्वार्थ-भाव और ईमानदारीसे काम किया होता तो जन और सम्पत्ति—दोनोंमें बड़ा—दक्षिणी कोरिया इतना कमजोर न साबित हुआ होता! कम्युनिस्टोंको तुम हजार गाली दो और रेडियोसे चिल्लाते रहो। लेकिन यह तो सच्ची बात है कि ९० प्रतिशत आदमियोंको पूर्ण मानव बनानेकी ईमानदारीसे कोशिश करते हैं। यही कारण था जो एक बार 'चिड़िया' के सामने 'बाज' भागा। लेकिन, बेचारा कोरिया अकेला!!

अभी कुछ महीनों पहले तक चीनको अकालके मुंहमें पड़ा तथा नगरों-के उजाड़ तथा भूखसे तबाह होनेका प्रचार किया जाता था; यही नहीं, अमरीका अपनेको परम परोपकारी दिखलाते हुए अनाज भेजने का भी प्रस्ताव कर रहा था—क्या यह सारा प्रोपगन्डा झूठा साबित नहीं होता, जब

कि जुलाईमें शंघाईसे लौटे अंग्रेज कौंसिल-जनरलको कहना पड़ा है कि माओने बड़ी अच्छी तरह खाद्य-सामग्रीका संग्रह और वितरण किया, नगरोंमें पर्याप्त और उचित दामपर भोजन मिलता है।

निश्चय ही एशियामें अमरीका, इंगलैण्ड और फ्रांस आदिका एसियाई स्वतंत्रताके हामी होनेका दम भरना बिलकुल थोथी और खोखली बात है, इसपर कोई समझदार विश्वास नहीं कर सकता। क्या मलायामें वहाँके लोगोंकी स्वतन्त्रताके लिए अंग्रेज गोलियों और बमोंकी वर्षा कर रहे हैं? क्या फ्रांस और उसके पीठपर खड़ा अमरीका वियतनामकी जन-स्वतन्त्रता-के लिए वहाँ खूनकी होली खेल रहे हैं? यह सोचनेकी बात है कि जहाँ इन साम्राज्यवादी शक्तियोंको स्थानीय जनताका हितैषी बननेकी घोषणा करनेपर भी बाहरसे सैनिक ले जाकर लड़ना पड़ रहा है, वहाँ अपनी स्वतन्त्रताके लिए लड़ने वाले एसियाई देश चाहे मलाया हो, या वियतनाम, चीन हो या कोरिया—अपने बलपर लड़ते रहे हैं। इन सभी देशोंके कुओं-में भांग नहीं पड़ गई है, न पागल कुत्तोंने काट खाया है कि लोग अपना हितैषी जाननेपर भी अब वहाँ इन साम्राज्यवादियों तथा इनके पिट्ठुओं को स्वेच्छापूर्वक कोई सहयोग देनेको तैयार नहीं है।

विश्वके दोनों दलोंमें कौन एसियाके हितका पक्षपाती है और कौन विरोधी है, इसे समझनेके लिए बहुत मेहनत करनेकी आवश्यकता नहीं। चीनमें चाँगकाई-शेककी पूर्ण पराजय और कोरियामें री की हारपर हार-को देखकर भी जो नहीं समझ पाता, उसे समझाना बेकार है। हमारे राजनैतिक कर्णधार इस बातको कुछ तो समझते हैं, तभी तो अमरीकाके तने रहनेपर भी नवीन चीनका स्वागत करनेके लिए तैयार हुए। कोरिया-के मामलेमें हमें क्या, बहुतसे तटस्थ व्यक्तियोंको विश्वास था कि भारत वह गलती नहीं करेगा जैसा कि इतनी जल्दी-जल्दीमें, सुरक्षा-परिषद्‌के दोनों प्रस्तावोंको स्वीकार करके हमारे नेताओंने किया। तटस्थताका सारा ढोंग पहलेसे भी कोई सार नहीं रखता था, क्योंकि इसे रूस स्वीकार नहीं करता था और एंग्लो-अमरीकन साम्राज्यवादी नेहरूकी तटस्थताकी बातोंपर मुस्करा देते थे। लेकिन ऐसे राजनीतिक दिवालियेपनके लाने-की क्या आवश्यकता थी?

यदि कोरियाका झगड़ा बढ़कर विश्व-युद्धमें परिणत हो जाय, तो भारत क्या युद्ध-क्षेत्र बने बिना बाकी रहेगा? अमरीका रूससे बहुत दूर है, लेकिन अमरीकाकी युद्धाग्निमें पड़नेवाले भारतसे वह दूर नहीं है।

पिछले दो विश्व-युद्धोंमें लड़ाई भारत-भूमिपर नहीं हुई, लेकिन युद्ध कितना क्रूर होता है, इससे हम अपरिचित नहीं हैं। कानूनी बालकी खाल निकाल कर हमारे नेताओंका यह कहना बेकार है कि हम तो 'राष्ट्र-संघ' की ओरसे, कोरियामें होती कार्रवाई मात्रके समर्थक हैं, हम और आगे नहीं जाना चाहते। लड़ाई आगे जायेगी, तो झख मारके आपको आगे जाना पड़ेगा ! भारतके राजनीति-कर्णधारोंको यदि अपनी राजनीतिका अजीर्ण था, तो मिश्रका अनुसरण करते, तटस्थ रह जाते। घंटों और दिनोंमें इतनी बड़ी बातका फैसला कर लेना और तटस्थताके सारे स्वाँगको हटाकर कोरिया-के मामलेमें एंग्लो-अमरीकन भेड़ियोंका अंधा अनुसरण करना और उस-परसे फिर विश्व-शांतिके लिए मास्को, वाशिंगटन और लंदन तक छलांग मारनेके लिये तैयार नेहरूजीका विचित्र नाटक है ! यदि शांति स्थापित होगी—या कोरियाकी आग सारे विश्वमें नहीं फैलेगी, तो पाँचों सवारोंमें उम्मीदवार नेहरूके प्रयत्नसे नहीं, बल्कि इस भयसे कि अमरीकाके लिए रूस कुम्हड़बतिया नहीं है। अमरीकन सैनिकोंसे कई गुने अधिक बहादुर रण-निपुण रूसी और उसके सहचर हैं। रूस भी पिछले छ: वर्षों तक घास नहीं छीलता रहा है। उसने भी परमाणु-बम और न जानें क्या-क्या दूसरे हथियार तैयार किये हैं। रेडियोके चिल्लाने और अखबारोंके पन्ने काले करने तथा बढ़-बढ़ कर गाल बजानेसे रूसको पछाड़ा नहीं जा सकता। यदि साम्राज्यवादियोंने परमाणु-बमका सहारा लिया, तो रूसके परमाणु-बम, गैस-बम, कीटाणु-बम भी वर्षाकी बूंदोंकी तरह उनपर गिरेंगे। यही डर था, जो ट्रूमैनको बर्लिनपर गिरा कर परमाणु-बमकी परीक्षा करने-की हिम्मत नहीं हुई। हिरोशिमाके आततताईपनका अनुमोदक और सहकारी चर्चिल बर्लिनके लिये इसलिये भी तैयार नहीं हो सका था, कि लंदन ही नहीं, इंगलैंडके सभी बड़े-बड़े शहरोंमें फिर "रहा न कोऊ कुल रोवनिहारा" वाली बात होती।

हमारे राष्ट्र-कर्णधारों को हो क्या गया है ! अमरीकाके लिये सब 'करम' करनेपर भी उसकी छोह इनकी ओर नहीं दीख पड़ती, न डालरके लिये वह तोड़ेका मुंह खोलनेके लिये तैयार है और न कश्मीर तथा हैदरा-बादके कामोंको ही फूटी आँखोंसे वह देखना चाहता है। विश्व-रंगमंच-पर भारतका अमरीका कभी हितैषी नहीं हो सकता, फिर उसके लिये इतने पापोंको करनेके लिये हम क्यों उतावले बने हुए हैं ? एसिया एसिया-वासियोंका होगा। फ्रांस, इंगलैंड और उनके आजके मुरब्बी अमरीकाको

यहाँसे बोरिया-बंधना बाँध कर अन्तमें मुंह काला करना ही होगा। फिर उगते हुए उदीयमान सूरजको छोड़कर अस्ताचलकी ओर जाने वाले साम्राज्यवादी अंधकारका अनुसरण करनेसे क्या लाभ और अपने एसियाई-भाइयोंकी नजरोंके सामने देशको नीचा गिरानेकी क्या आवश्यकता?

परिशिष्ट-अध्याय ३

विमान-सेना युद्ध सामग्री

१. विमान-सेना—

"द्वितीय विश्व-युद्धके पहिले भारतमें विमानोंकी मरम्मतके भी साधन नहीं थे, उनके बनानेकी तो बात ही दूर थी। जब जापान युद्धमें शामिल हो गया, तो वायुसेनाके कार्यका महत्त्व भारतमें बहुत बढ़ गया। बढ़ती हुई भारतीय वायुसेना और मित्र-शक्तियोंकी वायुसेनाने भारतको अपना कार्य-क्षेत्र बना लिया, जिसके लिये आवश्यक हो गया, कि विमानोंकी मरम्मत और संधारण तथा उनके अलग-अलग पुर्जों तथा साधनोंका ही नहीं, बल्कि सारे विमानके निर्माणका तुरन्त प्रबन्ध किया जाय। सरकार और बालचन्द हीराचन्द जैसे निजी उद्योगपतियोंके संयुक्त प्रयत्नसे यह अत्यन्त आवश्यक कार्य पूरा हुआ।

इस बातका पहिला प्रयत्न हिन्दुस्तान विमान लिमिटेडने किया, जिसकी स्थापना बंगलोरमें सन् १९४० ई० में हुई। इस कंपनीने बाहरसे मंगाये पुर्जोंसे विमान-जोड़क-प्लान्ट (कारखाने) के तौरपर कार्य आरंभ किया। यह निजी कंपनी थी, किन्तु भारत-सरकार और मैसूर-दरबारके काफी भागीदार होनेसे उनके प्रतिनिधि भी इसकी प्रबन्ध-समितिमें सम्मिलित थे। सन् १९४१ ई० में इस फैक्टरीने अपना पहिला विमान तैयार किया। पीछे फैक्टरीका निर्माण-संबंधी प्रोग्राम छोड़ दिया गया, जिसमें कि हिन्दुस्तानमें उपयुक्त होनेवाले अमेरिकासे खरीदे सभी विमान-इंजिनों तथा विमान-साधनोंकी मरम्मत और पुरजोंको ठीक करनेके कामको ही प्रधानता दी जा सके। इस कामको इस कारखाने तथा भारतके असैनिक-उड़ान-टेकनिकल-शिक्षणालयोंमें शिक्षित भारतीय यांत्रिकोंने किया। सन् १९४२ ई० में दो-तिहाई पूंजी लगाके (बाकी पूंजी मैसूर दरबारकी रही) भारत-सरकारने इस कारखानेको अपने हाथमें ले लिया। अब फैक्टरी दसवीं अमेरिकन वायुसेनाकी भारी मरम्मतका डिपो बन गयी। इसने ब्रिटिश-वायुसेनाके काममें आते अमेरिकन विमानोंके भी एक भागका काम किया। पीछे इस कंपनीके स्वामित्त्वमें परिवर्तन हो गया।

भारतमें काम करनेवाले अंग्रेजी और भारतीय विमानोंकी मरम्मत

और संधारणके लिये असैनिक-संधारण-एकक (सी० एम० यू०) भिन्न-भिन्न स्थानोंमें खोले गये, जिनकी देख-रेख वैमानिक विभागके हाथमें थी। सन् १९४३ ई०के अंततक ऐसे आठ एकक काम कर रहे थे। इन एककोंमें भारतीय स्टाफ काम करता था, जिसकी देख-रेख ब्रिटिश वायुसेनाके यंत्र-विशारद करते थे। कानपुरका एकक युक्तप्रांतकी सरकारके नियंत्रणमें था, बाकी सभी असैनिक कंपनियोंके हाथमें। यद्यपि देशमें विशेष हथियारों और औज़ारोंकी अत्यन्त कमी थी, तो भी असैनिक-मरम्मत-संगठनने मई सन् १९४४ ई०के अंततक ७०० विमानों और १७५० विमान-इंजनोंकी मरम्मत की, साथ ही विमानोंके सुधारण और निरीक्षणका भी बहुत सा काम किया। सन् १९४४ ई०में प्रोपेलरों, पक्षों, बेतार-यंत्रों, सैनिक यातायातकी मोटरों तथा वायुसेनाके साधनोंकी बहुत-सी दूसरी वस्तुओंकी मरम्मतका भी काम बढ़ गया। मई सन् १९४४ ई० में केवल एक एककसे मरम्मत किये हथियारोंकी संख्या दो हजारसे अधिक थी।

ताता-विमान कंपनी और इंडियन-नेशनल-एयरवेजके साथ विमानोंकी मरम्मत और संधारणका ठीका किया गया, जिसके परिणामस्वरूप सन् १९४४ ई० के आरंभमें ताता-असैनिक-संधारण-एककने काम आरंभ किया। सारे भारतमें और भी असैनिक कंपनियोंने मरम्मतका काम हाथमें लिया और उनके कार्यका महत्त्व बहुत तेजीसे बढ़ा।

बेकार पड़े विमानोंके उपयोग या मरम्मतके योग्य भागोंको काममें लाना मरम्मतके कामका एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गया। इस तरहके भाग मरम्मतके काम तथा नये-नये अंगों और साधनोंके निर्माणमें काम आते। इसके लिये सन् १९४४ ई० में लखनऊ मेंताता-विमान कंपनी द्वारा नियंत्रित एक नया असैनिक-संधारण-एकक स्थापित किया गया।

विमान-साधनों और भागोंका निर्माण—इस बातकी भी कोशिश की गयी, कि भारतमें विमानोंके साधन और भाग निर्मित गिये जायें, लेकिन बाहरसे मशीन-टूलोंके आनेमें देरी और टेकनिकल कर्मियोंकी कमीके कारण बाधा हुई। भारतके भीतर विमानिक-इंजीनियरीकी शिक्षाके सुभीतेका अभाव भी भारी बाधक था। तो भी सन् १९४३ ई०में भारतकी भिन्न-भिन्न फैक्टरियोंमें अंग्रेजी वायुसेनाके उपयोगके लिये कई हजार छोटे-बड़े पुरजों वाली नाना प्रकारकी १३२७० चीजें बनायी गयीं। विमान-ढांचों और विमान-इंजनों दोनोंके कितने ही छोटे-छोटे अलग पुरजे बहुत बड़ी संख्यामें असैनिक-मरम्मत-संगठनके उपयोगके लिये भी बनाये गये। इस कामको

मद्रास, बंबई, लाहौर, कलकत्ता, कानपुर और कराचीके छ: मंडलीय-केन्द्रों द्वारा नियंत्रित असैनिक-संधारण-एककों तथा असैनिक कंपनियों-ने किया। विमान-विभाग द्वारा नियत किये गये मानके अनुसार अतिरिक्त पुरजे, ए० जी० एस्० चीजें, भूमि-साधन, इंजन-परीक्षा, बेंच, मिस्त्रीखानेके हथियार तथा नाना भांतिके प्लान्ट और साधन बनाये गये। बनी हुई चीजोंकी संख्या भारतमें प्राप्त सामग्री तक ही सीमित थी। यदि भारतमें न पैदा हो सकनेवाले विशेष प्रकारके फौलाद तथा उपादान प्राप्त हो सकते, तो उनकी संख्या और भी काफी बढ़ाई जा सकती थी। आर्डनेंस (सैनिक) फैक्टरियोंने इस काममें काफी सहायता दी, जिनमेंसे तीन आधुनिक मशीन-टूलों और प्लान्टोंसे सज्जित हो सन् १९४४ ई० के अंत तक पूरा उत्पादन करने लगी थीं। उन्होंने भूमि-हथियार-पुंज तथा उड़ान-हथियार-पुंज बनाये। इनमें ६५२ चीजें होती हैं, जिनके लिये १२ हजार पुरजोंके बनाने की आवश्यकता पड़ती है। कुछ कम परिमाणमें भारतकी दूसरी सैनिक फैक्टरियोंने भी हथियार-पुंज बनाये।

विमानोंके जेटीशन टंकके बनानेमें भी काफी प्रगति की गयी। सन् १९४४ई०में १० हजार आलमोनियम और ५ हजार प्लाईवूड (कृत्रिम काष्ठ-फलक) के टैंक हरिकेन विमानोंके लिये तैयार किये गये। सन् १९४४ ई०के अंत तक उनसे बड़े १० हजार टैंक थंडरवोल्ट विमानोंके लिये बनाये गये। भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा निकाले गये नये तरहके प्रयोगीय टैंक सफलता-पूर्वक निर्मित किये गये, जिनमें बहुत सस्ती तथा सुलभ सामग्री (लकड़ीके ढांचे या लाक्षागर्भित जूट) काममें लायी गयीं। अपने यहाँ डिजाइन तथा निर्माण किये हुए बेतार और राडरसे युक्त विशेष तरहकी गाड़ियोंको सज्जित करनेका एक बड़ा प्रोग्राम भी सन् १९४४ ई०के अंत तक आरंभ किया गया। विशेष प्रकारके विमानिक फौलाद और हलकी मिश्रधातुओं-के अभावका प्रभाव इस निर्माण-कार्यपर पड़ा, किंतु तो भी इस तरह की वस्तुयें कुछ मात्रामें प्राप्त की गयीं तथा स्थानीय कारखानोंको प्रोत्साहित किया गया, कि वह निर्दिष्ट विशेषताके साथ बहुतसी उपरोक्त चीजोंका निर्माण करें।

भारतमें पैराशूट (विमान-छतरी) के बनानेका काम आरम्भ किया गया, जिसके बनानेमें कानपुरकी एक नयी फैक्टरी पूरी तौरसे लगा दी गयी। रसद-विभागके उत्पादन प्रोग्रामके अनुसार प्राय: ६: सौ मनुष्य-वाहक पैराशूट, १५ सौसे अधिक सामान गिरानेवाले रेशमी पैराशूट और प्राय: २३ सौ रसद गिरानेवाले सूती पैराशूट तैयार किये गये।

इसी समय ताता-विमान-कंपनीने, जिसके पास इस कामके लिये एक अलग असैनिक-संधारण-एकक था, नये विमानोंको खड़ा करनेका काम हाथमें लिया। सन् १९४४ ई० में उसके मासिक उत्पादनका औसत ७० विमान थे।

दिसम्बर सन् १९४२ ई० में "विमान-विभाग" नामसे एक नया विभाग संगठित किया गया, जिसका काम था विमानोंकी मरम्मत और संधारण तथा भारतमें काम करती वायु-सेनाओंके लिये सैनिक साधन तथा विमानके पुरजोंका निर्माण करना। लेकिन, जल्दी ही अनुभव किया गया, कि इसके लिये एक पृथक् डाइरेक्टरेट जनरल (महासंचालकत्त्व) की आवश्यकता है। इसलिये अक्तूबर सन् १९४३ ई० में एक पृथक् डाइरेक्टरेट-जनरल स्थापित किया गया, जिसका मुख्य स्थान कलकत्तामें रखा गया। इसके दो प्रधान विभाग थे, जिनमें एकका संबंध निर्माणसे था और दूसरेका मरम्मत तथा संधारणसे। यह संचालकत्त्व वायु-सेनाके लिये विमानों मोटर-गाड़ियों और मोटर-बोटोंकी जिनमें इंजन, पुरजे तथा सहायक-सामग्री, रोधक-गुब्बारे, सिगनल तथा बेतार-सामग्री आदि भी सम्मिलित थी, मरम्मत और संधारणका काम करता था। मुख्य स्थान संगठनोंके अतिरिक्त कलकत्ता, मद्रास, बंबई, कानपुर, लाहौर और कराचीमें इसके सर्किल कार्यालय थे, जिनका प्रमुख डिप्टी-डाइरेक्टर था, जो अपने सर्किलके भीतरकी क्षमताके निरीक्षण और उपयोगका जिम्मेवार था। निरीक्षण-का काम वायुसेनाके निरीक्षक अफसर करते थे।

युद्धोपरान्त—मार्च सन् १९४६ ई० में ब्रिटिश विमान-मिशन भारत आया, जिसमें ब्रिटेनके रसद और विमान-उत्पादन-विभागके दो तथा ब्रिटिश-विमान-निर्माण-सभाके दो विशेषज्ञ थे। उक्त मिशनने विस्तारपूर्वक विमान-निर्माणमें भारतकी क्षमताका बड़ी गहराईसे अध्ययन किया। मिशनने बारकपुर, पूना और बंगलोरकी विमान-निर्माण तथा संधारण फैक्टरियों और कानपुर, काशीपुर और जबलपुरकी हथियार-फैक्टरियोंका निरीक्षण किया। मिशनकी सिफारिशपर भारत-सरकारने राष्ट्रीय विमान-उद्योगकी स्थापनाका निश्चय किया, और सामने यह लक्ष्य रखा, कि देश-की वायुसेना और असैनिक विमान-यात्राके लिये आवश्यक विमानोंके बनानेके संबंधमें २० वर्षके भीतर भारतको पूर्ण स्वावलंबी बना दिया जाय।

मिशनने सिफारिश की, कि विमान-उत्पादनका काम पहिले बंगलोर

फैक्टरीमें आरंभ किया जाय, क्योंकि उसको विमानके कामका सबसे अधिक अनुभव है और उसके पास ऐसे यंत्र-कर्मियोंकी सबसे अधिक संख्या है, जिन्हें कि विमान-उत्पादनके संबंधमें इकट्ठा काम करनेका काफी अनुभव है। उसे इस बातका भी श्रेय है, कि उसने अपने यहाँ एक बिलकुल मौलिक ग्लाइडर (प्लवंग-विमान) का डिजाइन, निर्माण और सफलतापूर्वक उड़ान किया। विशेषतः उसके पास बंगलोरके भारतीय-विज्ञान-प्रतिष्ठानमें तत्संबंधी अनुसंधान और शिक्षाका सुभीता भी है।

आरंभमें विमानोंकी माँग अपेक्षाकृत कम होगी, इसलिये पहिले सिर्फ एक फैक्टरी खोलनेकी सिफारिश की गयी। यातायातकी वृद्धिके बाद पीछे दूसरे केन्द्रोंमें भी विमान-निर्माण आरंभ किया जा सकता है। इस योजनाके लिये प्रथम पाँच वर्षोंमें प्लान्ट (कारखाने) पर १३ लाख रुपया अतिरिक्त व्यय होनेका अनुमान किया गया। बंगलोर फैक्टरीमें पहिलेसे मौजूद यंत्र-साधनोंको इस खर्चमें नहीं गिना गया।

भारतका विमानिक उद्योग-धन्धा घरेलू बाजारके विकासपर निर्भर करता है। अभी भारतीय बाजार इतना बड़ा नहीं है, कि उसपर एक विमान-उद्योग निर्भर कर सके। लेकिन भविष्यमें इतनी लंबी दूरी रखनेवाले हमारे इस विशाल देशमें विमान-यात्रा अवश्य अधिक प्रचलित होके रहेगी। भारतीय विमान-उद्योग बहुत काफी समय तक अधिकतर स्वदेशी बाजारपर निर्भर करेगा, क्योंकि विदेशी बाजारोंमें इंगलैंड और अमेरिका जैसे इस उद्योगमें आगे बढ़े देशोंका मुकाबिला करना आसान नहीं होगा..."

(I. B. pp. 221-24)

१—"ब्रिटिश-विमान-मिशनने विमान-उद्योगके संचालनके संबंधमें भारतीय सरकारको परामर्श दिया था, कि यह उद्योग सफलतापूर्वक संचालित नहीं किया जा सकता, यदि सरकार दृढ़ निश्चय नहीं कर लेती, कि खर्च और गुण-दोषका खयाल न करके वह भारतीय वायुसेनाके लिये विमान उसीसे खरीदेगी। भारत सरकारने इस बातकी जाँच की कि भारतीय वायुसेनाके कामपर हिन्दुस्तान-विमान-कंपनीको कहाँ तक निर्भर रहना चाहिये।"

(I. B. p. 356)

२—उपरोक्त पंक्तियाँ उस समय लिखी गयी थीं, जब कि भारत पूर्णतया अंग्रेजोंके हाथमें था। आज भारत अपने भाग्यका विधाता है और एक स्वतन्त्र देशके तौरपर वर्त्तमान परिस्थिति तथा पाकिस्तानके संबंधके

कारण सैनिक उद्योग-धन्धेकी उसे बड़ी आवश्यकता है। बिना उसके कोई देश अपनेको पूरी तौरसे स्वतन्त्र नहीं रख सकता। अब कोशिश की जा रही है, कि दो वर्षमें उड़ान सिखानेवाले विमान पूरी तौरसे हमारे देशमें बनने लगें।

३—आज सन् १९४९ ई० में भी हमें काफी मात्रामें सैनिक सामग्री बाहरसे मंगानेकी आवश्यकता हुई है। ३१ मार्च सन् १९४९ ई० को समाप्त होनेवाले वर्षमें बाहरसे हमने उन्हें निम्न प्रकार मंगाया:—

वस्तु	मात्रा	मूल्य (रू०)
बन्दूकें, कारतूस	४४,७५८९६	७,१२,६७३
राइफल और दूसरे कारतूस	६,२५,२७३	१,५७,६६०
(इनमें इंगलैंड और दूसरे देशोंसे आये सामान निम्न प्रकार हैं)		
इंगलैंडसे	५०,०७,६६६	८,५७,३२७
दूसरे देशोंसे	९३,५०३	१३,००६

(A. C. pp. 34-35)

२. युद्ध सामग्री—

४—सैनिक उत्पादनकी संख्या सैनिक रहस्य होनेके कारण प्रकाशित नहीं की जाती, किंतु लड़ाईके समयके कुछ वर्षोंमें बाहरसे मंगाये गये विस्फोटक पदार्थोंकी मात्रा और मूल्य इस प्रकार थे:—

वस्तु	१९३९–४० पौंड	१९३९–४० रुपया	१९४१–४२ पौंड	१९४१–४२ रुपया	१९४३–४४ पौंड	१९४३–४४ रुपया
उड़ानेका पलीता	५८६४३४,	४४९११८,	१०१७९९७,	११३४०८५,	१२२२११०	१३९१८८७
उड़ानेका जिलेटिन	२०७०००,	१७३४८६,	-	-	-	-
डेनामाइट	७५,	५७	-	-	-	-
जिलेटिन डेनामाइट	१४५१३५०,	१०६५७०८,	९७१७००,	७२३२१३,	१२६६०२०	१०१०५०००
दूसरे नाइट्रेट विस्फोटक	४०९०००,	२४८८६४,	१२१८९५०,	९३८५७८,	६३०००,	८९९८८
विस्फोटक पलीता	१०७१७६५०,	२७७६००,	६४०९५००,	१६००६५,	६०२००००,	१०८७४६
दूसरी चीजें	५५२९४९,	४७९३४१,	१९०५०१,	१३२६७४,	५९६३९५,	४८८८७७

(I. B. pp. 270)

५—"तोलुएन महाविस्फोटक ट्रि-नी-टी-तोलुएन (टी० एन० टी०) बनानेकी उपादान-सामग्री है। लड़ाईके अन्तिम वर्षमें हमारे यहाँ साढ़े चार लाख गैलन तोलुएन कोयलेकी गैससे बनाया जाता था...

द्वितीय विश्व-युद्धके आरंभतक अरुवनकडू (नीलगिरि, तमिलनाड) में विस्फोटक बनानेका सरकारी कारखाना था। पूनाके पास किरकीमें गोला-बारूदकी फैक्टरी थी। किरकीके कारखानेको महाविस्फोटक द्रव्य तैयार करनेके लिये पहिले ही बहुत बड़ा और नये ढंगका बना दिया गया था, जिससे द्वितीय विश्वयुद्धमें विस्फोटकके संबंधमें भारत स्वावलंबी था।

अरुवनकडू—इस कारखानेमें गंधक, तेजाब तथा उससे बननेवाली चीजें तथा नाइट्रिक (शोरा) तेजाब तैयार किया जाता है। वहाँ अल्काहल (मद्यसागर) से एसिटोन भी बनाया जाता है। बहुत सा कच्चा माल कारखानेके आसपासमें प्राप्य है। ग्लिसेरिन देशी साबुन-कारखानोंसे मिल जाता है और कपासके मिलनेमें कोई दिक्कत नहीं। २० पौंड विस्फोटक-कपास बनानेमें ६५० पौंड मिश्रित तेजाबकी निम्न परिमाणमें आवश्यकता होती है:—गंधक तेजाब ७१०% नित्रेत (नाइट्रेट) तेजाब २१०% पानी ७.५०% और नत्रीय तेजाब मल ०.५०%। ३० से ३५ डिग्री सेन्टीग्रेटके तापमें शोधित कपासको १० मिनट तक डुबाकर हिलाया जाता है, फिर उसे निकाल कर खौलते पानीमें धो दिया जाता है।

किरकी—यह विस्फोटक कारखाना पूनासे चार मीलपर अवस्थित है। यहाँ मुख्यतः टी० एन० टी० अमोनियम-नत्रित और अमातोल जैसे महाविस्फोटक बनाये जाते हैं। दूसरी चीजें कच्चे मालके कारखानेमें तैयार की जाती हैं।

(I. B. pp. 266-268)

परिशिष्ट-अध्याय ४

उद्योगीकरण

१—"सरकारको साहसके साथ दृढ़ उद्योगीकरणकी नीति ठीक करके उसकी घोषणा कर देनी चाहिये और उसे बिलकुल स्पष्ट और सुविनिश्चित रीतिसे सामने रखना चाहिये, जिसमें कि जनताके मनमें कोई शंका न उठे। इस नीतिमें असंदिग्ध तौरसे मोटरकार, पोत-निर्माण, मशीन-टूल, पूंजीमाल, खाद, भारी रसायन आदि जैसे मौलिक उद्योगोंके आरंभ और विकास करनेके संबंधमें सरकारके भावोंका स्पष्ट निर्देश होना चाहिये....

फ्रांस और इटली जैसे देशोंमें मोटर-उत्पादनको बड़े परिमाणमें विकसित करनेके लिये राज्यने केवल भारी तटकर द्वारा ही मोटर-उद्योगकी सहायता नहीं की, बल्कि सीधे भी प्रोत्साहन और संरक्षण प्रदान किया। अंदाज लगाया गया है कि सरकारी कामके यातायात वाहनो, लारियों, ट्रंकों तथा दूसरी यांत्रिक गाड़ियोंमेंसे आधे स्वदेशी कारखानोंकी होती हैं। सरकार, दूसरी सार्वजनिक संस्थाओं तथा अर्ध-सरकारी संस्थाओं द्वारा इन चीजोंकी इतनी अधिक खरीद होनेके कारण उत्पादकोंको पहिले हीसे काफी बड़ा बाजार तैयार मिल जाता है, जिससे वह अपने कारबारके विस्तारके संबंधमें अपनी योजनाको बहुत तेजीसे आगे बढ़ा सकते हैं। टैक्सी कारों और सार्वजनिक किरायेकी गाड़ियोंकी रजिस्ट्री करनेमें भी वहाँकी राष्ट्रीय सरकारोंने नियम कर रखा है, कि उनका खास सैकड़ा—जो आधेसे अधिक होता है—स्वदेशमें निर्मित हो...। लंदनमें प्रत्येक टैक्सी कारको इन नियमोंका पालन करना पड़ता है, जिसका अर्थ यह है कि विदेशी टैक्सी कार लंदन नगरमें नहीं चलाई जा सकती। इन देशोंमें विदेशकी बनी टैक्सीकी रजिस्ट्री होनी बहुत मुश्किल है। युक्तराष्ट्र अमेरिकामें मुश्किल से ऐसी कोई टैक्सी कार मिलेगी, जो कि वहाँ की बनी नहीं है। आजकल वहाँ प्रतिवर्ष ५० लाख मोटरकारें बनाई जाती हैं—भारतमें आजकल पुरजा जोड़कर मोटर बनानेके कुछ कारखाने

बंबई और पश्चिमी भारतमें हैं। अब कलकत्ता और मद्रासमें भी पुरजा जोड़नेवाले कारखाने स्थापित करनेकी कोशिश की जा रही है। आशा करनी चाहिये कि कुछ ही सालोंमें हमारा देश मोटरके अधिकाँश पुरजों-इंजनों और चासियोंको भी बना सकेगा। मोटर-शरीर बनानेका काम तो हमारे यहाँ कितने ही समयसे हो रहा है। आजकल सरकार प्रोत्साहित कर रही है, कि बनी-बनायी गाड़ियोंकी जगह मोटरके अलग अलग भाग, इंजन और चासीको मंगाया जाय, जिसमें उनके जोड़नेके काममें अधिक भारतीयोंको काम मिले। आयात कर भी ऐसे निर्धारित किया गया है, कि बनी-बनायी कारोंपर उसका भार अधिक पड़ता है। साथ ही यह भी कि खास मूल्यसे अधिककी गाड़ियाँ अमेरिका जैसे कड़े सिक्के वाले देशोंसे न मंगायी जायें...

पोत-निर्माण—अत्युन्नत उद्योगप्रधान देशोंके इतिहाससे प्रकट है, कि बिना राज्यकी सक्रिय सहायता तथा दादनीके आजकल एक क्षमताशाली और विशाल वाणिज्य-पोत तथा नौ-सैनिक बेड़ा तेजीसे तैयार नहीं किया जा सकता। युक्तराष्ट्र अमेरिकाके वाणिज्य-पोत तथा सैनिक बेड़ेका निर्माण अधिकतर राज्यके सक्रिय अर्थ-साहाय्यका परिणाम है। युद्धसे पूर्वके वर्षोंसे तुलना करनेपर मालूम होता कि, उसकी अपेक्षा इंगलैंड और युरोपमें बने सवारी पोत अधिक सस्ते थे, तो भी अमेरिकाने दुनियाका सबसे बड़ी नौ-सैनिक बेड़ा अपने यहाँ तैयार किया।

यदि हम अचिर कालमें अपनेको तैयार और स्वावलंबी बनाना चाहते हैं, तो अंतरिम कालमें हमें उसका मूल्य चुकाना पड़ेगा। पिछले सालों निस्संदेह भारतीय वाणिक्-पोतकी टनमात्राको डेढ़से तीन लाख करनेकी कोशिश की गयी है और **जल-उषा, जल-आजाद, जल-जवाहर, जल-प्रभा** जैसे ८ हजार टनवाले मध्यम आकारके कुछ स्टीमर बनाये गये हैं। लेकिन आज भी तटीय वाणिज्यमें हमारा भाग सिर्फ २५ प्रतिशत है और विश्व-वाणिज्यमें तो १० प्रतिशतका चौथाई भी नहीं है। सन् १९४८ ई० में हमारा विदेशी वाणिज्य ८ अरब रुपयेका था, किंतु उसमें हमारा भाग २० प्रतिशत सैकड़ेसे अधिक नहीं था। भारतवर्ष प्रथम विश्वयुद्धके बाद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उद्योगप्रधान देशोंमें आठवाँ समझा गया, और ब्रिटिश विश्व-कोश उसे विश्वके प्रमुख राष्ट्रोंमें पाँचवां मानता है।

इसी तरह मशीन–टूल, रेल-डब्बे, रेल-इंजन, विद्युतशक्ति, पूंजीमाल और भारी रसायनके उद्योगोंको भी सरकारकी ओरसे बहुत अधिक क्रियात्मक सहायता देनी होगी।

(P. C. pp. 123-28)

परिशिष्ट-अध्याय ५

योजना और साधन

१. योजना—

१. **कांग्रेस योजना**—"योजनाबद्ध अर्थनीति **रामभरोसे** नीतिकी ही प्रसूति है। पश्चिमी युरोपकी जनतंत्रताओं या युक्तराष्ट्र अमेरिकामें पूंजीवादी राजनीतिकी चहारदीवारीके भीतर ही रहते योजना बनानेकी कोशिश की गयी, इसीलिये वह अपने पूर्ण रूपमें विकसित नहीं हो सकी। सोवियत रूसके तजरबेकी अभूतपूर्व सफलताने इसकी सारी क्षमताको प्रकट किया, और सारी दुनियामें आर्थिक योजनाके लिये असीम उत्साह पैदा किया। अपने पिछड़ेपनके लिये दुःख्यात रूस जैसे देशमें इतने थोड़े समयमें जो जादू जैसा परिवर्तन किया गया, उसने लोगोंको सभी आधुनिक आर्थिक मूलभूत समस्याओं—अपार संपत्तिके भीतर दरिद्रताकी पहेलीका हल सोचनेके लिये मजबूर किया। इस प्रकार योजना जीवनका एक दर्शनसा बन गया, और उसे बहुतोंने स्वीकार किया।

"हमारा देश भौतिक और मानुषिक संपत्ति स्रोतों से भरपूर है, किंतु जहाँ तक उद्योगका संबंध है, भारत अत्यन्त पिछड़ा और अविकसित देश है। इसीलिये" "भारतके वास्ते एक योजनाबद्ध अर्थनीति" के लेखक तथा भारतमें योजनाकरणके अग्रदूत विश्वेश्वरैयाने औद्योगिक विकास पर अपना सारा ध्यान लगाया।"

(P. I pp 10-11)

(२) "भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष श्री सुभासचन्द्र बसुकी प्रेरणा से प्रादेशिक उद्योग-मंत्रियों और उनके परामर्शदाताओंका २, ३ अक्तूबर सन् १९३८ ई०को दिल्लीमें एक सम्मेलन हुआ। यह सम्मेलन इस निष्कर्षपर पहुँचा, कि दरिद्रता, बेकारी राष्ट्ररक्षा या साधारणतया आर्थिक पुनरुज्जीवनकी समस्याएं बड़े पैमानेपर उद्योगीकरणके बिना हल नहीं की जा सकतीं। भारतके आर्थिक इतिहासमें प्रथम बार इस सम्मेलनने राष्ट्रीय योजनाके एक व्यापक उपक्रमकी आवश्यकता स्वीकार की और अपने एक प्रस्तावमें साफ तौरसे कहा, कि योजनामें हमारी राष्ट्रीय आवश्यकताओं

और संपत्ति-स्रोतों तथा देशकी वर्त्तमान विशेष परिस्थितियोंको सामने रखते हुए भारी और मूलभूत उद्योगों, मझोले उद्योगों, कुटीरशिल्पोंके परस्पर संबद्ध विकासका बंधान होना चाहिये ।"

(P. I. p. 1)

(३) अपने निश्चयको कार्य-रूपमें परिणत करनेके लिये सम्मेलनने एक योजना-समिति नियुक्त की । इस राष्ट्रीय योजना समितिके पंडित जवाहरलाल नेहरू प्रमुख तथा प्रसिद्ध अर्थशास्त्री के०टी० शाह मुख्य सचिव बनाये गये । समितिके मतमें जनतांत्रिक व्यवस्थाके अंदर योजनाकी व्याख्या करनी होगी । उपभोग, उत्पादन, पूंजी लगाने तथा व्यापारका निःस्वार्थी विशेषज्ञों द्वारा प्रक्रियात्मक समायोजन एवं राष्ट्र की प्रतिनिधि भूत संस्थाओं द्वारा निश्चित सामाजिक लक्ष्यके अनुसार आयका वितरण—ऐसी योजनाको केवल आर्थिक तथा जीवनतलके उत्थानकी दृष्टिसे ही नहीं देखना होगा, बल्कि उसमें सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों और जीवनके मानवी पक्षोंका भी समावेश होगा ।" सामाजिक न्याय किसी भी सबल तथा स्वीकरणीय राष्ट्रीय अर्थयोजनाका सार है । बढ़े हुए उत्पादनके साथ-साथ समुचित विभाजन होना चाहिये । करांचीके कांग्रेस-अधिवेशनमें स्वीकृत मौलिक अधिकार संबंधी प्रस्ताव द्वारा पहिली बार कांग्रेसने अपनी आर्थिक नीति घोषित की । इसमें निर्धारित किया गया, कि आर्थिक जीवनका संगठन सामाजिक न्यायके सिद्धांतोंके अनुरूप होना चाहिये, जिसमें कि हर एक व्यक्तिके लिये भद्र-जीवनतल सुनिश्चित रहे ।

पंडित जवाहरलाल नेहरूने राष्ट्रीय योजना समितिके उद्‌घाटनके समय भाषण करते हुए जोर दिया था, कि नाना भांतिके उद्योगों तथा तत्संबंधी कार्यकलापोंकी विशाल योजनाके किसी भी आन्दोलनके सम्मुख कोई निश्चित लक्ष्य होना चाहिये । राष्ट्रीय-योजना-समितिने इस लक्ष्यके बारेमें कहा—"ऐसे समतामूलक समाजको स्थापित करना, जिसमें प्रत्येक व्यक्तिका आत्मप्रकाशन तथा आत्मपरिपूरणके लिये समान अवसरका बंधान हो, तथा इस समान अवसरकी प्राप्तिको वास्तविक बनानेके लिये प्रत्येक व्यक्तिको एक अल्पतम पर्याप्त सभ्य जीवनतलकी प्राप्ति निश्चित हो ।"

समितिके प्रमुखने साधारण समितिके तृतीय अधिवेशनके उद्‌घाटन-भाषणके समय मई सन् १९४० ई० में राज्यके संबंधमें कहा था—"हमारा

लक्ष्य है, एक स्वतंत्र तथा जनतांत्रिक राज्य स्थापित करना जिससे व्यक्ति और समष्टिके राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक मौलिक अधिकारोंकी प्राप्ति पक्की होगी और तत्संबंधी कर्त्तव्य तथा बाध्यताएं निर्धारित होंगी। वह राज्य प्रगतिशील होगा, और सभी वैज्ञानिक तथा दूसरे ज्ञानको सारी जनताकी उन्नति और भौतिक तथा सांस्कृतिक सुखाभिवृद्धि तथा उसके आध्यात्मिक योगक्षेमके लिये इस्तेमाल करेगा।"

समितिने राष्ट्रीय योजनामें राज्यकी इतिकर्तव्यताके बारेमें कराची कांग्रेस-अधिवेशन के मौलिक अधिकार वाले प्रस्तावको स्वीकार किया।
(P. I. pp. 2-4)

२—**बंबई योजना**—राष्ट्रीय-योजना-समितिकी-नियुक्ति राष्ट्रीय योजना बनानेके लिये हुई थी, किंतु देशकी राजनीतिक परिस्थितियोंने उसे आगे बढ़ने नहीं दिया। द्वितीय विश्वयुद्धके मध्यमें ही भारतके आठ बड़े-बड़े उद्योगपतियों (पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, ज० र० द० ताता, घ० दा० बिड़ला, अर्दशीर दलाल, श्रीराम, कस्तूरभाई लालभाई, अ० द० शराफ और डाक्टर जानमथाई) ने भारतके **आर्थिक-विकासकी योजना**—बनाई, जो बंबई योजना या ताता-बिड़ला योजनाके नामसे भी प्रसिद्ध है। यह योजना तीन पंचाब्दियोंमें १०० अरब रुपयोंको लगाकर पूरा करनेके लिये बनायी गयी, और आशा प्रकट की गयी थी, कि इस योजना द्वारा देशकी आय प्रति-व्यक्ति इतनी बढ़ जायेगी, कि "अल्पतम आवश्यकताओंकी पूर्तिके बाद प्रत्येक व्यक्तिके पास जीवन-उपभोग तथा सांस्कृतिक कार्य-कलापोंके लिये पर्याप्त धन बच रहेगा।"

इस योजनाका सबसे अधिक जोर देशके उद्योगीकरणपर था, तो भी इसमें कृषि-संबंधी विकासका भी ध्यान रखा गया था। देशकी जनसंख्याको पर्याप्त भोजन देनेके लिये योजनामें कृषि-उत्पादनको १३० सैकड़ा बढ़ानेकी बात थी। कृषिकी उत्पादन-वृद्धिके लिये खेतोंकी चकबंदी और सहयोगी खेतीपर बल दिया गया था और किसानोंको ऋणसे मुक्त करनेकी बात कही गयी थी। कृषिकी उन्नतिके लिये निम्न प्रकार खर्च करनेका सुझाव रखा गया था—

	एकबार	**प्रतिवर्ष**
	(करोड़ रु०)	
कृषिभूमि संरक्षण	२००	१०

	एकबार	प्रतिवर्ष
कार्य चालक पूंजी	२००	२५०
नहर आदि	४००	१०
कूएं	५०	-
आदर्श फार्म	१९५	१३०
	१०४५	४००

यातायातके साधनों—रेलों, सड़कों, तटीय नौवाहनों—पर योजनामें विशेष ध्यान देना जरूरी था। सन् १९३८-३९ ई० में भारतमें ४१,००० मील रेल-सड़कें थी, जिसे ४३४ करोड़ एकबार तथा ९ करोड़ वार्षिक लगा कर ड्योढ़ा अर्थात् ६२, ००० मील करना था। तीन लाख मीलको सड़कोंको दूना कर देना था। इस प्रकार—

	एकबार	वार्षिक (करोड़ रु०)
रेल	४३४	९
सड़कें (नयी)	३००	३५
,, (मरम्मती)	११३	-
बंदरगाह	५०	५
	८९७	४९

आर्थिक योजनाकी सफलताके लिये शिक्षाका सार्वजनिक प्रचार आवश्यक है। सोवियत्की योजनामें सन् १९३९ ई०में ९६ लाख बुद्धजीवी काम कर रहे थे। बंबई योजनामें २० करोड़ अपढ वयस्कोंको साक्षर करने पर ९९ करोड़ खर्च करना पड़ा था। ८६ करोड़ एकबार और ८८ करोड़ वार्षिक व्यय छः से बारह वर्षके बच्चोंकी अनिवार्य-शिक्षाके लिये रखा गया था और २० करोड़ वार्षिक उच्च-शिक्षाके लिये। योजनामें लगनेवाले १०० अरब रुपयोंकी आदमनीका रास्ता निम्न प्रकार बतलाया गया था—

(बाहरी-कोश)-	करोड़ रुपया
निहित निधि (मुख्यतः सोना)	३००
पौंड पावना	१,०००
व्यापारसे आय	६००
विदेश ऋण	७००

(भीतरी कोश)-

बचत करना	४,०००
उत्पादित पैसा	३,४००
	१०,०००

उत्पादित पैसेसे उत्पादित माल तथा श्रम अभिप्रेत हैं। पूंजीवादी व्यवस्था और अधिकतम उत्पादनको एक साथ ले चलना मुश्किल है, क्योंकि वहाँ उत्पादन उपयोगके लिये नहीं बल्कि विक्रयके लिये किया जाता है। उत्पादनमें प्रोत्साहन देनेके लिये जिस लाभकी भावनाको आवश्यक समझा जाता है, वह उत्पादन और उपभोगमें अन्तर पैदा कर देती है जिससे उत्पादन चरम सीमापर नहीं पहुँच पाता। यदि लाभकी "अदृश्यभूत", होड़ तथा प्रभावकारी माँग को खुल खेलनेको छोड़ दिया जाये, तो उत्पादनकी मात्रामें चाहे जितनी वृद्धि की जाय, उससे जनताके जीवनतलको ऊपर बढ़ानेका अभिप्राय सिद्ध नहीं हो सकता। उत्पादनके स्वरूप और मात्राका अंतिम निर्णय इस बातपर है, कि क्रयशक्ति (पैसे) को किस प्रकार जनतामें वितरित किया जाता है...योजना-निर्माता यह सुझानेमें असफल रहे, कि उत्पादनका फल किस प्रकार उनके पास पहुँचेगा, जो सबसे अधिक अभावग्रस्त हैं। योजना बनानेवालोंने प्रति-व्यक्ति आय अवश्य निश्चित कर दी, लेकिन उन्होंने ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं निर्धारित किया, जिससे कि समाजमें अत्यंत व्यापक-रूपेण क्रय-शक्ति-का वितरण हो सके।

किसी योजनाकी सफलता उसके धनस्रोत तथा उसके उपयोगमें लानेपर निर्भर करती है। देशके धनस्रोतोंको कार्यपरायण करनेके लिये विवेक, उत्साह तथा सारी योजनाके व्यवहारमें ठीक सैद्धान्तिक दृष्टिकी आवश्यकता होती है। मानवश्रम पूंजीकी सबसे बड़ी निधि है, आखिर सारी पूंजी "मूर्तिमन्त-श्रम" छोड़ और है क्या? सबसे बड़ी समस्या तो यह है, कि कैसे सारे राष्ट्रमें एक नयी आशा और विश्वासकी आग लगा दी जाये। फिर तो बाकी सारी समस्याओंका हल करना आसान है। बंबई-योजना किसी योजनाके पीछे छिपे आदर्शकी अन्तःप्रेरणाका मूल्य समझनेमें असमर्थ रही।"

३—नौकरशाही पुनर्निर्माण योजना—देशके वायु-मंडलमें योजनाकी गूंज देखकर ब्रिटिश नौकरशाहीका भी ध्यान इस ओर गया, और सन् १९४५ ई०

में वाइसरायकी कार्य-कारिणीमें बंबई-योजनाके निर्माताओंमेंसे एक श्री अर्दशीर दलालको विकास और योजना-विभागका भार दिया गया। दलालने सरकारी नीतिके बारेमें कहा था—"सरकार जो कर सकती है, वह यही है, कि मानव भौतिक-साधन तथा पैसेका परिमाप (सर्वे) करे और अंदाजा लगाये कि भारतकी आजकी राजनीतिक, सामाजिक तथा दूसरी परिस्थितियोंकी सीमाओंके भीतर रहते आर्थिक जीवनकी अधिकसे अधिक उन्नतिमें उनका उपयोग कहाँ तक संभव है, जिसमें कि एक निश्चित समयके भीतर एक समुचित लक्ष्य तक पहुँचा जा सके।"

(२७ वें भारतीय अर्थशास्त्रीय सम्मेलनमें भाषण)

सरकारने सन् १९४५ ई०में अपनी औद्योगिक नीतिके संबंधमें वक्तव्य देते हुए अपने भावी कार्यक्रमका और बहुत स्पष्ट रूप इंगित किया। इसके लिये उसने कितने ही औद्योगिक पेनल (गुट्ट) नियुक्त किये, जैसे—(१) लोहा-फौलाद (वृहत्), (२) लोहा-फौलाद (लघु), (३) प्रथम चालक, (४) मोटरकार और ट्रेक्टर, (५) पोत-निर्माण तथा सामुद्रिक इंजीनियरी (६) बिजली मशीनरी तथा उसकी साधन-सामग्री, (७) औद्योगिक प्लान्ट तथा मशीनरी (भारी), (८) मशीन-टूल, (९) हल्की इंजीनियरीके उद्योग, (१०) भारी रसायन-उद्योग, (११) सूक्ष्म रसायन, (१२) कागज, पल्प आदि (१३) प्लास्तिक और गटापार्चा, (१४) रायन (नकली रेशम), (१५) चीनी, मद्यसार आदि, (१६) शीशा, (१७) भट्ठा-सामग्री तथा मृत्पात्र, (१८) साबुन, तेल, (१९) रंग तथा वार्निश, (२०) विद्युत्-रसायन-उद्योग, (२१) ऊन, (२२) रेशम, (२३) रस्सा, डोर आदि, (२४) मोजा-बनियान, (२५) तैयार परिधान, (२६) अलौह-धातु उद्योग, (२७) चर्म और चर्मवस्तु, (२८) वैज्ञानिक हथियार, (२९) सूती वस्त्र वयन।

इन पेनलोंको आँकड़े आदिके साथ सुझाव देनेके लिये कहा गया। कुछ पेनलोंके प्रस्तुत किये आँकड़े इस प्रकार हैं—

उद्योग	वर्त्तमान उपभोग (वार्षिक टन)	वर्त्तमान उत्पादन (वार्षिक टन)	भावी मांग और लक्ष्य (वार्षिक टन)	नयी इकाइयोंका वितरण तथा स्थापन-स्थान
१—लोहा-फौलाद				
कच्चा लोहा	१,४२,०००	उपभोग १,४२,०००	देशमें ७,००,०००	पाँच पाँच लाखकी क्षमतावाले दो कारखाने जिनमें एक बिहारमें और दूसरा मध्यप्रदेशमें
फौलाद	१०,००,०००	निर्यात ५,४१,०००	निर्यात ३,००,०००	
		उत्पादन-क्षमता- १२,६४,०००	माँग २०,००,०००	
			लक्ष्य २५,०००००	
		पाँच वर्षमें विस्तार—		
		ताता १,५०,०००		
		बंगाल २,००,०००		
		भद्रावती ३०,०००		
		ईसापुर ६०,०००		
२—भारी रसायन				
(१) गंधक तेजाब	५५,७६०	५९,०००	पंचवार्षिक लक्ष्य	सिंध (?), बिहार, मध्यप्रदेश
			१,५२,६००	बंबई, मद्रास
(२) सोडा भस्म	१०७५००,	क्षमता ७४,०००	पंचवार्षिक लक्ष्य	प्रत्येक ५०,००० टनकी क्षमताके ४ नये कारखाने, सिंध (?), मध्यप्रदेश, बिहार और दक्षिणभारत
		किंतु उत्पादन बहुत कम,	२,७०,०००	

उद्योग	वर्तमान उपभोग (वार्षिक टन)	वर्तमान उत्पादन (वार्षिक टन)	भावी मांग और लक्ष्य (वार्षिक टन)	नयी इकाइयोंका वितरण तथा स्थापन-स्थान
			पंचवार्षिक लक्ष्य.	
(३) सोडा-कास्टिक	५४,०००	क्षमता १२,६००	" १,३३,०००	एक ११,००० टनका पारद सेल कारखाना बिहारमें दूसरा और कहीं
(४) अमोनिया–	–	क्षमता १,५००	" ——	सिंदरी (बिहार) और अल्वये (द० केरल)
३–विद्युत्-रसायन				
(१) लोह-मंगानीज–		२,०००	.....	संदूर राज्य
(२) लोह-सिलिकन	४,०००	"	४०,०००	मैसूरमें ४,००० टनका ।
(३) अलम्यूनियम	...	क्षमता ७५००	" १५,००० से २०,०००	आसनसोल और अल्वयेके अतिरिक्त ८,००० से १०,००० टनका एक और पनविजलीके पास
(४) तांबा	...	६,०००	" १०,०००	जयपुर और सिक्किमकी खानें परीक्षणीय, ५,००० टनका एक कारखाना बाहरसे आया रद्दी के लिये ।
४–रायन.	६०–७० टन दैनिक १९३९ में	...	१० टन दैनिक ६, ७ कारखानें तुरंत और ४ या ५ पीछे ।	पंजाब, गढ़वाल, बंगाल, उड़ीसा रीवाँ, मध्यप्रदेश बंबई, मद्रास. मैसूर. केरल ।

उद्योग	वर्तमान उपभोग (वार्षिक टन)	वर्तमान उत्पादन (वार्षिक टन)	भावी मांग और लक्ष्य (वार्षिक टन)	नयी इकाइयों का वितरण तथा स्थापन-स्थान
५—ऊन	१,९०,२७,००० पौंड,	७९,२५,५००, पौंड	लक्ष्य ३,०५,००,००० पौंड	कश्मीर, पंजाब (अमृतसर, पानीपत), जयपुर, उ० प्रदेश (रामपुर, बनारस, मिर्जापुर), बिहार, कलकत्ता, अहमदाबाद, बड़ोदा, बंबई।
६—सूती	६४,०००लाख गज,	क्षमता ४८,०७२,००० लाख गज	लक्ष्य ७२,०००लाख गजतक उठाना, १७,००० लाख गजकी वृद्धि।	पंजाब, दिल्ली, उ० प्र०, बिहार, बंगाल, आसाम, उड़ीसा, मध्य-प्रदेश, राजस्थान, बंबई, दक्षिण-भारत।
७—चीनी	१९३९ से ड्योढ़ी माँग.	१९३९-४० से १९४३-४४ औसत उत्पादन १०,८४,०००	१९५० तक १८,५०,००० टन	पंजाब, ३ मिल बिहार, १ '' बंगाल ३ '' आसाम १ '' बंबई ३ '' बड़ोदा १ '' मद्रास ३ '' ट्रावनकोर १ '' हैदराबाद १ '' उड़ीसा १ ''

उद्योग	वर्तमान उपभोग (वार्षिक टन)	वर्तमान उत्पादन (वार्षिक टन)	भावी मांग और लक्ष्य (वार्षिक टन)	नयी इकाइयों का वितरण तथा स्थापन-स्थान
८—चर्म.				
१—वानस्पतिक सिझाई—	...			...
(१) बोरा सिझाया चर्म	..	युद्धपूर्व ९१ लाख टुकड़े	९५.५ लाख टुकड़े	पंजाब, बंगाल बिहार, उड़ीसा और मध्यप्रदेश में।
(२) अधसिझा "	...	" ८४ "	८६ "	
भेड़-बकरी छाला—	...	" १९० "	२७२ "	काठियावाड़, बंबई और सिन्ध
(३) गड़हेमें सिझा भारी चर्म (तल्ला-बेल्ट)	...	" ६ "	४२ "	कलकत्ता और कानपुरसे बाहर भी बिहार, मध्यप्रदेश काठियावाड़।
२—क्रोम सिझाई				
(१) बक्स और बेंत पार्श्व	...	" ७३० " वर्गफुट	१,४०० लाख वर्गफुट	नागपुरमें भी।
(२) ग्लेसकिड् चर्म	...	अज्ञात	३० लाख टुकड़े वर्त्तमानसे अधिक	आजकल मद्रास और कानपुरमें केवल दो अंग्रेजी कारखानें हैं बंगाल, बिहार, मद्रासमें नये बनाने चाहिये।
३—जूता				
(१) देशी जूता	...	७,००० लाख जोड़ा.	१५,०००लाख जोड़ा.	आगरा आदिकी हाथ की फैक्टरियोंका यंत्रीकरण,
(२) बूट		३०० " "	४५० " "	

उद्योग	वर्तमान उपभोग (वार्षिक टन)	वर्तमान उत्पादन (वार्षिक टन)	भावी मांग और लक्ष्य (वार्षिक टन)	नयी इकाइयों का वितरण तथा स्थापन-स्थान
९—कांच				अन्यत्र नई यंत्रीकृत फैक्टरियाँ खोली जायें।
(१) चूड़ी	...	युद्धपूर्व १८,००० टन	वर्तमान क्षमता १८,००० टन ५ वर्ष वृद्धि १०%	....
(२) मनियाँ और झूठे मोती			४,२०० टन	....
(३) बोतल और शीशी		४०,००० से १,००,००० टन	१,००,००० टन	मात्रा नहीं गुण बढ़ाना होगा
(४) चिमनी		... १०,००० "	१४,००० "	
(५) मेजका सामान	..	... ५,००० "	७,५०० "	
(६) चादर शीशा	...	४० लाखसे २०० लाख वर्गफुट	४,०००लाख वर्ग फु०	
(७) दवाक	...	२,००० टन	४,००० टन	
(८) प्लेट और फूल-पत्तेका सामान	...	...	३७ लाख वर्गफुट	
(९) काचके वैज्ञानिक हथियार		नगण्य	रु० १० लाख	
(१०) काँचकी खोल	...	१४० लाख टुकड़े	२५० लाख टुकड़े	
(११) चश्मेका शीशा	...	नहीं अनिश्चित	अनिश्चित	सरकार द्वारा उद्घाटनीय।

उद्योग	वर्त्तमान उपभोग (वार्षिक टन)	वर्त्तमान उत्पादन (वार्षिक टन)	भावी मांग और लक्ष्य (वार्षिक टन)			नयी इकाइयों का वितरण तथा स्थापन-स्थान
१०—कागज	१९५१	१९५६,	१९४४,	१९५१,	१९५६,	
(१) न्युजप्रिंट छोड़ दूसरे कागज	२,२२,०००टन	३,१२,००० टन	९०,०००	१,६९,०००	३,०२,०००,	पंजाब ,मध्यप्रश मध्यभारत, रीवाँ, उ० प्र०, बिहार, आसाम बंबई, मद्रास।
(२) न्युजप्रिंट	६०,००० टन	१,००,००० टन,	नहीं		२०,०००	४०,०००, कश्मीर, टेहरी पंजाब।
(३) सर्व प्रकारकी पत्ती	७५,००० टन	१,१९,००० टन	२४,०००,	७५,०००,	१,१९,०००,	पंजाब उ० प्र०, मध्यप्रदेश बंगाल (कलकत्ता) उड़ीसा, बंबई हैदराबाद, मद्रास।

११—सीमेंट	वास्तविक	अंदाजा	अंदाजा	अंदाजा	अंदाजा
	१९४५-४६	१९४८-४९	१९४८-४९	१९५०-५१	१९५१-५२
	२०,७५,३४०,	३५,८२,००० टन	३५८२०००,	४५२७०००,	५१०.००००

सीमेंटके नये कारखानोंके स्थापना-स्थान

प्रदेश या स्थान	कारखानोंकी क्षमता		अतिरिक्त क्षमता कितनी चाहिये।
पटियाला	सूरजपुर	१,००,००० टन	१,००,००० टन
जिंद	दालमिया-दादरी	७०,००० "	...
सिरमोर	...	१,००,००० "	१,००,००० "

प्रदेश या स्थान	कारखानोंकी क्षमता		अतिरिक्त क्षमता कितनी चाहिये
उत्तरप्रदेश	...	...	१,००,००० टन
टेहरी		...	१०,०,००० "
बिहार	दालमियानगर	१,५०,०००	
	कल्यानपुर	४०,०००	४,५०,००० "
	सोन-उपत्यका	२,००,०००	
	खलारी	१,००,०००	
	चाईबासा	१,००,०००	
(उड़ीसा)	गंगपुर	...	१,००,०००
बंगाल		...	१,२०,०००
आसाम	छटक	७०,०००	१,७५,०००
मध्यप्रदेश	केमूर	३,५५,०००	१,००,०००
भूपाल		...	१,००,०००
(मध्यभारत)	वनमोर	६०,०००	१,००,०००
बूंदी	लखेरी	२,२०,०००	...
बंबई		...	१,००,०००
बड़ौदा	द्वारका	१,८०,०००	...
(सौराष्ट्र)	पोरबंदर	४२,०००	...
"	जामनगर	१,००,०००	...
हैदराबाद	शाहाबाद	२,१०,०००	

प्रदेश या स्थान	कारखानोंकी क्षमता		अतिरिक्त क्षमता कितनी चाहिये ।
मैसूर	भद्रावती	२०,०००	३०,०००
मद्रास	कृष्णा	८०,०००	
	मदुकराइ	१,८०,०००	५,३०,०००
	दालमियापुरम्	७०,०००	
	विजयवाड़ा	३०,०००	
	ट्रावनकोर	५०,०००	
	(व० केरल)		

कपड़ा मिलोंके तकुये, और आगे नयी वृद्धि

क्षेत्र	तकुये (१ जनवरी ४५)	नये तकुये चाहिये (सूक्ष्म)	नये तकुये चाहिये (स्थूल)
पंजाब-दिल्ली	२,२४,०२३	१,१४,०००	४,२३,०००
उत्तरप्रदेश	७,७३,२८८	१,१४,०००	१,७५,०००
बिहार	२५,०४०	३८,०००	१,७५,०००
बंगाल-आसाम	४,८०,९२४	१,२५,०००	१,००,०००
उड़ीसा	...	१९,०००	१,२५,०००
मध्यप्रदेश	३,७४,०३०	७६,०००	१,२५,०००
राजस्थान	५,१९,२२२	३८,०००	१,००,०००
बंबई	५९,४१,१६४	१,७१,०००	७५,०००
दक्षिण-भारत	१९,५५,५३८	१,९०,०००	३,७५,०००
	१,०२,९५,४४५	२८,५८,०००	

(I. L. pp. 280-88)

४–गांधीवादी योजना–१"गाधीवादके चार स्कंध हैं–सादगी, अहिंसा, श्रम-सम्मान और मानवीय मूल्य।" हमें विकेंद्रित उत्पादनपर आधारित ऐसे स्वावलंबी ग्रामीण गणराज्य चाहिये, जिनसे धनके दोषयुक्त लाभका हटाना और शोषणका कम करना संभव हो। उत्पादन-साधनों-का विकेंद्रीकरण और वितरण की मशीन स्वतः जनतंत्रीय सामाजिक व्यवस्थाकी ओर ले जायेगी।" गाँधीजीकी विचारधारा वाले अहिंसक समाजमें शोषणका स्थान नहीं रहेगा, क्योंकि वहां उत्पादन दूरकी लाभदायक बाजारोंके लिये नहीं बल्कि तुरंतके उपयोगके लिये होगा। गाँधीवादी योजनाके निर्माता का कहना है–" इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिये, कि गाँधीजी सभी मशीनोंके विरोधी नहीं हैं। "मशीन होनेके कारण मैं उसका विरोध नहीं करता, चरखा स्वयं एक प्रकारकी मशीन है'। इसलिये गाँधीजी मशीनोंको नष्ट करनेकी इच्छा नहीं रखते, बल्कि उनकी सीमा निर्धारित करना चाहते हैं। वे कहते हैं–'हमारे गांवोंके करोड़ों आद-मियोंके लिये विश्रामका समय कैसे प्राप्त किया जाये, यह समस्या हमारे सामने नहीं है। समस्या है, उनके बेकारीके घंटोंको, जो कि सालमें छः मासके बराबर होते हैं–कैसे इस्तेमाल किया जाये। ऐसी मशीनों और आविष्कारों-का गाँधीजी स्वागत करते हैं, जो मानवश्रम को स्थानच्युत किये बिना ग्रामीण जनताके भारको हल्का करते हैं। 'आज मशीन चंद व्यक्तियोंको करोड़ोंकी पीठपर सवार होनेमें सहायता मात्र करती है। यही असह्य परिस्थिति है, जिसके विरुद्ध मैं अपनी सारी शक्ति लगाकर लड़ रहा हूँ।"

इस योजनाका मुख्य लक्ष्य है। दस वर्षके समयके भीतर भारतीय जनसाधारणके भौतिक एवं सांस्कृतिकतलको एक अत्यावश्यक जीवन-तलतक उठाना। प्रत्येक व्यक्तिके लिये अत्यावश्यक जीवनतल है :–

१–प्रतिदिन २६०० कलोरीका संतुलित आहार, जिसका मूल्य युद्धसे पहिलेकी दरसे ५ रुपया मासिक था।

२–वार्षिक २० गज कपड़ा, जिसका दाम ३ आना गजकी दरसे ४ रु० पड़ता।

३–घर-खर्च, औषध तथा दूसरे दिन-प्रति-दिनके खर्चपर ८ रुपया प्रतिवर्ष।

---

१ श्रीमन्नारायण अग्रवाल
The Gandhian Plane Reformed (1948)

इस प्रकार प्रत्येक व्यक्तिका वार्षिक व्यय कमसे कम ७२ रुपया होगा।" आजकल देहातमें प्रतिव्यक्ति आय केवल १८ रुपया है, इसलिये सबकी अत्यावश्यक आवश्यकताओं तथा सुखके अल्पतम मानकी प्राप्तिके लिये उसे चौगुना करना होगा। इस लक्ष्यकी पूर्तिके लिये यह योजना वैज्ञानिक ढंगपर कृषि और कुटीर-उद्योगके विकास करनेकी सिफारिश करती है।

....खेतके अत्यन्त विभाजन तथा छोटे-छोटे टुकड़े होनेके दोष को दूर करनेके लिये योजनामें खेतोंको सहयोगके ढंगपर चकबंदी तथा वर्त्तमान उत्तराधिकारके कानूनमें कुछ सुधारके साथ सहयोगी खेतीका प्रस्ताव किया गया है। योजनापर खर्च होनेवाले धनका लेखा है—

	करोड़ रुपया	
	एकबार	वार्षिक
भूमिका राष्ट्रीयकरण	२००	...
कृषिभूमि-संरक्षण आदि	४५०	१०
सिंचाई	१७५	५
परीक्षण-फार्म	१००	२५
अर्थका सुभीता	२५०	...
योग	११७५	४०

पशुपालनके बारेमें सुझाया गया है "गाँवके किसान अपनी निजी गायोंको इकट्ठा कर एक साधारण शाला बनाके तथा एक अच्छा साँड़ खरीदकर अपनी सहयोगी दुग्धशाला स्थापित कर सकते हैं।"

गाँधीजी सभी उद्योगोंके विरोधी थे, इस साधारण धारणाके विरुद्ध इस योजनामें स्वतंत्र भारतके लिये कुछ मौलिक या आधारभूत उद्योगोंके महत्त्वको स्वीकार किया गया है। निम्न आधारिक उद्योगोंपर विशेष ध्यान देनेकी बात कही गयी है। (१) रक्षा उद्योग, (२) पन-बिजली और ताप बिजली, (३) खान, धातु तथा जंगल व्यवसाय, (४) मशीन और मशीनटूल, (५) भारी इंजीनियरी तथा (६) भारी रसायन। योजना निर्माताके अनुसार उत्पादनके एक स्थान और एक इलाकेमें सीमित करके वितरणकी समस्याको बहुत आसान किया जा सकता है।

छोटी-छोटी स्वावलंबी इकाइयोंमें उत्पादनके विकेंद्री करण एवं आधारभूत उद्योगों तथा सार्वजनिक उपयोगिताओंका स्वामित्त्व राज्यके

हाथमें होनेसे राष्ट्रीय अर्थनीतिमें किरायाखोरोंका स्थान मुश्किलसे रह पायेगा।"

योजनामें खर्च (करोड़ रुपया) का ब्योरा निम्न प्रकार है—

काम	व्यय एकबार	बारबार	आवश्यक पूंजी
कृषि	११७५	४०	१११५
ग्रामीण-उद्योग	३५०	..	३५०
मौलिक उद्योग	१०००	..	१०००
यातायात	४००	१५	४१५
सार्वजनिक स्वास्थ्य	२६०	४५	३०५
शिक्षा	२९५	१००	३९५
अनुसंधान	२०	..	२०
योग	३५००	२००	३६००

इस खर्चके लिये आयका द्वार निम्न प्रकार बतलाया गया है—

	करोड़ रुपया
देशमें ऋण	२०००
उत्पादित पैसा	१०००
कर	५००
योग	३५००

योजनाके दो रूप हैं, जिनमें एक का संबंध देहातसे है और दूसरेका नगरसे। नागरिक क्षेत्रमें राज्यके स्वामित्त्व तथा नियंत्रणके अधीन तथा अपनी जीवन-रुचिके अनुसार रहते मजदूरोंके निवासके साथ बड़े पैमानेके उद्योग-धन्धे आधुनिक ढंगपर योजनाबद्ध किये जायें। देहाती क्षेत्रके लोग आधुनिक जीवनके उपकरणोंके साथ मुख्यतः देहाती रूपमें ही रहें।

(P. I. pp. 55-61)

वर्त्तमान सरकारी नीति—पिछले साल भारतीय संसद् में प्रधान मंत्रीने कहा था—"कोई कदम उठानेके समय इस बातकी पूरी सावधानी रखनी होगी, कि वर्त्तमान ढांचा बहुत अधिक क्षतिग्रस्त न होने पाये। संसार और भारत आज जिस अवस्थामें हैं, उसमें **साफ स्लेट** अथवा हमारे पास जो कुछ है, सबको बहा देनेका प्रयत्न प्रगतिको निस्संदेह हमारे पास नहीं लायेगा, बल्कि वह उसे बहुत दूर ढकेल देगा।

साफ स्लेटकी जगहपर जहाँ-तहाँ कुछ मिटाके क्रमश लिखते हुए सारे स्लेटपरके लेखको बदल देना होगा—हां, अत्यन्त मंदगतिसे नहीं, तो भी बहुत अधिक ध्वंस किये बिना इस कार्यमें आगे बढ़ना होगा।"

अधिकतम उत्पादन करनेकी सरकारी इच्छा, इसमें शक नहीं, उचित है, लेकिन यह काम निजी व्यवसायोंको, नया मौका या लंबी फंसरी देनेसे, पूरा हो जायेगा यह समझना मुश्किल है। वर्त्तमान औद्योगिक ढांचा सबके लिये राष्ट्रीय अल्पतम आवश्यकता प्रदान करनेमें असफल रहा, इसमें कोई संदेह नहीं है; और इसका प्रमाण तो यही है, कि सरकारको औद्योगिक क्षेत्रमें प्रविष्ट होनेका निश्चय करना पड़ा। इसका कारण ढूंढ़नेके लिये बहुत दूर जानेकी आवश्यकता नहीं। पूंजीवादी व्यवस्थाका अस्तित्व जिस लाभकी भावनापर निर्भर है, वही उत्पादनके सारे साधनोंको उनकी पूरी क्षमता तक कार्य करनेमें बाधक है। श्रम और पूंजीके पारस्परिक संबंधके नियमनके लिये मनुष्य चाहे कितने ही अद्भुत उपाय निकाले, किंतु जब तक लाभ मजूरोंके हाथमें नहीं बल्कि मालिकोंके जेबमें जाता है, तब तक दोनोंका संघर्ष अनिवार्य है। सरकार अनुभव करती है, कि उत्पादनको बढ़ानेकी माँगमें औद्योगिक अशांति भारी बाधा है, लेकिन इस दोषका वैज्ञानिक ढंगसे निदान नहीं कर पाती। दरिद्रताके निवारणके अन्तिम लक्ष्य तथा उत्पादनको अधिकतम मात्रामें बढ़ानेके तुरंतके लक्ष्यके लिये यह अत्यावश्यक और अनिवार्य है, जैसा कि "जनयुग" ने १८ अप्रैल सन् १९४८ के अंकमें लिखा था—"भारतमें योजनाबद्ध अर्थ-नीतिके लिये यह पहिली शर्त है, कि निर्णायक आर्थिक स्थानोंसे वैयक्तिक पूंजीपतियोंको हटा दिया जाये, उद्योग-धन्धेसे लाभके उद्देश्यको दूर करनेका प्रयत्न किया जाये और सभी मूलभूत व्यवसायोंका तुरंत राष्ट्रीय-करण किया जाये।"

—(P. I. pp. 130-31)

२ नदियोंकी योजनायें—

१—अधिकांश आर्थिक योजनाएं तथा उनके निर्माता योजनाके लक्ष्यके संबंधमें एक मतसे हैं।...जहाँ तक पर्याप्त खाद्य, निवास, कपड़ा, डाक्टरी सहायता तथा शिक्षाकी राष्ट्रीय अल्पतम् आवश्यकताका संबंध है, सभी प्रायः पूर्णतया एक मत रखते हैं। राष्ट्रीय अल्पतम आवश्यकताके लिये यह भी आवश्यक है, कि हरेक नागरिककी बेकारी, अस्वस्थता और वृद्धापनके त्राससे मुक्त किया जाय। यह राष्ट्रीय अल्पतम आवश्यकता

तथा आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा दानके रूपमें नहीं बल्कि अधिकारके रूपमें सुलभ होनी चाहिये ।...संक्षेपमें योजनाके लक्ष्य होने चाहिये–(१) उपभोग साधनों और सुख-सुविधाके लगातार बढ़ते मानके साथ कमसे कम राष्ट्रीय अल्पतम आवश्यकता, (२) राष्ट्रीय स्वावलंबन और (३) संगठित देश-रक्षा ।

उपत्यकाओंका विकास–युक्तराष्ट्र अमेरिकामें कृषि और उद्योग-संबंधी विशाल विकासमें टेनेसी-उपत्यका-अधिकारने बहुत ही महत्त्वका कार्य किया है। उसकी देखादेखी हमारे देशमें भी उपत्यका-योजनाएं बनाई जा रही हैं। टेनेसी-उपत्यकाका क्षेत्रफल ४०,००० वर्गमील है और वह टेनेसी, केन्टकी, अल्बामा, मिसिसिपी, वर्जीनिया उत्तरी-करोलेना, जार्जिया इन सात रियासतोंमें पड़ती है।... टेनेसी-उपत्यका-अधिकारकी स्थापनाके पहिले यह उपत्यका युक्तराष्ट्रका सबसे पिछड़ा तथा दरिद्रता-पीड़ित इलाका था। १८ मई सन् १९३२ ई० के एतद्-विषयक कानूनने टेनेसी उपत्यका अधिकारका निर्माण किया। उसे अधिकार दिया गया, कि टेनेसी-उपत्यकामें भूमि प्राप्त करके वहाँ बाँध बनाके उसका उपयोग करे, नाइट्रेट और रासायनिक खाद्य निर्माण करे, पनबिजलीको विशेषकर देहातके लिये बनाये और बेंचे, फिरसे जंगल लगाकर बाढ़पर नियंत्रण करे, किनारेकी भूमिको खेतीसे युक्त करे, टेनेसी नदीको नौका-संचालनके उपयुक्त बनाये और इस नदी-उपत्यकामें रहनेवाले २० लाख आदमियोंकी आर्थिक और सामाजिक भलाईकी अभिवृद्धि करे। टेनसी उपत्यका अधिकारने कई बाँधोंका निर्माण किया। बिजलीकी दरको कम किया और बिजलीके हथियारोंके उपयोगको बढ़ानेका भारी प्रचार किया। सन् १९४४ ई० तक उपत्यकाके निवासी प्रतिवर्ष प्रतिव्यक्ति ११७९ किलोवाट घंटा बिजली खर्च करने लगे, जब कि राष्ट्रीय औसत है ८५०। वह २.१४ सेंट प्रति-किलोवाट-घंटा दाम देते थे, जब कि राष्ट्रीय औसत् ४.२१ है। और कामोंके साथ कृषिभूमि-संरक्षणका भी काम हाथमें लिया गया। अब उपत्यकामें सभी जगह सुंदर भूभाग, स्वास्थ्यपूर्ण जलवायु, उर्वर भूमि तथा वर्त्तमान उद्योग-धन्धोंके उपयोगके लिये काफी कच्चा माल मौजूद है। उपत्यका उद्योग-धन्धेके निरंतर विस्तारके लिये तैयार है और वह एक छोरसे दूसरे छोर तक लगातार छोटे नगरोंसे भरी पूरी होके रहेगी। इन नगरोंके लिये एक बड़ा लाभ यह होगा, कि वह आकारमें दूसरी महानगरियों जैसे नहीं होंगे और इसी-लिये उन्हें खाद्य, कच्चा-माल और रहनेके लिये पर्याप्त अवकाशका बहुत

अच्छा सुभीता रहेगा। नगरोंकी बढ़ती हुई जनसंख्याके कारण कृषिकी उपजको बढ़ानेमें घरू बाजार सुलभ होगा।...

–(I. L. p. 249)

३–भारतवर्षमें टेनेसी-उपत्यका-अधिकारके नमूनेपर दामोदर-उपत्यका कारपोरेशनकी स्थापना (१८४८) हुई। साथ ही कोसी (बिहार), नायर, रिहंद, चंबल और सोन (उत्तर-प्रदेश और मध्यभारत) महानदी (उड़ीसा), इंद्रावती (बस्तर, मध्य प्रदेश), नर्वदा, ताप्ती और साबरमती (बंबई तथा मध्य प्रदेश) तुंगभद्रा (हैदराबाद और मद्रास) और दिहाँग, मानस तथा फरौली (आसाम) की उपत्यकाओंकी योजनाएं भी तैयार हो रही हैं। ये योजनाएं पूर्व-भारतके लिये विशेषतः भारी महत्त्व रखती हैं। महानदी और गोदावरी तथा महानदी और सोनके बीचके क्षेत्रमें बहुत ही अच्छे जंगल तथा खनिज संपत्ति–खास तौरसे कोयला, लोहा मंगानीज, अब्रक और अलमुनिया-मट्टी (बक्साइट) प्रचुर परिमाणमें मिलते हैं। इन दोनों प्रदेशोंमें वर्षाकी भी कमी नहीं है। इनके पिछड़े होनेका एक कारण इनका छोटे-छोटे राज्योंमें बँटा होना भी था, लेकिन अब छोटी रियासतोंके प्रांतोंसे मिलकर एक हो जानेके कारण वह कठिनाई दूर हो गयी। इन देशोंको–जहाँकी अछूती भूमिमें अधिकतर संथाल आदि आदिम-जातियाँ रहती हैं–आदर्श रूप में विकसित किया जा सकता है। कितने ही लोग भविष्यद्वाणी करते हैं, कि सावधानीके साथ योजना द्वारा इन देशोंको भारतका "उक्रइन" या भारतके भीतर "नवभारत" के रूपमें परिणत किया जा सकता है। इनके विकासके द्वारा भारतकी खाद्य समस्या भी काफी दूरतक हल करनेमें सहायता मिल सकती है। यदि पास-पड़ोसकी महत्त्वपूर्ण बहु–उपयोगी बिजली-शक्तिके विकासकी योजनाओंपर ध्यान दें, तो हमें वह भविष्यद्वाणी व्यावहारिक मालूम होगी। छोटा नागपुर और छत्तीसगढ़के देशोंके लिये रिहंद (सोन-उपत्यका), दामोदर–उपत्यका, और महानदी–उपत्यकाकी योजनायें इस देशके उत्तर-पूरब और दक्खिनमें रूप धारण कर रही हैं, जहाँसे बिजली-शक्ति इस देशके विकासके लिये सुलभ होगी। महानदी और गोदावरी नदियोंके बीचवाले देशके उत्तर तथा दक्खिनमें मचकन्द-योजना हाथमें ली जा रही है।

४–उड़ीसा, हैदराबाद और कोसल विदेहके अधिकांश भाग छत्तीसगढ़, बुन्देलखंड, बघेलखंड, मध्यभारत और राजस्थान भारतके

पिछड़े हुए इलाके हैं। उड़ीसा, छत्तीसगढ़, बघेलखंड और बुन्देलखंडमें मलेरियाका आधिक्य और यातायातके साधनोंका अभाव, चंबल-उपत्यका (मालवा) में वर्षाकी कमी एवं भयंकर रूपसे कृषिभूमिका बहाव, और राजपूतानामें जलकी कमी, इन भूखंडोंकी आर्थिक अभिवृद्धिमें मुख्य बाधाएं हैं और यही वहाँकी मुख्य समस्यायें हैं।

–(I. L. p. 263)

५–चंबल नदी पर कोटाकी बिजली-योजना काफी आगे तक बढ़ चुकी है, इससे सारे मालवाकी आवश्यकताएं पूरी होंगी।... यह भी कुछ आशा की जाने लगी है। कि कुछ हद तक राजस्थानके जल-अभावकी समस्याको हल किया जा सकता है। कानपुर कृषिकालेजके प्रोफेसर कौलने जोधपुर-के कुछ भागोंमें पंप लगाने लायक जलको खोज निकाला है। लोनी नदीका सलोना जल टूटी-फूटी बिखरी हुई ऊपरी चट्टानोंके भीतरसे नीचे चला जाता है। लेकिन नीचे एक दुष्प्रवेश्य चट्टान है, अतः उसके ऊपर भूमिके भीतर ही भीतर जलनिधि तैयार हो गयी है। ऊपरी स्तरसे छनते वक्त लोनीके पानीका नमक अलग हो जाता है, इसीलिये भूमिके भीतरका पानी पम्पसे खींचनेपर मीठा तथा सिंचाईके उपयुक्त मिलता है। (आज-कल लोनी उपत्यकामें बहुत सी जगहों पर मीठे जलका अनुसंधान हो रहा है)। यदि तजरबे पूरी तरहसे सफल हुए तो यह राजस्थानके रेगिस्तानके लिये एक नयी आशा है। अम्बाला कमिश्नरीसे निकलकर बहनेवाली कितनी ही नदियाँ बीकानेरकी सीमा तक जाकर बालूमें लुप्त हो जाती हैं। हो सकता है वहाँकी भूमिके नीचे भी ऐसी जलनिधियाँ मौजूद हों।

–(I. L. pp. 264-66)

६–उपत्यकाओंका युग–(ऐतिहासिक कालके आरंभके साथ सभ्यताके विस्तारमें उपत्यकाओंका विशेष हाथ रहा। जान पड़ता है अब फिर उपत्यकाओंका युग आ रहा है)। बंगाल और पंजाबके अतिरिक्त आसाम (कामरूप)-उपत्यका, मालवा, सौराष्ट्र, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्कल, मैसूर, और गंगा-उपत्यका यह भी स्वतन्त्र क्षेत्र हैं। मालवा (जो कि विंध्य और अरावली एवं जमुना नदीसे घिरी चंबल नदीकी उपत्यका है), और आसाम जैसी उपत्यकाएं भौगोलिक तौरसे अपनी निश्चित सीमा रखती है। गंगा-उपत्यका जैसी कितनी ही उपत्यकाओंको उपक्षेत्रोंमें विभक्त करना होगा। मालवा, मैसूर या छोटा-

नागपुर जैसे कुछ क्षेत्र प्लेटो जैसे हैं, किंतु अधिकतर क्षेत्र नदी-प्रसार या नदी-उपत्यका हैं।..."

–(I. L. p. 257)

७–दामोदर–उपत्यका–केंद्रीय टेकनिकल बिजली बोर्डने टेनेसीवेलीके योजना-इंजीनियर वूरडुइनकी सहायतासे टेनेसोके ढंगपर दामोदर नदीकी योजनाके संबंधमें भी अनुसंधान करवाया। वहाँ वूरडुइनने भिन्न भिन्न-बाँधोंके स्थानके बारेमें अपने सुझाव दिये। दामोदर और उसकी शाखाओंपर कई बाँध बनाये जायेंगे। उनसे जहाँ बाढ़से रक्षा होगी, वहाँ सस्ती बिजलीका उत्पादन, सिंचाई, जलपूर्ति और पीछे नौका-चालनके सुभीते भी होंगे। यह बंगाल और बिहारके कृषि और उद्योग संबंधी विकासमें सहायक होगी। टेनेसी-उपत्यका-अधिकारके ढंगपर दामोदर-उपत्यका-कारपोरेशन भी बंगाल, बिहार तथा केंद्रीय सरकारके प्रतिनिधियों द्वारा बनाया जा चुका है।

–(I. L. p. 217 note)

८–पहिले दामोदर-उपत्यकाकी योजनाको दस सालमें पूरा करनेका निश्चय किया गया था, किंतु अब वह समय पाँच वर्ष रखा गया है। कुछ अर्थशास्त्री दसकी जगह बारह करनेके पक्षमें हैं और कहते हैं कि पाँच वर्षमें पूरा करने पर देशमें मुद्रा-स्फीति और उग्र हो उठेगी। (लेकिन जनसंख्या स्फीति उससे भी भयंकर है। पाँच वर्षमें जहाँ ढाई करोड़से कुछ ऊपर नये मुंह आ मौजूद होंगे वहाँ बारह वर्ष बाद उनकी संख्या सात करोड़से भी अधिक होगी)।

–(E. C. pp. 96-97)

३. राष्ट्रीय आय–

डाक्टर बी० के० आर० बी० रावके अनुसार ब्रिटिश भारतकी राष्ट्रीय आयमें भिन्न-भिन्न व्यवसायोंमें लगे २६९ लाख आदमियोंमें १/३१ की आय हजार रुपया प्रतिवर्षसे अधिक है। ३० हजार वार्षिकसे अधिक आय कर देनेवाले आदमियोंकी संख्या केवल ५१२ है, जिनमें १९९ हिन्दू संयुक्त-परिवार, २५८ बिना रजिस्ट्रीकी कोठियों और ५५ व्यक्तियोंके संगठन हैं। इसमें संदेह नहीं, कि पिछले सात आठ सालोंमें कीमतोंके बढ़ने तथा युद्धकालीन असाधारण कमाईके कारण अधिक आयवालोंकी संख्यामें काफी परिवर्तन हुआ है। इसके साथ ही कर देनेसे मुंह मोड़ना, आयको छिपाना, वास्तविक लाभको

कम करके दिखलाना, चोरबाजारी और नफाखोरी भी बहुत हुई है। सन् १९४८ ई० में इन्कम-टैक्स लगायी गयी आमदनी ६१४ करोड़ रुपये थी, जो कि हमारी सारी राष्ट्रीय आयकी १२.४ सैकड़ा होती है। डाक्टर रावने सन् १९३१-३२ की ६५ रुपयेकी जगह आज-कल प्रतिव्यक्ति २१३ रुपया वार्षिक आयका अंदाजा लगाया है। लेकिन माल और उपभोगकी वस्तुओंकी बढ़ी हुई कीमतोंपर खयाल करनेसे औसत कमाने वालोंकी वास्तविक आमदनी प्रतिव्यक्ति मुश्किलसे ही कुछ बढ़ी होगी।...युद्ध-पूर्वके अन्तिम वर्ष सन् १९४१ ई० में युक्तराष्ट्र अमेरिकाकी राष्ट्रीय आय सौ अरब डालरके आसपास थी। सन् १९४५ ई० में युक्तराष्ट्रका उत्पादन २०० अरब डालरके करीब हो गया। माल और उपभोग-वस्तुओंकी कीमतके सिक्केके रूपमें वृद्धिको छोड़ देनेपर भी वहाँका वास्तविक उत्पादन प्रायः दूना हो गया..."

–(P. C. pp. 35-40)

२–...युद्ध पूर्वके वर्षोंमें हमारी राष्ट्रीय आयका प्रायः आधा कृषि-उत्पादनके रूपमें था, जब कि हालके वर्षोंमें वह ५७ सैकड़ा माना गया है....

–(P. C. p. 111)

३–"ईस्टर्न-एकोनोमिस्ट" के अनुसार १९४८-४९ की कीमतोंके अनुसार भारतीय प्रान्तोंकी आय निम्न प्रकार है:–

कृषि-स्रोतसे	आय	२४,७८	करोड़ रुपया
उद्योगसे	,,	११,५४	,, ,,
व्यापार-स्रोतसे	,,	९,९९	,, ,,
		४६३१	

और प्रति व्यक्ति आय–	(रुपया)
कृषि-क्षेत्र	१४८
उद्योग-क्षेत्र	३८५
व्यापार-क्षेत्र	१९२

–(E. E., 12 Aug. 1949)

विभिन्न देशों की राष्ट्रीय-आय (पृ० ४५)

देश	जन-गणना (१९४७)	१९४७ आय (१० लाख सिक्के)		आय (१० लाख रु०)	प्रतिव्यक्ति (रुपये)
अमेरिका:—					
युक्त राष्ट्र	१४,४०,३४,०००	२०,२०,००	डालर	६७,०२,००	४,६५४
कनाडा	१,२५,८२,०००	१,०८,८५	"	३,५९,३७	२,८५२
अर्जन्तीना	१,६१,०९,०००(¹)	११४३७	पीसो	९२५६	५७५
चिली	५५,२६,०००(²)	३,३६,४३	"	५७,३३	१,०४२
मैक्सिको	२,३४,३४,०००	२,०३,२३	"	१,३८,५९	५९२
युरोप:—					
इंगलैंड	४,९५,३९,०००	८८,८६	पौंड	११,८७,४३	२,३९९
फ्रांस	४,११,००,०००	३,२५,५०,००	फ्रांक	९,०६,००	२,२०४
चेकोस्लावाकिया	१,२११,७०,०००	१९,४४,००	कोरुना	१,२९,००	१,०५७
स्विटजर लैंड	४५,४७,०००	१,५९,००	फ्रांक	१,२२,१२	२,६५७
स्वीडन	६८,०३,०००	२,३०,००	क्रोनर	२,१२,००	३,११८
बेलजियम	८४,२१,०००	२२,५९,५०	लिरा फ्रांक	१,७०,५४	२,०३०
हालैंड	९६,२९,०००	१,१३,८८	गिलडर	१,४२,०५	२,०८०
इटली	४,५३,७३,०००	८,१२,००	लिरा	९,०२	२०

(१) सन् १९४३-४५ ई० तक तीन सालोंकी औसत। (२)सन् १९४३-४५ ई० के तीन सालोंकी औसत।

देश	जन-गणना (१९४७)	१९४७ आय (१० लाख सिक्के)	आय (१० लाख रु०)	प्रतिव्यक्ति (रुपये)
यूनान	७,५५,००,००	७,३४,२०,०० द्रारका	४८,५०	६३८
डेनमार्क	४१,४६,०००	१,४५,६८ क्रोनर	१,००,४९	२,४५१
बुलगारिया	७०,४८,०००(१)	१५,५६,०० लेवा	१८,००	२५४
हुंगरी	९३,८३,०००(२)	१,१३,६३ पेंगो	३१,८८	३३९
आयरलैंड	२९,७२,०००(३)	२,२६ पौंड	३०,२१	१,००७
नार्वे	३१,३५,०००	८१,४३ क्रोनर	५४,३६	१,७५४
एशिया—				
भारत	३३,७२,११,०००	५,७०,०० रुपये	५,७०,००	१७२ (१२९)
जापान	७,८६,२७,०००	९०,६०,०० येन	१,३५,९०,००	
लंका	६८,७९,०००	१७,३६ रुपये	१७,३६	२५२
फिलस्तीन(४)	१९,१२,०००	१,१८ पौंड	१५,८१	८३२
आस्ट्रेलिया	७५,८०,०००	१५,९८ "	१,६९,६७	२,२३२
न्यूजलैंड	१८,०३,०००	४,२२ "	४४,९०	२४८०
दक्षिण आफ्रीका	१,१६,०५,०००(५)	६,६४ "	८८,३४	७६२

(१) सन् १९४२-४४ ई० के तीन सालोंकी औसत। (२) सन् १९४१-४३ ई० के तीन सालोंकी औसत, (३) सन १९४२-४४ ई० के ३ सालोंकी औसत। (४) सन् १९४६ ई० की जनसंख्या। (५) सन् १९४४-४६ ई० के ३ सालोंकी औसत।

(विश्वदर्शन" सितम्बर सन् १९४९ पृष्ठ ३२)

४–(आर्थिक तौरसे पिछड़े हुए इलाकोंमें सोवियत-सरकारने कितना काम किया है, इसका उदाहरण है, ऊरालमें नये-नये उद्योग-धन्धेका विस्तार ।) स्थल या वायु द्वारा आक्रमणकी पहुँचसे बहुत दूर इस पूर्वी क्षेत्रमें सोवियत-सरकारने सबसे बड़े औद्योगिक केंद्र निर्माण किये । ऊराल-पर्वतमालामें बहुत-सी विशाल फैक्टरियाँ बनाई गईं, स्वेर्दलोव्स्कका ऊराल-माश यूरोपमें कृषियंत्रोंका सबसे बड़ा कारखाना है, नवोतगिलमें फौलादका कारखाना, दक्षिणी ऊरालमें मग्नितोगोर्स्कका प्रकांड धातु-कारखाना और पश्चिमी ऊरालमें बहुत-सी रासायनिक फैक्टरियाँ स्थापित की गयीं । रूसी उद्योग ऊरालके पूर्वमें बहुत दूर तक फैला हुआ है । स्तालिन्स्कमें मग्नितोगोर्स्कसे भी बड़ा फौलाद-कारखाना है और वह ऊरालसे १५०० मील पूर्वमें अवस्थित है । और भी आगे (तथा पिछड़े हुये भूभागमें) खबारोव्स्क और बोरोशिलोव्स्क जैसे नये औद्योगिक केंद्र पैदा हो गये हैं, जो कि पहिले जंगल या मछुवोंके गाँव थे ।"

–(I. L. p. 273)

४. **नमूनेका गांव**–

सन् १९४४ ई० में नियुक्त अ-काल-अनुसंधान-कमीशनने अपनी रिपोर्टमें वालचंद्र नगर नामके एक आदर्श गुजराती गाँवका वर्णन किया है–"बंबई प्रदेशके एक गाँव (वालचन्द्र नगर) का उदाहरण देकर हम अपनी कल्पनाके समृद्ध गाँवको बतलाना चाहते हैं । इसकी भूमि ४५ वर्गमीलमें फैली हुई है, इसे बारह वर्ष पहिले कितनी ही छोटी-छोटी जमाबंदियोंको ठीके या खरीदके रूपमें लेकर स्थापित किया गया और मुख्यतः गन्नेके फार्मके रूपमें विकसित किया गया । यहाँकी नोनछी बेकार भूमिको खेती लायक बनाया गया, सिंचाईका प्रबन्ध किया गया, और सन् १९३३-३४ तथा १९४२-४३ ई० के भीतर कृषि-योग्य भूमिको १४०० से ५६०० एकड़ कर दिया गया । इसी अवधिमें ऊखकी खेती बढ़ाके १००० से ३५०० एकड़ कर दी गयी और उसकी उपज प्रति-एकड़ ३५ से ५३ टन अर्थात् ड्योढ़ा कर दी गयी । आहारकी फसलका क्षेत्र भी बढ़ाया गया और हालमें साग-भाजीकी खेतीको भी काफी बड़े पैमानेपर बढ़ाया गया है । आगे एक दुग्धशाला भी आरंभ की गयी और दूधके निष्क्रमीकरण का कारखाना भी खड़ा कर दिया गया । अपने यहाँकी ऊखके लिये एक चीनी मिल स्थापित की गयी, जो कि अब प्रतिदिन १२०० टन

ऊख पेल सकती हैं। बढ़ते हुये ऊखके खेतोंके लिये और अधिक प्राणिज खाद्यकी आवश्यकता हुई, इसकी पूर्तिके लिये एक तेलकी मिल स्थापित की गयी है। मूंगफलीकी जो खली इस मिलसे निकलती है, उसे खादके तौरपर इस्तेमाल किया जाता है। मूंगफलीके तेलको बाजारमें अच्छे दामसे बेंचनेके खयालसे एक तेल-शोधनी तथा एक उद्‌जनीकरण मिल बनायी गयी। इसके कारण आगे भी विकास हुआ और बेकार जानेवाली चीजोंके उपयोगके लिये कई प्रकारके साबुन बनानेका काम आरंभ हुआ। चीनी मिलके विकासने इसी तरह शीरेसे रेक्टीफाइट स्प्रिट बनाने तथा येस्ट (चूर्ण) निकालनेके लिये एक आसवनिकाकी स्थापना करवाई।... किसी चीजके बेकार न होने देने तथा कारखाने और फार्मकी उपजके ठीक तरहके उपयोगके तजरबे अब भी जारी हैं। यहाँ मजदूरोंकी संख्या बढ़ी है, पड़ोसके इसी तरहके कारखानोंकी अपेक्षा यहाँ अच्छी मजूरी दी जाती है। जानकार स्त्रियोंके कामके लिये यहाँ नया विशेष क्षेत्र तैयार हुआ है। कर्मियोंमें से अधिकांशके लिये यहीं निवासगृह, निःशुल्क चिकित्सा और शिक्षाका प्रबन्ध है।"

–(The Famine Commission Report 1945. pp. 227-8)

५. सटोरिये उद्योग-पति–

१–...पिछले कुछ वर्षोंमें हमारी व्यापारिक और औद्योगिक जमातोंकी बनावटमें बहुतसे परिवर्तन हुए हैं। पहिलेके प्रभावशाली सट्टेबाज अब आगे आ गये और बहुत पहिलेसे स्थापित तथा आरंभित उद्योग इन सट्टेबाजों तथा पैसेवाले जादूगरोंके हाथमें चले गये। युद्धकालीन विकराल लाभ द्वारा आसानीसे जो रुपया बनते हमने पिछले कुछ वर्षोंमें देखा, उसने लगातार बढ़ते दामोंके साथ मिलकर प्रमुख सट्टेबाजोंको मालामाल कर दिया। माल और पण्य को छिपा रखनेवाले इन चोरबाजारियोंने वह लाभ कमाया, जिसे साधारण समयमें कभी सुना नहीं गया था। बहुत सी कंपनियाँ अविश्वसनीय मूल्यमें बिकीं। उदाहरणार्थ-बराबोनी तथा एकराखासक दो कोयला-खानें ८० लाख रुपयेमें, कानपुरकी स्वदेशी काटन मिल तीन करोड़में खरीदी गयी, गोवन ब्रादर्स एक करोड़से अधिकमें बेंची गयी। और भी कितनी ही कपड़ा या जूटकी मिलें समाचार-पत्र, चाय-बगीचे तथा इंजीनियरी कारखाने आश्चर्यकर मूल्यपर खरीदे गये।

इनमेंसे कितनोंसे जितना जल्दी पैसा लौटा, वह भी अविश्वसनीय तथा ज्योतिषीय अंकमें है। (उद्योगमें) इतने भारी परिवर्तन हुए कि कुछ प्रबन्धक एजेन्ट आज आपसमें कोई एकता न रखने वाली सैकड़ों भिन्न-भिन्न कंपनियोंका नियंत्रण करते हैं–जैसे अमुक प्रबन्धक-एजेन्ट परिवारके हाथमें सूती, जूट, चीनी, कागजकी मिलें, बंक, बीमा, फौलाद, खाद्य-उपज, मोटरकार आदिका होना...

६. नगर-समस्या–

उद्योगपतियोंको समझना चाहिये कि सस्ते आहार सस्ते घरोंके दिन लद गये। आयातके अन्नपर हमारा निर्भर होना प्रतिवर्ष अधिकाधिक होता जाता दिख रहा है। अन्नकी प्रान्तीय आवश्यकताओंका अन्दाज ६० लाख टनके करीब लगाया गया है, हमारी जनसंख्यामें प्रतिवर्ष ५० लाख मुखोंकी वृद्धि भी मान लेने पर अन्नकी टन संख्या और भी अधिक बढ़ जायेगी। घरोंकी समस्याको हल होकर साधारण स्थितिपर पहुँचनेमें वर्षों लगेंगे। यह आशा करनी दुराशा मात्र है, कि "लौटकर गाँव चलो" का आन्दोलन हमें चितासे मुक्त कर देगा। इस प्रकार अन्न और घर अगले कुछ वर्षोंमें बहुत और सस्ते हो जायेंगे, इसकी संभावना नहीं है। यदि कुछ होगा तो यही, कि **लगातार उत्पादनके कम होने तथा जनसंख्याके बढ़नेसे साधारण जनके लिये जीवन और कठिन होता जायेगा।**

–(P. C. pp. 103-105)

...बहुतसे युद्ध–संबंधी कार्यों और रसद-कारखानोंके स्थापित होनेके कारण बड़े नगरों और औद्योगिक केन्द्रोंमें युद्धके समय भारी जनवृद्धि हुई।...देशके विभाजनके कारण वहाँ और भी भीड़ बढ़ी, जब कि शरणार्थी काम या नौकरीकी खोजमें नगरोंमें जमा हो गये। इन कारणोंसे जनसंख्या बेतहासा बढ़ी। कलकत्ताकी जनसंख्या, जो युद्धसे पूर्व २० लाख थी, वह ६० लाखसे ऊपर पहुँच गयी, बंबईकी १५ लाखसे ३५ लाख, कानपुरकी दूनी और सन् १९४१ ई० में ६ लाखकी दिल्लीकी जनसंख्या अब २० लाखसे ऊपर है। अहमदाबाद, जमशेदपुर, नागपुर, शोलापुर, मद्रास जैसे दूसरे औद्योगिक केन्द्रोंकी भी यही हालत हुई। यह तब जब कि भारी गृह-निर्माण-सामग्री, मँहगाई, तथा मजूरोंकी कमीके कारण बहुत ही कम (नये) घर बनते देखे गये...

७. पूंजी लगाना–

(पृ० ६३, ६९,७४,) कोलिन् क्लार्कके अनुसार सन् १९१९-२३ ई०

में वार्षिक पूंजी-विनियोग १५० करोड़ रुपया था, जब कि सन् १९२४-२८ ई० में वह १४० करोड़, सन् १९२९-३३ ई० में ११४ करोड़ तथा सन् १९३४-३८ ई० में १३ करोड़ रहा । युद्धपूर्वका औसत १४० करोड़ वार्षिकके आसपास था ।

पिछले ढाई सालोंमें निस्संदेह कृषिकी उपजकी कीमतें रुकी नहीं, वल्कि बढ़कर आकाश तक पहुँच गयीं, जिससे २०-३० एकड़से अधिक खेत रखनेवाले किसानोंको पर्याप्त लाभ हुआ ।...

–(P. C. p. 108)

१–उत्पादनके कम होनेका एक भारी कारण है, राजनीतिक तथा आर्थिक अनिश्चितिकी वजहसे कारबारमें विश्वासका अभाव । उत्पादन बढ़ाने या नये व्यवसायको हाथमें लेनेमें उद्योगपति साधारणतया मन्दोत्साह हो गये हैं । बादके कालमें विशेषकर अगस्त सन् १९४६ ई० के कलकत्ताके साम्प्रदायिक झगड़ोंके बाद देशकी राजनीतिक अवस्था और भी खराब हो गई । स्थिति ठीक नहीं हुयी थी, कि हैदराबाद-काश्मीरके झगड़े सामने आ गये । देशकी अशान्त अवस्थाके कारण व्यापारिक और औद्योगिक कारबार अस्त-व्यस्त हो गया । जीवन और धनकी अरक्षाने पूंजी लगानेको खतरेकी बात बना दी ।

व्यावसायिक निराशावादका एक दूसरा कारण है, आर्थिक अनिश्चिति । इसका बड़ा कारण है, अपने दिन-प्रतिदिनके कार्यमें उद्योगपतियोंके सामने आनेवाली कठिनाइयाँ ।..मजूरोंके झगड़ेके कारण कितने ही कामके दिन बरबाद हो जाते हैं । यातायातकी कठिनाईके कारण कोयले और कच्चे मालकी आमदनी अपर्याप्त तथा अनियमित रहती है । पुरानी मशीनोंको बदलनेके लिये नयी मशीनें प्राप्य नहीं हैं । मुद्रास्फीतिकी वजहसे उद्योगपतियोंके लिये यह अन्दाज लगाना मुश्किल है, कि मालका उत्पादन-व्यय कितना होगा...

औद्योगिक कच्चे मालकी कीमतोंकी सूची आंकड़ाः–(सूच्यंक)

(आधार अगस्त १९३९ = १००)

मास	वर्ष	सूच्यंक	पहिलेसे वृद्धि
सितम्बर	१९४५	२३८	
,,	१९४७	३७२	१३४
अगस्त	१९४८	४३८	६६

निम्नतम लाभकी आशा और नये उद्योगके आरंभ करनेकी कठि-

वाईने पूंजी-लगाईको बहुत निम्न स्तरपर पहुँचा दिया है। उदाहरणार्थ–अक्तूबर १९४५ से मार्च १९४७ तक जहाँ ४८४ करोड़ रुपयेकी पूंजी-लगाईके लिये नियंत्रकके पास १६१४ आवेदन गये थे, वहाँ अप्रेल १९४७ और मार्च १९४८ के बीच १९३ करोड़ की पूंजीके लिये केवल ५४१ आवेदनपत्र दिये गये। पहिलेकी समयावधि ड्योढी है, इसे ले लेनेपर भी हम इस निष्कर्षपर पहुँचे बिना नहीं रहेंगे, कि लोगोंमें नई कंपनी खोलनेकी इच्छा काफी कम हो गयी है। जब वह समझते हैं, कि उनके प्रयत्नके आधारपर ही कुठाराघात किया जा रहा है, तो उनके उत्साहका मंद पड़ना स्वाभाविक है।

–(E. C. pp. 18-20)

८. विदेशी पूंजी–

भारतवर्षमें पूंजी आगे आनेमें अत्यन्त संकोच करती रही। चाय-बगान, खान तथा जूटके उद्योगोंकी स्थापनाके प्रारंभिक वर्षोंमें अधिकांश पूंजी तथा प्रबंध-कौशल अंग्रेजोंकी ओरसे आया था। पीछे अमेरिकन गृहयुद्धमें (सूती कपड़ेके निर्यातके रुक जानेके कारण) पश्चिमी-भारतने सूती कपड़ेके व्यापारसे भारी धनराशि जमा कर ली, जिससे बंबई और अहमदाबादके कपड़ा-उद्योगके विकासमें बड़ी मदद मिली। इन मिलोंके आरंभण, प्रोत्साहन, आर्थिक सहायता और प्रबंधका सारा भार थोड़े से व्यापारियोंपर पड़ा। यद्यपि कुछ अतिरिक्त पूंजी प्राप्त करनेके खयालसे वह कुछ बाहरवालोंको लेनेके लिये भी तैयार थे, किंतु वह इसका सदा ध्यान रखते थे, कि नियंत्रण उनके हाथमें रहे।...इस प्रकार प्रबंध-एजेन्ट सारे औद्योगिक ढांचेका केंद्र बन गया। सन् १९४३-४६ के सौभाग्यशाली वर्षोंमें देशमें सबसे अधिक नयी कंपनियाँ खोली गयीं, और उनमेंसे बहुतेरी प्रबन्ध-एजेन्टोंकी अधीनतामें अस्तित्वमें आयीं। प्रबंध-एजेन्टकी यह प्रधानता आज भी हमारी औद्योगिक संस्थाओंमें साफ दीख पड़ती है।

औद्योगिक बैंकों और वित्तिक-सहायता देनेवाले भवनोंके अभावमें पूंजीका आगे आना और भी मंद हो गया।....भारतमें प्रधानता व्यापारिक बैंकोंकी है, जो अल्पावधिके ऋण और विदेशी विनिमयका काम करते हैं।......

युद्ध समाप्तिके तुरंत ही बाद तथा राजनीतिक शक्तिके हस्तान्तरित **होनेकी संभावना होनेसे** भारतमें ऐसा **खयाल किया जाने** लगा था, कि

यहाँ लगी विदेशी पूंजी जल्दी ही भारतीयोंके हाथमें चली आयेगी और भविष्यमें विदेशी पूंजी कुछ मौलिक शर्तों के साथ ही आने पायेगी। यह भावना बहुत दृढ़ थी, जिसके कारण अविश्वास और घबड़ाहट पैदा होना स्वाभाविक था....इसका प्रभाव इंपीरियल बैंकके शेयरों के बहुत तेजीसे गिरने में दिखाई पड़ा—वह हालमें कई सौ रुपया नीचे गिरा है। २२ सितंबर सन् १९४८ को इम्पीरियल बैंकका शेयर १९२५ रुपया था, जब कि ८ जनवरी १९४९ को वह १७८७.८ रह गया।...यह इस बातका संकेत है, कि कुछ विदेशी पूंजी लगानेवाले भारतसे अपनी पूंजीको हटा रहे हैं।..यह जाँच करना भी बेकार न होगा, कि क्या हमारे देशसे काफी पूंजी पाकिस्तानमें स्थानान्तरित की गयी है। हो सकता है, कुछ विदेशी पूंजी लगानेवाले भारतकी अपेक्षा अविकसित तथा अधिकतर कृषि-प्रधान पाकिस्तानको अधिक अनुकूल समझते हों। कराची की खबरोंसे पता लगता है, कि मई सन् १९४७ की अपेक्षा आज वहाँ अंग्रेज वाशिन्दोंकी संख्या कई गुना बढ़ गयी है। सभी महत्त्वशाली विदेशी विनिमय बैंकोंने चटगांव (पूर्व-पाकिस्तान) में अपनी शाखाएं खोली हैं।..

हालमें (पृ० ८९) सरकारी वक्ताओंने यह आशा की है, कि चूंकि भारतीय पूंजीने हड़ताल कर दी है और कम या बेसी अन्तर्द्धान हो गयी हैं, इसलिये हम विदेशी पूंजीका स्वागत करेंगे। यह स्वीकार करनेमें उजुर नहीं हो सकता, कि आगे बढ़नेका साहस करनेवाली पूंजी पिछले दिनोंमें हमारे यहाँ बहुत अधिक नहीं दिखाई पड़ी। यह भी सच्ची बात है, कि पिछले दो बर्षोंमें भारतीय पूंजी लगानेवालोंने शेयरके भावके असाधारण तौरसे गिरनेके कारण करीब दो हजार करोड़ रुपयेका नुकसान उठाया है।...भविष्यमें विश्वासका अभाव और कारबारकी अनिश्चित स्थिति इस अवस्था तक पहुँचानेमें कारण हुई। ऐसी परिस्थितिमें भारतीय पूंजीपर अन्तर्द्धान हो जानेका दोष लगाना क्या उचित हो सकता है?

यदि भारतीय पूंजी वर्तमान उद्योगोंको योग्यताके साथ चलाने तथा नये कारखानोंको आरंभ करनेके लिये आगे नहीं बढ़ रही है, तो क्या यह आशा की जा सकती है, कि विदेशी पूंजी उसके लिये आगे बढ़ेगी? विदेशी पूंजीपति सदा अनुभव करता है, कि देशी या स्थानीय पूंजी-संचालककी अपेक्षा हमें अधिक खतरेका सामना करना होगा। सबसे पहिले विदेशी पूंजी लगानेवालोंको राजनीतिक स्थिरता तथा सरकारी

नीतियोंके कुछ निरंतर चलते रहनेका विश्वास होना चाहिये। वह बिलकुल साफ तौरसे इसकी भी गारंटी चाहेगा, कि कमसे कम २० साल तक उसकी संपत्तिको न ले लिया जाये, साथ ही वह यह भी वचन चाहेगा, कि उसकी संपतिका राष्ट्रीयकरण न हो।

–(P. C. pp. 70-75)

(४) सितम्बर सन् १९४९ ई० को अमेरिकाके अर्थ-सचिव स्नाइडरने विदेशमें अमेरिकन पूंजी लगानेकी तीन शर्तें बतलायी हैं–(१) पूंजी लगानेकेलिये उचित शर्तें, (२) लाभको डालरमें बदलने (और अमेरिका भेजने) का सुभीता, (३) राष्ट्रीयकरण होनेपर संपत्तिके लिये क्षति-पूर्ति मिलना।)

आजकल इंगलैंड इस अवस्थामें नहीं है, कि वह भारी परिमाणमें पूंजी हमारे देशमें लगा सके। पिछले दस वर्षोंमें उसकी आर्थिक स्थिति इतनी बदल चुकी है, कि आगामी वर्षोंमें विदेशमें लगी अपनी पूंजीको वह बढ़ानेकी जगह कम करता रहेगा। युद्धके पहिले हालैंड भी एक भारी अंतर्राष्ट्रीय पूंजी-केंद्र था, लेकिन डच भी ऐसी अवस्थामें नहीं हैं, कि बाहर पूंजी लगायें, क्योंकि अपनी आर्थिक स्थिरताको लानेके लिये ही उन्हें अभी कठोर परिश्रम करना है। फ्रांस आर्थिक तौरसे लुंज हो गया है। युक्त राष्ट्र अमेरिका ही एक मात्र ऐसा देश है, जिससे पूंजी लगाये जानेकी आशा की जा सकती है। युक्तराष्ट्रके व्यापारिक नेता तथा विदेश विभागके कर्मचारियोंका मनोभाव यही प्रकट करता है, कि अमेरिकन पूंजी आज-कल "ठहरो और प्रतीक्षा करो" की नीतिका अनुसरण कर रही है। वर्त्तमान आर्थिक स्थितिमें अमेरिकन पूंजीपतियोंको हमारे यहाँ भारी परिमाणमें पूंजी लगानेका आकर्षण नहीं हो रहा है। विशेष करके अमेरिकन पूंजी लगानेवाले इस बातका पक्का विश्वास चाहते हैं, कि वह अपनी लगाई पूंजीके लाभको डालरके रूपमें घर भेज सकें और अन्तमें व्यवसाय समाप्तिके समय उनका धन दुर्लभ-विदेशी-विनियममें मिल सके। अवस्था यह है कि भारत में डालरकी भीषण रूपमें कमी पहिले ही से है और दुर्लभ सिक्केवाले देशोंके साथ उसके व्यापारका आंकड़ा विरुद्ध जा रहा है। पौंड-पावनेके समझौतेके अनुसार विनिमयके लिये मिली धनराशि और विश्वबैंकसे निकाले पैसे द्वारा भी व्यापारकी कमीको पूरा करना आसान नहीं है। फिर क्या यह संभव है, कि हम अपने निर्बल धनस्रोतोंके बलपर और अधिक धनकी बाहर जानेको

रोक सकें ? डालर कमानेका केवल एक ही रास्ता है, वह है, युक्तराष्ट्र-को हमारा निर्यात बढ़े। लेकिन हम देखते हैं, कि अमेरिकाके लिये हमारा निर्यात प्रतिमास गिरता जा रहा है, तथा भविष्यमें उसके काफी उठनेकी आशा नहीं है। युक्तराष्ट्र रक्षात्मक नीतिका बहुत समयसे समर्थक रहा है, और उसके अधिकांश उद्योग आकाशचुंबी तटकरकी दीवारके द्वारा मूलवद्ध हुए हैं, इसलिये विदेशी मालका उसके भीतर घुसना आसान काम नहीं है। क्या हम इस चक्रव्यूहके तोड़नेकी स्थितिमें हैं या उसके लिये तैयार हैं ? यदि भूतकालसे इस दिशामें कोई शिक्षा मिल सकती है, तो हम कह सकते हैं, कि यह बहुत आसान काम नहीं है और केवल वाग्जाल-पूर्ण वक्तव्य इस स्थितिमें कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं ला सकते।

–(P. C. pp. 75-76)

९. व्यापार-हानि–

भारतका सामुद्रिक व्यापार दिन पर दिन गिरता जा रहा है, इसका प्रमाण मई सन् १९४९ ई० में हमारे सामुद्रिक व्यापारके आँकड़ों-को देखनेसे मालूम हो जाता है। इस महीनेमें भारतमें ६४.१२ करोड़ रुपयेका माल आया और पुनर्निर्यात मालको लेकर केवल ३०.०५ करोड़ रुपयेका माल बाहर गया–अर्थात् ३४.०७ करोड़ रुपया भारतको देना रहा, जब कि सन् १९४८ के मई मासमें वह ११.८० करोड़ रुपयोंका ही देनदार था। मई महीनेके इस प्रतिकूल देने-पावनेका कारण है आयातमें २०.७ करोड़की वृद्धि तथा निर्यात और पुनर्निर्यातमें १.४८ करोड़की कमी। मुख्य आयातकी चीजें थीं––

खाद्य (अनाज और आटा)	११.८१	करोड़ रुपया
मशीन	९.३९	,,
कपास	६.८१	,,
तेल	४.२३	,,
सूती कपड़ा	५०.४९	,,
दूसरा सूत और कपड़ा	३.४५	,,
मोटर-गाड़ियाँ	३.२७	,,
धातु	२.३९	,,
रसायन और औषध	२.२१	,,
छुरी, ताला और धातुकी चीजें	२.००	,,

निर्यातकी चीजें–	करोड़ रुपया	
जूटका माल	८.१५	,,
कपड़ा	३.०६	,,
चाय	२.१९	,,
कच्चा जूट	१.९५	,,
चर्म	१.८२	,,
कपास	१.६३	,,
पुनर्निर्यात	१.८७	,,

अमेरिकाने १०.१८ करोड़की चीजें हमारे यहाँ भेजीं और हमसे ४.२५ करोड़की चीजें खरीदीं। आयातकी चीजोंमें खाद्यके लिये ११.१८ करोड़ भारतको देना पड़ा। इसके बाद ९.३९ करोड़की सबसे बड़ी रकम मशीनोंके खरीदनेपर लगायी गयी।

–(The Hindustan Times 10 Sept. 1949 p. 10)

१०. पुरानी मशीनोंके कारखाने–

युद्धके समय सैनिक चीजोंकी जबर्दस्त माँग के कारण हमारे औद्योगिक साधनोंपर बहुत जोर पड़ा। युद्धसे पहिले भी हमारे संगठित उद्योगकी मशीनें जीर्ण-शीर्ण और यांत्रिक दृष्टिसे पुरानी हो गयी थीं। हमारी बहुत सी कपड़ा-मिलोंके यंत्र प्रथम विश्वयुद्धसे पहिलेके थे। बंबई, अहमदाबाद और दिल्लीमें कुछ थोड़ी सी नयी मिलें आधुनिक स्वयं-चालित करघों और आधुनिक मशीनोंके साथ स्थापित की गयीं, किंतु उनकी संख्या प्रतिशत बहुत कम है। जूट-मिलोंका काम डंडीके आरंभिक प्रयत्नके रूपमें बहुत छोटेसे प्लान्टोंके साथ आरंभ हुआ और पीछे सन् १९०० से १९०९ में उनकी क्षमता बहुत अधिक बढ़ गयी। इस प्रकार सन् १९३८ में ३० हजार करघोंके साथ ३८ जूट कंपनियाँ काम कर रही थीं। प्रथम विश्वयुद्धके पश्चात् तुरंत भारी माँग बढ़ी, तो भी सन् १९२७ तक करघोंकी संख्या १५,००० से अधिक नहीं बढ़ी, जिससे स्पष्ट है, कि अधिकांश मशीनें बहुत पुरानी और कुछ तो १९वीं सदी तक की हैं।

युद्धकालमें उधार-पट्टेके सिवाय दूसरी मशीनें एक तरह आनी ही बंद हो गयीं। उधार-पट्टेकी मशीनें भी अधिकतर सैनिक आवश्यकताओंके लिये थीं। युद्धकी माँग थी कि कारखानों में उत्पादन बढ़ाया जाय। उस समय यह कहां सम्भव था, कि मशीनोंको फिरसे नया या परिवर्तित किया जाय। इस सारे समय मशीनोंकी ठीकसे मरम्मत

रखनेकी पूरी उपेक्षा रही। प्रायः दस बरस तक ऐसी अवस्था रहनेके कारण आज स्थिति और बुरी हो गयी है। शान्तिके प्रभातोदय के साथ हमारे उद्योगपतियोंको बड़ी आशा हुई, कि अब पूंजी-माल (कारखानेकी मशीनें) अधिक और अधिक परिमाणमें आयेंगे। अमेरिकाके पास लातिन अमेरिकन देशोंसे मशीनोंकी माँग आयी, जो कि परम्परासे अमेरिकन यंत्रसाधनोंके ग्राहक रहे हैं (और उनकी माँगको ठुकराया नहीं जा सकता था)। फिर यूरोपीय पुनर्वासके प्रोग्रामके अनुसार अमेरिकाकी मशीनें यूरोपकी ओर ढोयी जाने लगीं। भारतकी आवश्यकताओंको सबसे पीछे रख दिया गया। पहिले इंगलैंड हमारी मशीनोंकी प्राप्तिका मुख्य स्रोत था, लेकिन उसका आर्थिक जीवन जिन स्थितियोंसे गुजर रहा है, उसके कारण उसे भारी कठिनाई है। हमारी कठिनाइयाँ इस बातके कारण और भी बढ़ गयीं, कि पूंजीमालकी कीमतें युद्धपूर्वसे आज तीन-चार गुनासे भी अधिक बढ़ गयी हैं, और कुछ दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओंके कारण हमारे औद्योगिक कारखानोंकी रक्षित-निधि इतनी अधिक कम हो गयी है, कि हम अपने कितनी ही नवीनीकरणकी योजनाओंको स्थगित करनेके लिये मजबूर हैं।

–(P. C. pp. 114-115)

११. शौकीनीका आयात–

(पृ० ९६) आयातकी चीजोंमें हरेक देश सावधानी रखता है और अत्यावश्यक वस्तुको ही भरसक बाहरसे आने देता है। ३१ मार्चको अन्त होनेवाले साल (१९४८-४९) की आयातकी कुछ चीजोंको देखनेसे मालूम होगा, कि आयातके संबंधमें सावधानी नहीं रखी जा रही है–

कुछ आयातकी चीजें–

मद्य–	**रुपया**
ऐल, बियर और पोर्ट	७१,६३,४१४
वाइन	६,८२,८७९
स्प्रिरिट	८८,०६,५०५
खाद्य और रसद–	
बिस्कुट और केक	७४,४७,६७९
टिन और बोतल किये हुए अचार	२८,१५,३९९
पेटेंट खाद्य आदि	१,९९,९१,५४६
टिन-दूध आदि	२,८१,७०,०००

मद्य	रुपया
तंबाकू–	
कच्चा	२,९५,०१,४०७
सिगरेट	६४,०३,९००
रत्न और मोती आदि	७८,१५,०७४

१२. आयात-निर्यात–

(१) ३१ मार्च १९४९ को समाप्त होनेवाले वर्षके निर्यातकी कुछ वस्तुएं –

		रुपया
मसाले–		
इलायची	७३,२३,४०५	,,
काली मिर्च	२,६७,१४,९८८	,,
हल्दी	८४,२७,२४८	,,
चाय–	६३,६३,८५,६८७	,,
काफी	१,०६,९७०	,,
तंबाकू (कच्चा)	५,७७,८६,५२९	,,
कोयला और कोक	३,७५,९६,५०९	,,
अबरक	५,९२,३८,५८३	,,
लाख और बिरोजा	८,६७,८१,४१७	,,
छाला चर्म (कच्चा)	४,९८,१२,६२०	,,
मंगानीज धातु-पाषाण (ओर)	१,८१,००,१३२	,,
नारियल तेल	६,४५,५६,३९१	,,
मूंगफली	३,१३,२२,०४९	,,
अलसी	१,३९,०४,२७५	,,
कपड़ेका सामान–		
कपास	१४,००,१२,३४४	,,
कपास-रद्दी	५,१४,७१,१४८	,,
सन (कच्चा)	३,३३,९८,२९५	,,
जूट ,,	२३,८९,३२,९७६	,,
रेशम ,,	२,०९,६१३	,,
ऊन ,,	१,०८,८२,९७९	,,
चर्म (सिझा)	४,९६,४३,५८८	,,
छाला चर्म (सिझा)	७,२०,४९,८९७	,,

सूत और कपड़ा–

सूत	१,२८,९२,६४३	रुपया
सूती कपड़ा	३६,२३,८८,५५९	"
जूट गनी-बोरा	६१,४१,५४,०५८	"
जूट गनी-कपड़ा	८०,५२,४४,९७९	"
ऊनी कालीन रंग	२,६०,७३,९५१	"

फुटकर व्यय –

रस्सा, रस्सी	४,४६,६६,२६४	"
पराफीन, मोम	१,१३,२४,१५९	"
साबुन	५१,८८,६६३	"

(A. C. March 1949. pp. 20-23)

(२) १९४९ और उससे दो वर्ष पहिलेके मार्च महीनोंका आयात निम्न प्रकार है–

मार्च १९४७	२९,९५,०७,८५९	रुपया
" १९४८	३५,१६,९४,४९३	"
" १९४९	५५,०९,४९,६७३	"

निर्यात ३१ मार्चको अंत होनेवाले तीन वर्षोंका निम्न प्रकार है–

१९४६-४७	२,९७,६७,०९,१९६	रुपया
१९४७-४८	३,९५,३०,७६,७२९	"
१९४८-४९	४,१५,५३,१९,४३९	"

– (ibid. pp. 5-15)

इंगलैंडके साथ आयात और निर्यात:–अब भी भारतवर्षका सबसे अधिक व्यापार इंगलैंडके साथ होता है। प्रथम अप्रैल १९४८ से ३१ मार्च १९४९ के एक वर्षमें जहाँ इंगलैंडने भारतवर्षसे ९७,६६,९२,५२६ रुपयेकी चीजें लीं और १,५२,१३,०३,९४० रुपयेकी चीजें हमारे यहाँ भेजा, वहां दूसरे कुछ देशोंके आयात और निर्यात निम्न प्रकार थे–

	निर्यात	आयात
सोवियत रूस	५,३६,४७,३५८	२,६१,९०,७७५
स्वीडन	२,११,१८,५७३	६,०४,७६,८७१
फ्रांस	७,२९,५०,५२४	२,८८,८४,८३०
बेल्जियम	५,८४,८७,३३४	७,१५,१८,५७४
चेकोस्लोवाकिया	२,१८,०५,०९७	२,०८,८०,५०७
जावा	१,०९,०१,८७९	१८,५५,५२

	आयात	निर्यात
चीन	५,५७,३९,४६२	१,२०,३०,२५६
मिश्र	६,६९,७८,५५६	३१,८९,४९,१९९
युक्तराष्ट्र अमेरिका	७०,०३,११,७२३	१,०४,२३,७१,६५९

इस साल भारतका सारा निर्यात ४,१५,५३,१९,४३९ रुपया तथा आयात ५,१७,९९,७६,०३९ था।

इंगलेंडसे सन् १९४८ के पूरे वर्षमें कितने पौंडकी कौन-कौन सी चीजोंका निर्यात या आयात हुआ, यह निम्न तालिकासे मालूम होगा:—

	(हजार पौंड)
सम्पूर्ण निर्यात—	९६, २६६
चाय	३५,१४८
तंबाकू	२,९५६
अन्य खनिज	१,४५१
अलौह धून और पाषाण आदि	८८८
कपास और रद्दी	३,३१७
ऊन और ऊनकी चीजें	१,७९७
जूट	५,९५५
तेल, चर्बी, मूंगफली आदि	९,६३९
लघु चर्म	१,११७
ऊनी सूती कपड़े, सूत	१,६००
रस्सी, रस्सा, चटाई	१,७९०
जूटकी चीजें	१५,८४६
तेल, चर्बी, बिरोजा आदि	९६०
चमड़ेकी चीजें	७,२२८
सम्पूर्ण आयात—	९६,६२१
मशीन	३४,०७९
यान (जहाज,विमान, इंजन)	१२,८१७
लोहा-फौलादकी चीजें	४,२३५
काच, चीनीके बर्तन आदि	१,४११
अलौह-धातुकी चीजें	३,७६९
औजार, हथियार आदि	२,६५५
बिजलीकी चीजें और यंत्र	६,५७२

सूती कपड़े और चीजें	७,०४६
ऊनी चीजें	४,६०१
रेशम और नकली रेशमकी चीजें	९,०१
रसायन, मादक, रंग आदि	९,०५७
कागज, दफ्ती आदि	१,७८०

इंगलैंडसे सन् १९४८ के साल में निम्न मशीनें आयीं—

	(हजार पौंड)
कुल मशीनें	३४,०७९
ब्वायलर और पानीके नल	१,०२५
दूसरी तत्संबंधी चीजें	१,००६
क्रेन और उठाऊ मशीनें	४४२
बिजली की मशीन—	
जेनरेटर	१,१७३
मोटर और पुर्जे	१,३०५
दूसरी चीजें	२,३१०
मशीन-टूल (धातुके कामके)	२,३१५
खानकी मशीनें	२२२
इंजन—	
सामुद्रिक	
दूसरे	२,१३६
छापाखाने आदिकी मशीनें	८३१
पम्प	७३७
रिफ्रीजेरेटर मशीन	२१७
सड़क-रोलर	७६२
चीनी-मिलकी मशीनें	६१५
कपड़ा-मिलकी मशीनें	८,९८७

—(R. S., p. 36)

१३. भारतीय औद्योगिक उत्पादन—

सन् १९४६ में हमारे २९ उद्योगोंकी ५ हजार रजिस्टर्ड फैक्टरियोंमें १५ लाखसे अधिक व्यक्ति तथा करीब ३६७ करोड़ उत्पादक पूंजी काम कर रही थी, जो सन् १९४६ में ५९८ करोड़ थी। उसी साल मरम्मत

आदिमें प्रायः चार करोड़ रुपये लगे। निर्माण द्वारा बढ़ाया मूल्य २११ करोड़ अर्थात् प्रति फैक्टरी ५.२ लाख और प्रति व्यक्ति १३९६ रुपया और प्रति मनुष्य-घंटा कामपर १० आना मूल्य वृद्धि हुई। इसमें काम करने-वालोंने वेतन आदिके रूपमें ४८ सैकड़ा पाया। प्रत्येक मजूरको प्रतिदिनकी मजूरी तथा दूसरे लाभोंमें ढाई रुपये मिले। बंबईने मूल्यमें ४२% और पश्चिम-बंगालने २७% वृद्धि की। मूल्य बढ़ानेको औद्योगिक महत्त्वका मानदंड माननेपर बंबईका स्थान सारे भारतमें प्रथम रहा, जिसके बाद क्रमशः बंगाल, उत्तर-प्रदेश, बिहार और मद्रासका नंबर आता है। उद्योगमें कपड़ा-मिलोंका स्थान प्रथम है, क्योंकि उन्होंने सारे २९ उद्योगों द्वारा उत्पादित मूल्यका ४६% पैदा किया। संपूर्ण उत्पादन मूल्यका ७५% कपड़ा और जूटकी मिलों तथा लोह-फौलाद कारखानों एवं चीनी-मिलों द्वारा प्राप्त हुआ।

१९४८ म आद्यागक उत्पादन—

उद्योग	मात्रा	क्षमता	उत्पादन
१. कोयला	हजार टन	३०,०००	२९,७३०
२. फौलाद	,,	१,२६४	८५४
३. नमक	हजार मन	४८,०००	५९,३००
४. बिजली-लेम्प	हजार ठो	१४,३५०	९,१३०
५. सूखी बैटरी	लाख ठो	१,४२०	१,२३०
६. ट्रान्सफार्मर	हजार किलोवाट	१७५	८०
७. बिजली पंखा	हजार ठो	२५०	१८०
८. बेल्टिग	टन	१,६००	६६१
९. डीजेल इंजन	ठो	१,२००	९६४
१०. मशीन-टूल	ठो	३,०००	१,६९१
११. बाइसिकिल	ठो	६०,०००	५१,६८८
१२. कास्टिक सोडा	टन	१३,५००	४,३८३
१३, सोडा-भस्म	,,	५४,०००	२८,२००
१४. क्लोरिन (तरल)	,,	२,१००	१,८००
१५. ब्लीचिंग पाउडर	,,	६,०००	२,८३६
१६. धातु—			
(१) अलुमिनियम		५,०००	३,३५४
(२) सुर्मा		७००	३७०

उद्योग	मात्रा	क्षमता	उत्पादन
(३) तांबा	टन	७,०००	६,०३१
(४) सीसा	,,	७,२००	५४५
(५) मिश्र-धातु	,,	३०,०००	१५,७३२
(६) अर्धनिर्मित	,,	५०,०००	२६,५११
१७. साइकिलके टायर-ट्यूब	हजार ठो	९,०००	७,१६०
मोटर आदिके	,,	२,०००	१,५२०
१८. कपास मिल—			
सूत	लाख पौंड	१,०२०	१,४४२०
कपड़ा	लाख गज	..	४,३३,८०
१९. सीमेंट	हजार टन	२,११५	१,५१६
२०. चीनी	,,	१,४००	१,०००
२१. कागज-दफ़्ती	,,	११०	१००
२२. सिगरेट	लाख ठो	३०,०,०००	२९,६,५८०
२३. दियासलाई	हजार संदूक	८००	५००
२४. प्लाईवूड (फलक)	लाख वर्गफूट	६३०	३९०
२५. भट्ठेका सामान	हजार टन	२२५	१८६
२६. पल्प आदि	हजार रीम	१२१	४१

१. सन् १९४६ में भारतमें उद्योग-धन्धे और उनमें लगी पूंजी

(१) राज्योंके अनुसार

	फैक्टरी रजि०	कार्यकारी पूंजी	कुल पूंजी
१. बंगाल	१,२१८	५५,६०,३१,४०५	१,०३,८७,३३,९५५
२. बंबई	९५९	६९,४७,८०,७८१	१,२४,४१,७२,२५१
३. मद्रास	१,२४४	२४,६०,७५,६५७	३५,३२,३७,७७४
४. उत्तर प्रदेश	५५०	२८,८५,७८,९०९	४६,२२,२९,७४८
५. बिहार	३१६	१३,७४,६१,८४१	३६,०८,७४,४७०
६. पूर्व पंजाब	२५३	१,८८,३५,३०३	३,८६,००,५२०
७. मध्यप्रदेश	२०३	४,८९,१२,०२२	९,३२,२१,४४०
८. दिल्ली	१०१	२,४५,२०,७३५	४,०३,०३,४१४
९. उड़ीसा	९७	४५,६०,९६०	१,११,८५,७६९

	फैक्टरी रजि०	कार्यकारी पूंजी	कुल पूंजी
१०. आसाम	५८	७८,९७,७४४	१,६३,४६,२९७
११. अजमेर	५	७०,८२,५८२	९४,३१,८०२
योग	५०१३	२०,३४७,४३,९३९३,	६६,८३,३७,४४०

(२) उद्योगोंके अनुसार

१. गेहूं-आटा	६६	८७,१३,४८६	२,३९,३४,९४२
२. चावल-मिल	१,५५४	१३,४४,८२,९९८	१८,१४,९८,१२७
३. बिस्कुट	३३	३४,१९,७२५	६६,४६,१६२
४. फल-साग	१९	१८,७५,९२१	३६,३३,२६३
५. चीनी	१६६	१७,३३,९७,५७८	३०,५२,८७,४५७
६. शराब, स्प्रिट	४६	८४,३४,९०३	२,५१,७९,५९१
७. स्टार्च	५	२०,५१,५११	३९,२९,७१९
८. वनस्पति-तेल	५६९	१६,४९,४४,९७९	२३,००,०८,४०८
९. रंग, वार्निश	२८	१,०४,५१,३३९	१,५७,९३,१९०
१०. साबुन	३७	२,७७,०१,८६२	३,९०,०७,९०८
११. चर्म-सिझाई	६५	१,७०,५१,०६८	२,१८,२४,३६६
१२. सीमेंट	११	१,९३,०४,६१८	४,८६,४०,०६८
१३. काँच	१२६	७२,४९,७५२	१,९६,८५,७२६
१४. चीनी-बर्तन	४४	५५,८५,४५२	१,४८,३२,५४९
१५. प्लाईवूड	३६	३८,२७,५४४	१,०३,१४,२१०
१६. कागज-दफ़्ती	३६	२,२३,९५,५०५	५,३७,१६,१३०
१७. दियासलाई	३१	६३,६८,६३३	१,११,०५,२२४
१८. सूती मिल	४८३	७५,२०,७२,२३८	१,३०,६०,७०,३६४
१९. ऊनी मिल	४३	२,९३,५६,८४४	३,९४,१८,५२४
२०. जूट मिल	९५	३०,०७,१३,५४०	५०,०५,७२,२८८
२१. रसायन	१७४	६,६०,०३,७१८	११,९१,५९,००१
२२. अलुमिनियम-ताँबा, पीतल	१३३	६,५६,७१,९१४	११,६९,७६,३५४
२३. लोहा-फौलाद	१०७	८,००,५३,१६७	३१,४९,६६,५६२
२४. बाइसिकिल	५	१९,२१,७३३	४४,२४,२६०
२५. सिलाई-मशीन	३	११,५२,४२०	३३,१६,३२५

२६. उत्पादक-गेस प्लांट	५	१,८६,५००	४,७९,६९७
२७. बिजली-लेम्प	६	२१,४२,६८१	३२,१६,२०३
२८. बिजली पंखा	३४	७२,०५,५४१	१,२०,०९,७३३
२९. बिजली इंजी-नियरी आदि	१,०५३	११,१०,०६,७६९	२३,१९,४०,७८९
योग	५०१३	२,०३,४७,४३,९३९	३,६६,८३,३७,४४०

२. १९४६ में कुछ औद्योगिक मजूर और मजूरी

(१) प्रदेशोंके अनुसार

	मजूर	दूसरे	योग	मजूरी (रु०)
१. बंगाल	४,७५,१५५	३३,९६५	५,०९,१२०	२०,८३,०१,४९९
२. बंबई	४,६८,११४	३२,१५३	५,००,२६७	३७,८०,५३,७६२
३. मद्रास	१,३५,२६६	९,६६५	१,४४,९३१	६,५४,७१,५६८
४. उत्तर प्र०	१,४४,१८८	२२,५७५	१,६६,७६३	७,१२,६०,८३५
५. विहार	७४,२९९	१९,२२४	९३,५२३	४,७१,५४,९७८
६. पूर्वपंजाब	१५,६९७	१,८१६	१७,५१३	९४,५७,४६५
७. मध्य प्र०	४१,२१८	३,८५५	४५,०७३	१,९०,०५,११२
८. दिल्ली	१८,४४३	१,३४०	१९,७८३	१,२८,७४,१७९
९. उड़ीसा	५,७२४	१,८२१	७,५४५	१५,५५,१०१
१०. आसाम	४,२२१	५९३	४,८१४	२४,१५,०२८
११. अजमेरमेवाड़ा	४,६८५	३६५	५,०५०	२६,८६,१४७
	१३,८७,०१०	१,२७,३७२	१५,१४,३८२	८१,९१,३५,६७४

(२) उद्योगोंके अनुसार

१. गेहूं-आटा	५,०६८	१,१३१	६,१९९	३०,७३,५२९
२. चावल-मिल	४१,९५८	७,८६०	४९,८१८	८८,७७,३१७
३. बिस्कुट	३,०१८	३७२	३,३४५	१५,८७,९०८
४. फल-साग	१,०७०	२५८	१,३२८	२,६८,०३८
५. चीनी	७३,०८८	२०,७४८	९३,८३६	२,४७,००,४४५
६. शराब-स्प्रिट	३,७८१	१,०५१	४,८३२	१६,५३,६४४
७. स्टार्च	८८२	१४०	१,०२२	४,२७,११२

८. वनस्पतितेल	३०,४१९	५,४९८	३५,९१७	१,३६,६४,८४५
९. रंग, वार्निश	३,१९४	७७४	३,९६८	१६,६८;८९८
१०. साबुन	५,३७०	७१३	६,०८३	३२,९२,९४३
११. चर्म-सिझाई	५,१९२	६०२	५,७९४	२६,०२,९८९
१२. सीमेंट	९,२६६	९६५	१०,२३१	३६,२६,६८२
१३. कांच	१८,१३२	१,४६८	१९,६००	८४,४४,९७९
१४. चीनीबर्तन	१०,८५८	१,००७	११,८६५	४५,२४,४१७
१५. प्लाईवूड	२,३५४	५३०	२,८८४	१०,७१,३७१
१६. कागज-दफ्ती	१८,७५९	२,७०६	२१,४६५	९३,३६,९६०
१७. दियासलाई	९,३७९	९७६	१०,३५५	४८,४१,५०४
१८. सूती मिल	६,१५,५९३	३५,१०४	६,५०,६९७	४५,१९,३८,१००
१९. ऊनी मिल	१५,६५८	१,०९२	१६,७५०	१,०१,१७,०११
२०. जूट मिल	३,०८,१७२	११,६७८	३,१९,८५०	१२,६७,९१,६९८
२१. रसायन	२०,९९४	४,१८२	२५,१७६	१,३१,२२,३५९
२२. अलुमिनियम, तांबा, पीतल	१७,४२५	२,४५४	१९,८७९	१,३६,५७,५३३
२३. लोहा-फौलाद	५९,०८३	१३,३०६	७२,३८९	४,५१,६८,१६२
२४. बाइसिकिल	१,५५१	१९६	१,७४७	९,४३,७११
२५. सिलाई मशीन	६७९	३८	७१७	४,०४,०९५
२६. उत्पादक-गेस-प्लांट	६८	६८	४१४	२,४८,७६४
२७. बिजली लैम्प	६४६	१६५	८११	३,६५,३५४
२८. बिजली पंखा	४,४७०	६९७	५,१६७	२९,९७,४८२
२९. बिजली-इंजीनियरी आदि	१,००,६०५	११,६३८	१,१२,२४३	५,९७,१७,८२४
	१३,८७,०१०	१,२७,३७२	१५,१४,३८२	८१,९१,३५,३७०

–(A. C. pp. 26-28)

परिशिष्ट-अध्याय ६

आधारिक उद्योग

१. उद्योगीकरण–

स्वतन्त्रताके उदयके साथ भारतके उद्योगीकरणका महत्त्व बहुत बढ़ गया है। (१) भारतके आजके अन्तर्राष्ट्रीय-स्थान तथा जिस तरह संसारमें खतरेकी वृद्धि हो रही है, उसे देखते हमारे लिये रक्षा-उद्योग अत्यावश्यक हो गया है। (२) वयस्क-मताधिकारपर आधारित जन-तंत्रताके प्रादुर्भावके साथ साधारण जनके जीवनतलका ऊपर उठाना भी अनिवार्य हो गया है। (३) बाहरी खाद्यपर अधिक और अधिक निर्भर रहना तथा पूंजीमालकी माँग आवश्यक कर देती है, कि हम आयातका दाम चुकानेके लिये और अधिक निर्यात बढ़ायें। यह तभी संभव है, जब कि उद्योग और कृषिके उत्पादनको और अधिक बढ़ाया जाय। भारतकी तरह बहुत घना बसा हुआ देश अधिकाधिक आयातके बिना अपने जीवनतलको ऊँचा नहीं कर सकता और आयात-का दाम हमें निर्यातसे चुकाना पड़ेगा। आजकी परिस्थितिमें यह तभी संभव है, जब कि अत्यन्त उन्नत उद्योग प्रधान राष्ट्रोंके साथ प्रतियोगिता करके हम अपने मालको बेंच सकें। जिसका अर्थ यह है, कि हमारे उत्पादनका ढंग अत्यन्त योग्यतापूर्ण हो, हम वैज्ञानिक अनुसंधानके नवीन-तम आविष्कारोंको अपने मालके गुणको बढ़ाने और खर्चको सस्ता करनेमें इस्तेमाल करें। हमारे उत्पादनके ढंगकी योग्यताको बढ़ानेके लिये आधारिक उद्योगोंकी ओर हमें ध्यान देना होगा।

आधारिक उद्योग वे उद्योग हैं, जो कि दूसरे उद्योगों और आर्थिक विकासके लिये आम तौरसे अत्यावश्यक हैं। उदाहरणार्थ लौह-फौलाद-उद्योग बहुतसे दूसरे उद्योगोंकी वृद्धिमें नेतृत्व करता है, गोया वह सारे औद्योगिक विकासका आधार है। दूसरे महत्त्वपूर्ण आधारिक उद्योग हैं, अलौह-धातु, कोयला, तेल (पेट्रोल तथा दूसरे शक्ति-स्रोत) मशीनरी और मशीनटूल, रासायनिक पदार्थ और खाद, सीमेंट और रबर। यह

केवल निर्माणीय उद्योगोंके ठीकसे काम करनेके लिये ही आवश्यक नहीं है, बल्कि कृषि, व्यापार, यातायात तथा दूसरी सार्वजनिक सेवाओंको भी इनकी अत्यन्त आवश्यकता है। उनमेंसे कुछ तो कुंजी या धुरभूत उद्योग हैं।...

...प्रथम विश्वयुद्धके समय कुछ आधारिक उद्योगोंको आरंभ किया गया था। रेलवे वर्कशाप और कुछ इंजीनियरी कारखानोंने हमारे आदमियोंको टेकनिकल शिक्षा देनेमें बहुत बड़ा काम किया। किन्तु प्रगति इतनी धीमी थी, कि जब सन् १९३९ में द्वितीय विश्वयुद्ध आरंभ हो गया, तो संकटका सामना करनेके लिये भारत बिलकुल तैयार नहीं था। सन् १९४२ में जापानके युद्धमें कूद पड़नेपर अवस्था अत्यन्त भयंकर हो उठी, और कुछ समयके लिये बाहरसे मालका आना बिलकुल बंद हो गया।

भारतीय उद्योगने इस अवसरका कैसे इस्तेमाल किया? भारतीय उद्योगकी सबसे बड़ी माँग आधारिक उद्योगोंके संबंधमें थी, जैसे विशेष-फौलाद और अलौहधातु, मशीन-टूल और बिजली-सामान, रासायनिक पदार्थ और विस्फोटक, सीमेंट और कांच—यह एक ऐसा अवसर था, जिससे फायदा उठाकर बहुत व्यापक क्षेत्रमें आगे बढ़ा जा सकता था।...लेकिन भारत इसके लिये तैयार नहीं किया गया था। हमारे पास काफी कुशल यंत्र-वेत्ता नहीं थे, पूंजीमाल विशेषकर मशीन-टूलका अभाव था। प्लांट देनेके संबंधमें हमारे मित्रवर्गके वचन खोखले निकले। तो भी हमने अपने सामनेकी मांगोंको पूरा किया। हो सकता है, बहुत चीजोंका उत्पादन बहुत अच्छे दर्जेका नहीं रहा हो।...जैसे भी हो, हमने युद्धकी अनिवार्य आवश्यकताओंको पूरा किया, युद्धकी दो जबरदस्त बातें हमारे पक्षमें थीं, जिन्होंने हमारी पूरी सहायता की। हमारे पास एक अच्छी तरह स्थापित लौह-फौलाद उद्योग था, जो पहिले समयमें सरकार द्वारा उपेक्षित होनेपर भी कार्य-योग्यतामें बहुत ऊँचे तलपर पहुँचा हुआ था और युद्धसे पहिले सैनिक आवश्यकताओंके लिये आवश्यक भिन्न-भिन्न प्रकारके फौलादोंको पैदा करनेके लिये सज्जित हो चुका था। दूसरे, भारत में एक ऊँचे दर्जेकी व्यवसाय-चातुरी मौजूद थी। यद्यपि वह परम्परासे सट्टेबाजीसे अभ्यस्त थी, किन्तु उसे अधिक उत्पादक कार्यमें लगाया जा सकता था। युद्धके समयके भारी लाभसे आकृष्ट हो यह व्यवसाय-चातुरी उत्पादनमें लग पड़ी। लेकिन दुर्भाग्यसे उत्पादन किसी सावधानीसे बनायी योजनाके अनुसार नहीं संचालित हुआ। उस समय न सरकार

और न उद्योगपति ही योजनामें रुचि रखते थे, युद्धको जीतना और नफा कमाना, बस केवल इसी ओर लोगोंका ध्यान था।

रुकावटों के रहते भी जो परिणाम निकला, वह बिलकुल असंतोष-जनक नहीं कहा जा सकता। पेट्रोल-उद्योग बढ़ा, नये उद्योग आरंभ किये गये, नये प्लांट (यंत्रागार) स्थापित हुए। देशमें नयी यंत्रचातुरीका प्रसार हुआ। लौह-फौलाद-उद्योगके उत्पादनके कई नये और कठिन प्रकारोंको हाथमें लेकर हम उनमें सफल रहे। आर्थिक बलको और अधिक बढ़ानेके लिये देशमें अलुमिनियम और भारी तथा सूक्ष्म नाना प्रकारके रसायन-संबंधी उद्योग स्थापित हो गये। मशीन-टूलके निर्माणका काम दृढ़तापूर्वक कायम हो गया और इंजीनियरी उद्योग बहुत अधिक विस्तृत बन गया। नये आधारिक उद्योगोंकी स्थापनाके लिये भारतके धातु और खनिज के प्राकृतिक स्रोतोंको ही नहीं बल्कि रेशों, काष्ठ, चर्म, वनस्पति-तेल, रंग और रबर तक को भी काममें लगा दिया गया। परि-णाम-स्वरूप हमारे आधारिक उद्योग और विस्तृत हो गये, नये आधारिक उद्योगोंकी नींव पड़ गयी और भारतका औद्योगिक ढांचा बहुत विशाल हो गया।

भारतके आधारिक उद्योग युद्ध-कालमें बहुत बढ़ गये। यह इस बातसे भी स्पष्ट है, कि इन उद्योगोंमें—विशेषकरके भारी रसायन और इंजीनियरी कारखानोंमें मजूरोंकी संख्या युद्धकालमें तिगुनी-चौगुनी हो गयी। लेकिन आधारिक उद्योगोंका महत्त्व (उनका आकार) उनमें काम करनेवाले कमकरोंकी संख्यासे नहीं निश्चय किया जा सकता, क्योंकि उनमेंसे बहुतोंमें कमकर नहीं पूंजी भारी लगती है, अर्थात् रसायन या अलौहधातु उद्योगके सांगोपांग प्लांटपर जहाँ कितने ही लाख रुपये लग जाते हैं, वहाँ भारतकी इस विषयकी सारी आवश्यकताओंको पैदा कर डालनेके लिये आधारिक कारखानेको कुछ हजार या कुछ सौ ही कमकरोंकी आवश्यकता पड़ती है।

उपरोक्त बातोंसे यह नहीं सोच लेना चाहिये, कि विशाल आधार पर आधारित औद्योगिक ढांचेके लिये जिन आधारिक उद्योगोंकी आवश्यकता होती है, वे सब स्थापित किये जा चुके हैं।...मिश्रित फौलाद, अलौह मिश्र-धातुओं, ऊँचे दर्जेकी ढलाई, भारी पिटाई, जुड़ाई और रिपिटके काम, साँचा ढलाई, पाइप और नलके निर्माण तथा तेजीसे उद्योगीकरण-के लिये आवश्यक इस तरहके हजारों कामोंमें हम बहुत पिछड़े हुए

हैं। भारी मशीन-उद्योगका अभाव हमारी औद्योगिक प्रगतिमें जबर-दस्त बाधक है।

–(I. B. pp. viii-x)

२. औद्योगिक नीति–

यह अच्छी तरह ज्ञात है, कि भारतके पास अधिकतरउपभोग-वस्तुओंके उद्योग हैं। लेकिन, विशाखपटनमका पोत-निर्माण प्रांगण, मैसूर और बड़ोदाकी विमान-फैक्टरियाँ, जमशेदपुरका रेलवे-इंजन-वर्कशाप, बंबई और कलकत्ताके मोटरकार तथा मशीन बनानेवाले कारखाने एवं ट्रावनकोरकी रायोन (कृत्रिम रेशम) फैक्टरी कितने ही आधारिक उद्योगोंके अंकुर हैं।...... भारत-सरकारने भविष्यमें महत्त्वपूर्ण मौलिक उद्योगोंके स्वामित्त्व और कार्य-करण या संचालन स्वयं करनेका निश्चय किया है। ६ अप्रैल सन् १९४८ को भारतीय पालियामेंटमें भारत सरकारकी औद्योगिक नीतिकी घोषणा करते हुए उद्योग-मंत्रीने कहा था।"...सरकारने निश्चय किया है, कि हथियार और गोला-बारूदका निर्माण, परमाणु-शक्तिका उत्पादन और संचालन एवं रेलवे यातायातका स्वामित्त्व या प्रबन्ध केवल केन्द्रीय सरकारकी एकमात्र इजारादारी रहेगी। तथा, किसी तुरंत करणीय अवस्थामें सरकारको सदा अधिकार रहेगा, कि राष्ट्र-रक्षाके लिये अनिवार्य किसी भी उद्योगको अपने हाथमें ले ले। निम्नलिखित उद्योग-धन्धोंमें राज्य जिसमें यहाँ केन्द्रीय, प्रादेशिक तथा रियासतोंकी राज्यकी सरकारें एवं म्युनिसिपल कारपोरेशन जैसी दूसरी सार्वजनिक सस्थाएं भी सम्मिलित हैं—नये उद्योगालयोंके स्थापित करनेकी एकमात्र जिम्मेवारी रखेगा, सिवाय उन अवस्थाओंके जब कि राष्ट्रीय हितकी दृष्टिसे केन्द्रीय सरकार उन नियंत्रणों और नियमनोंके अनुसार निजी व्यवसायोंका सहयोग ले या आवश्यक समझे, जिन्हें कि केंद्रीय सरकार निर्धारित करे। (१) कोयला, (२) लोहा और फौलाद, (३) विमान-निर्माण, (४) पोत-निर्माण (५) टेलीफोन, तार और बेतारके यंत्र, जिनमें रेडियो ग्राहक-यंत्र सम्मिलित नहीं है, और (६) खनिज।...केन्द्रीय सरकार उपत्यकाओंके-विकास जैसे व्यवसायमें हाथ डाल चुकी है, जो कि बड़े विशाल पैमानेकी बहुकारी योजनाएं हैं, और जिनमें पनबिजली-शक्तिके विस्तृत उत्पादन तथा बड़े पैमानेकी-सिंचाई भी सम्मिलित है और जिनके बारेमें समझा जाता है, कि अपेक्षाकृत थोड़े समयमें वह इस देशके विशाल भूभागके रूपको बदल देगी।

दामोदर-उपत्यका-योजना, कोसी-जलनिधि, हीराकूद-बाँध आदि इसी तरहके आयोजन हैं, जिनकी तुलना अमेरिका या दूसरी जगहोंकी किसी महायोजनासे की जा सकती है। केन्द्रीय सरकारने बहुत बड़े पैमानेपर रासायनिक खाद उत्पादनको हाथमें लिया है और आवश्यक औषधियों एवं कोयलेसे कृत्रिम पेट्रोल बनानेके व्यवसायको भी अपने ध्यानमें रखा है।"

–(I. I. pp. 294-95)

३. विदेश में शिक्षित विशेषज्ञोंकी बेकारी–

जिस समय युद्ध समाप्त होनेपर था, उसी समय सरकारने बड़े मंसूबे के साथ इंगलैंड और अमेरिकामें तरुणोंको भेजकर टेकनिकल शिक्षा देनेका प्रयास किया था। भारतीय विद्यार्थी बड़ी जमातोंमें सरकार द्वारा चुनकर इंजीनियरी और कृषि जैसे नाना टेकनिकल क्षेत्रोंमें शिक्षा पानेके लिये इन देशोंमें भेजे गये।...जिस समय सरकारने इस शिक्षा-योजनाका आरंभ किया, उस समय बड़ी-बड़ी आशाएं की जाती थीं, कि यह विद्यार्थी जब अपने पाठ्य-क्रम और व्यावहारिक शिक्षा को दूसरे देशोंमें पूरा करके आयेंगे तो सरकार उन्हें हजम कर लेगी।...

बहुतसे विद्यार्थियोंको अपनी शिक्षा पूरी कर लेनेके बाद यह देखकर बहुत हताश और दुःखी होना पड़ा, कि उन्हें केवल अपने आप सहारा लेना पड़ेगा, क्योंकि राष्ट्रीय आयको दूना तिगुना करनेकी योजनाएं केवल ख्याली पोलाव थीं।...विदेशसे शिक्षा पाके लौटे इन विशेषज्ञोंकी दयनीय अवस्थाका वर्णन उद्योग-मंत्रीके भाषणमें पढ़कर बहुत दुःख होता है। ऐसे टेकनिसियनों (यंत्रचातुरों) की आज की जैसी कभी माँग नहीं हो सकती थी, विशेषकर जब कि एक लोकप्रिय सरकार शीघ्रताके साथ आर्थिक विकासकी नीतिको स्वीकार कर चुकी है. और उसे शिक्षाप्राप्त व्यक्तियों एवं टेकनिकल विशेषज्ञोंकी कमीकी शिकायत है।...पहिले तो यह समझमें नहीं आता, कि जब लौटनेके बाद उन्हें हजम करनेका कोई प्रबन्ध नहीं था, तो क्यों सरकारी खजानेने इतने विद्यार्थियोंको बाहर भेजनेकी जिम्मेवारी ली। इससे यही पता लगता है, कि न सारी योजनाको ठीक तरहसे समझा गया था और न उसे ठीक ढंगसे काममें लाया गया। इसका परिणाम जनताके पैसे तथा मानवीय संपत्ति-स्रोतका निष्ठुर अपव्यय हुआ। इस बातने स्वभावतः इन तरुणोंमें निराशा, असंतोष और अधैर्य्यका भाव पैदा कर

दिया है। इन तरुण-तरुणियोंने अपनी आयुके संस्कारग्राही कितने ही वर्षोंको बड़ी कठिनाइयोंके भीतर झेलते दूसरे देशोंमें बिताया था। यह कितना अनुचित है, कि आज उनका ज्ञान और अनुभव इस तरह सड़ रहा है। साथ ही यह उदाहरण हमारे देशकी भावी पीढ़ियोंके लिये कभी उत्साहवर्द्धक नहीं हो सकता।

–(P. C. pp. 81-82)

२ लौह-उद्योग

१. लौह-धून भेद–

लोहा बनाना किसी समय भारतमें एक बहुव्यापक व्यवसाय था "सिंध, गंगा और ब्रह्मपुत्रके महान् कछारोंसे दूर मुश्किलसे कोई जिला होगा, जहाँपर लोहकीट (झांवा) का ढेर नहीं मिले।" (हिमाचलके लोहेसे बना दिल्लीका लोहस्तम्भ बतलाता है, कि आजसे १५०० वर्ष पहिले मोर्चा न खाने-वाले निर्मल लोहेको भारतीय कितनी अच्छी तरहसे बना लेते थे।) इसलिये कोई आश्चर्य नहीं, यदि भारत विश्वके लोहेमें समृद्ध देशोंमें स्थान ग्रहण करना चाहे। भारतमें चार प्रकारकी लोहेकी धून (धातु-पाषाण) मिलती हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है–

प्रकार	स्थान या जिला	निधिकी मात्रा	प्रतिशत लोह
मग्नेटाइट	सेलेम (मद्रास)	प्रायः अक्षय भंडार	५५
लेटेराइड	राजमहल (बिहार)	बहुत	४३
	जबलपुर	४९० लाख टन	५३
लोहा मिट्टी	रानीगंज (बंगाल)	४,००० ,, ,,	३८ से ४६
हेमेटाइट	"लोहकक्षा" (बिहार, उड़ीसा)	२८,००० ,, ,,	६० से ६८
	चाँदा (म०प्र०)	१,००० ,, ,,	६१ से ६७
	द्रुग (,, ,,)	१०० ,, ,,	६६
	बाबाबुदान (मैसूर)	२०० से ६०० ,,	४२ से ६४.५
	कुमाऊं (उत्तरप्रदेश)	अज्ञात	३९ से ६०
	महाशू (हिमाचल)	अज्ञात	,,

२. कोल्हान लोहा-क्षेत्र–

"लोह-कक्षा" या कोल्हानकी धूनका विवरण इस प्रकार है–

स्थान	निधिकी मात्रा	प्रतिशत लोहा	विशेष
मयूरभंज	(लाखटन)		
बोनाई	१६०	६०	कोल्हानकी धूनमें ६४%
क्योंझर	२,८००	६०	लोहा, ०.०५ मंगानीज द्विओ-
बोनाई	६,५६०	६८	षिद, २.१% सिलिकन, ०.०५%
सिंहभूमि	१०,७४०		फास्फोरस, ०.००२% गंधक,
क्योंझर	८,०६०		०.१५% चूना ०.१८ मग्ने-
	२८,३२०		सिया, १.२५ अलुमिनिया है।

—(I. L. pp. 1945)

दूसरे देशोंकी धूनमें लोहा प्रतिशत निम्न प्रकार है

	सैकड़ा
भारत	५५ से ७०
स्वीडन	६० से ७०
युक्तराष्ट्र अमेरिका (यु० रा० अ०)	५० से ६०
स्पेन	५० से ६०
जापान	३० से ५०
जर्मनी	४०
फ्रांस	४०
बेल्जियम	३५
इंगलैंड	३० से ३५

—(I. B. p. 85)

(बिहार-उड़ीसा) का हेमेटाइट लोहपाषाण भारतकी बहुत महत्त्वपूर्ण निधि है। यह और मयरभंज में गुरुमहिशानी पर्वत से पश्चिमकी धून क्योंझर और बोनाईके इलाकेमें होते हुए सिंहभूमिके कोल्हान-सबडिवीजन तक फैली हुई है। मिस्टर ई० पर्सनकी गणनाके अनुसार यहाँ, ३,००० लाख टन ६०% लोहा रखनेवाली धून है। अमेरिकन विशेषज्ञ सी० पी० पेरिनकी गणनासे इस पूर्व पश्चिम ४०० मील लम्बे तथा उत्तर-दक्षिण २०० मील चौड़े (जिसके पूर्वोत्तर कोनेपर कलकत्ता है) चतुष्कोणमें २,००,००० टन बहुत ऊँचे दर्जेका लोहा मौजूद है। यह धून-स्थान औसत तौरसे बंगालकी कोयला-खानोंसे सवा सौ मीलपर है। यदि १५,००,००० टन कच्चा लोहा प्रति वर्ष तैयार किया जाय, तो भी यह खानें १००० वर्ष तक खतम नहीं होंगी। इनमें प्रायः ६८ से अधिक सैकड़ा लोहा है और इस प्रकार दुनियाकी सबसे अधिक

लोहेवाली धून यहाँ है। इसके साथ-साथ इसमें यह भी बड़ा गुण है, कि गंधक ०.६% से अधिक नहीं पायी जाती। इस बारेमें यह अमेरिका-की मिन्नेसोटा, मिचिगन, आदिकी धूनोंसे भी अच्छी है।

बिहारकी सभी लोह-खानें सिंहभूम जिलेमें हैं, उससे मिली हुई मयूरभंज और क्योंझर (उड़ीसा प्रदेश) की खानें हैं। भारतीय लौह-फौलाद कंपनी (बर्नपुर) की गुआ खान जमशेदपुरसे ९१ मील है। गुआसे नातिदूर, नोआमुंडी सारे एसियाकी सबसे बड़ी खान है, जो कि ताता-लोह-फौलाद-कार्य (जमशेदपुर) के हाथमें है। गुआ और नोआ-मुंडीके बीचमें बड़ाजमदा स्टेशनके पास क्योंझर राज्यमें अवस्थित बराबीलकी खानकी स्वामिनी कलकत्ताकी बर्ड कंपनी है। यहाँ लोहा और मंगानीज दोनोंकी ओरें निकाली जाती हैं। मयूरभंजकी लोह-खानें जमशेदपुरसे ४५ मीलके अर्धव्यासमें अवस्थित हैं। यहाँकी सबसे बड़ी खान गुरुमहिसानीमें है। सन् १९१९ से १९३३ के भीतर बिहार (सिंहभूम) और उड़ीसाकी खानोंसे निम्नलिखित टन मात्रामें धून निकाली गयीं—

वर्ष	सिंहभूम	मयूरभंज	क्योंझर	योग
१९१९	१,०४,७२८	४,२३,५९९	..	५,२९,२७२
१९२०	१,१३,००८	४,०३,३५९	..	५,१७,३७७
१९२१	२,३७,१७३	६,५१,४९५	..	८,८९,४६५
१९२२	२,१५,७४६	३,७८,१३४	..	५,९४,६७८
१९२३	२,१८,५८४	५,०७,२२५	..	७,२६,४४१
१९२४	३,०५,२३८	९,९६,९२०	..	१३,०२,८१२
१९२५	४,७७,५८०	९,५७,२७५	..	१४,३५,५५८
१९२६	५,५२,०७९	१,४१,७२९	..	१५,९४,५७७
१९२७	१०,०७,०३७	६,९२,१३७	..३६,३२५	१७,३६,०६०
१९२८	११,३१,७४६	६,८३,४९३	१,४१,३६१	१९,५६,६२१
१९२९	१३,९०,२४५	७,५९,८७५	१,८७,२०३	२३,३७,३४४
१९३०	१०,९९,४३५	६,५९,३९२	२४,९०९	१७,८३,६४२
१९३१	५,८८,२९०	९,०१,२४६	१,०९,८४१	१५,९९,३८६
१९३२	६,६६,८७४	४,९१,१९३	१,८६,१७३	१६,४४,२४७
१९३३	६,१६,९४६	३,४१,५०२	१,९५,९४४	११,५४,३९६

(I. B. pp. 83-84)

३. लोहेके कारखानोंका इतिहास–

पोर्टोनोवोमें भारतवर्षमें आधुनिक ढंगके लोहेने कारखानेको मद्रास-सिविल-सर्विसके मिस्टर जोशिया मार्शल हीथने सन् १८३० में शुरू किया। हीथने ईस्ट इंडिया कंपनीकी नौकरी छोड़कर मद्रास प्रदेशमें बड़े पैमानेपर लोहा बनानेका इजारा लिया। उसने अर्काट जिलेके पोर्टोनोवो स्थानमें भट्ठे कायम किये, जो पीछे भी ईस्ट इंडिया कंपनीकी आर्थिक सहायतासे चलते रहे।

(१) **पोर्टोनोवो स्टील और आयरन कम्पनी**–सन् १८३३ में हीथके व्यवसायको इस कंपनीने ले लिया और मलवार तटपर बेपुरमें भी भट्ठे स्थापित किये। हीथ और उसकी उत्तराधिकारिणी कंपनीको सुविधायें मिलनेपर भी व्यवसाय पूर्णतया असफल रहा।

ईस्ट इंडिया आयरन कम्पनी–सन् १८३३ में सरकारी रियायत पाकर इस नयी कंपनीने दो धौंकू भट्ठे स्थापित किये, जिनमें एक दक्षिण अर्काट जिलेमें था, और दूसरा कावेरीके तटपर कोयंबटूर जिलेमें। यह भट्ठे सन् १८५८ में बन्द हो गये। पोर्टोनोवो सन् १८६६ में और बेपुर भी सन् १८६७ में ठंडे हो गये।

(२) **बराकर लौह कार्य**–पहिला सफल लोहेका कारखाना बराकर (बंगाल) के पास कुल्टीमें स्थापित बराकर-लौह-कार्य था, जो भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंसे गुजरते सन् १८७९ में बंगाल लोहा और फौलाद कंपनीके रूपमें बदल गया।

बंगाल लोहा फौलाद कम्पनी–सन् १९१९ में इस कंपनीने कारखानोंको और बढ़ाते हुए सफलतापूर्वक कामको चालू रखा। यही अब इंडियन फौलाद कंपनी है, जिसका बंगाल फौलाद कारपोरेशन से घनिष्ट संबंध है।

–(I. B. p. 4)

(३) **ताता लौह-फौलाद-कार्य**–अपनी नागपुरकी कपड़ेकी (इम्प्रेस मिलका निरीक्षण करते समय जमशेदजी नसरवान जी ताताको एक सरकारी रिपोर्ट पढ़नेका मौका मिला, जिसे जर्मन विशेषज्ञ रिटर फान स्वार्जने चाँदा जिलेमें आधुनिक ढंगके एक लोहेके कारखानेके खोलनेके लिये आवश्यक धनके बारेमें लिखा था। ताताने पिटसवर्ग (अमेरिका) के विश्वविख्यात धातु-इंजीनियर जुलियन केनेलीकी सिफारिशपर न्यूयार्कके एक इंजीनियर चार्लस पेरिनको विशेष वैज्ञानिक सर्वे, स्थानीय स्थितियों, कच्चे माल और भारतीय बाजारके अनुसंधानके काम

में लगाया। पेरिनने अपने सहकारी मिस्टर सी० एम० वेल्डको तुरंत काम शुरू करनेके लिये भारत भेज दिया। वेल्ड बारीकीसे छानबीन करनेके बाद इस निश्चय पर पहुँचा, कि कोयलेकी कठिनाईके कारण चाँदाकी लौह-निधिसे अधिक आशा नहीं है।

इसी समय दोराबजी ताताको द्रुग जिलेके एक भूतत्त्वीय रेकार्डको पढ़नेका मौका मिला, जिसे भारतीय भूतत्त्वीय सर्वेके श्री प्रमथ नाथ बोसने तैयार किया था। ताता और वेल्डने द्रुग जिलेकी धूनके अनुसंधान करनेका निश्चय किया और उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ, कि ३०० फुट ऊंचा एक पहाड़ प्रायः सारा ठोस लोहेका है। विश्लेषण करनेपर पता लगा, कि धूनमें ६५.५ से ७० % तक लोहा है। मिस्टर पेरिनने इसे विश्वके खनिज आश्चर्योंमें एक घोषित किया।

धून बहुत अच्छी थी, लेकिन पासकी बरोरा खानके कोयलेसे संतोषजनक काम नहीं हो सकता था। वेल्ड अनुसंधानके बाद इस परिणाम पर पहुँचा, कि झरियाकी कोयले खानोंसे ही लोहा गलानेके लिये उपयुक्त कोक मिल सकता है। द्रुगकी धूनको झरियाके कोयलेसे गलाकर जर्मनी और अमेरिकामें परीक्षा की गयी और उसे अत्यन्त संतोषजनक पाया गया। कोयला विहारसे लाया जा सकता था, किन्तु वहाँ महान् भट्ठोंको ठंडा करनेके लिये लगातार तथा भारी परिमाण में पानी सुलभ नहीं था, इसलिये द्रुगको छोड़कर संभलपुर (उड़ीसा) के पास महानदीके किनारेपर अवस्थित पदमपुरमें खोज होने लगी। यह स्थान द्रुगके लोहे और झरियाके कोयलेके बीचमें था। इसी समय श्री प्रमथनाथ बोसने फिर बीचमें पड़कर अयुक्त स्थानमें कारखाना स्थापित करनेको रोका। बोस अनुसंधान-कर्त्ताओंको द्रुग जैसी ही अच्छी किन्तु उससे भी अनुकूल स्थानमें अवस्थित मयूरभंज राज्यकी धूनोंके पास ले गये। वेल्ड और पेरिनने ३००० फुट ऊँचे गुरुमहिसानी पर्वतको द्रुग जिले जैसी ही बहुत दूर तक फैली विशाल लोह-निधिके रूपमें पाया। वहाँ सैकड़ों एकड़ भूमिमें लौह धून ऐसी बिखरी पड़ी थी, जिसे अजान मजूर भी बिना खोदे ही हाथसे चुन सकते थे। खर्चका हिसाब-किताब लगाकर अंतमें ताता कंपनीने मयूरभंजकी खानोंके पक्षमें अपना निर्णय दिया। यह बहुत महत्त्वपूर्ण निर्णय था; नहीं तो "जमशेदपुरमें अवस्थित यह लौह-कारखाना कोयलाकी खानों तथा कलकत्ताके बंदरसे बहुत दूर किसी और जगह स्थापित किया गया होता। कारखानेके लिये उचित स्थान चुननेका भी श्रेय

श्री प्रमथनाथ बोसको है। मिस्टर हारिसके अनुसार भारतीय उद्योगके विकासमें श्री बोस निश्चय ही सदा स्मरणीय रहेंगे।"

मयूरभंजकी धूनका पता लग जानेपर पदमपुरका विचार छोड़ सिनीको पसन्द किया गया, जो कि गुरुमहिसानी पर्वतसे ६० मील पश्चिमोत्तर बंगाल-नागपुर रेलवेका एक छोटा-सा स्टेशन है, लेकिन पीछे उसे भी छोड़कर साकची (कालीमाटी) को पसन्द किया गया, और ज्येष्ठ ताताके नाम पर उसका नाम बदलकर जमशेदपुर रख दिया गया। सिनीकी अपेक्षा साकचीमें उपयुक्त भूमि अधिक मौजूद थी। सिनी जहाँ कलकत्तासे १७१ मील थी, वहाँ कालीमाटी (ताता नगर) सिर्फ १५२ मील थी। नींव डालनेके लिये यहाँ की जमीन भी दृढ़ थी। पासमें खोरकाई और सुवर्णरेखा नदियां बह रही थीं, जिनकी धार कभी नहीं सूखती। धून क्षेत्रसे भी सिनीकी अपेक्षा साकची कुछ नजदीक थी। २७ फरवरी सन् १९०८ को साकचीमें पहिली ईंट रखी गयी और २ दिसम्बर सन् १९११ को प्रायः तीन बर्ष बाद पहिला लोहा बनाया गया।

लोहेके कारखानेके लिये बहुत भारी धनकी आवश्यकता होती है। ताताने लंदनके धनकुबेरोंसे आर्थिक सहायता लेनी चाही, लेकिन वह ऐसी शर्तें रख रहे थे, जिनसे कारखानेके सर्वेसर्वा वही बन जाते। भारतीय जनताने ताताकी आर्थिक सहायतामें बड़े उत्साहसे हाथ बटाया। "सूर्योदयसे लेकर बहुत रात तक बंबईके ताता-आफिसमें रुपया लगानेवाले उत्साही भारतीयोंकी भीड़ लगी रहती थी। बूढ़े और जवान, धनी और गरीब, स्त्री और पुरुष अपनी शक्ति-अनुसार सहायता देनेके लिये वहाँ आकर मौजूद रहते। तीन सप्ताह बीतते-बीतते कारखाना बनानेके लिये आवश्यक १६,३०,००० पौंडकी सारी रकम जमा हो गयी। ८,००० भारतीयोंने मिलकर एक-एक पैसा चुका दिया। जब आगे कार्यकारी पूंजीके लिये और पैसेकी आवश्यकता हुई तो सारी ४ लाख पौंडकी रकम केवल एक भारतीय (ग्वालियरके महाराजा सिंधिया) ने दे दिया।"

–(I. L. pp. 98-101)

(४) **इंडियन फौलाद कम्पनी** (कुल्टी और हीरापुर)–इस कंपनीकी स्थापना सन् १९१८ में कच्चा लोहा, आनुषंगिक उपज, कोक, कोलतार-उपज, अमोनिया सल्फेट, सल्फूरिक एसिडके बनानेके लिये हुई। कारखानेका स्थान आसनसोलके नजदीक कोयला क्षेत्रमें है। इसे धून

विसरा और रुढकेला (गंगपुर) से मंगानी पड़ती है, जो कि ताताकी अपेक्षा कुछ अधिक दूर है। ताताकी भांति इसके पास भी अपनी निजी कोयले, लोहे और चूना-पाषाणकी खानें हैं।

(५) **मैसूर लौह कार्य**–धूनसे लोहा बनानेवाली भारतकी यह तीसरी खान मैसूर राज्यमें अवस्थित है। इसे बाबाबुदान पर्वतसे धून मिलती है, जिसमें २५० से ६०० लाख टन हेमाटाइट लोहा मौजूद हैं। इस धूनमें ४२ से ६४.५ प्र०श० लोहा ०.०४४ से ०.१०५प्र०श० फास्फोरस और लेशमात्र सिलिकन है। भद्रावतीसे २६ मील दक्षिण बाबाबुदान पर्वत श्रेणीमें केम्मनगुड़ी खान है। भद्रावतीसे साढ़े १३ मील उत्तर भंडीगुंडामें चूना-पाषाण मिलता है। यहाँ पत्थरके कोयलेके कोकका अभाव है और उसकी जगह राज्यके जंगलकी लकड़ीसे चुवाकर बना काठ कोयला भट्ठेमें काम आता है। काठकोयला इच्छानुसार नहीं बनाया जा सकता, इसलिये धौंकू भट्ठेकी क्षमता सीमित रखनी पड़ती है। कारखानेने अपने भट्ठेकी क्षमताको डुप्ले-प्रक्रियासे दूना किया है। धौंकू भट्ठेसे आंशिक रूपसे लोहा तैयार करके जोग-पनविजलीकी सहायतासे बने विजली भट्ठे द्वारा उसका शोधन किया जाता है।

मिस्टर पेरिनकी सिफारिशपर मैसूर सरकारने इस कारखानेको शिमोगासे ११ मील पूर्व भद्रावतीमें स्थापित किया। सन् १९२३ में लोहा पिघलानेका काम शुरू हुआ। युद्धके समय २५ टनका एक आधारिक चूल्हा तथा दो विजलीके भट्ठे और बढ़ाये गये, जिससे ५०,००० टन और लोहा तैयार किया जा सकता है।

(६) **बंगाल फौलाद कारपोरेशन**–भारतके फौलाद उद्योगके इतिहास में इस कंपनीकी स्थापना एक और बड़ा पग है। मार्टिन-बर्न कंपनीके प्रबंध-एजेंसी में यह कारखाना बर्नपुरमें स्थापित हुआ। इसे कच्चा लोहा, बिजली गैस पानी आदि पासके भारत लोह फौलाद कंपनीसे मिलता है। कारखानेकी योजना सन् १९३६ में बनी थी। प्लाँटऔर मशीनें द्वितीय विश्वयुद्धसे पहिले ही जर्मनीसे मंगा ली गयी थीं। ५ से ६ लाख वार्षिक फौलादकी क्षमताके कुछ आधारिक खुले भट्ठे तथा डुप्लेक्स प्लांट यहाँ काम करते हैं। सन् १९३९ में यहाँ काम होने लगा था। यहाँके फौलादका युद्धके समय बहुत उपयोग हुआ। उससे रेलकी पटरी, टेलीफोन-अंग आदि चीजें बनती रहीं। एक तोलुयेनका भी प्लांट स्थापित कर दिया गया है, जिसमें कि कारखानेकी आनुषंगिक उपज बेकार न जाये।

(७) **दूसरे कारखाने**–ईसापुर सरकारी आर्डिनेंस फैक्टरीमें ऊंचे दर्जेका फौलाद सैनिक अस्त्रोंके लिये तैयार किया जाता है। भारतीय कच्चा लोहा, बंदूक, तोप, कवच आदिके लिये उपयुक्त नहीं है, इसलिये इंग्लैंडसे मंगाये हेमाटाइट कच्चे लोहेको यह कारखाना इस्तेमाल करता है।

–(I. B. pp. 102. 3. 89)

४. लोहा बनाने के कच्चे माल–

धूनलौह-पाषाण (ओर) कोक, शोधक संस्कारक धातु और भट्ठेकी सामग्री ये पाँच चीजें लौह उद्योगके कच्चे माल हैं। धून लोहेकी खानों और कोक कोयला-खानोंसे मिलता है। शोधनके लिये चूना-पाषाण और डोलोमाइटका उपयोग किया जाता है। फौलाद बनानेके लिये फ्लूवरस्पर का भी इस्तेमाल होता है। चूनापाषाण हमारे यहाँ सुलभ है। फ्लूवरस्पर बहुत थोड़ी ही मात्रामें आवश्यक होता है। यद्यपि भारतमें भी यह मिला है, लेकिन वह अच्छे किस्मका नहीं है। हमारे यहाँ इसका वार्षिक खर्च ५०० टन है, जिसे अधिकतर दक्षिण अफ्रिकासे मंगाया जाता है। संस्कारक पदार्थोंमें मुख्य है मंगानीज, जिसका सबसे बड़ा निधान भारत में है। प्रचंड तापसे रक्षित करनेके लिये अग्नि-मृत्तिका तथा सिलिका (बालू, बलुवा पत्थर, क्वार्टज) की ईंटोंको भट्ठेकी दीवारों तथा पेंदीमें बिछाया जाता है। ये सभी वस्तुएं हमारे देशमें प्राप्य हैं। इस प्रकार लोहा बनानेके सभी कच्चे माल हमारे देशमें मौजूद हैं।

–(I. B. pp. 210. 8. 212)

५. लोहके भेद–

धूनको धौंकू भट्ठेमें गलाकर जो साधारण लोहा निकलता है, उसे कच्चा लोहा कहते हैं। इसमें कार्बन अधिक रहता है। बेसेमर परिवर्तक या खुले चूल्हेवाले भट्ठेमें डालकर इसे सीधे फौलादके रूपमें परिवर्तित किया जाता है। ढला लोहा भी कच्चे लोहेसे बनाया जाता है। इसमें बहुत थोड़ी मात्रामें कार्बन रहता है। इसकी बनावट रेशेदार होती है। अब इसका काम भी अधिकतर फौलादसे लिया जाता है।

(१) फौलादमें भी अत्यन्त अल्प भागमें कार्बन रहता है, लेकिन यह ढले लोहेसे बनावट और गुण दोनोंमें भेद रखता है। बड़े आकारके ढांचोंके लिये यह विशेष तौरसे उपयुक्त होता है। पोत, ब्वायलर, आदिके बनानेकी चादरें फौलादकी बनायी जाती हैं। रेलकी पटरी, टिन-प्लेट (टिन किया कनस्तर) फौलादसे बनाये जाते हैं। ट्यूब, नल या

तार तथा दूसरी बड़ी महत्त्वपूर्ण चीजें इसीसे बनती हैं। फौलादसे ही धूरे, चक्केकी नाभि और तोप-बंदूकें भी बनायी जाती हैं। अधिकांश फौलाद कार्बन फौलाद होता है। कुछ मिश्रित फौलाद भी होते हैं, जैसे निकिल-फौलाद या निकिल-क्रोमियम-फौलाद। निर्मल फौलाद मकानोंके ढांचे तथा ब्वायलरके प्लेट आदिके लिये उपयुक्त होता है। निकिल-क्रोमियम-फौलाद बहुत ही कड़ा होता है, जिसका अधिकांश उपयोग मोटर-गाड़ियों और विमानोंमें होता है। मंगानीज-फौलाद और ताम्र-फौलाद भी मिश्रित फौलाद हैं। जिनमें पहिला अपनी भारी दृढ़ताके लिये प्रसिद्ध है। ताम्र-फौलादमें जंग नहीं लगती। स्टेनलेस (निर्मल) फौलाद, वेग-फौलाद और बिजली-फौलाद सभी निश्चित फौलादके महत्त्वपूर्ण प्रकार हैं। निर्मल-फौलाद इंजीनियरी रसायन और विमानके उद्योगों तथा छुरे, कांटे या दूसरी घरेलू चीजोंके बनानेमें इस्तेमाल किया जाता है। उच्च वेगफौलाद बहुत सख्त होता है। यह रेती, मशीनटूल और कटर आदिके बनानेमें काम आता है। बिजली-फौलाद बिजलीकी चीजोंके लिये उपयुक्त होती है।

–(I. B. pp. 1, 2)

(२) **कच्चा लोहा**–हमारा कच्चे लोहेका उत्पादन सन् १९३८ में साढ़े सत्रह लाख था, जो १९४३ में २० लाख हो गया। साथ ही जहां १९३८-३९ में पाँचसे छ: लाख टन कच्चा लोहा भारतने बाहर भेजा था, वहां १९४२-४३ में वह २ लाख ४० हजार टन ही भेज सका।

धून तथा कोयलेके पास-पास में रहने (एवं सस्ती मजूरी) के कारण कच्चे लोहेके उत्पादनमें भारतको बहुत सुभीता है। इसीसे हम इंग्लैंड जर्मनी, अमेरिका और जापानकी अपेक्षा बहुत सस्ता कच्चा लोहा बाहर भेज सकते हैं। साधारण समयमें कलकत्तासे निर्यात होनेवाले कच्चे लोहेका इंग्लैंडकी अपेक्षा आधा दाम होता है। इंग्लैंड अपने लिये धून स्वीडन तथा उत्तरी स्पेनसे मंगाता है, जर्मनी भी काफी धून स्वीडनसे मंगाता है। जापानकी दो तिहाई धून तथा अधिकांश कोक देशके बाहरसे आता है। युक्तराष्ट्र अमेरिकाका पश्चिमी जिला पेन्सेलवेनिया भी अपनी धून हजार मील दूर सुपीरियर सरोवरसे तथा कोयला ६० मील दूरसे मंगाता है।

–(I. B. p. 143 I. L. p. 105)

६. फौलादकी चीजें–

(१) **टिनप्लेट**–भारत टिनप्लेट कंपनी सन् १९२२ ई० में ताता

नगरमें स्थापित हुई। यह तातासे फौलाद खरीदती है, और उसे दबाकर पत्तरोंका रूप देती है, फिर उसपर पतली सी टिन (रांगे)की कलई लगा देती है। हल्के दर्जेके टिन-प्लेटको "कोक बनाव" कहते हैं, और मोटी कलई को "काठ-कोयला बनाव"। २१८ वर्गफुटकी चादरको एक "आधारबक्स" कहते हैं। एक "आधारबक्स" पर "कोक बनाव" में कलई करनेके लिये सवासे पौने तीन पौंड तक टिन लगता है और "कोयला बनाव" में तीनसे सात पौंड तक; इस प्रकार फौलादका १।५० भाग टिन का खर्च होता है। टिनप्लेट वस्तुतः फौलादकी चीज है, इसलिये वह इतना इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। इसका उपयोग अधिकतर किरासिन, पेट्रोल आदिके टिनके लिये होता है। साथ ही सिगरेट, बिस्कुट, चाय, फल, मुरब्बा, काफी, मक्खन, घी, बनस्पति-तेल एवं लालटेन आदिके लिये भी उसकी कम माँग नहीं है। दक्षिण वेल्स (इंगलैंड) इस उद्योगका सबसे बड़ा केंद्र रहा है। १९ वीं सदीके अन्तमें इन जन्मजात टिनकरोंकी सहायतासे यह उद्योग अमेरिकामें स्थापित हुआ।

भारतमें टिन-प्लेट का वार्षिक खर्च ५०,००० टन है, जो सारा प्रथम विश्वयुद्धसे पहिले विदेशसे आता था। लड़ाईके समय आयात बन्द होनेसे किरासिन, पेट्रोल आदि के टिनोंके अभावके कारण चीजोंके वितरणमें भारी कठिनाई उपस्थित हुई। इसीलिये प्रथम युद्धके अंत होनेपर तुरंत इस उद्योगकी भारतमें स्थापना हुई। ताताके फौलादी छड़ सुलभ होनेके कारण भी आसानी हुई। ताता कंपनी और बर्मा तेल कंपनी (२।३ पूंजी) के सम्मिलित स्वामित्वमें सन् १९१९ में भारत टिन प्लेट कंपनीकी स्थापना तातानगरके पास गोलमुरीमें हुई। १९२३ में इस फैक्टरीने काम शुरू कर दिया। सन् १९२४ में इसमें छः मिलें काम कर रही थीं। आरंभमें ९० आदमी वेलससे काम करनेके लिये लाये गये थे, जिन्होंने पहिले काम आरंभ करनेवाली दो मिलोंका सारा काम संभाला था। लेकिन साल भरके भीतर ही काफी भारतीयोंने काम सीख लिया, और उन्होंने चार मिलोंको चलाना शुरू किया। आगे इतने भारतीय कमकर तैयार हो गये, कि सन् १९३२ ई० में केवल २३ विदेशी रह गये, जो कि सारे कमकरोंका एक सैकड़ा भर थे, लेकिन उससे कामके गुणमें कमी नहीं हुई। प्रतिदिन खर्च भी कम हो गया। इससे कमकरों और प्रबन्धकोंकी योग्यता-वृद्धिका पता लगता है।

टिन-प्लेटके प्रधान कच्चे माल फौलाद और टिनकी सिल्लियाँ हैं।

तातासे एक निश्चित दरपर २१ सालके लिये ६०,००० टन फौलाद सिल्लीका स्वीकारनामा है (सन् १९३६ में दाम ८३ रुपया टन था)। टिन सिंगापुर और पिनाँङकी टिन कंपनियोंसे आता है। प्रतिवर्ष ९०० टन टिनका खर्च है। कुछ और कच्चे माल भी इस्तेमालमें आते हैं। जिनमें सल्फुरिक एसिड (गंधकिक अम्ल) विदेशी गंधकसे फैक्टरीमें ही बनाया जाता है।

आरंभमें कारखानेकी क्षमता २८,००० टन वार्षिक रखी गयी थी, किंतु कारखाना इतनी तेजीसे बढ़ा, कि सन् १९३९ ई० तक भारतकी ९०% आवश्यकताओंको पूरा करने लगा। इसके उत्पादन (टन) के अनुसार ही आयात कम हो गया—

सन्	देशमें उत्पादन	आयात (टन)	देशका सारा खर्च
१९२९-३०	३५,६८१	३१,०८७	६६,७६८
१९३१-३२	३८,३०६	७,५८४	४५,८९०
१९३४-३५	४९,९३४	५,५८३	५५,५१७
१९३६-३७	५२,६४३	१,३५२	५३,९९५
१९३७-३८	५३,४३१	७,४४१	६०,८७२
१९३८-३९	४६,७६१	१४,०१३	६०,७७४

१९३८-३९ में मजूरों की हड़ताल के कारण उपज कम हुई।

द्वितीय विश्वयुद्ध में टिन प्लेट की माँग बहुत थी। गोलाबारूद, पेट्रोल से लेकर भोजन और पानी के बर्तनों तक के लिये टिनप्लेट की जरूरत थी, जिसके लिये फैक्टरी ने अपनी उपज निम्न प्रकार बनाई।

सन्	
१९४२	५८,३०० टन
१९४३	६८,४०० "
१९४४	८०,००० "

इस कारखाने में ३६८० आदमी काम करते थे, जिनका मासिक वेतन ढाई लाख रुपया था। मलाया के जापान के हाथ में चले जाने पर टिन की दिक्कत हुई। टिन का खर्च कम करने के लिये खाने-पीने से संबंध रखने वाली चीजों को छोड़कर बाकी में टिन की जगह सीसा इस्तेमाल किया जाने लगा। (सीसे में जहर होता है)। इस प्रकार ८० प्रतिशत टिन के खर्चको कम कर दिया गया। फैक्टरी युद्धान्त में २१६ आकार-प्रकार की चीजें बनाती थी। चीजों में ४० प्रतिशत पेट्रोल और किरासिन २५ प्रतिशत

खाद्य टिन, १५ प्रतिशत सैनिक और २० प्रतिशत असैनिक की आवश्यकता थी।

(२) बोल्टू, नट और रिवेट—यह इसका कच्चा माल है, फौलाद को सिल्ली, छड़ और तार, जो कि फौलाद के कारखानों से आते हैं (द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व (१९३६-३७ में) २१,७०० टन बोल्टू आदि बाहर से हर साल आते थे। उस समय कलकता की गेस्ट कीन विलियम लिमिटेड ही अकेली इन चीजों को बनाती थी। कुछ रेलवे वर्कशाप तथा इंजीनियरी कारखाने भी अपने काम के लिये नट-बोल्टू बनाते थे। १९४४ में भारत में ५०,००० टन बोल्टू आदि खर्च हुआ था, जिसमें केवल ३०,०००टन देश में बना। उत्पादन की तालिका है—

१९४२	१२,५९८ (टन)
१९४३	१९,६५४ "
१९४४	२९,६७६ "

एक विलायती प्रसिद्ध कंपनी की शाखा गेस्ट-कीन-विलियम कंपनी का वार्षिक उत्पादन ११,६०० टन है। कंपनी ने अपने कलकत्ता के कारखाने को बहुत बढ़ाया है, और बम्बई में भी एक वर्कशाप खोल दी है। भारतीय तार-उपज कंपनी (तातानगर) और राष्ट्रीय लौह फौलाद का (कलकता) भी इस क्षेत्रमें काम करता है।

७. फौलाद ढलाई—

फौलाद ढलाई के लिये बड़े ऊंचे दर्जेकी निर्माणचातुरी तथा यांत्रिक विशेषताकी आवश्यकता है। भिन्न-भिन्न आकारके सांचोंमें डालकर ढालने के लिये पहिले फौलादको पिघलाकर पानी जैसा करना पड़ता है जिसके लिये उसे बिजली या गैसके भट्ठोंमें डालना होता है। महावेगी काटने वाले हथियारोंके बनानेके लिये सख्त फौलाद चाहिये।

मिश्रित फौलादकी आवश्यकता होती है, तो बहुत ऊँचे तापकी बिजली-भट्ठोंकी सहायता लेनी पड़ती है, जो फौलाद, सिलिका बालूके कंचुकवाले भट्ठोंमें बनती है, उसे एसिड (अम्ल) फौलाद कहते हैं और जो डोलोमाइटके कंचुकवाले भट्ठोंमें बनती है, उसे बेसिक (आधारिक) फौलाद।

फौलाद-ढलाईका काम लौह-फौलाद उद्योगसे भिन्न है। लौह-फौलाद उद्योग रेलकी पटरी तथा मकानोंके ढांचे आदिको तैयार करता है। फौलाद-ढलाई उद्योगके कामोंकी सबसे अधिक मांग रेलवे, कोलरी, सीमेंट, फौलाद, चीनी और जूट मिलोंकी ओरसे होती

है। इसका सारा कच्चा माल भारतमें प्राप्य है, हां, पिघलाईके साधन अधिकांश बाहरसे आते हैं।

द्वितीय विश्वयुद्धसे पूर्व निम्न ढलाईखाने काम करते थे– कुमारधोबी इंजीनियरी कार्य, कुमारधोबी।

हुकुमचंद कंपनी (अब भरतिया बिजली फौलाद कंपनी) कलकत्ता।

बर्न कंपनी कलकत्ता।

बी० बी० सी० आई० रेलवे वर्कशाप, अजमेर।

यह कंपनियाँ मिलकर सन् १९३९ ई० से पहिले प्रतिवर्ष ४,५०० टनकी ढलाई किया करती थीं। इनके अतिरिक्त भारतीय आर्डिनेन्स फैक्टरियां भी ढलाईका काम करती हैं।

युद्धके कारण कामकी माँग बढ़ जानेसे नये कारखाने भी मैदानमें आये, जिनमेंसे कुछ हैं–

राष्ट्रीय लौह-फौलाद कार्य, कलकत्ता।

मुकुंद लोह-फौलाद कार्य, बंबई।

भारतीय ह्यूम पाइप कंपनी, बंबई।

सिंह इंजीनियरी कार्य, कानपुर।

जु० क० उद्योग, कानपुर।

मैसूर लौह-फौलाद कार्य, भद्रावती।

इस प्रकार फौलादकी ढलाई ६,००० टन (१९४२) से ८,००० टन (१९४३) बढ़ गयी। यदि कुशल कमकरों, कोयले, यातायात, ढलाईके बालू आदिकी दिक्कत दूर हो जाये तो उपज जल्दी ही १२,००० टन तक पहुँच सकती है, जैसे वर्त्तमान भट्ठोंमें ३०,००० टनकी क्षमता है।

कुमार धोबी इंजीनियरी कार्यने खांई-मार्टर, हवाई बंब आदि बनानेमें क्षमता प्राप्त की। सन् १९४३ ई० में वह प्रतिमास ३,५००० मार्टर गोला तैयार करता था।

(१) तार और तार-उपज–द्वितीय विश्वयुद्धसे पूर्व जमशेदपुरकी भारतीय फौलाद और तार-उपज कंपनी ही एक मात्र इस कामको करती थी। इसने छोटे रूपमें १९२८ में काम शुरू किया था। सन् १९३२ ई० में कंपनीने तार-छड़ बनानेके लिये अपनी छठी मिल खड़ी की। तबसे ताताके फौलादसे अपनी सारी चीजें बनाती रही। युद्धारंभसे पूर्व यह कंपनी निम्न चीजें बनाती थी–

छड़ (आध इंचसे कम व्यासके), कठोर चमकीला तार, अर्नाल्ड तार, गल्वनाइज तार, तार-कांटे, कंटीले तार, बोल्टू, नट, और रिवेट आदि।

(२) **उपज**—कारखानेमें वार्षिक ५०,००० टन फौलादका खर्च था, युद्धके समय कारखानेमें युद्ध सामग्री बनने लगी, और निम्न वस्तुएं भी—

कंटीले तार, टेलीफोन तार, सिग्नल तार, मनिया तार (टायरके लिये), उच्च टेन्सिल तार, स्ट्रैंड तार आदि।

इनके अतिरिक्त १ से १० इंचकी कांटियाँ, तरह-तरहके कांटे, (छत, जूते आदिके) भी तैयार होने लगे। टेलीग्राफ तार और कंटीले तारोंको पहिले इस कारखानेकी पहुँचसे बाहर समझा जाता था, लेकिन युद्धके आरंभके बाद ही कंपनीने इनके बनानेमें हाथ लगाया और अंतमें सरकारकी सारी आवश्यकताओंको पूरा किया। इस कंपनीकी कार्यक्षमता निम्न प्रकार है:—

	मासिक टन
सिल्ली और तार छड़	५,०००
कठोर चमकीला तार	३६,०००
गल्वनाइज और टेलीग्राफ तार	६००
कंटीले तार	५००
तार कांटियाँ	१,२००
बोल्टू, नट, रिवेट	७५

भारत में इस तरह के दूसरे कारखानें हैं —

	उपज	**मासिक क्षमता**
राष्ट्रीय स्क्रू और तार उत्पादन कं० कलकत्ता	तार, कांटा	१५०, ७० टन
भारतीय ह्यूम पाइप कं० कलकत्ता	,,	,
कलकत्ता तार कांटा कं०	तार (कठोर, चमकीला)	१४०
व. लेज्ली कंपनी, जयपुर	,,	९८
,, अलीगढ़	,,	४५
बनारस फौलाद रोलिंग कं० बनारस	,,	७ १।२
लिलुआ फौलाद तार कं०, लिलुआ	,,	३९

	उपज	मासिक क्षमता
भारतीय तार-इंजीनियरी कं०, कलकत्ता	तार (कठोर, चमकीला)	१२
तार-कांटी लिमिटेड, बंबई	,,	७८
हैदराबाद तार-उपज कं०, हैदराबाद	,,	१५६
हिन्दुस्तान तार-उपज कं०, बनारस	,,	५०
चालिहा रोलिंग मिल्स, टालीगंज	तार	अज्ञात
पदम इंजीनियरी कार्य, बंबई	तार, काँटी	९
तार-कांटी निर्माण कं०, बंबई	,,	२६
भारतीय धातु-उपज, बंबई	,,	३५
लुसोब व्यापार कं०, बंबई	,,	अज्ञात
करफुल्स लिमिटेड, बंबई	,,	,,
तार-कांटी लिमिटेड, बंबई	,,	४
कलकत्ता राष्ट्रीय इन्सुलेटेड केबुल	कांटा	२०
लघु उद्योग, मानापुरम्, त्रिचनापल्ली	,,	१०

काँटा बनाना कहीं-कहीं कुटीर शिल्पके तौरपर किया जाता है। कन्नन्कुलम (कोचीन) में ऐसे पाँच कुटीर हैं।

चीजों का उत्पादन और आयात निम्न प्रकार है—

	१९४३	१९४४
टेलीग्राफ तार आदि		
उत्पादन	१५,१००	१७,८००
आयात	२७,२००	१६,०००
तार, कांटा		
उत्पादन	११,६०००	१४,०००
आयात	११,२००	१२,७००

—(I. B. pp. 23-35)

(३) **द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रभाव**—फौलाद युद्धकालकी सबसे अधिक आवश्यक वस्तु है। युद्धके अत्यन्त निर्णायक हथियार-टैंक, तोप, बंब सभी फौलादसे बनते हैं। युद्धके प्रथम वर्षमें हमारे यहाँ फौलादकी अधिक आवश्यकता नहीं हुई। सन् १९४० के मध्य तक सीधे युद्धके कामके लिये

केवल ३०,००० टन फौलादकी जरूरत पड़ी, किंतु उस सालके अंत तक माँग देशके उत्पादनसे अधिक हो गयी। ऐंग्लोअमेरिकन फौलाद मिशनके अनुसार सन् १९४३ ई० में भारत अपनी आवश्यकताओंका ७५% ही पूरा कर सकता था। सौभाग्यसे युद्धारम्भके पूर्व तथा तुरंत पश्चात् कारखानोंमें विकास हो चुका था, जिसके कारण उत्पादनमें वृद्धि संभव हो सकी।

प्रथम विश्वयुद्धमें भारत-निर्मित रेल-पटरीसे सेना और गोला-बारूद युद्धक्षेत्रमें भेजा गया था। द्वितीय विश्वयुद्धमें रेल-पटरी ही नहीं बल्कि इंजन छोड़ चक्के-टायर-धूरे सहित सारे ही डब्बे भारत-निर्मित थे। अब रेलवेके लिये आवश्यक प्रायः सभी चीजें भारतमें बनने लगीं थीं। यही नहीं गाड़ीके कवचका पत्तर और कवचभेदी फौलाद भी सेना और नौसेनाके लिये भारत तैयार करने लगा। अपने बिजली-भट्ठोंकी सहायतासे ताताने रेलोंके लिये प्रथम बार भारतमें उच्च श्रेणीका कार्बन-फोर्जिंग फौलाद बड़े पैमाने पर बनाना शुरू किया। इसके कारण रेलके डब्बोंके लिये उच्च श्रेणीके पेनल-पत्तर भारतमें बनने लगे, जिन्हें कि अमेरिकाकी चीज समझा जाता था। थोड़े ही समय बाद ताताने रेलवे स्प्रिंग भी बनाने शुरू किये, जो पहिले बाहरसे मंगाये जाते थे। पहिले भारतीय रेल-पटरियाँ अधिकांश कार्बन-फौलाद या क्रोम-फौलादकी होती थीं, लेकिन अब वह अधिकतर मध्यम-मंगानीज-फौलादकी बनने लगीं। सेंडवर्ग-प्रक्रिया द्वारा रेल-पटरियोंको नियंत्रित करके ठंडे करनेसे दृढ़तामें और वृद्धि हुई, जिसके कारण लाइनोंका टूटना कम हो गया, और आज भारतीय लाइनें दुनियामें किसी देशकी लाइनोंका मुकाबिला कर सकती हैं। बंगाल फौलाद कारपोरेशनने भी बड़ी अच्छी रेल-पटरियाँ बनायीं। अब रेलवे लाइनोंको बढ़ानेके लिये भारतके पास काफी साधन हैं।

सैनिक हथियारोंके लिये "एसिड" (अम्ल) फौलाद कुछ मात्रामें आवश्यक होता है, जिसे कि आवश्यक कच्चे मालके अभावके कारण बड़े पैमानेपर बनाना संभव नहीं था। ईसापुर-शस्त्र-फैक्टरी इंगलैंडसे हेमाटाइट कच्चा लोहा मंगाकर इस फौलादको बनाती थी। इस कमीको महसूस किया गया और सन् १९३९ में ही रद्दी कारबन-प्रक्रियासे ऐसिड-फौलाद बनाया जाने लगा। इस फैक्टरीने रद्दी फौलादसे एसिडका लोहा बनाया और इस प्रकार तोप बनाने का उत्पादन सुलभ कर दिया। रेलके पहियों,

टायर आदिके लिये आवश्यक एसिड-फौलादकी कमी सन् १९४१ में बहुत दीख पड़ने लगी, जबकि बाहरसे उसका आना रुक गया। सन् १९४२-४३ में ताताने पेरिन-प्रक्रियासे एसिड-फौलाद बनानेके लिये एक प्लांट खड़ा किया, जो कि विश्वमें अपने जैसा अकेला है। साथ ही ताताने त्रिप्लेक्स प्रक्रियासे भी एसिड-फौलाद बनाया।

(४) **मिश्रित फौलाद**–मिश्रित फौलाद तथा टूल-फौलादका भारतमें बनाया जाना युद्धकालके अत्यन्त महत्त्वकी प्रगति है। सन् १९४०-४१ ई० में बाहरसे मिलनेकी आशा न रहनेके कारण इसके लिये ताताको कहा गया। ताताने कवच और कवचभेदी शस्त्रोंके लिये जो मिश्रित-फौलाद बनाकर दिये, उसने कड़ीसे कड़ी परीक्षाएं पास कीं। सन् १९४० में गोली-रोधक पत्तरकी परीक्षा की गयी, फिर तुरंत प्लांट खड़ा कर दिया गया और कवचके ही पत्तर नहीं बल्कि कवचभेदी फौलाद भी बनाया जाने लगा। पहिले मिश्रित-फौलाद प्रतिमास २५० टन बनाया गया, फिर सन् १९४१ के आरंभमें उपज ५०० और १९४२ में १,००० टन मासिक पहुँच गयी। इसी समय शल्यचिकित्साके हथियारोंके बनानेके लिये भारतमें पहिली बार निर्मल (स्टेनलेस) फौलाद भी बनाया जाने लगा।

पैराशूट ढांचा, पोतनिर्माणकी नौसैनिक "डी" फौलाद, विशेष-मिश्रित और टूल-फौलाद देशमें बनने लगा। सन् १९४३-४४ में पहिली बार ४८ टन लौह-तुंग्स्तेन तैयार किया गया। कुछ प्रकारके टूल और मिश्रित लोहे भी बनाये गये।

इन्हें युद्धकालीन प्रगतियोंके कारण उच्च-वेग-टूल-फौलाद, गरम-डाई-फौलाद, टकसालके लिये पंच तथा न्यूमेटिक टूलोंका बनाना संभव हो सका। ये फौलाद देशके युद्धोत्तर-कालीन औद्योगिक विकासके लिये अत्यन्त महत्त्व रखते हैं।

इस प्रकार युद्धके दबावके कारण भारतका लौह-फौलाद उद्योग बहुत ही विकसित हुआ। उसने गुण और मात्रा दोनोंमें भारी प्रगति की। तैयार फौलादके उत्पादनकी क्षमता सन् १९३८-३९ ई० में साढ़े ७ लाख टनसे सन् १९४३ में साढ़े १२ लाख हो गयी और जल्दी ही वह १५ लाख टनपर पहुँच जायेगी। तैयार फौलादके उत्पादन (टन) का विवरण इस प्रकार है–

	युद्धपूर्व	१९४४ (प्रायः)
गृहादिके ढांचे	१,५०,०००	२,२५,०००
सिल्ली और छड़	१,५०,०००	२,२२,०००
पत्तर (प्लेट)	७०,०००	८२,०००
काला और मढ़ा फौलाद	१,५०,०००	१,८३,०००
रेलकी पटरी और जोड़	१,२०,०००	१,४९,०००
टिनप्लेट	५०,०००	८०,०००
तार	१०,०००	१७,०००
ढलाई	५,०००	७,०००
काँटा	१०,०००	१४,०००
नट और बाल्टू	५,०००	२९,०००
आर्डिनेन्स (शस्त्र)	२,०००	३०,०००

–(I. B. pp. 10-14)

मिश्रित फौलादके उपकरण–एक उपयोगी मिश्रण-उपकरण मंगानीज-के लिये भारत राजा है। क्रोम भी मैसूर और बिहार में अच्छे प्रकारका मिलता है, तुंग्स्तेनकी धून वोलफ्राम पर्याप्त मात्रामें देशमें मिलती है।

निकिल–अभी तक भारतमें नहीं निकाला जा रहा है। नेपालमें पता लगा है। (किन्नरमें भी ओर मिली है)। वनाडियम मयूरभंजमें मिला है। मोलिब्देनम् अभी तक भारतमें नहीं प्राप्त हुआ।

–(I. B. pp. 20-22)

(५) पुनःरोलिंग मिल–रद्दी लोहेसे फिरसे कामकी चीजें बनानेके लिये इस उद्योगका आरंभ २० साल पहिले हुआ। पहिले रेलवे वर्कशापकी रद्दीकी ढेरका इस्तेमाल किया जाता था, फिर अच्छे किस्मकी रद्दी बाहरसे मंगायी जाने लगी। सन् १९३५ ई० से, जब कि राष्ट्रोंने फिरसे हथियारबंदी शुरू की, इस उद्योगको भी सहायता मिली। सन् १९४० ई० में भारतमें ऐसी पचासके करीब मिलें थीं। सन् १९४१ ई० के पिछले भागमें युद्धके कारण फौलादकी माँग इतनी बढ़ी, कि इन मिलोंकी सारी पैदावारको सेनाके लिये खरीद लिया गया। इससे प्रोत्साहित हो मिलोंकी संख्या बढ़ते-बढ़ते १५० हो गयी।

विशेष तरहके फौलादकी माँग बढ़नेके कारण इन मिलोंसे अधिक साधन-संपन्नने विशेष फौलादकी चीजोंका उत्पादन आरंभ किया। भारतीय फ़ौलाद और तार-उपज लि० (जमशेदपुर), गेस्ट-कीन्-विलियम्स,

भारतीय रोलिंग मिल (नेगापटम), पुनः रोलिंग मिल (कुमारधोबी) ने उपरोक्त चीजोंके उत्पादनमें भाग लिया।

दूसरी मिलोंने बिजलीकी प्रक्रियासे फौलाद बनाना शुरू किया और ढलाईखाने स्थापित किये। ऐसी मिलोंमें कुछ थीं—राष्ट्रीय लौह-फौलाद कंपनी (कलकत्ता), भारतीय बिजली फौलाद कंपनी (कलकत्ता), तथा कुमारधोबी इंजीनियरी कार्य और ह्यूम पाइप कंपनी (बंबई)। इन कंपनियोंको सरकारसे भी विशेषकर विशेषज्ञोंकी सहायता प्राप्त हुई और उन्होंने नये ढंगसे उत्पादन शुरू किये। इस तरह वह अच्छी तरह स्थापित हो गयीं और भारतके फौलाद-उद्योगमें उनका निश्चित स्थान हो गया।

ऊपर लिखी कंपनियाँ ए श्रेणी की थीं। उनके मार्गमें अधिक कठिनाइयाँ नहीं आयीं। किन्तु, ९० के करीब बी और सी श्रेणीकी मिलोंके लिये कठिनाइयाँ पैदा हुईं। पुनःरोलिंग का काम भी वस्तुतः यही करती थीं। उनके पास अच्छे प्रकारके प्लांट नहीं थे। उनमेंसे अधिकांश सन् १९४१-४२ ई० में आरंभ हुयी थीं। रद्दी ही इनके लिये कच्चा माल था। इनकी चीजें कृषिके कामके लिये गाँवके लोहारोंके पास पहुँचती थीं। सन् १९४१ और १९४२ में उनके उपजकी माँग थी, किंतु सन् १९४३ के मध्यमें वह माँग नहींके बराबर हो गयी। सन् १९४४ के आरंभमें यातायातकी कठिनाई और कोयलेकी कमी भी आरंभ हो गयी, जिससे इन छोटी मिलोंको बहुत धक्का लगा।

(६) **भविष्य**—युद्धकी माँगोंके कारण लौह-फौलाद उद्योगकी बहुत उन्नति हुई, और उपज प्रायः दुगनी हो गयी। मिश्रित फौलाद तथा दूसरे उच्चकोटिके फौलाद देशमें पहिले-पहिल बनने लगे। युद्धकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके साथ-साथ मशीनटूल, मोटर-निर्माण, पोत-निर्माण आदि महत्त्वपूर्ण नये उद्योगोंकी नींव पड़ गयी। किंतु, इसका यह अर्थ नहीं, कि फौलादके संबंधमें भारत स्वावलंबी हो गया। उच्च कोटिके फौलादको अब भी बाहरसे मंगानेकी आवश्यकता होती है और अभी टेकनिकमें अधिक उन्नत देशों इंगलैंड और अमेरिकाके तलतक पहुँचना दूरकी बात है। लेकिन, यदि देश इस पथपर दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ता गया, और प्रगति कायम रखी गयी, तो वह बहुत जल्द विश्वके फौलाद बनानेवाले देशोंमें अपना उचित स्थान ग्रहण करेगा।

सन् १९४५ में सरकारके योजना-विभागने लौह-फौलाद-पेनल नियुक्त

किया, जिसने जाँच करनेके बाद बतलाया, कि फौलादकी माँग असैनिक कार्योंके लिये अवश्य बढ़ेगी। रेलवे सामग्रीको फिरसे ठीक करने, यातायातको सुधारने और नयी रेल-लाइनोंके बनानेके लिये और अधिक मात्रामें फौलादकी आवश्यकता होगी। पावरहाउस, हैड्रौलिक कार्यके सब-स्टेशन और बिजली ले जाने तथा बाँटनेके हजारों मीलके तारोंके साथ पनबिजली कार्योंके निर्माणमें भी बहुत भारी परिणाममें लौह-फौलादकी आवश्यकता होगी। सड़क, पुल आदिके प्रोग्रामको पूरा करनेके लिये भी फौलाद चाहिये। पोत-निर्माण तथा सेनाके सामानके लिये लोहे और फौलादकी माँग होगी ही, मोटरकार और विमानोंके बनानेके लिये कई तरहके साधारण और मिश्रित फौलाद आवश्यक होंगे। इस तरहकी सभी आवश्यकताओंपर विचार करके पेनलने निश्चय किया, कि हमारी वार्षिक उपज २५ से ३० लाख टन होनी चाहिये। इसके लिये देशमें ५-५ लाख टनकी क्षमतावाले दो और लोहेके कारखानोंकी आवश्यकता है।

भारतके पास उच्च दर्जेकी लौह-धून, मंगानीज और क्रोम-धून, चूना-पाषाण, डोलोमाइट और मग्नेसाइटका भांडार है। अच्छे किस्मकी मिट्टी और सिलिका-चट्टानें देशमें बहुत मिलती हैं, जिनसे फौलादके भट्ठोंके भीतरी कंचुकके लिये ऊँचे दर्जेकी अग्नि-ईंट और सिलिका-ईंट बनायी जाती है। कच्चे लोहेके उत्पादनमें भी भारतकी स्थिति बहुत अच्छी है, क्योंकि तरह तरहकी व्यापारिक कठिनाइयोंके होनेपर भी उसके लिये बाहर बाजार मौजूद हैं। साधारण आधारिक फौलादके बनानेके लिये हमारे पास सारी चीजें मौजूद हैं, लेकिन एक कमी हमारे लिये यह है, कि हमारी 'धूनोंमें अधिक फास्फोरस होनेके कारण वह एसिड-फौलाद बनानेके लिये उपयुक्त नहीं है। यद्यपि अभी दुनियामें जो फौलाद बनायी जाती है, उसमें अधिकतर आधारिक फौलाद है, एसिड-फौलाद बहुत थोड़ी मात्रामें बनता है। सभी कामोंके लिये एसिड-फौलाद गुणमें श्रेष्ठ है, इस बातमें विशेषज्ञोंका भी एकमत नहीं है।

–(I. B. pp. 10-18)

फौलाद उत्पादक देशोंमें (१९३९) में भारतका स्थानः–

देश	टन	जनसंख्या
यु० रा० अमेरिका	५,२७,९८,०००	१४,०३,८६,५००
जर्मनी	२,९६,१७,०००	७,७०,००,०००
सोवियत संघ	२,०७,१९,०००	१९,३०,००,०००

देश	टन	जनसंख्या
इंगलैंड	१,५१,१९,०००	४,६०,४७,०४६
फ्रांस	९४,०७,०००	४,१९,०७,०५६
जापान	७०,५५,०००	१०,५२,२६,१०१
बेल्जियम	३४,२९,०००	८,१५,९१,८५
कनाडा	१५,०९,०००	१,१४,१९,८९५
स्वीडन	१२,३१,०००	६३,७१,०००
भारत	७,५०,०००	३३,७२,११,०००

भारतकी जनसंख्यासे उसके फौलाद-उत्पादनको मिलानेपर मालूम होगा, कि अब भी भारतका यह उद्योग अविकसित अवस्थामें है। दोनों महायुद्धोंके बीचके समयमें भारतके वार्षिक फौलाद-खर्चका औसत था—

सन्	देशमें उत्पादन	आयात	व्यय
१९१४	०	१२,९३,०००	१२,९३,०००
१९२९	४,००,१०५	१२,५१,५५३	१६,५१,०००
१९३३	४,८३,२१२	३,२७,६४२	८,१०,८५४
१९३६	६,०३,९०५	४,५३,६६६	१०,५७,५७१
१९३९	७,८१,६७८	२,८०,४१७	१०,६२,०९५

— I. B. pp. 9-10)

भारतीय लौह-फौलाद उद्योगकी क्षमता (१९३९) वार्षिक उत्पादन—

देशभाग	नाम कार्य	कच्चा लोहा	फौलाद
उ० भारत—			
बिहार	ताता (जमशेदपुर)	११,४०,०००	१०,१८,०००
बंगाल	बंगाल-फौलाद-कारपोरेशन और भारतमें-लोह-फौलाद कं०	८,५०,०००	दो से ढाई लाख
द० भारत—			
मैसूर	मैसूर लोह फौलाद कार्य	२८,०००	२०,०००

लौह-फौलादका प्रादेशिक वितरण—

देश	प्रदेश	कारखानें	मजूर संख्या	सारे भारतकी	प्रतिशत
उत्तर-भारत	बिहार	३	२३,३२२	५३.३	
	बंगाल	६	१६,९१४	३८.७	
	उत्तर-प्रदेश	६	३४९	०.९	९२.९

देश	प्रदेश	कारखानें	मजूर संख्या	सारे भारतकी	प्रतिशत
द० भारत	मैसूर	१	२,९७३	६.८	
	मद्रास	२	१२८	०.३	७.१
					१००

–(I. L. p. 106)

सन् १९४३ में भारतमें फौलादकी उत्पत्ति १२ लाख टन थी, किंतु सन् १९४७ में वह घटकर साढ़े आठ लाख रह गयी।

–(I. B. p. 354)

जुलाई-सितम्बर सन् १९४८ के तीन महीनोंमें फौलादका उत्पादन निम्न प्रकार हुआ था—

मास	ताता	बंगाल फौलाद	योग
जुलाई	५७,२५०	१३,३५०	७०,६००
अगस्त	५४,३००	१५,८००	७०,१००
सितम्बर (प्रायः)	५५,७७५	१४,५७५	७०,३५०
	१,६७,३२५	४३,७२५	२,११,०५०

भारत-सरकारने कूपर कंपनी, तथा अर्थर जी० मेकी० (यु० रा० अ०) और इन्टरनेश्नल कन्स्ट्रक्शन कंपनी (इंगलैंड) इन तीनों परामर्शदातृ इंजीनियरी कंपनियोंको नियुक्त किया था, कि वह प्रतिवर्ष दस लाख टन फौलाद उत्पादन करनेवाले एक या दो कारखानोंकी विस्तृत योजना जनवरी १९४९ तक पेश करें।

–(1948. pp. 72-74)

३ कोयला

आजके सभ्य संसारमें कोयले जितना महत्त्व किसी वस्तुका नहीं है। इसे जलाकर ताप पैदा किया जाता है, इसके कार्बनीकरण या आसवनसे बहुत तरहके अत्यन्त उपयोगी रसायन बनाये जाते हैं। पेट्रोल और किरासिन भी ईंधनका काम देते हैं, किंतु पनबिजलीके अभावमें सबसे अधिक निर्भर रहना पड़ता है पत्थर-कोयलेपर।

–(I. B. p. 69)

१. कोयला सर्वे—

(१) कोयला-निधान—डाक्टर किरिल फाक्सने १००० फुट नीचे तककी गोंडवानाके कोयलेकी सारी निधिको ६००० करोड़ टन बत-

छाया है, जिसमें अनुकूल (१००० फुटकी गहराई तक ४ फुटसे मोटे स्तर तथा २५% से कम राखवाले) कोयलेका अंदाजा उन्होंने २००० करोड़ टन लगाया है। इसमें बढ़िया (२००० फुट तक नीचे ४ फुट मोटे स्तर तथा १६% राखवाला) कोयला ५०० करोड़ टन है। इसमें भी कोक बनाने योग्य कोयला केवल १५० करोड़ टन है। कोयला खनन समिति (सन् १९३९) ने अंदाज लगाया है कि कोकवाला कोयला सन् १९३६ के अंतमें १४२.६ करोड़ टन था। मिस्टर गी ने सन् १९४४ में उसके ११८.५ करोड़ होनेकी बात कही। लेकिन, कोयला-क्षेत्र-समिति (सन्१९४६) का सबसे पीछेका अंदाजा ७० से ७५ करोड़ टन तकका है। प्रतिवर्ष ८० लाख टनके हिसाबसे खर्च करने पर हमारी यह कोयला-निधि ६५ वर्ष (सन् २०११ ई०) तक और चलेगी।

आसाममें तातियरी (भूतत्त्वीय त्रेतायुगीन) कोयलेकी बड़ी भारी निधि है। यह धातु-उद्योगके योग्य थी, किंतु गंधककी मात्रा अधिक होनेसे उस काममें नहीं लायी जा सकती। इसलिये जब तक विज्ञान उसके निर्गंधकीकरणका कोई ढंग नहीं निकालता, तब तक धातु-गलानेमें उसका उपयोग नहीं हो सकता।

–(I. B. p. 73)

(२) **स्तर**–हमारे यहाँ निकाला हुआ कोयला अधिकतर २० या अधिक फुट मोटेका होता है। पाँच फुटसे कम मोटे स्तरकी खानमें शायद ही काम होता है। अभीतक ५० फुटसे अधिक गहरी खानें शायद ही कोई हों। भड़कनेवाली गैसोंका अभाव होनेसे खुले लैम्पकी रोशनी में ही काम हो सकता है।

–(I. L. p. 121)

(३) **कोयलेके भेद**–कोयला-मिट्टी (पीट), भूरा-कोयला, लिग्नाइट, बिटुमिनस, केनल तथा अंथ्रसाइट यह छः कोयलेकी जातियाँ हैं। हमारे यहाँ अधिकतर लिग्नाइट, बिटुमिनस तथा अंथ्रसाइट मिलते हैं।

(क) **कोयला मिट्टी** (पीट)–यह धरतीके नीचे दबे पुरातन काष्ठके कोयलाके रूपमें परिणत होनेकी पहिली अवस्था है। यह भूरी, रेशेदार, हल्की और खुपखुपी होती है। काठमांडव-उपत्यकामें यह मिलती है। कलना और बरीसाल जिलेमें भी इसके स्तर मिलते हैं। इससे उत्पादक-गैस तैयार की जाती है।

–(I. L. p. 21)

(ख) **लिग्नाइट**—बहुत कुछ भूरा-कोयला जैसा है। जलते समय यह बहुत धुआँ देता है। आसामका तार्तियरी कोयला इसी जातिका है।

(ग) **विटुमिनस**—अंथ्रसाइट और विटुमिनस यही दो वास्तविक कोयले हैं। इसकी ज्वाला विटुमेन जैसी होती है, यद्यपि इसमें उस धातुका लेश भी नहीं है। गोंडवानाके अतिरिक्त कुछ आसामके तार्तियरी कोयले भी विटुमिनस हैं।

(घ) **केनल**—केनल या केंडल (मोमबत्ती) जैसी ज्वाला देनेके कारण इसका यह नाम पड़ा। यह बिना चमकका कड़ा कोयला है और गैस बनानेके लिये बहुत उपयोगी है।

(ङ) **अथ्रसाइट**—कोयला-निर्माणकी यह अंतिम अवस्था है। यह अत्यन्त कड़ा, काला तथा चमकदार होता है। इसका सुलगाना कठिन है, किन्तु एकबार जल जानेपर बहुत तेज आँच देता है। धुआँ इसमें नाम मात्रका होता है। हिमालयके कुछ कोयलों तथा रानीगंजका एक स्तर झरिया एवं सोनपुरके कुछ भागोंमें यह कोयला मिलता है।

(४) **कोयला-क्षेत्र**—भूतत्त्व-शास्त्री भारतीय कोयलेकी दो शृंखलाएं मानते हैं। गोंडवाना-शृंखला तथा तार्तियरी-शृंखला। गोंडवाना-शृंखला पश्चिम बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, मध्यभारत, मद्रास, हैदराबाद राज्योंमें मिलती है। तार्तियरी भारत-संघमें केवल आसाम और पंजाबमें (तथा पश्चिम पाकिस्तानमें) मिलता है।

हमारे कोयला-क्षेत्रका क्षेत्रफल प्रायः ३५,००० वर्गमील है, जो कि इंगलैंडके कोयला-क्षेत्रसे तिगुना है।

गोंडवाना कोयला निम्न उपत्यकाओंमें प्राप्य है—

(१) गोदावरी-वर्धा उपत्यका,
(२) सतपुड़ा उपत्यका,
(३) महानदी उपत्यका,
(४) छत्तीसगढ़-रीवां उपत्यका,
(५) सोन-पलामू उपत्यका,
(६) दामोदर उपत्यका, और
(७) पूर्व हिमालय

आजकल जिन समृद्ध कोयला-क्षेत्रोंमें काम हो रहा है, वह हैं:—

(५) बंगाल—रानीगंज, कलिम्पोङ

बिहार—झरिया, बोकारो, करनपुरा और गिरीडीह।

मध्यप्रदेश—पेंच, कान्हन-उपत्यका तथा वर्धा-उपत्यका और
रीवाँमें—कोरेया, तालचर तथा हैदराबाद और आसाम ।

(क) **बिहार के कोयला-क्षेत्र हैं**—राजमहल, देवगढ़, हजारीबाग और दामोदर-उपत्यका । दामोदर-उपत्यकामें भारतका सबसे महत्त्वपूर्ण कोयला-क्षेत्र झरिया है, जहाँसे भारतका आधा कोयला आता है । इसका क्षेत्रफल १७५ वर्गमील है । इस क्षेत्रकी कोयला-निधि सन् १९३० ई० में १००० फुट तक ३१२.२ करोड़ और २००० फुट तक ४२०.७ करोड़ टन कूती गयी थी । राजमहलकी निधि सन् १८९८ ई० में २१ करोड़ टन, देवगढ़ तथा हजारीबागकी सन् १९३३ ई० में क्रमशः २.२ करोड़ तथा ५ करोड़ टन मानी गयी ।

बराकर श्रेणीमें १९ और रानीगंजमें ६ कार्य-योग्य कोयलास्तर हैं ।

(ख) **बंगाल कोयला-क्षेत्र**—इसके रानीगंज और दार्जिलिंग दो भाग हैं । रानीगंजका क्षेत्रफल ४४२ वर्गमील है । यहाँ २००० फुटकी गहराई तक ८६८ करोड़ टन कोयला है । भारतके कोयलेकी उपजका २५ प्रतिशत या ६५ लाख टन कोयला यहाँसे निकलता है । दार्जिलिंग क्षेत्रमें तिनधरिया तथा लिशु-रंप्ती नदियोंके बीचके क्षेत्रमें कोयला मिला है । यहाँ काम द्वितीय विश्वयुद्धसे होने लगा है ।

(ग) **उड़ीसाके कोयला-क्षेत्र हैं**—तलचर, इब्र नदी अथवा रामपुर (संभलपुर) और हिंगिर । तलचरका क्षेत्रफल २०० वर्गमील और कार्य योग्य दो स्तर ९ तथा १३ फुट मोटे हैं । डाक्टर फाक्स (१९३३) के अनुसार इसके २२ वर्गमीलमें १० से १५ करोड़ टन कोयला है । कोयलेमें राख कम है, किंतु आर्द्रता १० प्रतिशत है । इब नदीके कोयला-क्षेत्रमें भिन्न-भिन्न मोटाईके कई स्तर हैं और कोयला १४ करोड़ टन । हिंगिरमें कई काफी मोटे कोयला-स्तर हैं, किंतु राख अधिक है ।

(घ) **दक्षिण रीवां कोयला-क्षेत्र**—यहाँके महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हैं:—
सिगरोली—९०० वर्गमील ।
उमरिया—६ वर्गमील और निधि ४.८ करोड़ टन ।
जोहिला १५ वर्गमील और कोयला-निधि ८.१ करोड़ टन ।
सोहागपुर—अच्छी जातिका ४०० करोड़ टन ।

रेलके अभावमें रीवाँकी खानोंका विकास नहीं हो सका । सिगरौली तो बहुत दुर्गम स्थान है ।

(ङ) **मध्यप्रदेश कोयला-क्षेत्र**—इसके तीन विभाग हैं । छत्तीसगढ़, सतपुड़ा और वर्धा-उपत्यका ।

वर्धा-उपत्यका—इसमें नौ कोयला भूमियां हैं, जिनमें अधिक महत्त्वकी हैं: बंदर, बरौरा, वून, घुगुस तेलवासा, चंदा, बल्लारपुर और बामनपल्ली। रेल्वेकी कमीके कारण इन क्षेत्रोंके विकासमें बाधा है।

सतपुड़ा—महपानी, शाहपुर कन्हन-उपत्यका और पेंच उपत्यका।

छत्तीसगढ़—यहाँ १५ कोयला-भूमियाँ हैं, जिनमें कोरबा अत्यन्त महत्त्व रखता है।

(६) **प्रानहित—गोदावरी उपत्यका**—कामठीके बलुआ पत्थरका गोंडवाना स्तर वर्धा-उपत्यकासे हैदराबाद राज्य होते मद्रास तक चला गया है। इसका क्षेत्रफल ४५०० वर्गमील है, जिसमेंसे २००० वर्गमील मध्यप्रदेशमें, ३७०० वर्गमील हैदराबादमें और ६०० वर्गमील मद्रासमें है।

हैदराबाद—इसकी कोयला-भूमियाँ हैं:—सस्ती-राजपुरा, अन्तर गांव-अकसापुर, तंदूर, चिनूर और सिंगारेनी।

मद्रास—यहाँका कोयला क्षेत्र पूर्वगोदावरी जिलेके लिंगला, भद्राचलम् तथा बेद्दानोल स्थान हैं। कडलूर तथा अरकाट जिलोंमें लिग्नाइटका पता लगा है।

(७) **उत्तर-प्रदेश कोयला क्षेत्र**—सिंगरौली (रीवाँ) की ही कोयला-श्रेणी पूर्वमें मिर्जापुर जिलेमें बढ़ गयी है। उत्तर-प्रदेशके कोयला-क्षेत्रोंकी खोज अपूर्ण है।

आसाम—यहाँ मकुम, जयपुर, नजीरा, खासी पहाड़, जयन्तिया पहाड़ और गारो पहाड़में तार्तियरी कोयला-क्षेत्र हैं।

कश्मीर—जम्मू-प्रदेशमें तार्तियरी कोयलेका एक बहुत अच्छा स्तर प्राप्त हुआ है।

२. **कोयला-खाने**—

(१) **रानीगंज**—(इतिहास) भारतमें सबसे पहिले कोयलेकी खोदाई सन् १७७४ ई० में रानीगंजमें छिछली खानोंसे शुरू हुई, किंतु नियमपूर्वक कोयला-खानका काम अलेकजंडर कंपनीने सन् १८२० ई० में आरंभ किया। सबसे कठिनाई यातायातकी थी। दामोदरकी उथली धारा एक मात्र साधन थी, जिससे कोयला कलकत्ता जाता था। ई० आई० रेलवेका प्रथम खंड १८५४ में खुला और १८५५ में रानीगंज तक रेल बन गयी। रेलके कारण कोयलेकी माँग बढ़ी। रानीगंजकी प्रथम भूतत्त्वीय सर्वे सन् १८४५-४६ ई० में और फिर १८५६-६० में हुई। सन् १८६६ तक

प्राय: ५० कोयलरियाँ काम करने लगी थीं, रानीगंज क्षेत्र प्रतिवर्ष २,८२,२०० टन कोयला देता था।

(२) **झरिया**–यहाँके कोयलेका पता सन् १८५८ ई० से पहिले लग गया था, किंतु जब तक सन् १८९४ ई०में रेल वहाँ नहीं पहुँच गयी, खानकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। गिरीडीहकी खानमें ई० आई० रेलवेने अपने लिये सन् १८७१ ई० में काम शुरू किया। जैसे-जैसे रेलवे लाइनें बढ़ती गयीं, वैसे ही वैसे दूसरे कोयला-क्षेत्रोंमें काम आरम्भ हुआ।

१९ वीं शताब्दीमें रानीगंजकी कोयलेकी खान भारतके लिये सबसे अधिक महत्त्व रखती थी। सन् १९०० ई० की ६१.२ लाख टनकी भारतीय कोयला-उपजमेंसे २५.५ लाख टन रानीगंजमें निकाला गया था, लेकिन अब झरियाका महत्त्व बढ़ने लगा, और सन् १९०६ ई० में उसकी उपज रानीगंजसे बढ़ गयी। मध्य प्रदेशमें सन् १८६१ ई० और रीवाँ में सन् १८८४ ई० में कोयलेका खनन आरम्भ हुआ। हैदराबादके सिंगारेनी क्षेत्रका पता सन् १८७२ ई० में लगा, लेकिन काम १५ वर्ष बाद आरंभ हुआ। ऊपरी आसाममें सन् १८८१ ई० से कोयला-उत्खननमें काफी उन्नति होने लगी। सन् १९१४ ई० तक भारतकी वार्षिक कोयला-उपज १६५ लाख टन हो गयी, जिसमें ९० लाख झरिया और ६० लाख रानीगंजका था। प्रथम विश्वयुद्धके समय कोयला-उद्योगको बहुत प्रोत्साहन मिला और लड़ाईके अंततक वार्षिक उपज २१० लाख टन हो गयी।

सन् १९२० से १९२६ ई० तक कोयलेकी माँग बहुत कम हो गयी, किंतु सन् १९२७-३० ई० में फिर उत्पादन बढ़ा। सन् १९३० ई० के बाद आर्थिक संकटका प्रभाव कोयलेके ऊपर पड़ा। इस समय बहुत सी कोयलरियाँ बंद कर दी गयीं। जो काम भी करती थीं, उन्होंने भाव सस्ता करनेके लिये अच्छे दर्जेके कोयलेके बहुत भागको चौपट करके बाजारको पकड़ना चाहा। सन् १९३७-४२ ई० में फिर कोयलेकी हालत अच्छी हुई। युद्धके पहिले तीन सालोंमें कारबार खूब चमका, किंतु जैसे जैसे बाजारकी माँग बढ़ती गयी, वैसे ही वैसे यातायातकी कठिनाई बढ़ी। इस प्रकार सन् १९४२-४५ ई० में कोयलेका जैसा अकाल पड़ा, वैसा कभी नहीं देखा गया। युद्धके कारण बढ़े हुए कारखानोंकी माँग ज्यादा थी ही, उधर रेलोंके पास डब्बे कम थे। कोयलेका दाम बेतहासा बढ़ा। (फिरोजाबाद जैसे कितने ही छोटे-छोटे औद्योगिक केन्द्रोंके कारखानोंमें झोंकनेके लिये कोसों दूरके बगीचे काट डाले गये)।

सन् १९४२ ई० में रेलकी कोयला-खानोंने ११.५ प्रतिशत उत्पादन किया और लोहा-फौलाद कंपनियोंने ५.२% ।

भारतमें कोयला-उत्पादन (टन) :—

गोंडवाना कोयला—

सन्	बंगाल	बिहार	मध्य भारत	मध्यप्रदेश	हैदराबाद	उड़ीसा	पूर्वी रियासतें
१९२४	६०,३५,३४७	१,३०,४६,९७५	२,३५,२९८	६,३९,०८१	६,४४,३७५	५४,८६२	
१९२७	६४,७२,०३६	१,३५,५०,६०९	२,१७,६६१	६,६६,७५८	७,०७,२१३	५०,२११	
१९३०	७२,१८,६९१	१,४०,५५,६३०	१,९३,२३३	९,५५,८८८	८,१२,२९८	१,०६,८९२	
१९३३	५६,९१,१८९	१,१२,५७,९८६	२,५२,७६८	१५,००,९११	७,५३,४०२	बिहारमें	
१९३७	६५,२७,८२०	१,३८,३६,७१७	३,३४,२९१	१५,०४,१५९	१०,७६,२४१	४७,१२७	१२,४४,७८८
१९३९	७५,९१,४९५	१,४७,८७,६६१	३,२७,४७९	१७,४२,८३१	१२,१४,५६८	५८,६८७	१४,९१,२०१
१९४०	८४,५३,०८२	१,५३,४४,९९२	३,३३,३०५	१८,०६,३१३	१२,५०,१२२	६२,६६०	१६,०५,००९
१९४२	७६,३८,७८४	१,५९,१७,२८१	४,०१,५१०	१८,३६,५२२	१२,७७,१५३	१४,६,७३३	१७,३२,५८१
१९४४	६७,८९,८७६	१,४३,६०,६६७	..	१६,७७,७८६	९,३१,७८७५	१,०२,७०९	..
१९४५	७२,९०,६५०	१,६५८,९,९९६	..	१६,४९,२४३	१०,३२,८१०	१,१२,५२९	..

तार्तियरी कोयला :—

सन्	आसाम	बलोचिस्तान	पंजाब	राजपूताना	कुल भारत
१९२४	३,३४.८६२	४०,५५७	८०,६६२	२१,८७०	२,११,७६,०२९
१९२७	३,२३,३४२	१६,६६६	६२,७०६	१७,३५८	२,००,८२,३३६
१९३०	३,५९,०४०	१५,८९६	५०,६१९	३५,१२३	२,३८,०३,०४८
१९३३	१,९६,१५४	११,६६२	९६,०९९	३३,११६	१,९७,८९,१६३
१९३७	२,४८,५६३	१७,६७९	१,६६,३२	३२,२६९	२,५०,३६,३८६
१९३९	२,१७,१६८	२६,३७९	१,९६,०८०	३९,२०६	२,७७,६९,११२
१९४०	२,७८,६६०	१८,८८९	१,९५.६१०	४०,५८८	२,९३,८८,४९४
१९४२	२,५९,७७९	३७,०२७	१,३५,७५५	४७,९६६	२,९६,३३,२५३
१९४४	२.९३,९८८	८१,२९३	१.३५,०६७	..	२,५९,६५,५५६
१९४५	३,०२,१९३	१,३६,५६१	१,६१,८२५	..	२,८९,७२,५४८

३. कोयला कमकर—

भारतमें दूसरी सभी खानोंसे अधिक कमकर कोयला-खानोंमें काम करते हैं। ब्रिटिश भारतकी कोयला-खानोंमें २,०१,९८९ (सन् १९३९) मजूर (जिनमें २३,००४ स्त्रियाँ खानसे बाहर) या २,४७,०७३ (सन् १९४२) काम करते थे. इंगलैंडमें ७,९०,८८८ तथा अमेरिका (सन् १९३८) में ३,१४१७०। इतने अधिक मजूरोंके होनेपर भी यंत्रीकरणके अभावमें प्रत्येक भारतीय खनक उतना कोयला नहीं निकाल पाता, जितना दूसरे देशोंका, जैसा कि निम्नलिखित वार्षिक प्रति व्यक्ति (टन) उत्पादनसे मालूम होगा :—

		भीतर और ऊपर	खानके भीतर
युक्त राष्ट्र अमेरिका		६५६	..
इंगलैंड		२८७	३६९
जर्मनी		३८३	५४८
जापान		२०७	२८१
भारत	(१९३८)	१२५	२०५
	(१९३९)	१२९	१९३

कोयला खर्च—कोयलाके उपभोक्ता निम्न प्रकार थे—

(हजार-टन)

	१९३९	१९४२
रेल	८३,६३	९२,५५
नौसेना	७०	४,७७
पोत	९,२७	८,६६
कपड़ा—मिल	१७,९१	२२,५८
जूट-मिल	७,३५	७,७८
लौह-फौलाद	६६,९९	३८,८७
ईंट, खपड़ा	३,६७	४,४३
सीमेंट	८,५७	१०,३३
पोर्ट-ट्रस्ट	१,२२	१,२८
नदी-पोत	५,०७	४,१४
चाय-बगान	१,८८	१,५६
कोयला-खान तथा रद्दी	१४,१६	२६,३४
दूसरे उद्योगों तथा घरोंमें	३९,१४	६३,२६
	२,६१,३०	२,९०,२०

४. **भविष्य–**

हमारे यहाँकी कोयला-खानोंमें कार्यकी असावधानीके कारण ५० प्रतिशत कोयला बरबाद हो जाता है।

धातुके कारखानोंके लिये भारतमें कोकवाले कोयलेका निधान बहुत कम है। सरकारने विशेष कानून बनाकर खान मालिकोंको मजबूर करना चाहा है, कि ३०% तक राख रखनेवाले सारे कोयलेको निकाल लें। कोयला बचानेके वास्ते खानोंके पासकी रेलोंका बिजलीकरण होना चाहिये। एक मील रेलवे लाइनके बिजलीकरणसे प्रतिवर्ष ४०० टन बचत होगी। बड़े पैमाने पर रेलोंके बिजलीकरणसे प्रतिवर्ष २५ लाख अच्छी किस्मका कोयला बचाया जा सकता है। साथ ही कोयलेके उत्पादनके बढ़ानेके लिये नये कोयला क्षेत्रोंको भी खोलना होगा। पहिले कामटी कोयला क्षेत्र (जिला नागपुर) दक्षिणी अरकाट (मद्रास) की लिग्नाइट निधि, रीवाँका कोरार कोयला क्षेत्र खोले जानेवाले हैं। दूसरे नये कोयला क्षेत्र हैं–मध्य प्रान्तमें पल्हखेरा (जिला बेतूल), कोरबा (जिला बिलासपुर) और बिहारमें हुतार।

बहुतसे देशों कोयला-उद्योगके राष्ट्रीकरणके बड़े पक्षपाती हैं, जिसमें कि राष्ट्रीय दृष्टिसे उसके उत्पादन, वितरण और दामको नियंत्रित किया जा सके। लेकिन भारतीय कोयला क्षेत्र समिति इस पक्षमें नहीं है, कि सारे कोयला-उद्योगका स्वामित्त्व तथा संचालन तुरंत सरकार ले ले।

–(I. L. p. 97)

झरिया कोयला-क्षेत्रके काफी भागका नियंत्रण वर्तमान लौह-फौलाद कंपनियोंके हाथमें है, इसलिये जहाँ तक उनका संबंध है, चंद पीढ़ियों तक धातुकीय कोककी कमी नहीं होगी। इन भागोंको छोड़कर झरियाका बाकी कोकवाला कोयला (सन् १९३२ मे) ३३ वर्षोंमें खतम हो जायगा, यदि खननके ढंगमें सुधार नहीं किया गया। तब लौह-फौलाद उद्योगको बोकारोके कोयले अथवा उसके तथा रानीगंजके उपलभ्य कोयले एवं शायद कर्नपुराके अर्धकोकीय कोयलेके मिश्रणपर निर्भर रहना पड़ेगा। चूँकि लौह-धूनकी अपेक्षा कोकवाले कोयलेका परिमाण हमारे पास बहुत कम है, इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है, कि झरिया और रानीगंजके कोकीय कोयलेके संरक्षणके सभी संभव उपायोंको काममें लाया जाये (विशेषकर आजकल रेलकी भापके लिये इस्तेमाल किये जानेवाले गिरीगढ़के स्तरको।)

–(I. B. pp. 78-45)

४ अन्य खनिज पदार्थ

रासायनिक, धातुकीय तथा दूसरे उद्योगोंके कच्चे मालके तौरपर खनिज पदार्थोंका बहुत महत्त्व है। दूसरे कच्चे मालोंसे खनिज पदार्थोंमें एक बड़ा अन्तर यह है, कि जहाँ वनस्पतिज, प्राणिज पदार्थोंके व्यय या घाटेको मनुष्य बहुत कुछ पूरा कर सकता है, वहाँ खनिज पदार्थोंका उत्पादन उसके हाथमें नहीं है। वह नयी खानोंका पता लगा सकता है, किन्तु एक बार खाली हो गयी खानोंको फिरसे नहीं भर सकता।

अगरिया बहुत पुराने समयसे भारतमें धातु पिघलानेका काम करते आ रहे हैं, लोह, ताँबे, सीसे, जस्तेकी धूनें गलायी जाती रही हैं, किन्तु नये ढंगपर व्यवस्थित खनिज-उद्योग हालकी चीज है। एक शताब्दी पूर्व भूतत्त्वीय सर्वेकी स्थापनाके बादसे धातुओंकी खोज विशेष तौरसे होने लगी। यद्यपि देशके बहुत थोड़े ही भागकी सर्वे हो सकी है, तो भी हमें अपने धातुओंका कुछ परिचय है। अच्छी जातिकी लौह-धून तो हमारे यहाँ है ही, साथ ही हमारे पास बड़े परिमाणमें तितानियम् और अबरक भी हैं, जिन्हें विदेशी प्रतियोगिताके बाद भी हम निर्यात करते हैं। मंगानीज, वक्साइट, मग्नेसाइट और क्रोमाइट बाहर भेजनेके लिये भी हमारे पास हैं। चाँदी, निकिल, पेट्रोल, गंधक, जस्ता, राँगा, पारा, तुंग्स्तेन, मोलिब्देनम्, प्लातिनम, ग्रफाइट, अस्फाल्ट और फ्लुएरिन्द जैसे खनिजोंका हमारे पास अभाव सा है, लेकिन इसे पक्का नहीं कहा जा सकता। देशकी पूरी भूतत्त्वीय सर्वे होनेपर, संभव है आजकी धारणा बदलनी पड़े। यदि लोहेकी ओरका निर्यात किया जाये, तो उसका दाम दो रुपया टन होगा, और कच्चा लोहा तैयार करने पर वह बढ़कर ४८ रुपया टन हो जायेगा। इसी तरह आगे भी फौलाद मशीन आदि बनाके उसका दाम बढ़ाया जा सकता है और अधिक लोगोंको काम भी मिल सकता है।

–(I. B. pp. 68-69)

राजस्थानमें खनिज पदार्थोंकी संभावना बहुत अधिक है। आजकल राजस्थान सरकार प्रायः पचास लाख रुपया राजदेय तथा पोतके तौरपर पाती है। अभीतक बीकानेरमें लिग्नाइट कोयला, बीकानेर तथा जोधपुरमें जिप्सम तथा फुलर-मिट्टी, मेवाड़ तथा जयपुरमें साबुन-पत्थर, बूंदी, जयपुर तथा बीकानेरमें काँच बनानेका बालू, मेवाड़, जयपुर, किशनगढ़, टोंक और कुछ दूसरे क्षेत्रोंमें अबरक मिला है।

–(P. T. I. २–८–४९)

सन् १९४८ ई० की तीन तिमासियोंमें कुछ खनिजोंका उत्पादन (टन) निम्न प्रकार हुआ है:-

	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
अलुमिनियम	६०४	८७२	८८९
तांबा	१,३९९	१,५४१	१,४६५
सीसा	१७९	६१	नहीं
सुर्मा	८२	१५४	८३८
अर्धनिर्मित	७,१६९	६,२२९	६,५६२
मिश्रित धातु	३,८०९	४,४७२	४,४४२

—(Land. S. July. Sept. 1948. p. 5)

१. तांबा–

मुख्य अलोह धातु हैं:–ताँबा, अलुमिनियम, राँगा (टिन), जस्ता, सीसा, मग्नेसिया और निकिल। इनमेंसे प्रत्येक कई मिश्र-धातुओंके बनानेमें काम आते हैं। ताँबेका सबसे बड़ा महत्त्व उसका बिजलीका अच्छा नेतक होनेके गुणके कारण है। इस प्रकार वह बिजली उद्योगमें अधिकतासे काम आनेवाला कच्चा माल है। दूसरा गुण ताँबेमें यह है, कि उसमें मोर्चा लगनेका बहुत कम भय होता है। भारतमें ताँबेकी वार्षिक उपज ६ हजार टन है और खर्च ६० हजार टनके करीब। ताँबा गलानेका काम भारतीय ताँबा कारपोरेशनके कारखाने (घाटशिला, बिहार) में होता है, किंतु उसका माल अफ्रिका और यु० रा० से घटिया होता है। वह अग्निशोधित ताँबा बनाता है, जिसमें थोड़ा-सा निकिल रह जाता है, जिसके कारण तार निकालने तथा बिजलीके ताम्रतारका काम नहीं दे सकता। हमारे यहाँ पिघलाने और शोधनेका खर्च अधिक है, इसलिये हमारा माल उत्तरी रोडेशिया (अफ्रिका) और यु. रा. के सस्ते ताँबेका मुकाबिला नहीं कर सकता। हाँ, भारतीय ताँबा कारपोरेशन पीतलकी चादरें सस्ती बनाता है, और उसमें विदेशी मालका मुकाबिला कर सकता है। यह चादरें वह अपने ताँबेसे बनाता है। सरकार द्वारा नियुक्त पेनलने सिक्किम और जयपुरमें ताँबेकी खोज करनेकी सलाह दी। (कनौर-गढ़वाल-कुमाऊं ताँबा निकालनेका काम पिछली शताब्दीमें भी होता था।) पेनलने यह भी सुझाव रखा है, कि पीतल और ताँबेकी चादरोंके बनानेके लिये बंबई और मद्रासके पास एक एक तथा उ० प्रा० में एक प्लान्ट (कारखाना) स्थापित किया जाये।

द्वितीय विश्व-युद्धके समय अलौह मिश्रण-धातुओंके उत्पादन तथा परिशोधनमें भारतने बहुत तरक्की की और शिक्षित कर्मियोंके साथ साथ आधुनिक प्लाँटको भी मंगाकर स्थापित करनेका मौका मिला। सबसे बड़ा विकास हुआ तार, पट्टी और छड़के उत्पादनके काममें, जिसका द्वितीय विश्वयुद्धसे पहिले भारतमें नाम नहीं था। युद्धके पहिले तीन वर्षोंमें तैयार धातुओंकी बड़ी माँग थी, इसलिये इस ओर काम बढ़ानेके लिये कंपनियोंको प्रोत्साहन दिया गया। कई कंपनियोंने इस गंभीर समयमें आगे बढ़कर देशमें बने साधनोंसे जो भी प्लांट तैयार हो सकता था, उसकी स्थापना की। इन कामोंमेंसे कुछ निम्न प्रकार हैं–

(१) **पीतल और तांबेका तार**–बिजली इंजीनियरीमें पीतल और बिजलीवाले ताम्रतारके अनेक उपयोग होते हैं। साधारण पीतल और ताँबेके तार जरीका कपड़ा बनानेमें भी काम आते हैं। रिवेट, ताँबेका टैक (नाव बनानेके लिये), स्क्रू और काँटी (जूतेके कारखानोंमें) एवं पैक करने बाँधने तथा बहुत-सी दूसरी बातोंमें इस्तेमाल होता है। इन कामोंके लिये बहुत भारी परिमाणमें तार बनाये जाते हैं। फास्फोर-काँसाके तार की भी कुछ माँग है। लेकिन, अभी भारतमें साढ़े तीन सेर तकके गोलेका ही तार बनता है, जब कि विदेशी तारके गोले ५० सेर तकके होते हैं। स्वयंचालित मशीनोंमें भारी गोलोंसे काम अधिक जल्दी होता है। भारतीय पीतल और ताँबेके तार गुणमें काफी अच्छे हैं, यद्यपि अभी बारीकी और चमकमें बहुत सुधार करनेकी आवश्यकता है।

निम्न कंपनियाँ इस व्यवसायमें लगी हैं–

(क) जयपुर–कमानी धातु-शोधनी और धातुउद्योग।
(ख) कलकत्ता–भारतीय रोलिंग मिल सीमित।
(ग) बंबई–जयन्त धातु-निर्माणिका कंपनी सीमित।
(घ) दिल्ली–भारत, केबुल और रबर कार्य।
(ङ) अलीगढ़–राष्ट्रीय क्रोम कलई कंपनी।
(च) अलीगढ़–भारतीय औजार निर्माणिका कंपनी।
(छ) कलकत्ता–राष्ट्रीय स्क्रू तथा तार उत्पादन सीमित।
(ज) सूरत–सूरत जरी उद्योग।

(२) **चादर और पट्टी (पीतल और तांबा)**–घाटशिलाका भारतीय ताँबा कारपोरेशन गरम-पसारी चादरोंके उत्पादनमें भारतका सबसे बड़ा कारखाना है। इसकी चादरें विदेशी चादरोंसे गुणमें कम नहीं

हैं, और साथ ही सस्ती हैं, किंतु यह कारखाना बहुत पतली चादरोंको नहीं तैयार करता था। द्वितीय विश्व-युद्धके आरंभ होनेपर चाय-बक्सोंके भीतर लगानेकी पतली चादरें बाहरसे आनी बंद हो गयीं। कुमारहट्टीकी वेनेस्ता सीसा मिलने चाय-बक्सोंके लिये सीसेकी चादरें तैयार की थीं। वर्मापर जापानियोंका अधिकार हो जानेके कारण सीसेके अभावमें कारखाना बन्द हो गया। उसने अपनी दो सूक्ष्मकारी मिलोंको ताँबे पीतलके काममें लगा दिया। इन मिलोंकी सहायतासे बहुत बारीक ३० नवम्बर तककी ठंडपसारी पीतल और ताँबेकी चादरें बनायी जाने लगीं। इस तरहकी यही एकमात्र कंपनी है।

पीली धातुकी चादरें बरतन बनानेके लिये भारतमें बहुत खर्च होती हैं। पीतलकी चादरोंका स्टोव आदि बनानेमें भी इस्तेमाल होता है। निम्न कम्पनियाँ अपेक्षाकृत बारीक ठंडपसारी चादरें बनाती हैं:—

(क) जयपुर : कमानी धातुशोधनी और धातुउद्योग,
(ख) कलकत्ता : भारतीय रोलिंग मिल,
(ग) बंबई : लल्लूभाई अमीचंद,

(३) **डंडा और छड़ (पीतल तथा तांबा)**—द्वितीय विश्व-युद्धके समय पीतलके गोल डंडे और छड़ोंके लिये भारत प्रायः स्वावलंबी हो गया। अब यहाँ आधेसे तीन इंचके व्यासके गर्मपसारी डंडे तथा छड़ बनते हैं, यद्यपि उतने बढ़िया नहीं। निम्न कंपनियाँ इस काममें लगी हैं—

(क) जयपुर : कमानी धातुशोधनी और धातु उद्योग,
(ख) कलकत्ता : भारत रोलिंग मिल,
(ग) बंबई : लिलुआ फौलाद तथा तार कंपनी,
(घ) बंबई : जयन्त धातु-निर्माणिका कंपनी,

{ यह आध इंच मोटे छड़ोंको भी बनाती है।

(४) **भारक धातु, तोपधातु, फास्फोर-कांसा आदि**—युद्धकालमें भारतने इन मिश्रधातुओंको बड़े परिमाणमें पैदा करना शुरू किया, जो गुणमें भी बहुत अच्छे हैं। निम्न कारखानोंमें इनका काम होता है।

(क) बंबई : भारतीय पिघालन तथा शोधन कंपनी,
(ख) बंबई : भारतीय स्टेंडर्ड धातु कंपनी,
(ग) कलकत्ता : बिनानी धातु कार्य,
(घ) बंबई : गेरार्ड गब्रील,
(ङ) कलकत्ता : बंगाल सिल्ली कंपनी,
(च) जयपुर : कमानी धातुशोधनी कंपनी,

(छ) कलकत्ता : आयरन पिघालन कंपनी,

(५) **नल (पीतल, तांबा)** –स्तरहीन नल बनानेमें अभीतक भारतमें कम प्रगति हुई है। यहाँके बनाये नल भी घटिया होते हैं। निम्न कंपनियाँ इस कामको करती हैं:–

(क) बंबई : भारतीय स्टैंडर्ड धातु कंपनी,
(ख) जयपुर : कमानी धातुशोधनी कंपनी,
(ग) कलकत्ता : राष्ट्रीय रोलिंग कार्य,
(घ) कलकत्ता : बिनानी धातु कार्य,

यद्यपि प्लांटका अधिक भाग भारतमें बन सकता है, किंतु अभी किसी भी कंपनीने आगे बढ़नेकी ओर ध्यान नहीं दिया है। भारती स्टैंडर्ड कंपनी आगे बढ़नेकी सोच रही है।

(६) **बिजली कलईकारी**–युद्धके समय इस व्यवसायमें अच्छी प्रगति हुई, ताँबे ही नहीं निकिल, रांगा, कडमियम, क्रोमियम तथा जस्तापर भी।

जस्ता और तांबा मिलाकर पीतल बनता है। कुछ देशोंमें सन् १९४० में ताँबे और जस्तेका व्यय तथा उत्पादन एवं विदेशोंसे आयात था (मेट्रिक टन-२००० पौंड)–

देश	व्यय	उत्पादन
युक्तराष्ट्र	९,५०,०००	१०,७९,०००
रोडेशिया	२४,०००	२,५५,०००
जापान	२,३५,०००	१,२५,०००
रूस	१,८५,०००	१,२५,०००
काँगो (बेल्जियम)	२०,०००	१,२५,०००
जर्मनी (बृहत्तर)	३,८०,०००	५०,०००
आस्ट्रेलिया	२०,०००	२५,०००
इंगलैंड	३,८०,०००	५,०००
स्पेन	१२,०००	४,०००
बाकी युरोप	४०,०००	५४,०००
	२२,४६,०००	१८,४७,०००

देश	व्यय	उत्पादन
भारत	६०,०००	६,०००
	जस्ता	
युक्तराष्ट्र	६,३५,०००	५,७०,०००
जर्मनी	३,२०,०००	२,२५,०००
इंगलैंड	२,८५,०००	६०,०००
जापान	१,००,०००	६०,०००
रूस	९०,०००	८५,०००
फ्रांस	५५,०००	३५,०००
बेल्जियम	८५,०००	६५,०००
इताली	८०,०००	४०,०००
कनाडा	२५,०००	१,८०,०००
पोलंद	४०,०००	१,२०,०००

जस्ता केवल जवार (मेवाड़) और कश्मीरमें निकलता है, लेकिन देशकी पूरी सर्वे नहीं हुई है।

–(I. B. pp. 39-51)

२. **सीसा**–

सीसेकी कमी नहीं है। लड़ाईके समय इसपर नियंत्रण लगा था। उस समय चायके बक्सोंके भीतर से अलुमिनियमकी जगह इसका इस्तेमाल होने लगा था। सन् १९३९-४० ई० में ११,५०० टन सीसा बाहरसे आया था, किंतु सन् १९४२-४३ में वह २१,००० टन हो गया। कलकत्ताकी पूर्वी पिघालन कंपनी विहारमें काम कर रही थी, किंतु उसे धून मिलनेकी कठिनाई रही। भारतके भिन्न-भिन्न भागोंमें सीसेकी निधियोंका पता लगा है। दो तीन जगहोंमें काम भी हो रहा है। किंतु प्रतिशत सीसा संतोषजनक कहीं भी नहीं मिला। जावर (मेवाड़) में काम हो रहा है। जयपुर (राजस्थान) तथा बिहारमें भी संतोषजनक एक एक सीसा-निधान प्राप्त हुई है। (कनौरमें पूर्वणी तथा मीरुमें अच्छी सीसाकी निधियाँ हैं, किंतु यातायातके अभावमें ८-९ हजार फुटकी ऊँचाईपर अवस्थित इन निधियोंका उपयोग कठिन है।)

राजपूतानामें एक धातु केंद्र स्थापित करनेकी पेनलने सिफारिश की है। वहाँ पर ताँबे तथा जस्तेका भी पता लगा है। (जावरवाली खानकी धूनमें सीसा, ताँबा, जस्ता तथा चाँदी भी है)।

सीसा पाइप–रसायन कारखानों तथा घरोंमें सीसेके पाइपोंका उपयोग

होता है। पहिले सारे पाइप (नल) बाहरसे मंगाये जाते थे। सन् १९४०-४१ में आयात ११,७०० टन था, किंतु देशमें उत्पादन बढ़नेपर वह कम होते-होते सन् १९४२-४३ में ३,००० टन रह गया। कलकत्ता की डी० वल्डी कंपनी ३।८ इंचसे ६ इंच व्यासके पाइप बनाती है। युद्धके समय इस कंपनीने भारतकी सारी नियंत्रित माँगोंको पूरा किया।

३. **सीसा-चादर**—

गृह-निर्माण, चाय तथा रसायनके उद्योगमें इसकी आवश्यकता है। अभी तक देशमें ३ फुट चौड़ी ही चादरें बन सकी हैं, यद्यपि माँग ८ फीट तक चौड़ी चादरोंकी भी है। मुख्य निर्माणिकाएं हैं—

कलकत्ता : भारत रोलिंग मिल्स,
कमारहट्टी : वेनेस्ता सीमित,
बंबई : गुलामअली अब्दुल हुसेन।

४. **टिन**—

कलई तथा दूसरे कामोंमें टिनकी आवश्यकता होती है। भारतमें लाभके साथ काम करने योग्य कोई टिन खान नहीं मिली है, और हमें बर्मा तथा मलाया पर आश्रित रहना पड़ता है। जापानके युद्धमें प्रवेश करनेसे पहिले भारतमें प्रतिवर्ष २,५०० टन का खर्च था। नियंत्रणमें कड़ाई करके उसे कम करके सन् १९४३ में हजार टन कर दिया गया। बर्मासे धून मंगाकर एक शोधनी कोननगर (बंगाल) में काम करने लगी थी, किंतु बर्माके जापानके हाथमें चले जानेपर काम बंद हो गया।

५. **जस्ता**—

केवल जावर (मेवाड़) में जस्ता मिला है। यहाँसे धून कलकत्ता भेजी जाती है। अब वहीं शोधनीकी स्थापना करनेका प्रयत्न हो रहा है।
—(I. B. pp. 42-43)

६. **निकिल**—

भारतमें अभीतक यह धातु केवल नेपालमें प्राप्त है। शांति और युद्ध दोनोंमें इसका काफी उपयोग होता है।

७. **सुरमा**—

लाहुलमें सुरमेंकी खानका पता लगा है, (कनौरमें भी सुरमा मिला है), यातायातकी कठिनाईके कारण अभी तक वहाँ काम नहीं किया जा सका। लड़ाईके समय चित्रालसे धून मंगाकर बंबईकी स्टार धातु कंपनीने काम शुरू किया था। इस कंपनीके पास २२० टन प्रतिवर्षकी क्षमताका पिघालक था। सुरमेका उपयोग अधिकतर सफेद

धातु तथा प्रेसटाइपकी मिश्रधातु बनानेमें होता है। हमारे सैनिक कारखानोंको प्रतिवर्ष ७० टनकी आवश्यकता होती है। सुरमा-गंधकितका उपयोग दियासलाई-उद्योगमें होता है और सुरमा-ओषिदका रंग बनानेमें।

८. अलुमिनियम—

डाक्टर फ्रीडरिख वोलरने सौ बरस पहिले अलुमिनियम (या जर्मन सिल्वर-जर्मन चाँदी) धातुका पता लगाया था, किंतु उसका व्यापारिक उपयोग कितने ही वर्षों बाद होने लगा। सन् १९१४-१८ के महायुद्धके थोड़ाही पहिले तक अलुमिनियमका प्रयोग बहुत सीमित था। इसका उपयोग घरेलू बरतनों, वैज्ञानिक औजारों तथा कलाशिल्पके कार्योंमें होता था। पीछेकी प्रगतिका पता इसीसे लगता है, कि जहाँ प्रथम विश्व-युद्धसे पूर्व विश्वका वार्षिक उत्पादन ६३,८०० टन था, वहाँ सन् १९२९ में २,६५,०० हो गया और सन् १९३७ ई० में ४,९०,६०० टन तथा सन् १९४० में ७,६१,००० टन पर पहुँचा। कुछ साल पहिले तक इंजीनियर इसकी ओर संदेहकी दृष्टिसे देखते थे, किंतु अब उसका उपयोग वह भी बहुत करने लगे हैं। घरेलू जीवन तथा औद्योगिक कार्यमें तो इसका व्यापक उपयोग अनिवार्य हो गया है। अलुमिनियमके जनप्रिय होनेका कारण है उसका हल्कापन, शुद्धता, स्वास्थ्यानुकूलता, ताप-नेषकता तथा टूटने-फूटने मोर्चा खाने एवं जलनेका भय न होना। विमान, मोटरकार, बिजली, रसायन, धातु आदिके उद्योगोंमें इसका बहुत व्यापक उपयोग हो रहा है।

लोहेकी भांति अलुमिनियम भी बहुतायतसे पायी जानेवाली धातु है। इसमें साधारण मिट्टी तथा शेलकी मिलावट होती है। बिजलीके भट्ठोंके उपयोगसे ही इस धातुका सस्ता उत्पादन संभव हो सका है. इसलिये सस्ती बिजली अलुमिनियम-उत्पादनके लिये अत्यावश्यक है। सन् १९४० ई० में इस धातुके कुछ मुख्य उत्पादक देशोंका उत्पादन (मेट्रिक टन-१००० सेर) निम्न प्रकार था:—

देश	उपयोग	उत्पादन
जर्मनी	२,५०,०००	२,४०,०००
यु० रा० अ०	१,८०,०००	१,८७,०००
कनाडा	९,०००	८५,०००
फ्रांस	५०,०००	५०,०००
सोवियत रूस	६५,५००	६५,०००
स्विटजरलैंड	११,०००	३१,०००

देश	उपयोग	उत्पादन
इंगलैंड	१,३५,०००	२८,०००
इताली	३०,०००	३३,०००
जापान	८५,०००	३०,०००
	७,९६,०००	७,७८,०००

जितनी तेजीसे अलुमिनियमका उपयोग दुनियामें बढ़ा, उतना किसी और धातुका नहीं। स्टियरिक-अम्लके साथ अलुमिनियमको घिसकर पीतल-चूर्ण बनाया जाता है, जिसका रंगोंमें बहुत उपयोग होता है। चमक और सौंदर्यके साथ-साथ यह जल-रोधक भी होता है। मग्नेसियाके साथ अलुमिनियमको मिलाकर दुरालुमिनियम नामकी एक दूसरी हल्की धातु बनायी जाती है। हलकेपनके कारण इसका उपयोग यातायात-साधनोंमें बढ़ रहा है।

द्वितीय विश्वयुद्धने अलुमिनियम और उसकी मिश्र-धातुओंका उपयोग विशेषकर विमानमें बहुत बढ़ा दिया। कितने ही विमान ८०% अलुमिनियमके बने हैं। उनके ढांचे, पंख, पुच्छ, चर्मावरण, प्रोपेलर, इंजनके भाग आदि उसीके बनाये जाते हैं, ५ से १५ टन अलुमिनियम विमानमें लगते देखा गया है। यातायातके बड़े विमानोंमें अष्टमांश फौलाद-मिश्रोंका होता है और ७।८ अलुमिनियम-मिश्रोंका। संसारके अलुमिनियम-उत्पादनका चतुर्थांश स्वयं-चालित उद्योगोंमें खर्च होता है। रेलोंपर भी अलुमिनियम धावा बोलनेवाला है। यदि अलुमिनियमके ढांचे और शरीरके डब्बे बनाये जायें, तो इंजन दूने डब्बोंको खींच सकता है। बिजलीके बहनके लिये भी ताँबेके तारोंकी जगह एक तरहका अलुमिनियमका तार इस्तेमाल होने लगा है। अलुमिनियमके बरतनोंके बारेमें कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है, भारतमें अलुमिनियमका सबसे अधिक उपयोग बरतनोंके लिये होता है। द्वितीय विश्वयुद्धसे पहिले हमारे यहाँ ९०% अलुमिनियमका खर्च रसोईके बरतनोंके लिये था।

भारतमें अलुमिनियमका उद्योग—अलुमिनियम उद्योगका पहिला उपक्रम सन् १९१२ ई० में मद्रासमें हुआ था, जब कि भारतीय अलुमिनियम कंपनीने अपनी फैक्टरी आरंभ की। इस फैक्टरीका काम अलुमिनियमकी तीसरी अवस्थासे आरम्भ होता था, अर्थात् वह विदेशसे मंगाई अलुमिनियमकी चादरोंको दबाकर बरतनोंका रूप देती थी। आगे

छोटी-छोटी फैक्टरियाँ भारतके और भागोंमें बनीं । प्रथम विश्वयुद्धके अंत होते-होते कलकत्ता, बंबई और मद्रासमें आधुनिक ढंगकी फैक्टरियाँ स्थापित हो चुकी थीं, जिनमें सैनिकोंके लिये पानीकी बोतलें और दूसरी तरहके बरतन बनाये जाते थे ।

सन् १९१८ इ० में जीवनलाल तथा कंपनीने कार्यक्षेत्रमें पैर रखा । उसने कलकत्तामें अपनी मुख्य फैक्टरी स्थापित की, जिसकी शाखाएं भारतके ही कई केंद्रीय स्थानोंमें नहीं बल्कि बाहर रंगून और अदनमें भी खोली गयीं । प्रथम विश्वयुद्धकी समाप्तिके बाद अलुमिनियमका दाम गिर गया । भारतीय कंपनियोंके मुकाबिला न कर सकनेपर विदेशी कंपनियोंने भारतके बाजारपर धावा बोल दिया । इन्हीं विदेशी कंपनियोंमें एक कनाडियन कंपनीने जीवनलाल कंपनीको सन् १९२९ ई० में हजम कर लिया और उसका नया नाम पड़ा "जीवनलाल (१९२९) सीमित ।" इसी कंपनीने मद्रासकी पुरानी भारतीय अलुमिनियम कंपनीको भी खरीद लिया, जब कि सन् १९३९ ई० में उसका दिवाला निकला ।

दोनों विश्वयुद्धोंके बीचके समयमें अलुमिनियमके बरतनोंकी कई फैक्टरियाँ खुलीं और उन्होंने आधुनिक रूप लिया । भारतीय कंपनियोंने सिर्फ अपने देशके लिये ही बरतन और दूसरी चीजें नहीं बनायीं, बल्कि उनका माल बर्मा, मलाया, अदन, पलस्तीन, इराक, पूर्व-अफ्रिका और हिन्दचीन तक जाने लगा । द्वितीय विश्वयुद्धके आरंभके समय भारतमें आधुनिक साधनोंसे संपन्न बहुतसे कारखानें मौजूद थे, जिनमेंसे कुछ प्रतिवर्ष चार-पाँच हजार टन अलुमिनियम खर्च करते थे; उनमें एक करोड़से अधिक पूंजी लगी थी और हजारों यंत्रचतुर कमकर काम कर रहे थे । युद्धसे दो-तीन बरस पहिले भारतमें स्वयं अलुमिनियम बनानेके कामकी नींव भी पड़ गयी थी ।

(१) "जीवनलाल (१९२९) सीमित" के अतिरिक्त निम्न बड़ी कंपनियाँ इस उद्योगमें लगी थीं—

(२) कलकत्ता : अलुमिनियम निर्माण कंपनी,

(३) बंबई : वोल्बर हेम्प्टन कार्य कंपनी,

(४) बंबई : अनंत शिवाजी देसाई,

(५) बंबई : लल्लूभाई अमीचंद,

इन कंपनियोंमें जीवनलाल (१९२९) सीमित सबसे बड़ी थी । वह घरेलू बरतनोंको बनाती थी । इसका माल भारतसे बाहर बहुत दूर-दूर तक

जाता था। दूसरी और तीसरी कंपनियाँ चाय और रबरके बगीचोंके सामान, फैक्टरियोंकी चीजें, जूटमिलकी ढरकी तथा बिजली इंजीनियरी-रसायन आदिके सामान बनाती थीं।

अब देशमें कितने ही चादर-रोलिंग मिलें भी स्थापित हुईं, जो कि बाहरसे मंगाई अलुमिनियम सिल्लियोंको दबाकर चादरका रूप देतीं। ऐसी एक कंपनी बेलूरमें स्थापित हुई, जिसे कनाडियन विशेषज्ञोंने उतरी अमेरिकाकी आधुनिकतम मिलोंके यंत्रोंसे सम्पन्न किया था। अब इस कंपनीके चालक भारतीय इंजीनियर, रासायनिक और कमकर हैं। थोड़े ही समयमें यह कंपनी युद्धके बहुत तरहके सामान, जिनमें विमानके कामकी भी कितनी ही चीजें थीं, बनाने लगी।

द्वितीय विश्वयुद्धके कारण बाहरसे अलुमिनियमकी चादरों और सिल्लियोंका आना कम होते-होते सन् १९४० ई० में बिलकुल बंद हो गया। अब पुराने बरतनोंकी रद्दी कच्चा माल ही रह गयी। सरकार लड़ाईमें अलुमिनियमके महत्त्वको देखकर असैनिक कामोंके लिये बहुत थोड़ा अलुमिनियम देती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि रद्दी अलुमिनियम जमा करने में कंपनियोंका ध्यान अधिक लग गया और बहुत बड़े परिमाणमें उन्हें जमा किया जाने लगा। कंपनियोंने रद्दी मालको गलाने तथा शोधन करनेके लिये भट्ठे स्थापित किये, सिल्लियाँ तैयार कीं और छोटी रोलिंग मिलोंकी सहायतासे वह सिल्लियोंकी चादरें तैयार करने लगीं, जिनसे सैनिक और असैनिक कामकी बहुत-सी चीजें बनने लगीं। "जीवनलाल सीमित" ने इस दिशामें बहुत काम किया। लड़ाईके समय अलुमिनियम बनानेवाली कंपनियाँ जिन चीजोंको बनाती थीं, उनमें विमानोंके टैंक, तोपोंके पलीतेकी बैठकी, मद्य चुवानेवाली फैक्टरियोंका सामान, फलरस-उद्योग संबंधी चीजें, चाय-पत्ती जमा करनेवाली टोकरियाँ, सैनिकोंकी पानी-बोतलें और बरतन, विस्फोटकोंके लिये अलुमिनियम-चूर्ण, रेडियोके लिये नलियाँ, एवं अलुमिनियमके तार भी सम्मिलित थे।

मूल अलुमिनियमका उत्पादन—हाल तक भारत, इंगलैंड, कनाडा, जर्मनी, स्विटजरलैंड, और जापानसे अलुमिनियम बनानेका कच्चा माल बहुत भारी परिमाणमें मंगाता था।

अलुमिनियमके कच्चे माल हैं:—

(१) बक्साइट,
(२) क्योराइट,
(३) कास्टिक सोडा।

बक्साइट अलुमिनियमकी धून है, जो भारतके बहुत भागोंमें पाई जाती है–

बंबई में–बेलगाँव और तुगर पर्वत ।

मध्य प्रदेशमें–कटनी, विलासपुर मंडला सरगुजा और यशपुर।

बिहारमें–राँची ।

इनके अतिरिक्त कश्मीर और कोल्हापुरके राज्योंमें भी बक्साइट मौजूद है ।

और भी बहुत जगहोंमें अलुमिनियम-धूनका मिलना संभव है। बक्साइट मिट्टीकी तरहकी साधारण चट्टान है। लाभके साथ वही बक्साइट काममें लाया जा सकता है, जिसमें ५२% अलुमिनियम हो और ५% से अधिक सिलिका न हो। भारतका बक्साइट बहुत ऊँचे दर्जेका है। किसी-किसीमें तो ६२% अलुमिनियम और बहुत थोड़ी मात्रामें सिलिका होती है। चार टन बक्साइटसे २ टन अलुमिना निकलती है, जिससे एक टन अलुमिनियम प्राप्त होता है। भारतमें २५ करोड़ टन बक्साइट-निधि अब तक कूती गयी है। अलुमिनियमको पिघलाने और शोधन करनेमें १५,००० डिग्री सेंटीग्रेडकी गरमीकी आवश्यकता होती है। क्लोराइट अलुमिनियमको पृथक् करनेसें सहायक होता है। यह भारतमें नहीं मिलता, लेकिन इसका खर्च बहुत कम है। दूसरे देशोंके लिये भी यह दुर्लभ वस्तु है। इसकी अच्छी निधि दुनियामें सिर्फ एक जगह ग्रीनलैंडके पश्चिम इविगटूटमें है। कृत्रिम क्लोराइट भी तैयार किया गया है। एक टन अलुमिनियमके लिये १।५ टन कास्टिक सोडाकी आवश्यकता होती है। यह हमारे यहाँ सुलभ है। इसका कच्चा माल रेह उत्तरप्रदेश और दूसरी जगहोंमें मौजूद है। अलुमिनियम बनानेमें बिजलीकी शक्ति अत्यन्त आवश्यक है। वस्तुतः अलुमिनियम-उत्पादन बिजली-धातुकीय प्रक्रिया है। अलुमिनासे अलुमिनियम और आक्सीजनको अलग करनेके लिये बिजली जरूरी है। जिस देशके पास सस्ती और प्रचुर परिमाणमें बिजली है, वही अलुमिनियमका सस्ता उत्पादन कर सकता है। कनाडा अलुमिनियम-उत्पादनमें सन् १९४० ई० में तीसरा स्थान रखता था, किंतु वह दक्षिणी अमेरिकासे बक्साइट मंगाता है। बिजलीके सस्तेपनके कारण इतनी दूरसे मंगायी धूनका अलुमिनियम बनाकर भी वह नफेके साथ दूसरे देशोंको बेंचता है। भारतका अपरिमित पनबिजली-स्रोत जब इस्तेमाल होने लगेगा, तभी हम अपने बक्साइटका अधिक उपयोग कर सकेंगे।

एक टन अलुमिनियम बनानेके लिये साढ़े चारसे पाँच टनतक कोयला आवश्यक होता है। राँचीकी बक्साइट-निधि हमारी कोयला खानोंके बहुत नजदीक है।

सन् १९३७ ई० में अंग्रेज और कनाडियन विशेषज्ञोंने अलुमिनियम-उत्पादनके संबधमें भारतमें जाँच-पड़ताल की, जिसके परिणामस्वरूप "अलुमिनियम उत्पादन कंपनी" स्थापित हुई। इसी समय "भारत अलुमिनियम कारपोरेशन" नामकी दूसरी कंपनी भी श्री निर्मलकुमार जैनने स्थापित की। इन दोनों कंपनियोंने लड़ाई होनेसे पहिले ही कारखाना बनानेका काम आरंभ कर दिया था।

भारतीय अलुमिनियम कंपनीका लक्ष्य है—(१) राँचीके बक्साइटसे वहीं पर अलुमिना तैयार करना, (२) अल्वये (ट्रावनकोर) में वहाँकी सस्ती बिजली—जो कि ट्रावनकोरकी ऊँची पर्वतमाला में अवस्थित पल्लीवसल बिजली स्टेशनमें पैदा की जाती है—के सहारे अलुमिनाको अलुमिनियम सिल्लियोंमें परिणत करना, और (३) इन सिल्लियोंको बेलूर (कलकत्ता) की अपनी मिलमें ले जाकर नाना आकारमें परिणत करना। प्रतिसेर अलुमिनियमके लिये २० किलोवाट-घंटा बिजली और तीन पाव कार्बनकी जरूरत पड़ती है।

तीनों अवस्थाओंमेंसे दूसरी और तीसरीका काम भारतमें बहुत होता है। भारतमें अलुमिनासे अलुमिनियम बनने लगा है, और उससे नाना प्रकारकी सिल्लियाँ भी तैयार होने लगी हैं। भारतीय अलुमिनियम कम्पनीके अल्वये (ट्रावनकोर) कारखानेमें मार्च सन् १९४३ ई० में पहिले-पहिल अलुमिनासे अलुमिनियम बनाया गया। कच्चा माल दूर राँचीसे लाया गया, किंतु सस्ती बिजलीके कारण दूरीसे हर्ज नहीं। लोहा-फौलाद उद्योगकी स्थापनाके बाद यह दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्योग भारतमें स्थापित हुआ।

सन् १९४३ ई०में अलुपुरम (अल्वये, ट्रावनकोर) में प्रथम बार भारतीय अलुमिनियम कंपनीके अल्पीकरण कार्यमें अलुमिनियम बनाया गया। तबसे काम बहुत तेजीसे आगे बढ़ा। युद्धके समय अलुमिनियमका आयात बंद हो गया था, किंतु इस कारखानेने भारतकी सारी आवश्यकताएं अपेक्षाकृत सस्ते दाममें पूरी कीं। कंपनीने अपने अलुमिनियमसे बेलूर रोलिंग मिल्स तथा निर्माणिकासे चादरें ही नहीं बल्कि विमान-भाग, रेडियो तथा सैनिक टेलीफोनके सामान, रेंजफाइंडर, अस्पतालके सामान, दूरबीनके सामान, भोजनालयके बरतन आदि बनाये। ट्रावनकोर,

अल्पीकरण कार्य की क्षमता पाँच हजार टन प्रतिवर्ष है। बेलूरकी फैक्टरी में कंपनी दुरालियम भी बनाने जा रही थी।

अब तक अलुमिना बाहरसे मंगायी जाती थी, किंतु अब मुरी जंक्शन (राँचीसे २६ मील पुरुलिया-राँची लाइन) पर कारखाना तैयार हो रहा है, जहाँ देशके बक्साइटसे अलुमिना तैयार की जायेगी। पहिले अलुमिनाका उत्पादन १० हजार टन प्रति वर्ष होगा, जो आगे २० हजार फिर ४० हजार टन कर दिया जायेगा। इस कंपनीकी पूंजी तथा विशेषज्ञ कनाडा और इंगलैंडसे आये हैं।

(निर्मल बाबू द्वारा स्थापित) भारत अलुमिनियम कारपोरेशन (जैकेनगर, आसनसोल) को बहुत दिक्कतोंका सामना करना पड़ा, और कुछ समय तक गति बहुत मंद रही। इसका कारखाना आसनसोलमें है, जहाँ कोयलेकी भापसे बिजली तैयार की जाती है। अलुमिना कार्य, पिघालक तथा रोलिंग मिल तीनों ही यहाँ एक स्थान पर स्थापित की गई हैं। सन् १९४४ ई० के आरंभमें कनाडियन विशेषज्ञोंकी सहायतासे कार्य इतना तेजीसे बढ़ा, कि अप्रैल सन् १९४४ ई० में अलुमिनाका उत्पादन आरंभ हो गया। इसकी क्षमता प्रति वर्ष साढ़े तीन-चार हजार टन अलुमिना है। जुलाई सन् १९४४ ई० में पिघालकने भी काम शुरू कर दिया। सन् १९४५ ई० में ९०० टन अलुमिनियम सिल्लियाँ बनीं, जो सन् १९४७ ई० में २,००० टन पर पहुँचीं। सन् १९४५ ई० के आरंभमें ही रोलिंग मिल भी काम करने लगी, लेकिन उत्पादन अभी सीमित है। ट्रावनकोरमें अलुमिनियम तार बनानेकी भी फैक्टरी कायम हुई जो अंदाजन ४,००० हजार टन अलुमिनियम-डंडा प्रति वर्ष काममें लायेगी। जुलाई सन् १९४७ ई० से यह कारखाना उत्पादन शुरू करनेवाला था। दूसरी कंपनी अलुमिनियम रंगका कारखाना बना रही थी। लड़ाईसे पहिले जो मिलें चायके बक्सोंके लिये सीसेकी चादरें रोल करती थीं, अब वह उसी कामके लिये अलुमिनियमकी चादरें रोल कर रही हैं। इनका खर्च प्रतिवर्ष ७०० टन है। एक आधुनिक ढंगकी अलुमिनियम ढलाई भी स्थापित होने जा रही है।

पिछले कुछ वर्षोंका अलुमिनियमके आयात तथा उपभोगका व्योरा टनोंमें निम्न प्रकार है:–

सन्	आयात	(भारतीय उत्पादन) ट्रावनकोर	आसनसोल	उपभोग
१९३५	२,६००			२,६००
१९३६	३,२००			३,२००
१९३७	३,२००			३,२००
१९३८	३,३००			३,३००
१९३९	२,९००			२,९००
१९४०	..			..
१९४१	..			..
१९४२	२०			२०
१९४३	१६	१,२७२		१,२८८
१९४४	१,३६०	१,६०९	२००	३,१६९
१९४५	४,५७२	१,३४४	९००	६,८१६
१९४६	१०,३००	१,८००	१,२००	१३,३००

आजकलके उपयोगका अंदाजा २०,००० टन किया गया है, जिसका भिन्न-भिन्न कामोंमें निम्न प्रकार विनियोग होगा—

	टन	प्रतिशत
बरतन	१५,०००	७५.००
चाय बक्सका चदरा	७००	३.५०
रंगके लिये चूर्ण	५००	२.५०
ढलाई	८००	४.००
इंजीनियरी	२,०००	१०,००
डंडा आदि	१,०००	५.००
	२००००	१००.००

भविष्य—युद्धसे पूर्व जर्मनी और उत्तरी अमेरिकामें सबसे अधिक अलुमिनियम पैदा किया जाता था। सन् १९३५ ई० के २,५०,००० टनमें जर्मनी का भाग ७२ प्रतिशत और अमेरिकाका २१ प्रतिशत था। युद्धके समय सभी लड़नेवाले देशोंमें अलुमिनियमका उत्पादन बढ़ा। आजकल युद्धारंभ के चौगुने से अधिक अलुमिनियम पैदा हो रहा है।

कनाडामें अलुमिनियमका दाम एक रुपया सेर है, जब कि भारतमें लड़ाईके समयमें रद्दी आठ आनेसे बढ़ते पाँच रुपये सेर तक पहुँच गयी, आजकल भी साढ़े तीन रुपये सेरसे अधिक है। (राँची और पलामूके

बक्साइट तथा दामोदर उपत्यकाकी सस्ती बिजली जब काम आने लगेगी, तो यहाँ भी उसके सस्ता होनेकी उम्मीद है।)

–(I. B. pp. 52-65)

९. क्रोमाइड–

इसे क्रोम-धून या क्रोम-लौह-धून भी कहते हैं। यह युद्धके लिये आधारिक धातु है। अच्छी धूनमें ५० प्रतिशत द्रव्य होता है। इसकी निश्चित गुरुता ४ तथा ४.६ है, और पिघालविंदु १५४५ सें० से १७३० सें० तक। लोहा, निकिल और कोवाल्टके साथ इसकी मिश्रधातुएं बनायी जाती हैं। विश्वमें क्रोम-उत्पादन (टनमें) भिन्न-भिन्न देशोंका प्रतिशत निम्न प्रकार था–

	१९१३	१९२९	१९३७
विश्व	१,७१,०००	६,३५,०००	१३,५०,०००
दक्षिण रोडेसिया	३६.८%	४१.९%	२०.४%
नव कलदोनिया	१६.८ "	८.१ "	३.६ "
रूस	८.८ "	८.४ "	..
तुर्की	८.२ "	२.५ ,,	४.५ "
भारत	३.५ "	७.९ "	४.७ "
द० अफ्रिका	..	१०.१ "	१२.५ "
क्यूबा	..	७०.८ "	५ "
युगोस्लाविया	..	६.८ "	४.४ "
ग्रीस	४.१ ,,	३.८ "	४.० "
जापान	०.६ ,,	१.४ "	०.१ "
यु० रा० अ०	..	..	०.१ "

निधान–बिहारके सिंहभूम जिलेमें चाईबासाके पश्चिम कोथान जमींदारीमें क्रोमाइट सन् १९०७ ई० में मिला। वहाँसे मोटर, ट्रक या बैलगाड़ीपर लादकर धून कलकत्ता भेजी जाती है। यहाँ सन् १९१३ ई० मे नियमपूर्वक खुदाई शुरू हुई। सन् १९१३ ई० तथा १९३८ ई० के बीचका उत्पादन ९१,२९० टन था। इसके अतिरिक्त जनवा, रंजराकोचा, करईकेला तथा सरईकेलामें भी इसके निधान हैं।

बम्बई–प्रदेशके रत्नगिरि जिलेके कंकौली तथा बगदामें क्रोमाइटका पता सन् १९१० ई० में लगा। धूनका परिमाण ६७००० टन लगाया गया है। सन् १९३७ ई० से खुदाई शुरू हुई। उस समय ५०० टन धून

निकाली गयी। कंकौलीकी धूनमें क्रोमाइट ३१.६ से ३६.९ प्रतिशत और बगदामें ३३.४ से ३९. प्रतिशत द्रव्य है।

मद्रासके सलेम जिलेके खडियापर्वतका क्रोमाइट निम्न श्रेणीका (३५.६ और ४४.५ प्रतिशत) है। आंध्रमें विजयवाड़ाके पास कोंडापल्लीमें अच्छी श्रेणी (४५.५ प्रतिशत) का क्रोमाइट प्राप्त हुआ है, और निधान ५०,००० टन है।

मैसूर राज्यके हसन, कदूर तथा चितलद्रुग जिलोंमें क्रोमाइट मिला है, जिसकी खुदाई सन् १९०७ ई० मे शुरू हुई। यहाँकी धूनमें द्रव्य ४५ से ५१ प्रतिशत तक है। "मैसूर क्रोमाइट सीमित" की धूनसे माल तैयार करता है।

इसके अतिरिक्त कश्मीर तथा अण्डमनमें भी इस धातुका पता लगा है। भारतमें उच्च श्रेणीके क्रोमाइटका निधान एकसे दो लाख टनतक का है। कुछ निधानोंकी पंचवार्षिक उपज (टन) निम्न प्रकार है—

पञ्चवार्षिक	मैसूर	बिहार
१९२४-२८	२३,८३३	२,१०४
१९२९-३३	१३,२८७	५,१४१
१९३४-३८	१९,४०४	७,६६६
१९३९ मात्र	३०,७०८	८,४७६

सन् १९३३ और १९३८ ई० में समाप्त होनेवाले दोनों पंचवार्षिकियोंकी उपज और मूल्य क्रमशः १६८८० टन=५,५५,२०८ रुपया और २५,८१४ टन=८,१३,७७८ रुपया था। भारतमें इसका उपयोग केवल क्रोमाइट ईंट बनानेमें होता है, बाकी धून इंगलैंड, नार्वे, जर्मनी, बेल्जियम, फ्रांस तथा यु० रा० अ० में निर्यात किया जाता है। युद्धके समय जब उपयुक्त सामग्री आनी बंद हो गयी, तो कुछ भारतीय कंपनियोंने डाइक्रोमेट क्षार बनाना शुरू किया। हमारे यहाँ क्रोमाइटका उपयोग क्रोम-फौलाद (मिश्र धातु) बनानेमें होना शुरू हुआ है।

१०. मग्नेसाइट—

बनावटके अनुसार मग्नेसाइटकी चार जातियाँ हैं—

(१) स्फाटिक ब्र्युनेराइट, सिरियासे
(२) स्फाटिक मग्नेसाइट क्विवेक तथा वाशिंगटनसे
(३) घन मग्नेसाइट, ग्रीस, भारत तथा कलीफोर्नियासे
(४) हाइड्रो मग्नेसाइट, ब्रिटिश कोलंबियासे

भारतका मग्नेसाइट कड़ा, सफेद, और भंगुर है, जो देखनेमें बिना पालिशकी चीनी मिट्टी-सा मालूम पड़ता है। इसके दाने अति सूक्ष्म होते हैं, इसलिये इसकी स्फटिकाकृति दिखाई नहीं पड़ती।

–(I. B. pp. 86-89)

निधान–भारतमें सबसे महत्त्वपूर्ण निधान तमिलनाडमें सलेम नगर तथा शिवराय पर्वतके बीचमें अवस्थित खड़ियापहाड़ी है। इस पहाड़ीके चारों ओरका मैदान स्फटिकीय चट्टानका है, जिसमें मग्नेसाइट प्रायः साढ़े चार मीलके क्षेत्रमें मिलता है। यह निधान असीम-सा है, जिसमें सबसे अच्छा मैदानसे १४० फुट ऊँची टेकरीपर है। मग्नेसाइटके भीतर बीच-बीचमें क्रोमाइटकी पतली शिरायें भी मिलती हैं।

मैसूर राज्यके मैसूर तथा हसन जिलोंके दोदाकन्धा तथा दोदाकटूरमें भी मग्नेसाइटका बड़ा निधान है। यहाँ कई लाख टन मग्नेसाइट है।

गुजरातके ईदर जिलेके देवमोरी स्थानके पास साबुन-पाषाण तथा अज्वेस्तोके साथ ब्रुनेराइट जातिका मग्नेसाइट है।

राजस्थानमें डोंगरपुरके पश्चिमी भागमें काफी बड़ी राशि मग्नेसाइटकी मिली है। भारतमें कई और जगहोंमें विशेषकर मद्रास-प्रदेशमें इस धातुकी निधियाँ है।

सन् १९४४ ई० में ४,७८,१९४ रुपयेका मग्नेसाइट निकाला गया था।

मग्नेसाइटका उपयोग अधिकतर मग्नेसिया (म० ओषिद) के रूप में होता है। कास्टिक म० अग्निरोधक विभाजन, कृत्रिम पाषाण, खपड़ैल आदिके बनानेमें काम आता है। इसकी दृढ़ताके कारण जर्मनोंने तोपोंके चबूतरे इसीके सीमेंटके बनाये थे। कास्टिक मग्नेसिया १००० सें० के तापमानमें तैयार होती है, और इसमें २ या ३ प्रतिशत कार्बन-द्विओषिद रहता है। १५०० सें० के तापमानमें "मृतदग्ध" मग्नेसिया तैयार होती है, जिसमें १ या २ प्रतिशत ही कार्बन-द्विओषिद रह जाता है। यह मुख्यतः फौलादके भट्ठोंके अस्तरके रूपमें इस्तेमाल होती है। एक टन फौलादमें तीन सेर इसका खर्च है। चीनीके बरतनोंको बनानेमें भी थोड़ी मात्रामें इसका खर्च है। ईंटके रूपमें मग्नेसियाको बाहर भेजा जाता है। उसे सूखी जगहमें रखना पड़ता है, नहीं तो खराब हो जाती है।

मग्नेसिया पैदा करनेमें अस्ट्रिया, हंगरी और ग्रीस–यु० रा० अ० भी–

हमारे प्रतिद्वन्दी हैं। आस्ट्रिया-हंगरीकी मुर्ज उपत्यकामें वेइचके पास बहुत महत्त्वपूर्ण मग्नेसाइट खानें हैं। प्रथम विश्व-युद्धसे पहिले यु० रा० अ० का खर्च डेढ़ लाख टन था, जिसमेंसे ९६% आस्ट्रियासे आता था। लड़ाईमें उसका आना रुक गया, फिर क्लीफोर्नियाकी खानोंकी उपज बढ़ाई गई, जो सन् १९१७ ई० में १,०५,००० टन तक पहुँच गयी। सन् १९१६ ई० में वाशिंगटनकी खानें भी काम करने लगीं। सोवियत रूसकी खानें दक्षिण ऊरालमें और चीनकी मंचूरियामें खानें हैं। भारतकी उपज (टन) निम्न प्रकार थी—

सन्	उत्पादन	निर्यात
१९३९	३३,५६८	१२,१३२
१९४०	४३,२९७	१६,५६७
१९४१	४०,७१०	१४,२२८
१९४२	४७,७८०	११,६१६
१९४३	४९,०७०	१२,५१३.
१९४४	४१,९३६	११,२१०

कुछ दूसरे देशोंकी उपज (टन) निम्न प्रकार थी:—

सन्	भारत	रूस	अस्ट्रिया	ग्रीस	यु० रा० अ०
१९१४	१,६८०	..	१,१०,९६०	१,३४,५०४	१०,०८३
१९१९	..	..	..	..	१,४४,६४३
१९३२	१४,८०७	३,३४,४५४	१,३४,४०९	४४,६६९	३४,८९२
१९३५	१७,२५७	४,७५,०००	३,००,३१२	९३,५६३	१,६०७११
१९३८	२६,०२२	..	४,१५,०००	१,६८,२४	३३०,२२५

भारत, ग्रीस तथा आस्ट्रियाके मग्नेसाइटमें भिन्न-भिन्न तत्त्वोंकी मात्रा प्रतिशत निम्न प्रकार है:—

तत्त्व	भारत		ग्रीस		आस्ट्रिया
	कास्टिक	मृतदग्ध	कास्टिक	मृतदग्ध	मृतदग्ध
मग्नेसिया	९६.१०	९३.१२	९१.००	९०.६२	८९.२
चूना	१.०३	१.०४	२.५	४.१	२.५
लौहिकओषिद— तथा अलुमिना	०.४४	१.२२	२.८५	१.५७	८.४
सिलिका	२.५४	४.३८	२.५५	३.००	३.८
क्षय	२.३१	०.३४	१.१०	०.७१	..

इस प्रकार हमारी धून अधिक अच्छी है। द्विरालुमिनियम हल्की तथा बहुत महत्त्वपूर्ण मिश्रित धातु अबरक-अलुमिनियमसे बनायी जाती है।
—(I. B. pp. 89-93)

११. अबरक—

अलंकरण तथा भस्म—औषध के रूप में अवरक का उपयोग हमारे देशमें बहुत पुराने कालसे चला आया है। आधुनिक कालमें बिजली—उद्योगमें इसका बहुत खर्च है। युद्ध-सामग्रीमें उपयुक्त होनेसे यह सैनिक महत्त्वकी चीज है। इसके बिना भारी शक्तिके विमान-इंजन नहीं बनाये जा सकते। ढाई लाख वोल्टकी भारी विद्युत्-शक्तिका वहन बिना अबरक-गर्भित तारोंके नहीं हो सकता। बिना अबरकके बेतार-तार, रेडियो-संचार, विमानिक इंजीनियरी तथा मोटर यातायात संभव नहीं। अबरककी विशेषता यह है, कि दूसरे खनिजोंकी भांति इसे बिना गलाये खनिज रूपमें इस्तेमाल किया जाता है।

विश्वके अबरककी इजारादारी भारतको है। यहाँ ढाई-तीन करोड़-का माल प्रति वर्ष निकलता है। यद्धसे पूर्व ७०-७५ प्रतिशत अबरक भारतमें निकलता था, जिसमें ५५ प्रतिशत तो केवल बिहारमें। बिहारमें हजारीबाग जिलेमें कोदरमा, ढोराखोला, मानोडिह, धाव, गांवा और तिसरी अबरकके स्थान हैं। बिहार और राजपूतानामें लाल अबरक मिलता है, मद्रासमें हरित। फ्लोगोपाइट अवरक, जो कनाडामें भी मिलता है, ट्रावनकोर तथा मद्रासकी जमीदारी मदुगुलमें प्राप्य है।

राजस्थानमें मेवाड़, टोंक, जयपुर, शाहपुरा तथा अजमेर मेरवाड़ामें अबरककी खानें हैं। सन् १९३६ ई० से यहाँकी उपज काफी बढ़ी है। युद्धकालसे भिलवाड़ा तथा काँकरोलीमें अबरक फैक्टरियाँ भी बन गयीं हैं। अबरकके फाड़ने तथा विभाग करनेका काम बिहारके केंद्रों कोदरमा, झुमरीतलैया, डोमचाँच तथा गिरिडीहमें होता है। पहिले राजपूतानेका सारा अबरक इस कामके लिये बिहारकी फैक्टरियोंमें भेजा जाता था। बिहारकी स्त्रियाँ हसियासे परतोंको उकाचती हैं, वह इंचके हजारवें भाग तकको बड़ी सफाईके साथ अलग कर देती हैं। यु० रा० और दूसरे देशोंमें उकाचनेके लिये आधुनिक यांत्रिक साधन बरते जाते हैं, किंतु तो भी वहाँ वाले बिहारकी स्त्रियोंका मुकाबिला नहीं कर सकते। बल्कि बहुतसे दूसरे देश अपना अबरक केवल उकाचनेके लिये भारत भेजते हैं। अबरक उकाचनेका मिकेनाइट (पुनःनिर्मित अबरक) के लिये बहुत उपयोग है।

मद्रासमें अबरक-कक्षा निल्लोर (आन्ध्र) जिले के तटवर्ती भागमें ५०० वर्गमीलके क्षेत्रफलमें है, जहाँ गुडुर, रापुर, पोडलाकुर और कावेली उसके मुख्य केंद्र हैं। तमिलनाडके कोयम्बुतूर तथा सलेम जिलोंमें भी कुछ अबरककी खानें हैं। मद्रासके हरित अबरककी उतनी माँग नहीं है, जितनी कि बिहारके लाल अबरककी। ट्रावनकोर, नीलगिरि (तमिलनाड) संभलपुर (उड़ीसा) में भी अबरक पाया जाता है। (ताँबा, सीसा, सुरमा आदि दूसरी कई धातुओंकी भांति अबरक भी हिमाचल-प्रदेशके कनौर इलाकेमें है, किंतु यातायातके अभावसे उसको निकाला नहीं जा सकता। पिछड़े इलाकोंको आर्थिक और सांस्कृतिक तौरसे आगे बढ़ाना सरकारका प्रथम कर्त्तव्य है। केवल केंद्रसे पैसा ले जाकर वहाँ खर्च करनेके साथ साथ यदि उस खर्चका कुछ भाग वहाँ खनिज या मेवोंसे निकल आये तो अच्छा है, यह समझने पर यातायात ठीक करके कनौरकी खनिज संपत्तिको धरतीके भीतरसे निकालनेका प्रबन्ध करना ही होगा।) अबरकके उकाचने तथा श्रेणी-विभाजनके लिये बिहारमें १४० कारखानें हैं। उनमें तीन बड़े हैं, जिनमेंसे प्रत्येकमें १५०० कमकर काम करते हैं। अच्छे अबरकमें तीन गुण चाहिये—दाग न हो, चीरा न हो और अधिकसे अधिक लंबा-चौड़ा हो। खोदे हुए पत्थरमें ६ प्रतिशत अबरक निकलता है।

बिहारकी अबरक खानोंमें काम करनेवाले मजूरोंकी संख्या निम्न प्रकार रही हैः—

सन्	मजूर
१९३७	२३,४७३
१९३८	२३,३८५
१९३९	२३,८९६
१९४२	४३,९५५
१९४३	४६,४३१

खान और फैक्टरी मिलाकर बिहारमें अबरकके ७० हजार कमकर काम करते हैं।

सन् १९३४-३८ ई० में देशोंमें वार्षिक अबरक उत्पादन कितने (टन) निम्न प्रकार था—

भारत	१,२०५ डला, ४,४९० उकाचा, ३,१५४ रद्दी (चूरा)
यु० रा० अ०	४८९ बनावटी परत, १६,६०३ रद्दी

ब्राजील	२४७	संवारा अबरक
द० अफ्रिका	८२९	रद्दी
मदगास्कर	४९५	संवारा अबरक
कनाडा	९३	कटाछंटा, २३ उकाचा, ५५४ रद्दी
अर्जेन्तीना	२०५	संवारा
आस्ट्रेलिया	६७	संवारा
नार्वे	८२	संवारा
कोरिया	८२	रद्दी

भारतमें बहुत कम अबरकका इस्तेमाल होता है, जो शायद २५० टनसे अधिक नहीं होगा। भारतमें कुछ वर्षोंकी अबरककी उपज और मूल्य निम्न प्रकार है (१४ सेर=१क्वार्टर, ८० क्वार्टर=१ टन)—

सन्	उत्पादन (क्वार्टर)	(रुपया)	निर्यात (क्वार्टर)	(रुपया)
१९२९	५३,२३१	२६,५९,७५९	११,१४,६४०	१,०३,०८,०००
१९३२	३२,७१३	१४,३५,४०१	४०,४६६	३१,५२,०००
१९३७	१,०४,६५८	३९,५०,२८१	२,९३,९७१	१,४८,४०,०००
१९३८	१,२३,१६९	४२,०४,६३३	१,६१६४४	१,१४,१२,०००
१९३९	१,३५,५४५	,,	२,१८,९२६	१,७६,८६,०००
१९४१	२,०२,३३७	,,	२,२६,७८६	२,८६,९९,०००
१९४२	२,०३,७५०	,,	१,७२,९१०	२,९१,३१,०००
१९४४	१,४९,४३१	,,	७६,७३४	२,९४,४३,०००

मिकेनाइट—अबरकके टुकड़ोंको कृत्रिम रूपसे जोड़कर भिन्न-भिन्न आकारमें परिणत किया जाता है, जिसे मिकेनाइट कहते हैं। १००० सें० में अबरक नरम हो जाता है, और उसे भिन्न-भिन्न आकृतियोंमें ढाला जा सकता है। अबरकके कुछ और उपयोगोंके बारेमें हम पहिले कह आये हैं।

"जेनेरेटरमें जितनी अधिक शक्तिशाली बिजलीका तापमान इस्तेमाल किया जायेगा, जैसे-जैसे रेडियो तथा दूरदर्शन और विकसित होते जायेंगे, जितनी ही मोटरकारों तथा विमानोंकी संख्या अधिक बढ़ेगी और जितने ही अधिक एलेक्ट्रनपर नियंत्रण होता जायेगा, उतना ही अधिक अबरकका महत्त्व बढ़ेगा।"

कनाडा, रूस, ब्रांजील, पूर्व-अफ्रिका और आस्ट्रेलियामें अबरकका

उत्पादन बढ़ रहा है, जर्मनीने कृत्रिम अबरक भी बनाया है, किंतु भारत यदि सजग रहा, तो उसकी अबरककी इजारेदाराको खतरा नहीं है।

–(I. B. pp. 95-104)

१२. मगानीज–

दुनियामें सबसे अधिक मंगानीजका उत्पादन सोवियत रूसमें होता है, उसके बाद दूसरा नंबर भारतका है। हमारे यहाँ बीसवीं शताब्दीके आरंभसे मंगानीजका उत्पादन तेजीसे बढ़ा और सन् १९०७ ई०में वह ९,०२,२९१ टनतक पहुँच गया। सन् १९३९-४३ ई० के बीचमें प्रथम श्रेणीकी धूनका औसत वार्षिक उत्पादन आठ लाख टन था, जिसका मूल्य दो करोड़ रुपया था। प्रायः सारी ही धून बाहर भेज दी जाती है। इंगलेंड, जर्मनी, फ्रांस तथा यु० रा० अ० हमारे प्रधान ग्राहक हैं।

फौलादको कड़ा करनेके लिये मंगानीजकी आवश्यकता पड़ती है। इसके लिये ६ से १२ प्रतिशत मंगानीज फौलादमें मिलायी जाती है। मंगानीज-फौलाद-मिश्रधातुमें ११ से १४ प्रतिशत मंगानीज मिलायी जाती है। क्लोरिन, ब्रोमिन, सूखी बैटरी, निष्क्रमीकरण औषधियों, कांच-निर्माण, रंग-निर्माण, चीनी-बरतन तथा ईंटके चमकाने, ताँबे तथा चाँदीकी धूनोंके शोधन आदिमें मंगानीजका उपयोग होता है। सूखी बैटरी बनानेमें अमेरिका प्रतिवर्ष २९,००० टन मंगानीज खर्च करता है।

द्रव्यकी मात्राके अनुसार मंगानीज धूनकी तीन श्रेणियाँ हैं–

प्रथम श्रेणी	५० प्रतिशत से ऊपर मंगानीज
द्वितीय श्रेणी	४८ से ५० प्रतिशत
तृतीय श्रेणी	४५ से ४८ प्रतिशत

भारतमें कुछ वर्षोंका मंगानीज-उत्पादन तथा निर्यात निम्न प्रकार है–

		निर्यात	
सन्	उत्पादन (टन)	टन	रुपया
१९३९	८,४४,६६३	४,५५,९८२	१,०७,२४,७८७
१९४०	८,६९,७०४	७,१८,७३४	१,८२,७४,४८५
१९४१	७,९१,१४१	५,१०,१७४	१,४७,४३,५८४
१९४२	७,५७,२६९	७,२४,३९२	२,४६,९३,९८३
१९४३	५,९५,३६६	५,७७,३८९	१,९०,६२,२१४
१९४४	३,७०,३९८	५,४९,२००	१,८४,६७७,९५८
१९४५		१,५६,६९५	५३,३४,७१७

निधान-मंगानीजकी खानें मुख्यतः निम्न स्थानोंमें हैं-

मद्रासमें-संदूर, बलारी, कड़ापा, कर्नूल, और विशाखपटनमके जिले,

बंबई-पंचमहाल जिला,

बिहार-सिंहभूम,

मैसूरमें-चित्तलदुग, शिमोगा, तमकूर,

उड़ीसा-बोनाई तथा क्योंझर।

भारतका आधासे अधिक निधान मध्यप्रदेशमें है। यहाँकी मंगानीज दुनियाकी सर्वश्रेष्ठ मंगानीज है। बहुत स्थानोंमें मंगानीजकी धून अलुमिनियमसे ढंकी रहती है। खान-खुदाई बिलकुल आसान और सस्ती है।

निम्नलिखित कंपनियाँ मंगानीजका काम करती हैं:-

बंबई	(१) शिवराजपुर सिंडीकेट,
मध्यप्रदेश	(२) भारतीय मंगानीज कंपनी,
	(३) मंगानीज धून कंपनी,
	(४) ताता लौह-फौलाद कंपनी,
	(५) वंशीलाल अबीरचंद खान सेंडीकेट,
मद्रास	(६) विजयनगरमें खान कंपनी,
	(७) साधारण संदूर खान कंपनी,
मैसूर	(८) युक्त फौलाद कंपनी,
बिहार	(९) बर्ड और कंपनी।

मंगानीज उद्योगमें २५ हजार मजूर काम करते हैं, जिनमें आधी स्त्रियाँ हैं। अधिकतर खानें गहरी नहीं हैं, जो हैं वह भी ३५० फुटसे अधिक गहरी नहीं हैं।

रूस सबसे अधिक मंगानीज उत्पादन करने वाला देश है। उसकी सबसे बड़ी खानें गुर्जी (काकेशस) में हैं, केंद्रीय ऊराल और निकोपोलमें भी मंगानीज निकलती है। ब्राजीलकी बहिया, मिनास, गेरएस, और मत्तोब्रोसो रियासतों में मंगानीज निकलती है। भारतमें फौलादके उद्योगके विकासके साथ-साथ मंगानीजका खर्च बढ़ता जा रहा है। ताता और दूसरी फौलाद कंपनियोंने सन् १९३५ ई० में ६७,४४२ टन मंगानीज खर्च की।

-(I. B. pp. 104-10)

१३. नमक-

१९४८ की प्रथम, द्वितीय और तृतीय तिमाहियोंमें नमक उत्पादन

भारतमें ६०,५०,००० मन, ३०,२१,८०,०० मन और ९८,२८,००० मन हुआ था।

–(Land S. p. 6)

भारतके भिन्न-भिन्न भागोमें जनसंख्याके अनुसार नमककी आवश्यकता निम्न प्रकार है —

प्रदेश	जनसंख्या	प्रतिशत	टन	प्रतिशत
उत्तर भारत (पंजाब)	४५३०८१३४	११.६५	२०१३२१	८.८३
उ० प्रदेश और मध्य भारत	८२६३८७८०	२१.२४	३८३८६९	१६.८३
बंगाल, बिहार, आसाम, उड़ीसा,	१२,११५,९५,६८८	३१.२७	३,०६,१६३	३०.९६
मद्रास और द० भारत	६,४८,३१,३२३	१६.६७	५,७८,८४९	२५.३८
बंबई और काठियावाड़	३,७३,८८,१४४	९.६०	२,१४,७९५	९.४२
मध्यप्रदेश, हैदराबाद	३,७२,०२,११८	९.५७	१.९५,६५०	८.५८
	३८,८९,६४,१८७	१००.००	२२,८०,७१७	१००.००

सबसे अधिक नमकका खर्च पूर्वी-भारत अर्थात् बंगाल, बिहार, आसाम और उड़ीसामें है, जिसकी पूर्ति आयात द्वारा की जाती है। नमकके उत्पादनकी क्षमता हमारे देशमें निम्न प्रकार है–

	वार्षिक टन	प्रतिशत
उत्तर भारत (पंजाब)	१,८८,२२४	८.३४
राजस्थान	३,२३,७८३	१४.३४
खराघोड़ा	१,२२,६७४	५.४४
बंबई	३,९०,११६	१७.२८
मद्रास	४,९८,८३६	२२.१०
(सिंध)	१,५६,०००	६.११
ट्रावनकोर	५४,०००	३.३९
काठियावाड़	२,५०,०००	११.०८
गोआ	१०,०००	०.४४
आयात (विदेशी)	२,३१,८२२	१०.२७
दूसरे स्रोतोंसे	३१,९२६	१.४१
	२२,५७,३८१	१००.००

इस मात्रामें उत्पादनसे प्रतिव्यक्ति साढ़े छः सेर वार्षिक नमक मिल सकेगा। नमकका उत्पादन (हजार टन) और आयातका पता निम्न आँकड़ोंसे लगेगा—

सन्	उत्पादन	आयात	रुपया
१९३९-४०	१६,०६.९	३१४.२	६१,९९,११८
१९४०-४१	१५,९६	२०७.२	४७,७१,७०६
१९४१-४२	१९,२९	२६१.६	९,८,०२,२०९
१९४२-४३	१८,४२	१३३.५	८८,७२,२५७
१९४३-४४	१९,५६	१६३.६	१,५४,१३,०६५

नमक—उत्पादनके कारखाने देशमें बहुतसे प्रांतोंमें फैले हुए हैं। पंजाबके सेंधा-नमककी खेवड़ा आदि खानें पाकिस्तानमें चली गयीं। मण्डी (हिमाचल प्रदेश) के नमककी उपज सन् १९३५-३६ ई० में ४,२२६ टन थी।

राजस्थानकी झील साँभर, डिडवाना और पंचभद्रा हमारे नमकके बहुत बड़े स्रोत हैं। फलोदी, लूनी, कचोर, भरतपुर, बीकानेर और जैसलमेरमें भी छोटे-छोटे नमकके कारखाने हैं। साँभर झील जयपुर और जोधपुर जिलोंके बीचमें अवस्थित है। यह पूर्व-दक्षिणसे पश्चिमोत्तर २२ मील लम्बी और उत्तरसे दक्षिण तक २ से ५ मीलतक चौड़ी है, जो वर्षाके समय ९० वर्गमीलकी बन जाती है और डेढ़से तीन फुट मोटा नमकीन पानी इसे ढांक देता है। नमक बनानेका क्षेत्र यहाँ १७१ एकड़ है। वर्षाके अंतमें झीलके पानीकी घनता और उस सालकी वर्षाकी मात्रापर नमकके उत्पादनका परिमाण निर्भर करता है। हालके वर्षोंमें यहाँसे २,५७,००० से २,९६,००० टन तक नमक निकलता रहा है। साँभरमें नमकके साथ अच्छी मात्रामें (६.२३ प्रतिशत) सोडियम-गंधकेत और ३.६९ प्रतिशत कार्बोनेट भी मौजूद है। सन् १९३५-३६ ई० में राजस्थान क्षेत्रमें निम्न मात्रामें नमक पैदा हुआ—

साँभर	२,६८,९३८ टन
डिडवाना	७,७२२ टन
पंचभद्रा	३१,७०५ टन

राजस्थानके नमकका सबसे अधिक खर्च उत्तर-प्रदेशमें होता है।

कच्छकी रनमें खराघोड़ा और कुदाके नमकके कारखानें अवस्थित हैं। रनकच्छ एक समतल बालू की नमकीन भूमि है, जो मुश्किलसे कहीं समुद्र-

तलसे ऊँची है। यहाँके नमकीन पानीमें मगनेसियम क्लोरिद भी बहुत है। सन् १९४३-४४ ई० में खराघोड़ामें १,४४,००० टन और कुदामें २५,७६९ टन नमक बनाया गया। खराघोड़ाका नमक मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, मध्यभारत और बंबई प्रदेशमें जाता है।

बंबई प्रदेशके नमकके कारखाने बंबईसे ३५ मीलके भीतर ही अवस्थित हैं। इनमें दिसम्बरसे मई महीने तक समुद्र-जलसे नमक बनाया जाता है। सन् १९४३-४४ ई० में यहाँ ३,७८,२०१ टन नमक बनाया गया। यहाँके नमकका उपयोग बंबई प्रदेश, हैदराबाद, मध्यप्रदेश, मलाबार, मैसूर, बंगाल, दक्षिण केरल, मद्रास और मध्यभारतमें होता है। काठियावाड़ और कच्छके नमकके कारखाने हैं–

मीठापुर (बड़ौदा), लवणपुर (मोरवी), बेडीबंदर (जामनगर), कुदा (ध्रांगधरा), पोरबंदर, घराई, बेरावल (जूनागढ़), जाफराबाद (जंजीरा), भावनगर, कुंडला (कच्छ)। इन कारखानोंकी उत्पादन-क्षमता निम्न प्रकार है–

मीठापुर	१,२५,००० टन	पोरबंदर	३५,००० टन
लवणपुर	२३,००० ,,	जूनागढ़	५,००० ,,
बेड़ीबंदर	३५,००० ,,	जाफराबाद	८,००० ,,
कुदा	२६,००० ,,	भावनगर	१०,००० टन
कच्छ	३३,००० ,,	योग	३,०००,००० ,,

ट्रावनकोर का समुद्र डेढ़ सौ मील लम्बा है, जहाँ चौदह नमकके कारखाने प्रति वर्ष ५४,००० टन नमक पैदा करनेकी क्षमता रखते हैं।

मद्रास– समुद्री जलसे ६५ फैक्टरियाँ नमक बनानेका काम करती हैं। यहाँके नमकमें मग्नेसियम बहुत है, और यह बंबई जैसा शुद्ध नहीं है। सन् १९४१-४२ ई० में यहाँ ४,९८,८३६ टन नमकका उत्पादन हुआ था, जिसमें ८५ प्रतिशत घरमें खर्च हो गया।

बंगाल–इस प्रान्त में आवश्यकतासे बहुत ही कम नमक पैदा होता है। गंगा आदि नदियोंका मीठा जल तथा वर्षाकी अधिकताके कारण यहाँ समुद्र-तटका जल उतना नमकीन नहीं होता, इसलिये यहाँ नमक बहुत कम बनाया जाता है। जहाँ दोनों बंगालका खर्च ५,५०,००० टन था, वहाँ यहाँके सात कारखानोंने केवल ४०४ टन नमक बनाया।

नमकका उपयोग आदमियोंके खानेके अतिरिक्त और कितने ही कामोंमें भी होता है। पशुओंको भी नमक दिया जाता है। कीड़ोंको

मारनेके लिये नमक खेतोंमें भी डाला जाता है । मछली या माँसके सुखाने या पैक करनेमें भी नमकका उपयोग होता है । काँच, चमड़ा, साबुन, तेल-शोधन, रंग, कपड़ा मिल, बरतन आदिमें नमककी जरूरत होती है । सबसे अधिक इसका उपयोग सोडा भस्म, कास्टिक सोडा, सोडियम गंधकेत आदि रसायनोंके लिये होता है । युक्तराष्ट्र अमेरिकाके ९३,००,००० टन नमकमेंसे ५३,२०,००० टन उक्त रासायनोंके बनानेमें खर्च होता है । द्वितीय विश्वयुद्धके आरंभसे भारतमें भी रासायनिक उद्योगके लिये नमकका खर्च बढ़ चला है । देशके उद्योगीकरणसे यह खर्च और भी बढ़ेगा ।

(– I. B. pp. 111-14)

१४. शोरा (पोटासियम नित्रेत)–

स्वाभाविक शोरा बारूदके लिये पहिले बहुत उपयुक्त होता था, किंतु कृत्रिम शोरा (नित्रेत)ने उसे दबा दिया । सन् १९३५ ई० में विश्वके सारे शोरेका ७५% कृत्रिम था और चिली की स्वाभाविक शोरेकी खानोंका उत्पादन अब ८ प्रतिशत है । भारतमें अब भी गाँवकी मिट्टीसे काफी मात्रामें शोरा पैदा किया जाता है । पोटासियम-नित्रेत (शोरा) पंजाब, उत्तर-प्रदेश, बिहार, राजस्थान और मद्रासके गावोंमें पैदा किया जाता है । पशु और प्राणियोंके मलमूत्र तथा वनस्पतियोंके कारण यह तत्त्व गाँवकी आबादी की भूमिमें जमा होता रहता है । भारतकी जलवायुके कारण "नोनछी" मिट्टी यहीं होती है । मिट्टीको ऊपरसे छिलकर पानीमें घोल दिया जाता है । निथर जानेपर पानीको उबालकर उसमेंसे नमक निकाल लिया जाता है । बाकी तरल पदार्थ ठंडा होनेपर शोरेकी कलमके रूपमें जम जाता है । तब उसे स्थानीय शोधनीमें ले जाकर फिर शुद्ध किया जाता है, तो भी उसमें अशुद्धि रह ही जाती है ।

सन् १८६० ई० तक शोरेकी प्रायः सारी उपज भारतमें होती थी और उसकी सब जगह माँग थी । जब दक्षिण-अमेरिका और जर्मनीकी नित्रेत खानें निकल आयीं, तो भारतीय शोरा-उद्योगको बहुत हानि पहुँची । जहाँ सन् १८६० ई० में भारतने ३५,००० टन शोरा बाहर भेजा था, वहाँ सन् १९१३-१४ ई० में वह १३,४०० टन रह गया । प्रथम विश्वयुद्धके समय इस उद्योगमें फिर कुछ जान आयी और १९१६-१७ में २९,१०० टन शोरा बाहर भेजा गया, जिसमें २६,३७० टन इंगलैंड गया । लड़ाईके बाद फिर रोजगार मंदा पड़ा और आजकल निर्यात शायद ११,००० टन वार्षिकसे अधिक नहीं

है। शोरेका अधिकतर उपयोग बारूद और आतिशबाजीमें होता है। कुछ शोरा खादके लिये मारिशस, लंका, इंगलैंड, और यू० ग० अ० भी जाता है। भारतमें केवल चायके बगीचोंमें प्रतिवर्ष ६०० टनका खर्च होता है। कांच बनानेवालोंको भी कुछ शोरेकी आवश्यकता होती है। बंगाल केमिकल और फार्मेस्युटिकल कंपनी सन् १९३४ ई० तक बड़े पैमानेपर पोटासियम नित्रेत बनाती थी।

—(I. B. p. 115)

१५. मोनाजाइट (थोरियम)—

परमाणुबम और परमाणु-शक्तिके लिये उपयोगी खनिज होनेसे उरानियम और थोरियमका महत्त्व आज जगत् प्रसिद्ध है। मोनाजाइट थोरियम धातुकी धून है। बहुत समय तक गैस-बत्तीके मेंटलके लिये थोरियम-नित्रेतकी बड़ी माँग थी और इसके लिये मोनाजाइट-बालुका इस्तेमाल की जाती थी। बिजलीके प्रचारसे गैस-बती दब गयी, जिससे मोनाजाइटसे थोरियम निकालनेका व्यवसाय काफी कम हो गया। तो भी विशेष प्रकारके दृष्टि-सहायक काँचों तथा आर्क-लैम्पमें इसका थोड़ा बहुत उपयोग होता था। परमाणु-बम बनानेमें जबसे थोरियम उरानियमका स्थान लेनेवाला मालूम हुआ, तबसे थोरियमकी माँग फिर बढ़ गयी। (दुनियाकी दोनों प्रतिद्वन्द्वी महाशक्तियोंके पास परमाणुबम हो जानेसे अब परमाणुबमके लिये इसके उपयोगकी अधिक आशा नहीं रही), किंतु परमाणु-शक्तिके लिये इसका उपयोग बहुत महत्त्व रखता है। भारतके पास मोनाजाइटका बहुत बड़ा निधान है।

निधान—बाहरी देशोंमें ब्राजीलके पास सबसे अधिक मोनोजाइट है। सन् १९०९ ई०में ट्रावनकोरके तटपर मोनाजाइटका पहिले-पहल पता लगा। यह वहाँके बालूमें ०.८ से ०.२ मिलीमिटर व्यास वाले पाण्डुवर्णके दानोंके रूपमें निकलता है। इस बालूमें ८.८ से १०.८ प्रतिशत थोरिया मौजूद है। दुनियामें मोनाजाइटके जितने निधान ज्ञात हैं, उनमें सबसे बड़ा निधान ट्रावनकोरका है। यह मोनाजाइट बालू काले रंगके इल्मेनाइट बालूसे भी संबंध रखता है। इल्मेनाइट-मोनाजाइट बालू ट्रावनकोरमें क्विलनसे कन्याकुमारी तकके समुद्रतटपर सौ मीलतक फैला हुआ है। इस बालूमें ७५ प्रतिशत इल्मेनाइट ४ से ६ प्रतिशत मोनाजाइट और इनके अतिरिक्त जिरकोन आदि कुछ और दुर्लभ तत्त्व मिले हुए हैं। विश्वमें थोरियमका यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्रोत है। द्वितीय विश्वयुद्धके समय इसे युक्तराष्ट्र ४२

डालर प्रति टन बालूके हिसाबसे १,३०० से ३,००० टन प्रति वर्ष मंगाता रहा। भारतीय धूनका विक्रय इस आधारपर होता है, कि इसमें ७.५ से ८ प्रतिशत थोरियम-ओषिद और ६० प्रतिशत दूसरे दुर्लभ धातु हैं।

ट्रावनकोर-तट पर मोनाजाइटवाले पाँच स्थान हैं–

(१) कन्याकुमारी-लिपारुम,
(२) मुट्टोम-पुड्डूर,
(३) कोविलम
(४) अंजेंगो- वर्कलाई और
(५) निन्दकराई (कीलनसे उत्तर)

ट्रावनकोरके अतिरिक्त तिनेवली जिला और वाल्टेयरमें भी मोनाजाइटका पता लगा है। बंगलोर जिलेके पेग्मटाइट पाषाणमें एक प्रकारकी स्फटिकीय चीज मिली है, जिसमें २.२५ सैकड़ा थोरियम है। बिहारके गया जिलेमें भी मोनाजाइट है।

१६. इल्मेनाइट–

यह तितानियम धातुकी साधारण काले रंगकी धून है। इसमें ५२ प्रतिशत तितानियम-ओषिद होता है। ट्रावनकोरके अतिरिक्त बिहारकी अबरक वाली चट्टानोंमें भी कभी-कभी यह मिलता है। देगाना (राजस्थान) में बोलफ्रमके साथ इल्मेनाइट मिलता है और किशनगढ़ (राजस्थान) में कल्काइट स्फटिकके साथ, किंतु सबसे अधिक मात्रामें इल्मेनाइट ट्रावनकोरके काले बालुमें है। यह बहुत भारी मात्रामें अमेरिका और दूसरे देशोंमें भेजा जाता रहा है। तितानियम फौलादकी एक मिश्रित धातु बनानेमें काम आता है। लड़ाईमें धुएंकी दीवार पैदा करनेवाले रसायनमें भी इसकी आवश्यकता होती है।

भारतके बँटवारेका निश्चय हो जानेपर ट्रावनकोरके दीवान राम स्वामी उसे एक सर्वतंत्र-स्वतंत्र देश घोषित करनेकी लंबी चौड़ी बातें कर रहे थे। उन्होंने इस काममें सहायता पानेकी आशासे अंग्रेजोंको यह प्रलोभन दिया था, कि "बिना ब्रिटिश सरकारकी निश्चित सहमतिके ट्रावनकोर सरकार भविष्यमें मोनाजाइटको बाहर नहीं भेजेगी।" ट्रावनकोरका उत्पादन (टन), जो कि सारा निर्यातके लिये होता था, निम्न प्रकार था:–

सन्	मोनाजाइट	ईल्मेनाइट
१९२९	१८०	२३,६७०
१९३६	२,६२८	१,४०,४७७

सन्	मोनोजाइट	ईल्मेनाइट
१९३७	३,०८१	१,८१,०८७
१९३८	५,२२१	२,५२,२२०
१९३९	४,३२०	२,३७,८३५
१९४०	४,१४६	२,६३,१५२
१९४१	३,४७५	१,२१,०४०
१९४२	१,३००	४९,१८८
१९४३	१,९०८	३७७८९
१९४४	२०१६	१,००,७९८

–(I. B. pp. 110-18)

१७. बेरियम–

परमाणु-विदारणमें बेरियमका उपयोग होता है। रोंतगेन-किरण (एक्सरे) के औजारों तथा नेओन किरणोंके लिये भी इसका उपयोग है। बेरिलका भारी निधान अजमेर-मेरवाड़ामें मिला है।

–(Statesman Cal. 24. 9. 49)

५ शक्ति

बिजली–

१९ वीं सदीके अंत तक उद्योग और यातायातकी चालक शक्ति कोयलेकी भापपर निर्भर करती थी। इस शताब्दीके अंतमें तापको बिजली-के रूपमें परिणत करनेकी मशीनें तैयार हो गयीं। पहिले बिजली भापसे तैयार की जाती थी, किंतु थोड़े समयमें जलप्रपातसे बिजली पैदा करनेका काम आरंभ हो गया। भारतमें अच्छी जातिके कोकवाले कोयलेसे बिजली तैयार की जाती है, जो कि हमारे यहाँ बहुत कम है। इसलिये उसकी जगह पनबिजलीका उपयोग आवश्यक है।

हमारे यहाँ जलपातज और तापज दोनों प्रकारकी बिजली-शक्तिकी क्षमता (किलोवाट) निम्न प्रकार है–

प्रदेश	कंपनी	स्टेशन (प्रकार)	क्षमता	(किलोवाट)
बंबई	ताता	भीरा (पानीबिजली)	८७,५००	१,०५,०००
	आंध्र-उपत्यका	भीवापुरी (पा०)	४८,०००	६४,०००

प्रदेश	कंपनी	स्टेशन (प्रकार)	क्षमता	(किलोवाट)
	ताता	खपोली (पा०)	४८,०००	४८,०००
	जी. आई. पी. रे.	चोला (तापबिजली)	४०,०००	५०,०००
	अहमदाबाद बिजली–			
	बिजली सप्लाई	(ता०)	३७,५००	८०,०००
	ताता केमिकल, ओखा	(ता०)	१२,०००	२०,०००
मद्रास	मद्रास सरकार,	पैकारा (पा०)	३९,६५०	५०,०००
	,,	मेट्टूर (पा०)	४२,०००	४२,०००
	,,	पापनाशम् (पा०)	१७,५००	२८,०००
	,,	मोयार (पा०)		२०,०००
	मद्रास बिजली–			
	सप्लाई	मद्रास (ता०)	६१,५००	६१,५००
मैसूर	मैसूर सरकार	शिवसमुद्रम् (पा०)	४५,०००	४५,०००
	,,	शिमसा (पा०)	१६,०००	१६,०००
	,,	जोगप्रपात (पा०)	८८,०००	१,२०,०००
हैदराबाद	हैदराबाद राज	हैदराबाद (ता०)	१९,०००	२०,०००
केरल	द० केरल सरकार	पल्लीवसल (पा०)	२१,०००	
	मध्यप्रदेश नागपुर बिजली–			
	सप्लाई	नागपुर (ता०)	५,७००	१५,०००
बंगाल	भारतीय लोहाफौलाद,	बर्नपुर (ता०)	२६,०००	४६,०००
	कलकत्ता बिजली–			
	सप्लाई	कलकत्ता (ता०)	२,९५,०००	६,००,०००
	दिशेरगढ़	दिशेरगढ़ (ता०)	१६,०००	१६,०००
	गौरीपुर बिजली–			
	सप्लाई	गौरीपुर (ता०)	२८,०००	२८,०००
	एसोसियेटेड बिजली–			
	बिजली सप्लाई	शिवपुर (ता०)	७,५००	७,५००
बिहार	पटना बिजली	पटना (ता०)	६,०००	१२,०००
	ताता	जमशेदपुर (ता०)	१,०७,२००	१,३५,०००
उत्तरप्रदेश	उ. प्र. सरकार	गंगानहर (ता०)	१८,९००	२३,९००
	कानपुर बिजली–			
	सप्लाई	,, (ता०)	६४,५००	७५,०००

प्रदेश	कंपनी	स्टेशन (प्रकार)	क्षमता	(किलोवाट)
दिल्ली	दिल्ली बिजली	दिल्ली (ता०)	१९,०००	१९,०००
पंजाब	पंजाब सरकार	योगीन्द्रनगर (पा०)	४८,०००	७२,०००

—(I. L. p. 212)

१. भारतकी पन-बिजली शक्ति—

भारतकी पनबिजली शक्तिके स्रोतोंके परिमापसे मालूम हुआ है, कि हमारे यहाँ १,८६,८०,००० किलोवाट (१ किलोवाट १.३४ अश्व-शक्ति)पनबिजली शक्ति है। लेकिन अभी उसमें १.५ प्रतिशत ही काममें लायी जा रही है। पानी या तापसे जो बिजली पैदा की जा रही है, उसमें ४२ प्रतिशत केवल बंबई और कलकत्ता शहर ले लेते हैं। यदि कानपुर और अहमदाबादको भी ले लिया जाय, तो आधेसे अधिक बिजली इन्ही शहरोंमें खर्च हो जाती है।

पनबिजली तैयार करनेवाली कंपनियोंमें तानाका नाम सबसे पहिले आता है। इसके भीरा, भीवपुरी और खपोलीके तीनों स्टेशनोंमें २,४६,००० अश्वशक्ति बिजली तैयार करनेकी क्षमता है। यह बिजली बंबई, ठाणा, कल्याण और बृहत्तर पूनामें खर्च होती है। कुछ साल पहिले इसकी एक इकाईका मूल्य .३५ आना पड़ता था। खपोली पावर-हाउसके लिये लोणावलाके पास भोरघाट पहाड़ीके ऊपर लोणावला, वलवान, शिरावताकी तीन झीलोंमें वर्षाका पानी जमा किया जाता है, जिसे नहरके द्वारा खंडालामें पहुँचाया जाता है और फिर फौलादके पाइप मे १७२५ फुट नीचे खपोलीमें गिराके बिजली तैयार की जाती है। खोपोलीकी योजना सन् १९१५ ई० में आरंभ की गयी। यह स्टेशन ४८,००० किलोवाट या ६४,३०० अश्वशक्ति बिजली देता है।

आंध्रा—उपत्यकाकी बिजलीके लिये आंध्रा नदी पर १९० फुट ऊँचा बाँध बाँधकर कृत्रिम जलनिधि तैयार की गयी है। जलनिधिसे पहाड़में ८,७०० फुट लंबी सुरंग खोद कर घाटके एक छोरपर ले जा ४,६०० फुट लंबे फौलादके मोटे नलों द्वारा भीवपुरी पनबिजली स्टेशनमें गिराया जाता है और उसके द्वारा संचालित टरबाइन बिजली बनाती है। इस बिजलीको ५७ मील लंबे तारों द्वारा बंबई पहुँचाया जाता है। ताता शक्ति कंपनीका आरंभ सन् १९२७ ई० में हुआ था। इस पनबिजली स्टेशनकी क्षमता ८७,५०० किलोवाट या १,१७,००० अश्व-शक्ति है।

—(I. B. pp. 132-36)

२. पनबिजलीकी बृहत् योजना–

हमारी अमित पनबिजली शक्तिको उत्पन्न करनेके लिये अंग्रेजी सरकार ने ४० करोड़ रुपयेके व्ययमे ७० लाख किलोवाट शक्ति उत्पन्न करनेकी योजना बनायी थी। हमारे यहाँ भिन्न-भिन्न ऋतुओंमें नदियोंका जल-प्रवाह कमवेशी होता रहता है। उदाहरणार्थ केन नदी बाढ़के समय ३ लाख से अधिक क्युसेक पानी प्रवाहित करती है, जब कि जूनमें वह घटकर केवल ५ क्युसेक रह जाती है। इसी प्रकार हिमालयमें जमुनाकी शाखा टौंस जहाँ किसी-किसी समय ४ लाख क्युसेक पानी बहाती है, वहाँ ३० मार्च सन् १९२१ ई० को उसमें केवल ४५ क्युसेक पानी वह रहा था। इस कमीको पनबिजली और ताप बिजली दोनोंके जोड़के द्वारा पूरा किया जा सकता है। पिछली सरकारने युद्धोपरान्तके लिये योजनायें बनायी थीं, उनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं :–

(१) **पश्चिम भारत शक्ति प्रतान**– सौराष्ट्रमें ओखासे लेकर दक्षिणमें गोआ तक उपरोक्त भीरा, भीवापुरी, और खोपोलीके पनबिजली स्टेशनोंके अतिरिक्त ओखा, अहमदाबाद-बिजली-सप्लाई (ताप-बिजली), जी० आई० पी० अहमदाबाद (ताप-बिजली) और चोलामें पहिले हीसे बिजली-उत्पादन-स्टेशन तैयार हैं। इन्हें भावी बिजली स्टेशनों–कोयना उपत्यका (अन्ततः ३ लाख किलोवाटकी क्षमता) और कोल्हापुर (४८ हजार किलोवाट) की बिजली योजनाओंसे मिला देनेपर ७ लाख बिजली प्राप्त होगी।

(२) **दक्षिण भारत शक्ति प्रतान**– इस भू-भागमें पहिले हीसे शिवसमुद्रम् (जोग-प्रपात, मैसूर) पापनाशम्, और पायकारा (मद्रासके) पनबिजली स्टेशन मौजूद हैं। त्रावनकोरके पल्लीवसल पनबिजली स्टेशनसे मद्रास और मैसूरकी बिजली-रेखाओंको जोड़ा जा सकता है। मोयार जैसी एकाध और योजनाओंको इनमें मिलाकर छः लाख किलोवाट बिजली तैयार की जा सकती है। आँध्रमें विजयवाड़ा और विशाखपटनम्में ताप-बिजली या जयपुर-राज्यमें मचकन्द नदी (एकलाख किलोवाट) की पनबिजली से मद्रासके और भागोंको मिलाकर शक्ति-प्रतानको उड़ीसाकी सीमा तक पहुंचाया जा सकता है। मुकुरती बाँध सन् १९३८ ई० में बना। इसमें १४ करोड़ घनफुट जलके लिये स्थान है। मेत्तूर पनबिजली योजनाकी विशालता इसीसे मालूम है, कि इसका १७६ फुट ऊँचा बाँध दुनियाके सबसे बड़े बाँधोंमें है और इसमें ९,३५,००,००,००० घनफुट जल रहता

है। यह मुख्यतः सिंचाईके लिये है, लेकिन इससे बिजली भी तैयार की जाती है। त्रिचिनापल्ली, तंजोर, दक्षिण-अर्काट, उत्तर-अर्काट, चित्तूर और चिंगलपेट जिलोंको इससे बिजली पहुंचाई जाती है। एरोदमें मेत्तूर-रेखाको पैकाराके रेखा-जालसे मिला दिया गया है।

(३) **उत्तर भारत शक्ति-प्रतान**—(इस बिजली-जालका बहुत-सा हिस्सा पश्चिमी पाकिस्तानमें है।) भारतमें केवल झेलम नदी योजना (कश्मीर) और मंडी योजना (पूर्व पंजाब और हिमाचल-प्रदेश) पड़ती है। इनके अतिरिक्त सतलजके भकरा बाँधपर काम हो रहा है, जिससे सिंचाईके अतिरिक्त २ लाख किलोवाट बिजली तैयार होगी। जमुनाकी दो पहाड़ी शाखाओं टौंस और गिरिकी ७५,००० किलोवाट पनबिजलीकी योजना बनी है, जिसमें उत्तर-प्रदेश और हिमाचल प्रदेश दोनोंका सहयोग है। ३०,००० किलोवाटकी चनाबकी योजना भी भारतमें पड़ेगी। इस प्रकार झेलमसे टौंसतक एक पनबिजली जाल ५ लाख किलोवाट शक्तिका तैयार हो जायेगा।

(४) **उत्तर-प्रदेश शक्ति-प्रतान**—उत्तर-प्रदेशके पश्चिमी भागमें गंगा-नहरकी पनबिजली-श्रृंखला पहिलेसे काम कर रही है। यह वहाँके चौदह जिलोंको बिजली देती है। सन् १९३८ ई०में इसका शक्ति-परिमाण २७,९०० किलोवाट था। ९३ कसबों और नगरोंको प्रकाश और पंखेके अतिरिक्त यह छोटे-छोटे उद्योग-धन्धोंको भी संचालित करती है, और साथ ही मुरादाबाद बिजनोर, बदायूं, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, मेरठ, बुलंदशहर और अलीगढ़के जिलोंमें १६५० सिंचाईके नल-कूपों (ट्यूब-वेल)को भी चलाती है। गंगा-नहरके छः प्रपातोंकी पनबिजलीको चंदौसीकी-ताप बिजलीसे जोड़ा जा चुका है। टौंस तथा गिरिपर भी काम हो रहा है। कालसी (देहरादून) में एक बड़ा पनबिजली स्टेशन बनाया जाने वाला है। कालसीकी बिजली गंगा नहरकी बिजलीसे मिल जायेगी। मिर्जापुर जिलेकी दूधी तहसीलके पिपरिया गाँवके पास सोनकी शाखा रिहन्द नदीका बाँध तथा पनबिजली स्टेशन बन रहा है, जिससे दो लाख किलोवाट बिजली पैदा होगी। गंगाकी शाखा नायार, शारदा-नहरसू (बनबासा) और बेतवा तथा केन नदियोंकी पनबिजलियोंको भी तैयार किया जा सकता है। उत्तर-प्रदेशकी यह सब योजनाएं चंदौसी, हरदुवागंज और कानपुरकी तापबिजलीसे मिलकर ४ से ५ लाख किलोवाट शक्ति पैदा करेंगी। इनके द्वारा देहरादूनसे मिर्जापुर तक बिजली पहुँचाई जा सकती है।

(५) **पूर्व भारत शक्ति-प्रतान**—इसका मुख्य भाग बिहार और बंगालमें होगा, जहाँ कोयलेकी खानोंसे तापबिजली और दामोदर-उपत्यकाकी पनबिजलीको संबद्ध किया जा सकता है। इसे बढ़ाते हुए तिस्ता-नदी-योजना (६०,००० किलोवाट) से मिलाते आसाममें खासी पर्वतकी उम्क्यर्गी नदी (१०,००० किलोवाट), और शिलाँगसे दक्षिण-पूर्व उमंगी नदी (२०,००० किलोवाट) तक जोड़ा जा सकता है। इस सारे प्रतानमें ७ लाख किलोवाट शक्ति पैदा होगी। आसाममें पनबिजलीके स्रोत बहुत विशाल हैं। इस प्रकार पूर्व-भारत शक्ति-प्रतान, रोहतास (बिहारमें) कलकत्ता तथा दार्जिलिंग होते आसामके पूर्वी सीमान्त तक रहे।

इनके अतिरिक्त बिचले भागमें भी बिजलीका जाल फैलाया जा सकता है।

(६) **मध्यप्रदेश और मध्यभारत संनिवद्ध शृंखला**—इस भू-भागमें नदियोंसे उत्पन्न बिजली तैयार करनेमें सबसे बड़ी दिक्कत यही है, कि उनमें सालके अधिक भागमें पानी बहुत कम रह जाता है, यद्यपि वर्षामें वह प्रचुर परिमाणमें होता है। उनके उद्गम स्थान भी बहुत ऊँचे नहीं हैं, ऊपरी ऊँचाइयोंपर जलनिधि-निर्माणके लिये काफी समतल भूमि नहीं है। तो भी छिन्दवाड़ाके पर्वतों और नर्मदा नदीसे ८०,००० किलोवाट बिजली तैयार की जा सकती है। केन नदीपर गंगावसे २० मील ऊपरकी विंध्या-अधित्यकापर विशाल जलनिधि बनायी जा सकती है, जिससे साढ़े तीन लाख किलोवाट बिजली उत्तर-प्रदेश, मध्य-प्रदेश, मध्य-भारत और विंध्य-प्रदेशके लिये तैयार की जा सकती है। किंतु इस अधित्यकामें बहुत-सी जोती हुई भूमि है—पन्ना, बिजावर, तथा हाटा तहसील (दमोह जिला) के बहुतसे गाँव पड़ते हैं, जिन्हें पानीमें डूबना पड़ेगा। इनके अतिरिक्त रीवाँके सिगरौली परगनेमें सोन नदीपर डेढ़ लाख किलोवाट शक्तिका स्टेशन तैयार किया जा सकता है। इन योजनाओंके कार्यरूपमें परिणत होनेपर रीवाँसे नागपुर तक बिजलीका जाल फैल जायेगा।

(७) **हैदराबाद संनिवद्ध शृंखला**—हैदराबादकी कई पनबिजली योजनाएं सिंचाईके साथ जुड़ी हैं: (क) तुंगभद्रा (३८,००० किलोवाट लगातार), (ख) देवनूर योजना (१७,८०० किलोवाट लगातार), (ग) निजाम-सागर योजना (२,८०० किलोवाट), (घ) कद्दाम योजना (४,००० किलोवाट), (ङ) पूर्णा योजना (४,००० किलोवाट),

(च) मनेर योजना (७०० किलोवाट), (छ) पेनगंगा योजना (३,५०० किलोवाट), (ज) गोदावरी योजना (६५,००० किलोवाट), (झ) निम्न कृष्णा योजना (५०,००० किलोवाट) और ऊपरी कृष्णा योजना (३०,००० किलोवाट)। यह सारी योजनाएं एक दूसरेसे मिलाई जा सकती हैं। सबकी शक्ति दो लाख किलोवाट लगातार होगी।

–(I. L., pp. 213-19; I. B. pp. 133-42)

उस वक्तकी भारत-सरकारको विश्वास था, कि युद्धके बादके कुछ ही वर्षोंमें ७० लाख किलोवाटकी योजना कार्यरूपमें परिणत की जा सकती है।

–(I. L. p. xiv)

अंदाज लगाया गया था कि सन् १९४६ ई० के आरंभमें सरकारी तथा सार्वजनिक उपयोग संस्थाओं द्वारा उत्पादित बिजली १३,२८,८०० किलोवाट थी, उसमें सन् १९५० ई० के अंत तक ९,८०,००० किलोवाट और भकरा, कोसी तथा दामोदरकी योजनाओंके बाद १९५५ में १५ लाखकी वृद्धि हो जायेगी।

२. पेट्रोल--

भारतका पेट्रोल-उत्पादन अत्यल्प है। दुनियाके दूसरे देशोंका पेट्रोल उत्पादन (१९३९) निम्न प्रकार है:–

देश	१००० मेट्रिक टन	प्रतिशत
यु० रा० अ०	१,७१,०५३	६०.४
सोवियत संघ (*)	२९,५३० *	१०.४ (*)
वेनेजुला	३०,५३४	१०.७
ईरान	१०,३६९	३.६
इन्डोनेसिया	७,९४९	२.८
रुमानिया	६,२२८	२.२
मेक्सिको	५,७९४	२.०
इराक	४,११६	१.५
कोलंबिया	३,०६८	१.१
ट्रिनीडाड	२,७११	१.०

* चतुर्थ पंचवार्षिक योजनाकी समाप्तिपर सन् १९५० ई०में सोवियतका पेट्रोल-उत्पादन ३,५४,००० हजार टन है, जो अमेरिकासे भी दूना है।

देश	१००० मेट्रिक टन	प्रतिशत
अर्जेन्तीना	२,६५१	०.९
पेरु	१,७९९	०.६
बर्मा	१,०८७	०.४
बहरेन द्वीप	१,०३३	०.४
दूसरे	..	२.०
	२७७९२२	

दिग्बोई (भारत) का उत्पादन सन् १९३८-ई० में केवल ६६० लाख गैलन, तथा अटक (पश्चिम-पाकिस्तान) का २११ लाख गैलन था। दिग्बोई और अटकमें एक-एक पेट्रोल-शोधनी है। सन् १९३९ ई० में दिग्बोईमें २८९८१ आदमी काम करते थे और अटकमें ८०३। अविभाजित भारतमें सन् १९३०-४० ई०में पेट्रोल-उत्पादन निम्न प्रकार था—

नाम	गैलन
विमानिक पेट्रोल	७३,१३७
मोटर पेट्रोल	२,०९,९२,८२८
किरासिन (अतिशुद्ध)	१,१८,३४,४९०
किरासिन (कमशुद्ध)	१,६३,४१,९८६

पेट्रोल और दूसरे तेल-ईंधनकी कमीको हमें आयातसे पूरा करना पड़ता है, जिसके लिये विदेशी विनियमकी आवश्यकता होती है। हमारा दो सालोंका आयात निम्न प्रकार रहा है—

		१९३९-४० ई०	१९४४-४५ ई०
ईंधन तैल	गैलन	१४,६४,४८,३३३	२७,२१६५०९०
(डिजल तैल आदि)	रुपया	२,१४,७२,६०२	७,२०,८०,५५१
किरासिन	गैलन	१९,३४,२३,५८०	९,६२,२३,०९५
	रुपया	७,५१,१२,८४२	६,४१,४२,०९६
मोटर पेट्रोल आदि	गैलन	६८,६२,४३,३५३	५९,०२,२९,१०९३
	रुपया	४,५९,३६,६६३	६१,०२,२०,१४९
लुब्रिकेटिंग तैल	गैलन	६१,५३,६८,८४२	३४,४३,३७०
	रुपया	६१,१९,९०७	२०,५६,५९९
दूसरे लुब्रिकेटिंग तैल	गैलन	१,९८,२२,२२६	२,०२,६०,०७०
	रुपया	२,०४,९२,९४४	४,४९,६४,०४७

(इस तरह १९३९-४० के सालमें देशमें १६,९१,३४,९५८ रुपये तथा सन् १९४४-४५ ई० के सालमें ७९,४२,७२,४४२ रुपयेका तैल बाहरसे आया था। हमें ९० प्रतिशत पेट्रोलके लिये दूसरे देशोंपर निर्भर रहना पड़ता है।)

–(I. B pp. 150-54)

३. शक्ति-अल्काहल और शक्ति-गैस–

(१) **शक्ति-अल्काहल**–पेट्रोलकी कमीके तिहाई भागको हम शक्ति-अल्काहल और शक्ति-उत्पादक गैससे पूरा कर सकते हैं। पेट्रोलमें २० प्रतिशत शक्ति-अल्काहल मिला देनेसे वह उतना ही अच्छी तरह मोटरमें काम देता है, जितना कि शुद्ध पेट्रोल, बल्कि उसे २५ प्रतिशत तक मिलानेमें भी कोई हरज नहीं। इस तरह हम एक चौथाई पेट्रोलके आयातको कम कर सकते। हमारी चीनी मिलोंका शीरा बेकार जाता है, जिससे हम शक्ति-अल्काहल बना सकते हैं। पहिले चीनी मिलोंमें अल्काहल बनानेमें बहुत-सी रुकावटें थीं। अंग्रेजी पेट्रोल कंपनियाँ इसका सबसे अधिक विरोध करती थीं। लड़ाईके दिनोंमें सरकार द्वारा नियुक्त औद्योगिक पेनलने प्रत्येक १० लाख गैलनकी क्षमतावाली २० अल्काहल भट्ठियोंकी स्थापना की सिफारिश की थी, जिनमें ११ उत्तर-प्रदेश, ४ बिहार, २ बंबई, २ मद्रास और उड़ीसा तथा एक बंगालमें बनायी जानेवाली थीं। कुल २ करोड़ गैलन शक्ति-अल्काहल बनानेकी योजना थी। पेनलने पेट्रोलमें २० प्रतिशत अल्काहल मिलानेकी भी सिफारिश की थी। दूसरे देशोंमें भी शक्ति-अल्काहलका उपयोग भारी परिमाणमें किया जाता है, जैसे कि–

देश (वर्ष)		सम्राजी गैलन
फ्रांस	(१९३४-३५)	८,१५,२४,०००
जर्मनी	(१९३६-३७)	४,०१,२१,०००
चेकोस्लावाकिया	(१९३४)	१,३१,९०,०००
ब्राजील	(१९३५)	१,०४,५५,०००
इंगलैंड	(१९३५)	२४,००,०००
स्पेन	(१९३५)	१२,४२,०००

–(I. B. pp. 155-57)

अंग्रेजोंके चले जानेपर दिसम्बर सन् १९४७ ई० में भारतमें औद्योगिक विकास-सम्मेलन हुआ था। उसने भी औद्योगिक पेनलके अल्काहल मिलानेकी सिफारिशको स्वीकार किया। इसके विषयमें सन् १९४८ ई० में

भारत सरकारने एक कानून भी पास कर लिया। आजकल भारत प्रति वर्ष १८ करोड़ गैलन मोटर-पेट्रोल और १,८०,००,००० गैलन विमान-पेट्रोल बाहरसे मंगाता है। देशमें केवल १,८०,००,००० गैलन मोटर-पेट्रोल तैयार होता है। विमान-पेट्रोल तो बिलकुल ही नहीं होता। भारत ८ करोड़ गैलन तक शक्ति-अलकाहलको पेट्रोलमें मिलाकर इस्तेमाल कर सकता है।

भारतमें ४ लाख टन शीरा पैदा होता है। चीनीके उत्पादनको १२ लाख से १६ लाख टन किये जानेकी राय है, जिससे १,३०,००० टन शीरा और पैदा होगा। शीरामें प्रति टन ६६ गैलनके हिसाबसे ५.३ लाख टन शीरामें ३,३०,००,००० गैलन शक्ति-अल्काहल तैयार किया जा सकता है।

आजकल भारतमें १२ अल्काहल भट्ठियाँ (चुवानेके कारखानें) हैं—उत्तर-प्रदेशमें ९, हैदराबादमें १, मैसूरमें १ और रामपुर (उत्तरप्रदेश) में १। यह बारह कारखानें ९२ लाख गैलन अल्काहल चुवानेकी क्षमता रखते हैं। सन् १९४८ ई०में उत्तर-प्रदेशमें २ और बिहारमें २ नये अल्काहल कारखाने बन रहे थे, जिनकी क्षमता ४८ लाख गैलनकी है। इस प्रकार हम १,३०,००,००० गैलन अल्काहल तैयार कर सकते हैं और उसे पेट्रोलमें मिलाकर आयातके बोझको कम कर सकते हैं।

—(I. and S. pp. 47-48)

(२) **शक्ति-उत्पादक गैस**—मोटर-पेट्रोलको कम करनेका एक और भी उपाय है शक्ति-उत्पादक गैस अर्थात् लकड़ीके कोयलेके गैस द्वारा मोटरोंको चलाना। सन् १९४८ ई०में फ्रांसमें ४,५००, जर्मनीमें २,२०० और इतालीमें २,२०० मोटरलारियाँ शक्ति-उत्पादक गैससे चलायी जाती थीं। लकड़ीके कोयलेसे गैस तैयार करनेके लिये एक खास प्रकारका यंत्र लगाया जाता है। मद्रास प्रदेशमें मदुरा और विजयवाड़ाकी दो कंपनियोंने इस यंत्रके बनानेका कार्य आरंभ किया। मद्रास प्रदेशमें लड़ाईके समय ५७० लारियाँ गैससे चलायी जा रही थीं। सन् १९४५ ई० तक भारतमें गैसके ४२ प्रकारके यंत्र तैयार किये जा चुके थे। उस समय यंत्रका दाम ७०० से एक हजार साढ़े तीन सौ रुपये तक था। उस साल ३ करोड़ रुपयेका यंत्र बिका था। लड़ाईके दिनोंमें कितनी ही कारों और लारियोंमें उत्पादक गैसका प्रयोग होने लगा था, इसे आप निम्न तालिकासे जान सकते हैं:—

अगस्त	लारी	कार	योग
१९४१	५३५	४१	५७६
१९४२	६,९३०	३७०	७,३००
१९४३	११,३६४	१,२७८	१२,६३२
१९४४	१४,७१८	१,५९०	१६,३०८
१९४५	२१,९२२	१,३६८	२३,२९०

सन् १९४५ ई० में भारतमें २१ हजार गाड़ियाँ उत्पादक-गैससे चल रही थीं, जिनसे प्रतिमास २७ लाख गैलन पेट्रोलकी बचत हो रही थी।

उत्पादक-गैस ट्रैक्टर, पानीकल और छोटे-छोटे कारखानोंके चलानेमें भी काम आ सकती है। (यदि आयातके पेट्रोलके लिये दिये जानेवाले ८० या ७९ करोड़ रुपयोंको कम करना है, तो लारियोंमें उत्पादक-गैसका अधिक प्रचार करना होगा)।

—(I. B. pp. 158-60)

६ बिजली-उद्योग

द्वितीय विश्वयुद्धसे पहिले बहुत थोड़ी मात्रामें बिजलीका सामान, लट्टू और पंखे आदि हमारे देशमें बनते थे। इंगलैंड हमारे लिये ५० प्रतिशत लैम्प, ६० प्रतिशत पंखे और ९० प्रतिशत बैटरी भेजा करता था। उसके बाद जर्मनी, हालैंड, इताली और फ्रांस इन चीजोंको भेजते थे। लट्टू तो ७० प्रतिशत जापान से आते थे और फिर युक्तराष्ट्र अमेरिकाका नम्बर था। युद्धके समय बाहरसे चीजोंका आना बंद हो जानेसे हमारे यहाँ निम्न वस्तुएं बड़ी मात्रामें उत्पादित होने लगीं।

(१) बिजली पंखा,
(२) बिजली लट्टू,
(३) बिजली जलानेके उपसाधन,
(४) सूखी बैटरी और टार्चके सेल
(५) गीली बैटरी,
(६) परिवर्तक (ट्रांसफार्मर),
(७) बिजलीके तार और रस्से,
(८) बिजली-मोटर।

लेकिन कुछ कच्चे-मालकी कमीके कारण उत्पादन यथेष्ट नहीं बढ़ सका। सन् १९४१ ई०में जहाँ ५,१७,४०० पंखे तैयार हुए थे, वहाँ कच्चे मालके अभावसे सन् १९४२ ई० में ४९,४४० पंखे ही बन सके। लट्टूके शीशेकी खोल और पीतलकी टोपियाँ अब देशमें बनती हैं।

लट्टू बनानेमें युद्धके समय काफी प्रगति हुई। सन् १९४४ ई० में १,८०,००,००० लट्टुओंकी आवश्यकता थी। भारतमें उस साल ५० लाख लट्टू बनाये गये। देशमें लट्टू बनानेवाले कारखाने हैं—

(१) कलकत्ता-इंडिया एलेक्ट्रिक लैम्प निर्माता,
(२) ,, - बंगाल बिजली लैम्प कार्य,
(३) ,, - लक्स लैम्प सीमित,
(४) ,, - भारत बिजली लट्टू कार्य,
(५) ,, - कलकत्ता बिजली लैम्प कार्य,
(६) ,, - एसिया बिजली लैम्प कार्य,
(७) बंगलोर—मैसूर लैम्प कार्य,
(८) शिकोहाबाद—केसी उद्योग,
(९) बंबई—बिजली उपज।

इनके अतिरिक्त ७ युरोपियन कंपनियाँ भी भारतमें बिजलीके लट्टू बनाती हैं। जिनमें बामर लारी और ज़ीमान भी हैं। चार और नये कारखाने बन रहे हैं, जिनसे ६० लाख लैम्प और बनने लगेंगे।

बिजली पंखा बनानेमें भी प्रगति हुई है। इंडिया एलेक्ट्रिक वर्क्सको इंजीनियर भट्टाचार्यने सन् १९२४ ई० में स्थापित किया। उसके बाद कलकत्ता बिजली निर्मागिका, आदर्श उद्योग (दयालबाग, आगरा), ब्रिटिश इंडिया एलेक्ट्रिक कंस्ट्रक्शन (कलकत्ता), युरेस्ट इंजीनियरिंग कंपनी (कलकत्ता) आदि भी मैदानमें आयीं। लड़ाईके समय कलकत्तामें पाँच, देहलीमें एक बिजलीके कारखाने खोले गये। इंडिया एलेक्ट्रिक वर्क्सके बेहालाकी फैक्टरीमें हजार और इंटाली फैक्टरीमें ६०० आदमी काम करते हैं। इंटाली फैक्टरी मुख्यतः टेलीफोन और टेलिग्राफके यंत्रोंको बनाती है। साथ ही रेलवेके सिग्नेलिंग आदि यंत्र तथा भिन्न-भिन्न सरकारी विभागोंके लिये वैज्ञानिक अस्त्र भी तैयार करती है। लड़ाईके समय भारतमें बिजली पंखेका उत्पादन इस प्रकार बढ़ा—

सन्	छतका पंखा	मेजका पंखा
१९४०	३८,०००	६,८००
१९४१	४७,८००	९,६००
१९४२	३८,८००	११,०००
१९४३	४१,२००	१०,०००
१९४४	१,०५,०००	३०,०००

सन् १९४३ ई० के बनाये पंखोंमें इंडिया एलेक्ट्रिक वर्क्सने १९,००० छतके तथा ८,९०० मेजके पंखे तैयार किये थे। पंखा बनानेके बहुतसे उपादान भी पीछे भारतमें बनने लगे, यद्यपि बाल-बियरिंगकी गोलियाँ अभी भी भारतमें नहीं बनतीं, हालाँकि उनका उपयोग बहुत व्यापक है। एक कारखाना भारतके लिये आवश्यक सारी गोलियोंको एक सप्ताहमें बनाकर रख देगा, इसलिये बाकी गोलियोंको बेचनेका सवाल आयेगा। हमारे यहाँ २,५०० प्रकारकी ४ लाख बालबियरिंग प्रति वर्ष खर्च होती है।

बिजलीकी स्विचों, प्लगों तथा दूसरे उपकरणोंके बनानेमें भी पिछले युद्धके समय विशेष उन्नति हुई। कलकत्ताकी स्वदेशी उद्योग तथा हिंद ढलाई कंपनी एवं कानपुरकी प्लास्तिक उपज कंपनी इन उपकरणोंके बनानेमें विशेष महत्त्व रखती हैं।

ड्राई बैटरी युद्धसे पूर्व हमारे यहाँ बहुत ही कम बनती थी। युद्धके समय कलकत्ताकी नेशनल कार्बन कंपनी तथा बंबईकी एस्ट्रेला बैटरीने अपने कामको आगे बढ़ाया। अब भारतीय कारखाने देशकी आवश्यकताको पूरा करनेकी क्षमता रखते हैं, तथा दोनों कंपनियाँ विदेशी मालके साथ प्रतियोगिता कर सकती हैं। प्रति वर्ष ५३० लाख बैटरी-रोल बनानेकी क्षमताका एक और कारखाना बनाया जा रहा था (सारे कारखानोंकी उत्पादन क्षमता १८.५ करोड़ है)।

गीली बैटरी अथवा बिजली-संचालक युद्धसे पूर्व प्रायः सारा बाहरसे आता था, सन् १९३१-३२ में ८,५४,७६८ रुपये, सन् १९३७-३८ में ७,०५,९२९ और सन् १९३८-३९ ई० में ६,९५,०८६ रुपयेका माल बाहर से आया था, जिसमें मोटरोंके साथ आयी बैटरियाँ शामिल नहीं हैं। बैटरी बनानेके सारे कच्चे माल देशमें मौजूद हैं, और बंबई, बंगलोर और कलकत्ता में अब कई कंपनियाँ बैटरी बनानेका काम कर रही हैं (१९४९ में ढाई लाखकी माँगकी जगह एक लाख बैटरियाँ ही देश में बनी हैं)।

ट्रांसफार्मर—(वितरण-परिवर्तक) यह युद्धसे पहिले देशमें बहुत कम

बनता था, किंतु युद्धके समय उद्योगके बढ़नेके कारण इसकी माँग बढ़ी, जिससे इसका निर्माण भी बढ़ा। सन् १९३८-३९ ई०में जहाँ २५,६२,७१६ रुपयेका ट्रांसफार्मर बाहरसे आया था, वहाँ सन् १९४०-४१ ई० में वह १९,११,७६३ का ही आया। इसके बनानेके लिये नयी फैक्टरियाँ बनीं, तथा नये यंत्र-कमकर तैयार किये गये। इसका बहुत-सा कच्चा माल देशमें मौजूद है। फैक्टरीकी कितनी ही मशीनें भी देशमें बनती हैं। युद्धसे पहिले बंगलोरकी गवर्नमेंट एलेक्ट्रिक फैक्टरी ही ट्रांसफार्मर बनाती थी। लड़ाईके दिनोंमें कलकत्तामें एसोसियेटेड एलेक्ट्रिकल इंडस्ट्रीज मैनूफेक्चरिंग कंपनी (आरंभ १९४१) तथा बंबईमें क्रोम्पटन पर्किन्सन वर्क्स (आरंभ १९४३) स्थापित हुए। इन कारखानोंमें बहुत थोड़े अभारतीय कर्मी हैं। बंगलोर फैक्टरीके सभी कर्मी भारतीय हैं। देशमें ट्रांसफार्मरका उत्पादन निम्न प्रकार बढ़ा है—

सन्	उत्पादन	
	परिमाण	मूल्य (रुपया)
युद्धपूर्व	६०	६०,०००
१९४२	२००	२,००,०००
१९४३	६००	६,००,०००
१९४४ (प्रायः)	१,५००	१५,००,०००

सन् १९४३ ई० के उत्पादनमें बंगलोरने २००, कलकत्ताने २५० और बंबईने १५० ट्रांसफार्मर बनाये।

भारतीय ट्रांसफार्मर विशेषकर बंबई और कलकत्ताके बने विदेशी ट्रांसफार्मरोंसे घटिया नहीं हैं। इन दोनों कारखानोंकी क्षमताको बढ़ाके तथा एक नये कारखानेको स्थापित करके ७५,००० किलोवाटकी वृद्धि की जानेवाली थी।

काले चिपकू फीते—ये बिजलीके तारोंको लपेटनेमें काम आते हैं। युद्धसे पहिले यह सबका सब विदेशसे आता था। आज-कल कलकत्ताकी दो कंपनियाँ--राजगढ़िया ब्रादर्स तथा कमर्शियल ब्यूरो इसे बना रहे हैं। सन् १९४३ ई० में कार्य आरंभ हुआ। उस साल १४,००० रुपयेका २ टन, सन् १९४४ ई० में २,८०,००० रुपये मूल्यका ४० टन माल बना, जिसमें ३० टन सरकारने खरीद लिया। इसकी मशीनें भारतकी बनी हैं और कच्चमाल भी सारा देशमें प्राप्य है। ४० टन वार्षिक उत्पादनदेशकी आवश्यकताकी पूर्तिके लिये पर्याप्त है।

बिजली मोटर—इसका उत्पादन भी लड़ाईके समयमें बहुत बढ़ा। पहिले कोयम्बतूरमें एक कंपनी प्रति वर्ष ४०,००० रुपये मूल्यकी २०० मोटरें बनाती थी और बाकी (सन् १९३८-३९ में ६३,१२,०२७ रुपयेका) माल बाहरसे आता था। अब पाँच और कंपनियाँ काम कर रही हैं, जिन्होंने सन् १९४३ ई० में १,००० मोटरें (मूल्य २० लाख) तैयार कीं। कारखानेकी कितनी ही मशीनें भारतमें बनती हैं। दो नये कारखानोंको स्थापित करके सन् १९४८ में एक लाख अश्व-शक्तिकी मोटरें बननेवाली थीं।

बिजली तार और रस्सा उद्योग—यह भी देशमें युद्धके समय स्थापित हुआ। सन् १९३८-३९ ई० में १३२ लाखका माल बाहरसे आया। उस समय भारतमें केवल एक फैक्टरी थी। युद्धकालमें लड़ाईकी आवश्यकताओंसे मजबूर होकर सरकारने इसके लिये एक कारखाना (इंडियन केबिल कंपनी) ताता नगरमें स्थापित किया। यह ६० लाख रुपयेमें स्थापित फैक्टरी विश्वमें अपने ढंगका आधुनिकतम कारखाना है। दूसरी फैक्टरी महगांव (प्रयाग) में स्थापित हुई है। अब प्रायः समस्त कच्चा माल भारतमें मिल जाता है। यह अभिमानकी बात है, कि अंग्रेजोंके सबसे बड़े पोतोंमेंसे एक भारतीय तार और रस्से द्वारा सज्जित है।

रेडियो (ग्राहक)—रेडियो निर्माणके लिये विदेशी विशेषज्ञोंके तत्त्वावधानमें चार कारखाने तेजीसे बन रहे हैं, जिनमें सन् १९४९ के अंत तक प्रति वर्ष १०,००० बड़े रेडियो बनने लगेंगे।

टेलिफोन—टेलिफोन और उसके उपकरणोंके निर्माणार्थ भी एक विशाल आधुनिक फैक्टरी तैयार हो रही है।

—(I. B. pp. 181-88, 355)

७ मशीन-उद्योग

ढांचा निर्माण इंजीनियरी—पहिले-पहिल लोहेके पुलों तथा दूसरे लौह-ढांचों वाले कार्योंके निर्माणके लिये इस उद्योगकी आवश्यकता हुई। कलकत्ताकी ब्रेथवेट, बर्न, जेसप, ब्रिटानिया तथा सेक्सबाई जैसी युरोपियन कंपनियाँ पहिले ही सुस्थापित हो चुकी थीं। सन् १९२४ ई० में १२ करोड़की पूंजीवाली ४० युरोपीय कंपनियाँ काम कर रही थीं। सन् १९४३ ई०में इंडियन इंजीनियरिंग एसोसियेशनकी डेढ़ लाख कर्मियोंवाली ८७ कंपनियाँ सदस्य थीं। इनके अतिरिक्त इंजीनियरिंग एसोसियेशन की

भी ५० सदस्याँ थीं। इन कंपनियोंमें सभी ढांचा-निर्माणसे संबंध रखनेवाली नहीं हैं। हवड़ाका विशालपुल ब्रेथवेट, बर्न और जेसपने मिलकर बनाया है। इसी तरह विश्वकी एक सबसे बड़ी बहेतू डाँक भी इन्हीं कंपनियोंने बनायी। ढांचा-निर्माण कंपनियाँ कलकत्ता क्षेत्रमें १५, कानपुरमें ४, दक्षिण भारतमें ५, बंबई क्षेत्रमें ६ हैं। इनका प्रायः सारा कच्चा माल देशमें मिलता है।

—(I. B. pp. 162-67)

१. यांत्रिक इंजीनियरी–

पंप, तेल-इंजन, तुला-मशीन, मशीन-निर्माण, सड़क निर्माण-मशीन बनाना अब भारतके लिये अपरिचित चीज नहीं रह गयी है। इसमें द्वितीय महायुद्धने बहुत सहायता की। किर्लोस्कर और बड़ौदाकी ज्योति सीमित कंपनियाँ कई तरहके हथपंप तथा शक्ति-चालित पंप बनाती हैं। सन् १९४४ में कूप (सतारा) और किर्लोस्करने ६५० तेल-इंजन बनाये। एक दर्जन कंपनियाँ तुला-मशीन बना रही हैं, जिनमें आधा दर्जन कलकत्ताके आस-पास हैं। सन् १९४८ में ५०,००० जैक भारतमें बने। ग्वालियर और कलकत्तामें कपड़ा मिलकी मशीनोंके बनानेके कारखाने काम कर रहे हैं, यद्यपि अभी वह सारी माँगकी पूर्ति नहीं कर सकते। दुग्धशालाकी मशीनें बंबईमें बनने लगी हैं। युद्धसे पहिले हमारे यहाँ एक करोड़ तकुए तथा दो लाख करघे कपड़े-मिलोंमें काम कर रहे थे। बिड़लोंकी ग्वालियर तथा बेलघरिया (कलकत्ता) की कपड़ा मशीन फैक्टरियाँ (मशीनरी मैनुफेक्चरस कारपोरेशन) हमारी केवल २० प्रतिशत (२,००० करघे १ लाख तकुएकी) आवश्यकताकी पूर्ति कर सकती हैं। हालमें एक अंग्रेजी फर्मकी सहायतासे एक फैक्टरी[1] (नेश्नल मशीनरी मैनुफेक्चर्स, बम्बई, पूंजी ५ करोड़ रुपया) तैयार हो रही है, जो आरंभसे २,४०,००० और पांच वर्ष बाद ४,८०,००० तकुआ प्रति वर्ष तैयार करेगी। इसमें भारतीय पूंजी ७४ प्रतिशत और अंगरेजी कंपनीकी २६ प्रतिशत लगी है।

—(I. B. pp. 162-72)

सड़क बनानेवाली मशीनोंमें पहिले कोलतार-कंकड़-मिश्रण करनेवाली जैसी साधारण मशीनें बनती थीं। ताता द्वारा बनाया गया पहिला भारत-निर्मित रोलर-इंजन २२ अप्रैल सन् १९४८ ई०को बाहर हुआ, और उसी साल ६४ से अधिक रोलर तैयार हुए। अब साधारण इंजनवाले तथा डीजेलके

१. नेशनल मशीनरी मैनुफेक्चरर्स, बंबई, पूंजी ५ करोड़ रुपया।

रोलर भारतमें बनने लगे हैं। भारतकी वार्षिक आवश्यकता १७५ भाप-रोलर और ७५ डीजेल रोलरकी है, जिनके लिये फैक्टरियाँ तैयार हो रही हैं। (भारत अपनी फैक्टरियोंके रोलर पड़ोसी देशों विशेषकर बर्मा और लंकामें भेज सकता है)।

२. मशीनटूल–

मशीनोंके बनानेके लिये उपयुक्त होने वाली शक्तिचालित बलशाली अहरन-मशीन, बरमा-मशीन, रंदा-मशीन आदि बारह प्रकारकी मशीनें मशीनटूल[1] कही जाती हैं। इनसे धातु या काष्ठके काटने, छीलने, पालिश करने आदिका काम लिया जाता है। द्वितीय महायुद्धसे पूर्व प्रायः सारे मशीनटूल बाहरसे मंगाये जाते थे, केवल कपास तथा जूट-मिलोंके प्रेस आदि देशमें बनते थे। सन् १९३७-३८ ई० में २,२८,२९१ पौंडके मशीनटूल बाहरसे आये थे, जिनमें ६८ प्रतिशत इंगलैंड, १५ प्रतिशत जर्मनी ९ प्रतिशत अमेरिका एवं ५.८ प्रतिशत जापानके थे। भारतमें सबसे पहिलेकी मशीन-टूल बनानेवाली कंपनियाँ निम्न प्रकार थीं–

बंबई, नेशनल मशीनरी मैनुफैक्चर्स, पूंजी ५ करोड़ रुपया।
कलकत्ता–जेसप कंपनी,
दासनगर–इंडिया मशीनरी कंपनी,
टीटागढ़–ब्रिटानियाँ इंजीनियरिंग कंपनी,
सतारा–कूप इंजीनियरिंग कंपनी,
किर्लोस्करवाड़ी–किर्लोस्कर ब्रादर्स।

सन् १९४१ ई०में ये कंपनियाँ प्रतिमास दो-तीन मशीनटूल बनाती थीं। लड़ाईकी अवस्था विकट होनेपर बाहरसे आयात बंद हो गया, और अपने-

---

१. मशीनटूलके प्रकार हैं:—

(1) Lathes. (2) Drilling machines. (3) Chucks, (4) Planing machines (5) Shaping machines (6) Milling machines (7) Melting furnace equipement (8) Sawing machines (metal, wood) (9) Grinding and polishing equipement (10) Presses, purches and shearing machines. (11) Miscellaneous.

जिनमें कुछ बहुत बारीक कार्यके मशीनटूल हैं:—

(1) Centre lathes (2) Toolroom precision (3) Captan precision (4) Combination Turrest (5) Radial Drilling machines (6) High precision Drilling machines.

पर भरोसा रखना पड़ा। सन् १९४२ में वह प्रतिमास १५० बनने लगे। युद्ध के समय इंगलैंडके मशीनटूल-कंट्रोल द्वारा भेजे सात यंत्र विशेषज्ञोंका दल इस समस्याको हल करनेमें सहायता देनेके लिये भारत आया। उसने जाँच-पड़ताल की। उस समय २५ फर्में अच्छे मशीनटूल बना सकती थीं, किंतु मैसूर किर्लोस्कर (हरिहर) को छोड़ सभी गौणरूपेण इस उद्योगको कर रही थीं। सरकार प्रोत्साहन देने लगी, और युद्धके अंतिम वर्ष (१९४५) में ११,००० मशीनटूल बनने लगे, जिनकी कीमत १६० लाख थी। इन मशीनटूलोंमें श्रेणी योग्य ३,७०० मशीनटूल थे। सन् १९४६ में ४,१२१ श्रेणी योग्य मशीनटूल बने, जिनका दाम १७४ लाख था। इन ४,१२१ टूलोंमें ३,५७८ प्रथम श्रेणी और ३८० द्वितीय श्रेणीके थे।

—(I. B. pp. 175-78)

मशीनटूलके लिये प्रायः सारा कच्चा माल भारतमें प्राप्य है। युद्धसे पहिले मशीन-टूल प्रायः सारा (दो करोड़ रुपया वार्षिकका) बाहरसे आता था। किंतु अब १९४८ की पहिली तिमाहियोंमें उत्पादन था:—

	प्रथम तिमाही	द्वितीय तिमाही	तृतीय तिमाही
मशीनटूल	२७८	३४३	४२०
मूल्य रुपया	१३,०२,०००	१,२२,५८,०००	१४,०६,०००

आजकल जो मशीनटूल हमारे यहाँ बन रहे हैं, वह साधारणसे हैं, और वह भी केवल १० प्रतिशत आवश्यकताकी पूर्ति कर सकते हैं। प्रति वर्ष हमें २ करोड़के मशीनटूल बाहरसे मंगाने पड़ रहे हैं। सर्वोच्च श्रेणीके मशीनटूलोंके बिना विमान आदि जैसे सूक्ष्म-मानवाले यंत्रोंका बनाना संभव नहीं है। सरकार स्वयं एक मशीनटूल फैक्टरी स्थापित करने की सोच रही है, जो १२ प्रकारके बारीक मशीनटूलोंको बनायेगी। उक्त फैक्टरीके लिये १,००० मशीनटूलोंकी आवश्यकता होगी। इनमें ३१२ मशीनटूल जर्मनीसे क्षतिपूर्तिमें मिल रहे हैं; और ३१४ सामरिक बिकाऊ मालसे प्राप्य हैं। इनके अतिरिक्त दूरव्यापी योजनाके लिये इस फैक्टरीमें ५ करोड़ रुपयेकी और पूंजी लगानी होगी। इसी संबंधमें भारत सरकारने चेकोस्लोवाकियाके आठ विशेषज्ञोंको बुलाया था। (चेकोस्लोवाकियाकी जनसंख्या ७५ लाख है, अर्थात् हमारे मुजफ्फरपुर जैसे दो जिलोंसे भी कम। तो भी हम अपनेको असमर्थ समझ रहे हैं)।

इस समय निम्नलिखित फर्में मशीनटूल बनाने का काम कर रही हैं :—

प्रथम श्रेणी—

कलकत्ता—(१) इंडिया मशीनरी,

(२) माया इंजीनियरिंग वर्क्स,
(३) जेसप कंपनी,
(४) ब्रिटानियाँ इंजीनियरिंग कंपनी,
(५) अटलस् वर्क्स,
(६) हिन्द मशीन,
बंबई— (७) इन्वेस्टा मशीनटूल,
(८) रिचार्डसन एन्ड क्रूड्ल,
हरिहर— (९) मैसूर किर्लोस्कर,
सतारा— (१०) कूप इंजीनियरिंग कंपनी,

द्वितीय श्रेणी—

कलकत्ता—(११) हीरोज इंजीनियरिंग वर्क्स,

तृतीय श्रेणी—

कलकत्ता—(१२) न० ल० दत्त कंपनी,
बंबई— (१३) न्यू स्टैन्डर्ड इंजीनियरिंग कंपनी,
भीवंडी— (१४) जी० जी० दंदर्द मशीन वर्क्स,
लुधियाना—(१५) कुन्दनलाल एन्ड सन्स ।

—(Inad S. pp. 6, 33, 70, 91)

३. **वैज्ञानिक अस्त्र—**

वैज्ञानिक अनुसंधानके लिये अत्यन्त सूक्ष्म पता देनेवाले वैज्ञानिक यंत्रोंकी आवश्यकता होती है। देशकी आवश्यकताके ५ प्रतिशत ही और सो भी सीधे-सादे अस्त्र देशमें बनते हैं। इस दिशामें बंबई, बनारस, मद्रास और रुड़कीमें चार कंपनियाँ काम कर रही हैं। एक सरकारी फेक्टरी (मैथमेटिकल इन्स्ट्रूमेन्ट ऑफिस या एम० आई० ओ०) भी लड़ाईके पहिले-काम कर रही थी। यह भिन्न-भिन्न सरकारी विभागोंके लिये यंत्र बनाती थीं। युद्धके समय बाहरसे माल आना बंद हो गया, इसलिये देशकी आवश्यकता पूर्तिके लिये १६० फैक्टरियाँ काम करने लगीं, जिनमें बहुत-सी साधारण फेक्टरियाँ थी। कलकत्ता, आगरा और हैदराबादमें तीन अच्छी फैक्टरियाँ इन यंत्रोंको बना रही हैं। युद्धके कामके लिये एम० आई० ओ० की फैक्टरीको भी बहुत बढा दिया गया। वह सैरबीन, त्रिकोन कम्पास, दूरवीक्षण आदि यंत्रोंको बनाती हैं। लड़ाईके समयकी १६० फैक्टरियों-मेंसे १५ कलकत्तामें स्थापित हुई। लाहौरकी २१ फैक्टरियाँ अब पाकि-स्तानमें हैं।

—(I. B. pp. 334-39)

४. रेलवे—

ई० आई० आर० और जी० आई० पी० आर० इन दोनों रेल-लाइनोंके बनानेका निश्चय सन् १८४९ में, मद्रास रेलवेका सन् १८५२ और बी० बी० एन्ड सी० आई० का सन् १८५५ में हुआ, और कलकत्ता, बंबई तथा मद्रासके बंदरगाहोंसे देशके भीतरकी ओर रेलें बनायी जाने लगीं; लेकिन, सन् १८५७ के विद्रोहने उनके काममें बाधा डाली। सन् १८६३ तक ई० आई० रेलवे हवड़ासे चुनारतक, बर्दवानसे रानीगंजतक, प्रयागसे हाथरसतक जनताके यातायातके लिये खोल दी गयीं। इसी तरह जी० आई० पी० बंबईसे भुसावल, भुसावलसे मलकापुर और बंबईसे सोलापुर तक खुल गयीं। बी० बी० सी० आई० भी बंबईसे अहमदाबाद तक चलने लगी। मद्राससे बेपुर तक भी रेल-यात्रा होने लगी। आगे रेलोंका विस्तार तेजीसे बढ़ा।
—(I. L. pp. 121-22)

(१) **डब्बोंका निर्माण**—रेलवे डब्बे भारतमें काफी पहिलेसे बनते थे; किंतु यह बनना केवल भागोंके जोड़ने, मरम्मत करने तक ही सीमित था और नये डब्बे नहीं बनाये जाते थे। जेसप कंपनी (दमदम), बर्न कंपनी (हवड़ा), इंडियन स्टैन्डर्ड वैगन कंपनी (बर्नपुर), ब्रेथवेट कंपनी (खिदिरपुर) ये चार अंग्रेजी फर्मे प्रति वर्ष ढाईसे तीन हजार डब्बे बना लेती थीं। इनके सभी महत्त्वपूर्ण पुर्जे, विलायतसे बनकर आया करते थे। लड़ाईके कारण सन् १९४१ ई० के मध्यमें उनका आना बंद हो गया, लड़ाई भी भारतके नजदीक आ गयी। अब देशके भीतर भिन्न-भिन्न भागोंका बनाना आवश्यक हो पड़ा। डब्बोंके पहिये और धुरे, जो पहिले इंगलैंडसे बनकर आया करते थे, सन् १९४२ में पहिले-पहिल तातानें जमशेदपुरमें ढाले। सन् १९४० के मध्यसे अगले दो सालोंमें १० हजार डब्बोंके बनानेका प्रोग्राम था, लेकिन १,८०० ही डब्बे बन सके, क्योंकि चक्के और धुरे काफी नहीं तैयार हो सके। सन् १९४७-४८ ई० तक १९ हजार डब्बे देशमें बनाये गये, और १९ हजार डब्बे बाहरसे मंगाये गये।

देशमें सन् १९३९ और १८४८ (मार्च) में रेलके डब्बोंकी संख्या निम्न प्रकार थी—

सन्	बड़ी लाइन	छोटी लाइन	योग
१९३९	१,४०,०००	५१,३५०	१,९१,३५०
१९४८ (मार्च)	१,६८,०००	५६,५००	२,२४,५००

डब्बोंकी इतनी वृद्धि होनेपर भी आज पूरा नहीं पड़ रहा है, क्योंकि **अब** यातायात दुगुना हो गया है।

(२) **इंजन निर्माण**:—इंजन-निर्माणका काम भारतमें इतना ही था, कि बाहरसे मंगाये पुर्जोंको जोड़ दिया जाता था। जमालपुरकी वर्कशापने सन् १९२६ तक बड़ी लाइनके २१४ इंजन बनाये। उसी तरह अजमेरकी वर्कशापने सन् १८९६ और १९४० ई० के बीच छोटी लाइनके ४३५ इंजन तैयार किये। एक कंपनीने जमशेदपुरमें प्रति वर्ष २०० इंजन बनाने लायक कारखानेके मकानों और मशीनोंको भी खड़ा कर दिया, लेकिन सरकारने तटकर की वृद्धि द्वारा सहायता नहीं दी। इस प्रकार बिना एक भी इंजन बनाये कम्पनीका दीवाला निकल गया। प्रथम विश्वयुद्धमें अनुभव किया गया, कि बाहरपर निर्भर रहना लड़ाईके समय बहुत खतरेकी चीज है। युद्धकी आशंकासे रेलवे-बोर्डने इंजन बनानेके संबंधमें सन् १९३९ ई० में एक सरकारी कमेटी नियुक्त की। कमेटीने बतलाया कि भारतीय कच्चे माल से २० प्रतिशत कम खर्चमें इंजन देश के भीतर बनाया जा सकता है; लेकिन अंगरेजोंकी सरकारने उसके बारेमें कुछ नहीं किया। अंतमें जून सन् १९४५ ई० में ही इस तरफ एक कदम उठाया गया, जब कि इंजन बनाने के लिये ई. आई० आर० की सिंहभूम वाली वर्कशाप ताताको दे दी गयी। इसके लिये तेल्को नामकी एक कम्पनी बना दी गयी। सरकारने १६ बरस तक कंपनीके मालको लेना स्वीकार किया। चितरंजन (मिहीजाम), (बंगाल) में प्रतिवर्ष १२० इंजन बनाने लायक एक दूसरी फैक्टरी बनायी जा रही है।

—(I. B. pp. 206-8)

५. मोटर-वाहन उद्योग—

पहिले भारतवर्षमें बाहरसे आयी चासियोंके लिये मोटरकारों या लारियोंका शरीर बनता था। फिर मोटरके पुर्जोंको जोड़नेका काम जेनरल मोटर कारपोरेशन और फोर्ड मोटर—इन दो कंपनियोंने करना शुरू किया। वह अपने कारखानोंमें मोटरकारोंके शरीर तथा चासी को बनानेके साथ-साथ पुर्जोंके जोड़नेका काम भी करती थीं। जेनरल मोटरने भारतमें अपना काम सन् १९२८ में आरंभ किया। अपने दीर्घव्यापी तजरबे के कारण कुछ ही महीनेमें इस कंपनीकी कारें और ट्रकें बाजारमें पट गईं। सन् १९२९में देशमें मोटर-वाहनोंकी बिक्रीमें ४०% इसका भाग रहा और आगे भी वह कभी ५०% से कम नहीं हुआ। सन् १९३९ ई० में युद्धारंभसे छः महीने पहिले जेनरल मोटरने एक और नयी शाखा स्थापित

की। युद्धके दिनोंमें सैनिक ट्रक बनानेका बहुत-सा भार इस कंपनीने ले लिया। सन् १९४० ई० में इसने सैनिक मोटर-शरीर ४३०९ और चासी १०,१६० बनाई। सन् १९४१ ई० में वह संख्या क्रमशः १५,७९६ और २६,२०८, तथा १९४३ में बढ़कर ३६,४३८ चासी और २३,००० मोटर-शरीर हो गयी। फोर्ड कंपनीने ३९ प्रकारके ऐसे भिन्न-भिन्न मोटर-वाहनोंके निर्माणका काम अपने हाथमें ले लिया, जिनका बनाना और भी कठिन था। युद्धसे पहिले कंपनीके पुर्जा-जोड़क प्लांट बंबई, कलकत्ता और मद्रासमें थे। सन् १९४१ ई० में बंबईमें उसका चौथा प्लांट भी काम करने लगा।

इन चीजोंके बनानेके कच्चे माल अधिकतर भारतमें ही लिये गये--फौलाद तातासे दिया। लकड़ी भी देशमें मौजूद थी। कान्वेस कलकत्ता, बंबई और मद्रासकी मिलोंसे मिली।

लड़ाईके दिनों (१९४४) में सेठ बालचन्द हीराचन्दके प्रयत्नसे बंबईकी प्रीमियर आटोमोबिल कंपनी चालू हुई, जिसके सामने पुर्जा जोड़नेके आगे स्वयं अपनी मोटरकार पैदा करनेका लक्ष्य था। इसे अमेरिकाकी क्रिसलर कंपनीकी सहायता प्राप्त है। बिड़लोंने अंग्रेजी फर्म नफील्डकी सहायतासे हिन्दुस्तान मोटर कंपनी स्थापित की। यह अभी बाहरसे मंगाये पुर्जोंसे "हिन्दुस्तान १०" कार तैयार करके बाजारमें ला रही है। इसके सामने भी भारतीय मोटरकार, लारी, ट्रक आदि बनानेका उद्देश्य है। प्रीमियर ऑटोमोबिल कुरला (बंबई) में और हिन्द मोटर उत्तरपाड़ा (कलकत्ता) में नये प्लांट तैयार कर रही है, जिनमें वह मोटर लारियाँ और ट्रक बनाना चाहती हैं। प्रीमियर ऑटोमोबिल और मोटर हाउस गुजरात दोनों बंबईकी मोटर कंपनियों तथा हिन्दुस्तान मोटर कलकत्ताकी संयुक्त क्षमता प्रति वर्ष २० हजार गाड़ी तैयार करने की है।

—(I. B. pp. 210-13; I. L. p. 293)

६. पोत-निर्माण

१९ वीं शताब्दीके आरंभ तक भारत बड़े-बड़े सामुद्रिक पोतोंका निर्माण करता था। ईस्ट इंडिया कंपनीके अच्छे-अच्छे पोत भारतके बने हुए होते थे। इन पोतोंमें सैनिक और व्यापारिक दोनों ही तरहके जहाज सम्मिलित थे। लेकिन भाप और लोहेका युग आनेपर भारतीय काष्ठ-पोतोंका जमाना चला गया। द्वितीय विश्वयुद्धसे पहिले भारतमें इस्तेमाल होते सारे ही सामुद्रिक पोत इंगलैंड-निर्मित होते थे। कुछ छोटे-छोटे स्टीमर (२० से ३०० फुट तक) नदियोंमें चलानेके लिये भारतमें

भी बनते थे। द्वितीय युद्धके आरंभ होनेसे कुछ ही पहिले पोत-निर्माणमें कुछ प्रगति हुई थी और कलकत्तामें समुद्रोपयोगी टग ४४० टन तकके बन जाते थे। लेकिन पोत-निर्माणके बड़े उद्योगका आरम्भ सिंधिया कंपनी ने ही विशाखपटनमें अपने बड़े पोतांगणकी स्थापना द्वारा किया, जिसमें ८,००० टन तकके स्टीमर बन सकते हैं। सिंधिया पोतांगणने सन् १९४२ ई० में कितने ही माइन-उद्धारक तथा छोटे-छोटे अग्निबोट बनायें। किंतु, अप्रैल १९४२ में जापानी विमानोंकी बम-वर्षाके कारण काम कुछ समयके लिये बंद कर दिया गया। सन् १९४२ई० के अंतमें फिर वहाँ काम होने लगा। अब तक ८,००० टन वाले दो तीन सामुद्रिक पोत यह कंपनी बना चुकी है, भारतवर्षके लिये २० लाख टन पोतोंकी आवश्यकता है, जब कि हमारे पास १९४७ के मध्यमें सिर्फ ढाई लाख टनके जहाज थे। सरकारने दो या तीन पोत-निर्माण कारपोरेशनोंके स्थापनाकी योजना बनायी है, जिनमें कमसे कम ५१ प्रतिशत पूंजी सरकारी होगी। पोत-निर्माण तुरंत लाभकी चीज नहीं है, इसलिये सिंधिया कंपनी अपने पोतनिर्माणके कार्यको चलानेमें असमर्थ दीख रही है, और वह उसे भारत-सरकारके हाथमें दे रही है।

८ रसायन-उद्योग

देशके औद्योगिक विकासके लिये भारी रसायन उद्योग अत्यावश्यक है। कपड़ा मिल, कागज, काँच, रबर आदि अधिकांश उद्योगोमें रासायनिक पदार्थोंकी आवश्यकता होती है। अभी भारतीय रसायन उद्योग विकासकी आरंभिक अवस्थामें है। देशके रासायनिक कारखाने चौबीस-परगना (बंगाल) और ओखा-मंडल (बड़ौदा) दो ही जगहोंमें केंद्रित हैं। २४ परगनाके रासायनिक कारखानोंमें देशके २४ प्रतिशत और ओखा-मंडलमें २६ प्रतिशत कमकर काम करते हैं। बंगालके रसायन-उद्योगके लिये सुभीता यह है, कि कोयला और बाजार वहाँसे दूर नहीं है। ओखा-मंडल उद्योग कुछ कच्चे मालोंके समीप है और अहमदाबादका बाजार भी उसके पास है। रसायन-उद्योगके मुख्यतः दो भाग हैं:—अम्ल (एसिड) और अल्काली। एसिडोंमें सलफ्युरिक (गंधकिक) और नित्रिक खास महत्त्व रखते हैं और अल्कालीमें सोडा-भस्म और कास्टिक-सोडा। सलफ्युरिक और नित्रित एसिड तरल होते हैं, इसलिये उन्हें सुरक्षित तौरसे एक जगहसे दूसरी जगह ले जाना आसान काम नहीं है। लेकिन उनके

उपादान गंधक या नित्रेतको आसानीसे ले जाया जा सकता है। बंगाल और बिहार एसिड (अम्ल) के निर्माणके लिये अधिक उपयुक्त हैं, क्योंकि कच्चा माल वहाँ मौजूद है। ओखा-मंडल अल्कालीके लिये उपयुक्त है। मीठापुर (ओखामंडल) की ताता फैक्टरी अधिकतर अल्काली उत्पादन करती है। बिहारकी सिंदरी रासायनिक खाद्य फैक्टरीको पश्चिम पंजाबके खेवड़ा और दंडौनके जिप्समके भरोसे खोला जा रहा था, किंतु यह दोनों खानें अब पाकिस्तानमें चली गयीं। अब उसे सल्फेट (गंधकेत) की जगह नित्रो-खड़िया उत्पादन करनेके लिये परिवर्तन करनेकी बात सोचनी पड़ती है।

सिंदरी योजना—इस विशाल फैक्टरी तथा इसमें काम करनेवालोंकी बस्तीके लिये जलकी बड़ी समस्या है। प्रति दिन १२० लाख गैलन पानीकी आवश्यकताका ध्यान करके काम किया जा रहा है। दामोदर-उपत्यका-योजनाके कार्य-रूपमें परिणत होनेपर यह समस्या नहीं रहेगी। सिंदरीमें दामोदर नदीका बालू २५ से ३० फुट गहरा है, जिसके नीचे बरसातके बादके ८ महीनोंमें भी पानी बहता रहता है। उसमें ट्यूब वेल लगाया जा रहा है।

१. **अम्ल—**

(१) **सलफ्युरिक एसिड** (सड)—सलफ्युरिक एसिड (गंधक तेजाब) रासायनिक उद्योगमें बड़ा ही महत्त्वपूर्ण पदार्थ है। इसका उपयोग चमड़ा सिझाने, कपड़ा फिनिश करने, लोहा-फौलाद प्रभावित करने, विस्फोटक पदार्थ बनाने, अलौह धातुओंके साफ करने, खनिज तेलके शुद्ध करने आदि बहुतसे कामोंमें होता है। इसके साथ मिलाकर बहुत सी दूसरी—ताम्र सल्फेट, क्रोमिन-एसिड, रासायनिक खाद्य आदि जैसी चीजें बनती हैं।

यह लोहा पाइराइड या गंधकसे बनाया जाता है। भारतमें २३ कारखानें इसे बनाते हैं, जिनमेंसे अधिकांश प्रथम विश्वयुद्धके समय या बादमें आरंभ किये गये। प्रधान फैक्टरियाँ प्रति तिमाहीमें शत-प्रतिशत अम्ल निम्न परिमाणमें पैदा करती हैं:—

	टन
(१) बंगाल केमिकल (कलकत्ता)	१,९५०
(२) इंडियन आयरन और स्टील कंपनी	२,०००
(३) ताता लौह-फौलाद कंपनी	४,५००
(४) टिनप्लेट कंपनी इंडिया	१,०५०

	टन
(५) कानपुर केमिकल वर्क्स	१,६००
(६) मैसूर केमिकल और फटलाइजर	२,२५०
(७) धर्मसी मुरारजी केमिकल कंपनी, बंबई	९५०

मैसूर केमिकल, ताता, बंगाल केमिकल, आसाम आइल कंपनी और सोनावाला इंडस्ट्री—ये पांचों स्पर-प्लान्ट द्वारा अम्ल तैयार करते हैं और इनका उत्पादन सारे उत्पादनका दो तिहाई होता है। चार हमारे यहांके प्लान्टोंका उत्पादन-क्षमता निम्न प्रकार थी.—

सन्	उत्पादन (टन)	क्षमता (टन)
१९३७-३८	२६,७५५	५७,०००
१९४१-४२	४२,९०९	
१९४३-४४	५९,०००	६५,०००

लड़ाईके समय इस अम्लका सैनिक और असैनिक व्यय १५,००० टन आंका गया था। सन् १९४८ में उत्पादन ५९.०००-टन था, जिसे आगे ७७,००० टन तक बढ़ाया गया।

दूसरे देशोंमें गंधकिक अम्ल (सलफ्युरिक एसिड) का मुख्य उपयोग अमोनियम सल्फेट तथा सुपरफास्फेट जैसे रासायनिक खादोंके बनानेमें होता है। सोवियत रूसमें इस अम्लका उपयोग ७० प्रतिशत खादमें होता है। हमारे कृषि-प्रधान विशाल देशमें सन् १९४३ ई० में ७३,५०० टनकी उपजमेंसे केवल १९,७०० टन खादमें उपयुक्त हुआ।

इस अम्लका कच्चा माल गंधक है, जो मुख्यत: सिसिली तथा जापानसे आता था। जावा, इताली तथा यु० रा० अ० से भी कुछ कंपनियाँ मंगाती थीं। गंधकके लिये भारत विदेशी आयातपर निर्भर करता है।

जिप्समसे गंधकिक अम्ल बनाया जा सकता है। मद्रासमें प्रतिदिन ३५ टन अम्ल बनाने वाला एक कारखाना स्थापित किया गया है।

सन् १९४६-४७ ई० में तीन प्लान्टोंने पूरा उत्पादन शुरू किया, जिनकी उत्पादन क्षमता प्रति वर्ष ९,००० टन है। केमिकल मेनुफेक्चरिंगके प्लान्टने भी काम शुरू कर दिया। ट्रावनकोर के फर्टेलाइजर-केमिकल प्लान्टने भी अब काम शुरू किया है। इसकी क्षमता प्रतिदिन ७० टन है। देशके सारे कारखानोंकी वार्षिक क्षमता एक लाख टन है, किंतु स्वावलंबी होनेके लिये हमें डेढ़ लाख टन वार्षिक का उत्पादन चाहिये, जिसके लिये कुछ और कंपनियोंको लाइसेंस दिया गया है।

—(I. B. pp. 220-32, 356)

(२) **हैड्रोक्लोरिक एसिड**—इस रसायनके बनानेवाले कारखानोंका उत्पादन प्रति वर्ष ३,००० टन है। इसमे क्लोरिन (ब्लीचिंग पाउडर), जिंक क्लोराइड, फेरिक क्लोराइड आदि बनाये जाते हैं, जिनका वार्षिक व्यय क्रमशः १,५०० और ३०० टन है।

(३) **नित्रिक एसिड**—इस अम्लके संबंधमें देश प्रायः स्वावलंबी है। विस्फोटक बनानेमें इसका महत्त्व सल्फ्युरिक एसिड जैसा ही है। टकशालोंको भी थोड़ी मात्रामें इसकी आवश्यकता होती है। अमोनियम नित्रेत रसायनिक खादके लिये अत्यावश्यक है, जिसकी अनिवार्यता अन्न-समस्या हल करनेमें स्पष्ट है। एक प्रक्रियासे बिना गंधकके भी यह अम्ल तैयार किया जा सकता है, जो भारतके लिये अधिक महत्त्व रखता है।

फास्फोरस, क्रोमिक, एसेटिक, कार्बोनिक, सिट्रिक आदि दूसरे एसिडोंकी भी देशमें ५ से ५०० टन तक की आवश्यकता है, और उनमेंसे बहुतोंका उत्पादन हमारे यहाँ नहींके बराबर है, इनके कच्चे माल प्रायः सारे देशमें प्राप्य है।

२. **अलकाली—**

(१) **चूना**—सन् १९३७ ई० में अमेरिकाके भिन्न-भिन्न उद्योगोंमें चूनेका खर्च निम्न प्रकार था:—

काँच	१,६७,४३८
धातु	६,९४,८१४
कागज	४,४७,७२८
चीनी-शोधन	२१,२११
चर्म-शोधन	६१,५४४
जल-शोधन	२,१२,२१३
गृह-निर्माण	९,४८,५३३
कृषि	८,०६,४६२
अमोनिया सोडा	२०,४५,०००
दूसरे काम	९९,४८,५३३
	५९,५३,४७६

एक टन सीमेंट बनानेमें ३ टन चूनेकी आवश्यकता होती है। हाल तक उद्योग-धन्धोंमें इसका उपयोग केवल कागज (१० से १२ हजार टन) और चीनी की मिलों (२,००० टन) तक ही सीमित था। हमारे यहाँ का चूना निम्न कोटिका होता है, जिसमें सुधार करनेकी आवश्यकता है।

चूनेसे अमोनियम सल्फेट, उससे अमोनिया और उससे नित्रिक एसिड तैयार किया जाता है। यह युद्धके समय विस्फोटक बनानेमें बहुत काम आया। प्रति वर्ष २० हजार से २५ हजार टन तक चूना क्लोरिन (ब्लीचिंग पाउडर) तथा सोडियम कार्बोनेटके बनानेमें लगता है।

(२) **सोडा-भस्म**—सोडा-भस्म और कास्टिक-सोडाको प्रायः अल्कालीके नामसे पुकारा जाता है। यह दोनों चीजें बहुतसे उद्योगोंके लिये आवश्यक उपादान हैं। सोडा-भस्मका बहुत भारी परिमाणमें उपयोग कांच, साबुन, कास्टिक सोडा, पल्प, कागज, कपड़ा मिल आदिमें होता है। कुछ देशोंमें इसका उत्पादन (मेट्रिक टन) निम्न प्रकार था:—

यु० रा० अ०	३०,००,०००	इताली	३,८७,०००
इंगलैंड	१५,००,०००	जापान	२,५०,०००
जर्मनी	१२,५०,०००	कनाडा	८३,०००
फ्रांस	७,१०,०००	चीन	८०,०००
रूस (?)	५,७०,०००	आस्ट्रेलिया	३०,०००

भारतमें इसका वार्षिक व्यय १,००,००० टनका है। जिसमें आधा नहाने धोने (साबुन) में काम आता है, कांचमें इसका खर्च २५ प्रतिशत और कागज-उद्योगमें १२-१३ प्रतिशत। हमारे कारखानोंकी क्षमता यद्यपि ७०,००० टन वार्षिक है, किंतु उत्पादन इसका आधा ही होता है। सन् १९४४-४५ ई० में ७८,३४५ टन सोडा-भस्म बाहरसे मंगाया गया। हालमें तीन और फर्मोंको प्लान्ट खड़ा करनेकी इजाजत दी गयी है, जिनकी क्षमता ३६,००० टन होगी।

सोडा-भस्मके कच्चे माल हैं, नमक, चूना, कोयला और कोक। ठंडा करनेके लिये प्रचुर परिमाणमें जल भी चाहिये। १ टन सोडा-भस्म बनानेमें ५ टन कच्चे मालकी आवश्यकता होती है। इसीलिये इसके प्लान्ट कच्चे मालके स्रोतोंके पास स्थापित करने पड़ते हैं। मीठापुर (सौराष्ट्र) में नमक और चूनेका सुभीता है, इसलिये ताताने वहाँ अपना कारखाना खोला है। सोडा-भस्मकी कुछ बड़ी कंपनियाँ तथा उनकी वार्षिक क्षमता निम्न प्रकार हैः—

	पूंजी	सोडा-भस्म (टन)
ध्रांगध्रा केमिकल	२२,००,०००	१८,०००
ताता केमिकल	१,५२,१५,२८०	३६,०००
मेत्तूर केमिकल	२५,९९,५००	

एक टन सोडा भस्म बनानेमें कच्चेमालका व्यय निम्न प्रकार होता है:—

नमक	१.५	टन
चूना	१.२	,,
कोक (७ सैं० पत्थर)	०.०९५	,,
कोयला	०.८१	,,
अमोनिया (क्षय)	२.४	किलोग्राम

सन् १९४८ ई० की प्रथम दो तिमाहियोंमें देशमें इसका उत्पादन ५,२६५ और ६,७९७ टन हुआ।

—(I. B. pp. 240, 3501, land S. P. 6–84)

(३) **कास्टिक सोडा**—कृत्रिम रेशम (रायोन), साबुन, कपड़ा-मिल, कागज, तेल-शोधन आदिके लिये आवश्यक है। यह रासायनिक अथवा विद्युत-प्रक्रियासे तैयार किया जा सकता है। देशके वार्षिक व्यय (५०,००० टन) का आधा (२५,०००टन) साबुन और ग्लेसरिन बनानेमें लगता है, और कपड़ा-मिलोंमें १८,००० टन, कागज-मिलोंमें ६,००० टन खर्च होता है।

द्वितीय महायुद्धसे पूर्व कास्टिक सोडाका उत्पादन हमारे यहाँ नहीं सा था। कुंदिरा (ट्रावनकोर) की फैक्टरी सिर्फ ३०० टन (वार्षिक) पैदा करती थी। सन् १९४६ई० में विद्युतिक प्रक्रियासे कास्टिक सोडा बनाने-वाले ५ टन रोजकी क्षमताके तीन प्लान्ट स्थापित किये गये। आज देशका वार्षिक खर्च ६०,००० टन है। सन् १९४८ ई० की प्रथम दो तिमाहियोंमें हमारा उत्पादन ९८० टन और १,१०६ टन था, अर्थात् अब भी हम एक तिहाई कास्टिक सोडाके लियेपर मुखापेक्षी हैं।

(४) **पोटासियम क्लोरेट**—इसके संबंधमें देश स्वावलंबी है, किंतु यह द्वितीय महायुद्धके समयसे ही। पोटासियम क्लोरेटका अधिक उपयोग दियासलाई बनानेमें है। भारतीय दियासलाई उद्योगमें इसका १,५०० से १,७०० टन वार्षिक व्यय है। सैनिक कामोंके लिये विस्फोटकमें भी २० टनका खर्च होता है।

(५) **क्लोरिन**—बिजली द्वारा कास्टिक सोडा बनाते वक्त क्लोरिन भी साथमें बनती है। एक टन कास्टिक सोडाके साथ ०.८८ टन क्लोरिन मिलती है। क्लोरिनसे तिगुना ब्लीचिंग पाउडर बनता है। ब्लीचिंग पाउडर (धुलाई-चूर्ण) कागज, कपड़ा-मिल, घाव बाँधने, सार्वजनिक स्वास्थ्य आदिमें उपयुक्त होता है। हमारे देशमें ५,४०० टन ब्लीचिंग पाउडर कागज-मिलोंमें, ३,६०० टन कपड़ा-मिलों तथा शल्य-चिकित्साके

लिये, १,८०० टन सार्वजनिक स्वास्थ्यके कामोंके लिये और ३०० टन क्लोरोफार्म तथा दूसरे रसायनोंके निर्माणमें खर्च होता है। इस प्रकार वार्षिक खर्च ११,००० टन है। सन् १९४५-४६ ई० में ७,९८५ टन क्लोरिन बाहरसे मंगायी गयी। सन् १९४८की पहिली और दूसरी तिमाहियोंमें क्रमशः ७०० और ६६० टन ब्लीचिंग पाउडर बनाया गया। मेत्तूर केमिकल और ताता केमिकल दो बड़ी कंपनियाँ हैं, जो ब्लीचिंग पाउडर और क्लोरिन बनाती हैं। मेत्तूर केमिकल की ब्लीचिंग-पाउडर बनानेकी क्षमता २५०० टन और ताताकी ४,५०० टन है। रोहतास-उद्योग भी १,२५० टन ब्लीचिंग पौडर तैयार कर सकता है। ग्सिरामें ३,००० टनकी क्षमता-वाली एक नयी फैक्टरी बनी है। जो फैक्टरियाँ खुल चुकी हैं, यदि वे पूरी क्षमता भर उत्पादन करें, तो देश स्वावलम्बी हो सकता है।

(६) **फिटकिरी**—नियंत्रण-कालमें फिटकिरीका वार्षिक खर्च १३,००० टन था, जिसमें ३,६०० टन सार्वजनिक स्वास्थ्य, ८,४०० टन कागज, १,००० टन कपड़ा-मिलों और दूसरे कामोंमें खर्च होता था। बरसातके दिनोंमें जब, कि नदियों और जलनिधियोंका पानी मटमैला हो जाता है, फिटकिरीकी अधिक मात्रामें अवश्यकता होती है।

फिटकिरीका उत्पादन सन् १९३८-३९ ई०में ४,५०० टन, १९४२-४३ में ९,४०० टन और १९४४-४५ में १०,५०० टन था, बक्साइट और सलफ्यु-रिक एसिड फिटकिरीके लिये आवश्यक उपादान हैं। मध्यप्रदेश या रीवाँमें इसकी नयी फैक्टरियाँ स्थापित की जा सकती हैं, क्योंकि वहाँ बक्साइट और कोयला सुलभ हैं।

(७) **बायोक्रोमेट**—द्वितीय विश्वयुद्धके दबावके कारण सोडियम और पोटासियम बायोक्रोमेट-इन दो महत्त्वपूर्ण भारी रसायनोंका उत्पादन भारतमें हुआ। खाकी रंगनेमें बायोक्रोमेटकी बड़ी आवश्यकता है। चमड़ा सिझानेमें भी इसकी आवश्यकता पड़ती है। रंग-उद्योगमें पीले और हरे रंगके उत्पादनमें भी इसकी थोड़ी मात्रामें आवश्यकता होती है। दियासलाई उद्योग प्रति वर्ष ६० टन पोटासियम-बायोक्रोमेट खर्च करता है। युद्धसे पहिले १,००० टन बायोक्रोमेटका खर्च था, जो सभी बाहरसे मंगाया जाता था। सन् १९४३ ई०में कपड़ा-मिलोंने ४,६८० टन, चमड़ा-कारखानोंने ६०० टन, क्रोमरंगने ६०० टन, दियासलाईने ६० टन, क्रोमिक-अम्लने ५० टन बायोक्रोमेट खर्च किया। आजकल सारे भारतमें एक दर्जनके करीब ऐसे कारखाने फैले हुए हैं, जिनकी उत्पादन क्षमता ४००

टन प्रतिमास है। इनमेंसे कुछ हैं—मद्रासकी बकिंघम और कर्नाटक मिलें (१,२०० टन), कानपुर केमिकल (१,२०० टन), प्रीमियर क्रोमेट, बंबई (९०० टन) केप केमिकल, ज्वालापुर (६०० टन), मद्रास और मैसूर १२० टन, उत्तर-प्रदेश १५० टन, बंबई ११० टन, कलकत्ता ३० टन, नागपुर ५ टन बायोक्रोमेट पैदा करते हैं। शाँतिकालमें हमारा खर्च २,००० टन वार्षिक था। अब अतिरिक्त उत्पादनको बाहर भेजनेकी आवश्यकता होगी। क्रोम-ओर बिहार और मैसूरमें बड़े अच्छे किस्मकी मिलती है। वहाँ सोडा-भस्म, चूना और सलफ्युरिक एसिडके भी स्रोत पास हीमें मौजूद हैं।

३. कुछ अन्य रसायन—

(१) भिन्न-भिन्न उद्योगोंके लिये आवश्यक कुछ दूसरे रसायनोंका वार्षिक खर्च और उत्पादन निम्न प्रकार है:—

रसायन	उपयोग	टन खर्च (टन) वार्षिक	उत्पादन
सोडियम सल्फेट	कागज, कपड़ा आदि	१०,०००	७,०००
फेरस सल्फेट	रंग, स्याही-निर्माण	२,५००	२,५००
एप्सम साल्ट	औषध, कपड़ा-मिल	३,५००	३,५००
मग्नेसियम् क्लोराइड	कपड़ा-मिल	थोड़ी मात्रामें निर्यात	
सोडियम् सल्फाइट	रंगना और चमड़ा सिझाना	१,५००	३,०००
कलिसयम् कर्बाइड	एसिटेलिन्-उत्पादन	३,०००	३४०
ताम्र सल्फेट	कृषि, बस्ता (बोरा)	२,०००	९००
ग्लेसरिन	औषध, कपड़ा-मिल, विस्फोटक	७५०	२,५००
फार्मलडिहाइड	अनेक	१५०	६०
सोडियम सल्फाइट आदि	फोटोग्रफी, रंगाई और चर्म	२००-६००	पर्याप्त

ताता-तेल-मिल, लीवर-बादर्स, गोडरेज-साबुन-वर्क्स और स्वस्तिक-तेल-मिल ये चार बड़े कारखाने साबुन उत्पादक ग्लेसरिन बनाते हैं। भद्रावती लौह-फौलाद-कार्य फार्मलडिहाइड पैदा करता है। सोडियम-सल्फाइट, वाई-सल्फाइट और थियोसल्फेटका सबसे बड़ा उत्पादक कानपुर-केमिकल है। एसेटिलिनकी बनानेवाली दो फर्में ५,५ सौ टनकी क्षमता रखती हैं। बिड़लोंने भी आसनसोलमें लड़ाईके समय एक कारखाना खोलना चाहा था।

(२) **ऑक्सी एसिटिलिन**—द्वितीय महायुद्धसे पूर्व केवल जमशेदपुर तथा कर्गालीमें आक्सीजन फैक्टरियाँ थीं। युद्धके कारण १९४० में ९ और फैक्टरियाँ खुल गयीं, (२ बंगलोर, १ जमशेदपुर, २ कानपुर और २

बिविनपुर)। सैनिक उच्च-उड़ानमें श्वास लेनके लिये १९४३ में डिब्रूगढ़में एक आक्सीजन-उत्पादक फैक्टरी खोली गयी।

(३) कोयला-कार्बनीकरण

(क) कोक—कार्बनीकरण एक आधारिक उद्योग है, जिसकी मुख्य उपज कोक है; किंतु उसके साथ इसकी कितनी ही आनुषंगिक उपजें बड़े महत्त्वकी हैं। यह उपजें बहुतसे उद्योगोंमें कच्चे मालका काम देती हैं। कोयलेके कार्बनीकरणके लिये उसे बड़े तापमानमें तपाया जाता है, जिससे कोयलेके भीतरकी और चीजें निकल आती हैं, और उसका कड़ा भाग कोक बाकी रह जाता है, जिसमें कार्बनकी मात्रा अधिक होती है। कार्बनीकरणके लिये ९००°–१३००° सें० ८००° सें० और ५५०°–७५०° सें० का तापमान चाहिये। उच्च तापमानमें कड़ा कोक उत्पन्न होता है, जिसकी आवश्यकता धातु उद्योगमें होती है। आनुषंगिक उपज बेन्जीन और कोलतार है। मध्यम तापमानमें घरू इस्तेमालके लिये धूमहीन कोक तैयार होता है।

भारतमें कोकका उपयोग अधिकतर लौह-फौलाद कारखानोंमें होता है। सीमन कार्बान कंपनीने सन् १९०९ ई० में गिरिडीहमें पहिला कोक कारखाना खोला। आज वहाँ प्रतिदिन ३०० टन क्षमताके ५० भट्ठे काम कर रहे हैं। इसके बाद लोयवाद, जमशेदपुर, बरारी, भवरा, कुलती-हीरापुरमें भी कोकके भट्ठे बने। ताता लौह-फौलादका भट्ठा प्रतिदिन ३२०० टन कोक बनाता है। यह ब्रिटिश साम्राज्यका सबसे बड़ा कोक प्लान्ट माना जाता था।

सन् १९३८ ई० भारतमें कोयला कार्बनीकरणकी मात्रा निम्न प्रकार थी:-

कोयला-स्रोत	टन
झरिया	२२,५७,३२८
गिरिडीह	६२,६४३
रानीगंज	६३,७४२
बोकरो	११,९५५
लक्ष्मीपुर	२२८९
	२३,९७,९५७

इनमें १९,२०,०८७ टन कोक दोनों लौह-फौलाद कंपनियाँ बनाती है। सिंदरी (बिहार) की खाद फैक्टरी कोकसे निकली आनुषंगिक उपज २ लाख टन आमोनियम-सल्फेट बनायेगी। आजकल कलकत्ता और बंबई में दो कंपनियाँ ताप-ईंधनके लिये कोयलेकी गैस बनाती हैं।

(ख) कोलतार– कार्बनीकरणकी आनुषंगिक उपज है। आजकल उसका रंग, विस्फोटक और औषध-निर्माण तथा दूसरे उद्योगोंमें बहुत उपयोग होता है। भारतमें कोलतारकी उपज ८८,०००टन प्रति वर्ष है। कोक बनानेवाले कोयले में २५ प्रतिशत कोलतार निकलता है। भारतीय कोयलेका कोलतार युरोप और अमेरिकाकी अपेक्षा आधा होता है। कारण, भारतीय कोयलेमें उसकी मात्राकी कमी है। कलकत्ता और बंबईकी कोयला-गैस कंपनियाँ ९८,५०० टन कोलतार पैदा करनेकी क्षमता रखती हैं। भारतमें कोलतारकी उपज (टन) निम्न प्रकार थी–

सन्	उत्पादन	मूल्य (रुपया प्रति-टन)
१९३५-३६	५७,५००	८३
१९३७-३८	५८,०००	५०
१९३९-४०	६२,५००	५५
१९४१-४२	३८,२५०	६५
१९४२-४३	५१,५००	६५
१९४३-४४	३८,५००	६५

उत्पादनकी कमी कोयलेकी कमीके कारण हुई। उत्पादकोंने कुछ कोलतारको फौलादके भट्ठोंमें ईंधनके रूपमें जला भी दिया। कोलतार तैयार करनेवाली कंपनियाँ हैं:–

(१) बरारी कंपनी, कुसुंडा।

(२) शालीमार तार प्रोडक्ट, लोदना।

(३) बंगाल केमिकल, पानीहाटी।

सन् १९३९ ई० से पहिले यह कंपनियाँ सड़कका कोलतार, कृमिनाशक तथा काली पैदा करती थीं। अब उन्होंने शोधित नेप्थेलिन, फेनल और क्रेसिलिक-एसिड बनाना आरंभ किया है।

(४) आनुषंगिक उपज–कोकके भट्ठेसे जो दूसरी आनुषंगिक उपज होती है, उसमें अमोनियम-सल्फेट स्फटिक भी एक है। कोकसे प्रति-टन साढ़े १२ सेर अमोनियम सल्फेट तैयार होता है। झरिया, गिरिडीह, हीरापुर, और जमशेदपुरमें इसकी फैक्टरियाँ हैं।

बेन्जीन, तोलयेन और क्साइलिन भी कोक बनाते वक्त पैदा होती है। इनके मिश्रणसे बेन्जोल तैयार किया जाता है। एक टन कोयलेसे २ गैलन अशुद्ध बेन्जोल तैयार होता है। नेप्थलिन भी यहींसे निकलती है। बेन्जोल-को मोटरमें इस्तेमाल किया जा सकता है। बरारी कोक कंपनीने बेन्जोल

निकालनेका पहिला कारखाना सन् १९२० ई० में कायम किया, जिसकी वार्षिक क्षमता एक लाख गैलनकी है। ई० आई० आर० ने इसी तरहका एक प्लान्ट गिरिडीहमें स्थापित किया। द्वितीय महायुद्धमें विस्फोटकके लिये तोलुयेन और मोटर-इंजनके लिये बेन्जोलकी माँग बढ़ गयी थी, इसलिये जमशेदपुर और हीरापुरके दोनों फौलाद-कारखानोंमें सरकारने दो बेन्जोल बनानेके कारखाने स्थापित किये। यह प्रति वर्ष २० लाख गैलनकी क्षमता रखते हैं। सड़कका कोलतार हमारे यहाँ सन् १९३३ ई० में २२,००० टन पैदा हुआ, जो सन् १९४९ ई० में ८६,००० टन हो गया।

क्रेओसोट तेल—यह कोककी एक आनुषंगिक उपज है, और काठको सुरक्षित और मजबूत करनेके लिये बहुत उपयोगी है। युद्धसे पहिले १,५०० टन क्रेओसोट काष्ठ-संरक्षणमें इस्तेमाल किया जाता था।

कोलतार—अम्लका एक बहुत महत्त्वपूर्ण भाग फेनल है, जो कृमि-नाशक औषधि तथा रंगोंके बनानेमें इस्तेमाल किया जाता है। नित्रीकरण करनेपर इससे उग्र विस्फोटक पिक्रिक-एसिड बनता है। फोटोग्राफीके डेवलपरके बनानेमें भी इसकी आवश्यकता होती है।

युद्धकालमें फेनल और क्रेओसाइलिक अम्ल भारतमें बनाये जाने लगे। ९०,००० टन कोलतारसे १८० टन फेनल, २१० टन क्रेसोल और ३७० टन उच्च तार-अम्ल निकलता है। युद्धसे पहिले फेनलका वार्षिक खर्च ३५ टन था, किंतु प्लास्टिक उद्योगकी स्थापनाके कारण अब इसका व्यय बढ़ गया है।

नेप्थलिन कृमिनाशक है, जो कपड़े और चमड़ेकी रक्षाके लिये उपयुक्त होती है। आजकल इसकी वार्षिक उपज ६०० टन है, यद्यपि ९०,००० टन कोलतारसे ३,६०० टन नेप्थलिन तैयार की जा सकती है। बेन्जीन प्रति वर्ष २२ लाख टन निकाली जा सकती है। इसे रंग, वार्निश, पालिश आदिमें भी इस्तेमाल किया जाता है।

तोलुयेन सबसे उग्र विस्फोटक त्रिनित्रो तोलुयेन (T. N. T.)के बनानेमें आधारभूत है। कितने ही रंगों और दवाइयोंके बनानेमें भी इसका उपयोग होता है। आजकल भारतमें ८.५ लाख गैलन तोलुयेन प्रति वर्ष उत्पन्न होती है।

रंगके निर्माणमें कोलतार उद्योगकी आनुषंगिक उपज बहुत उपयोगी है। अंग्रेजी इम्पीरियल केमिकल तथा ताता मिलकर रंगका एक बड़ा कारखाना खोलने जा रहे थे।

६ काष्ठ-उद्योग

खनिज संपत्ति एक बार नष्ट हुई फिर नहीं तैयार की जा सकती, किंतु जंगलके रक्षण-बंधनसे काष्ठ-संपत्तिको पुनः बढ़ाया जा सकता है। यद्यपि हमारे यहाँ कुछ शताब्दियोंसे जंगलोंके साथ अच्छा बर्ताव नहीं हुआ, तो भी देशमें अब भी एक चौथाई क्षेत्रफलसे अधिक भूमिमें जंगल है। काष्ठ कितनी ही प्रकारकी औद्योगिक उपजका कच्चा माल है। प्लाईवूड (कृत्रिम फलक), गोंद (बिरोजे), ताप और दबाव द्वारा साधारण काष्ठोंसे बनाया जाता है, किंतु उसका गठन न तापसे अलग होता है न आर्द्रतासे। कितने तख्ते तो अलमुनियमसे भी हल्के तथा फौलादसे भी अधिक दृढ़ होते हैं। अब तो विमानोंमें भी इसका बहुत उपयोग होने लगा है।

आधुनिक अनुसंधानोंसे ऐसे ढंग मालूम हुये हैं, जिनसे सफेद तथा सेमल जैसे साधारण काष्ठ भी बान या बबूल जैसे दृढ़ बनाये जा सकते हैं। कागज और कृत्रिम रेशम ही नहीं कृत्रिम शर्करा भी काष्ठसे बनती है।

१. आराकशी—

महायुद्धसे पूर्व आराकशीका उद्योग बहुत अविकसित अवस्थामें था। मलाबार, आसाम और बंगालके कुछ जिलोंको छोड़कर आराकशीमें आधुनिक मशीनोंके उपयोगका अभाव सा था। युद्धमें काष्ठकी माँग बढ़ी। केंद्रीय सरकारने पूना, खंडवा और सिवनीमें आधुनिक आरा-मिलें स्थापित कीं, जिनका मुख्य कार्य था, विस्फोटकोंके भेजनेके लिये बक्स तैयार करना। इन मिलोंकी अधिकांश आरा-मशीनें पंजाबमें बनायी गयीं। बाहरसे मंगाकर दो आरा-मिलें बंबई और एक कलकत्तामें स्थापित की गयीं।

२. कृत्रिम फलक (प्लाईवूड)—

काष्ठ तंतुओंके स्तरको एकके ऊपर एक समकोणपर बिछाकर और गोंद द्वारा चिपकाके दबा दिया जाता है, यही कृत्रिम फलक है। सेमल, आम आदिकी लकड़ी इसके बनानेके काममें लायी जाती है, गोंदका काम मथे दूधकी आनुषंगिक उपज कसेनसे लिया जाता है, जो बंबईकी ओर हजार टन प्रति वर्ष प्राप्य है। सोया, मूंगफली और रेंडीकी प्रोटीन भी इसके लिये काममें लायी जाती है।

भारतमें पहिली प्लाईवूड-मिल सन् १९१८ ई० में आसाममें (आसाम-सामिल) स्थापित हुयी। सन् १९२४ ई० में आसाम रेलवे और ट्रेडिंग कंपनी-की मिल कायम हुयी। यह दोनों मिलें प्रति वर्ष ७,२०,००० चाय-संदूकें बनाती हैं। तीसरी फैक्टरी मलाबार-तटपर (कल्लाई) में कायम हुयी,

जो प्रतिवर्ष तीस लाख वर्गफीट तख्ते तैयार करती है। द्वितीय महायुद्धने इस उद्योगको बहुत प्रोत्साहित किया। सीतापुर (उत्तर-प्रदेश) की मिल विमानों तथा पोतोंके उपयोगके तख्ते तैयार करती है। युद्धकालमें सब मिलकर छोटी बड़ी ८० फैक्टरियाँ काम करती थीं, जिनमें ४३ के करीब अब भी काम कर रही हैं:—

राज्य	फैक्टरियां	वार्षिक क्षमता (लाख वर्ग फुट)	१९४६ उत्पादन (लाख वर्गफुट)
आसाम	३	१४७.५०	१०८.२९
बंगाल	९	६७.५०	२७.८९
बिहार	२	२२.२५०	६.४३
बंबई	२	८५.००	२२.६१
मद्रास	१२	१५.००	४८.९०
उत्तर-प्रदेश	३	३०.००	१४.३६
उड़ीसा	१	७.५०	१.०७
पंजाब	१	७.५०	..
मैसूर राज्य	२	३७.५०	११,४८
कोचीन	२	३३.७५	१४.५०
ट्रावनकोर	४	४८.७५	१८.२९
कूचबिहार	२	१५.००	१३.३८
	४३	६१२.५०	२८७.२०

सन् १९४४ ई०में उत्पादन सबसे अधिक अर्थात् ५ करोड़ वर्गफुट हुआ। सन् १९४६ ई० में वह ६ करोड़ वर्गफुट रहा। सन् १९४८ ई० की प्रथम तिमाहीमें वह ११४.६ लाख वर्गफुट था। हमारा साधारण खर्च १० करोड़ वर्गफुट चाय संदूकोंके लिये है और ५ करोड़ दूसरे व्यापारिक कामोंके लिये। इस उद्योगकी कितनी ही मशीनें देशमें बनायी जाती हैं।

३. पल्प-निर्माण—

उद्योगका मुख्य कार्य है, सेलूलूज तैयार करना, जिससे कागज, रायोन (कृत्रिम रेशम), सेलूलायड, विस्फोटकके लिये नित्रेतित सेलूलूज, प्लास्टिक आदि तैयार किये जाते हैं। पीत देवदार, सफेद, पदुमकाठ, भुर्ज, सेमल आदिके नरम काष्ठोंसे पल्प बनायी जाती है। पल्पोपयोगी नरम-काष्ठ भारतमें कश्मीर तथा हिमालयमें मिलते हैं, किंतु वहाँसे उनका लाना कठिन है। लेकिन बाँस भी उसके लिये बहुत उपयुक्त है। (गन्नेकी खोईका भी पल्प बनता है।) बाँसके अच्छे जंगल बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मैसूर, ट्रावनकोर, मद्रास, हैदराबादमें मौजूद हैं।

सन् १९२२ ई० से हमारे यहाँ पल्पनिर्माण आरंभ हुआ और सन् १९३० ई० तक उसमें तरक्की होती गई। द्वितीय महायुद्धके समय प्रति वर्ष ३०,००० टन पल्प पैदा होता था। ३ टन बाँससे १ टन पल्पके हिसाबसे सन् १९४४ ई० में ६० से ७० हजार टन पल्प तैयार हुआ। मुख्य पल्प फैक्टरियाँ हैं—टीटागढ़ पेपर मिल्स, इंडिया पेपर, रोहतास उद्योग, बंगाल पेपर, ओरियेंट पेपर, सिलेपुर पेपर, मैसूर पेपर, पुनालूर पेपर और आँध्र पेपर। युद्धके बाद रायोनकी ओर भी ध्यान दिया गया। ट्रावनकोर रायन तथा हैदराबादकी नेशनल रायन कंपनियाँ स्थापित हुयीं। वर्तमान समयकी कागजकी उपजको ड्योढ़ा करनेकी भी योजना बनाई गयी है। मध्य-प्रदेशमें न्यूज-प्रिंट (अखबारी कागज) मिल खुलने जा रही है।

सन् १९४८ ई० की तृतीय तिमाहीमें कागजकी उपज २२,९६९ टन थी। देशमें कागजकी बहुत कमी है। सरकारी खर्चके लिये प्रति वर्ष २,००० टन कागज बाहरसे मंगाया जाता है, हमारा वार्षिक व्यय २ लाख टन है जबकि वार्षिक उपज १,२०,००० टन (सन् १९४७-४८ ई० में केवल ९३,२२७ टन) है।

कागज मिलोंका केंद्र हुगली जिले (बंगाल) में टीटागढ़ है, यहीं हमारा आधा कागज बनता है। यहाँ पहिली मिल मिशनरियोंने स्थापित की थी। दालमिया नगरमें दालमियाकी और ब्रजराजनगर (संभलपुर, उड़ीसा) में बिड़लाकी कागज मिलें हैं। लखनऊ और अम्बालामें भी कागज मिलें हैं। दक्षिण भारतमें भद्रावती (मैसूर) और ट्रावनकोरमें मिलें हैं, और बंबईमें पूना, बंबई और अहमदाबादमें।

४. **दियासलाई—**

काष्ठ इसका प्रधान कच्चा माल है, इसलिये जहाँ नरम काष्ठ सुलभ है, वहीं यह उद्योग देखा जाता है। दियासलाईके मुख्य केंद्र हैं—चौबीस-परगना (बंगाल), रामनद (मद्रास), ठाणा (बंबई) के जिले। कमकरोंके २८.९ प्रतिशत बंगालमें, ६.५ प्रतिशत उत्तर-प्रदेश, ३.७ आसाम और २.३ पंजाब कारखानोंमें काम करते हैं, बाकी बंबईमें २६.२ प्रतिशत मद्रासमें २२.४ प्रतिशत और हैदराबादमें ७.२ प्रतिशत। सन् १९४८ ई० की प्रथम तीन तिमाहियोंकी उपज क्रमशः ८४,८८,२१८ ग्रोस, ८२,९४,९७७; ५३,७८,७४७ थी।

५. **काष्ठ-शुंडन—**

काष्ठके शुंडन (चुवान) में मुख्य उपज काष्ठ-कोयला है।

पहिले हमारे यहाँ कोयला बनानेमे काम था। किन्तु, इससे एसीटोन, एसेटिक एसिड, मिथिल अल्काहल इत्यादि मूल्यवान तथा उपयोगी आनुषंगिक उपज पैदा होती है। काष्ठ चुवानेका एसियामें सबसे बड़ा प्लान्ट भद्रावती (मैसूर) में है, जिसका संबंध मैसूर लौह-फौलाद कारखानसे है। इस प्लान्टकी क्षमता प्रतिदिन ५५० टन कार्बनीकरणकी है, जिससे ५०-६० टन काष्ठ कोयला तथा ३० हजार गैलन काष्ठ चुवान प्राप्त होता है। चुवानेसे एसेटेट कोलतार तथा काष्ठ तैल चुवाने पर मिथिल अल्काहल, कल्सियम एसेटेट निकलता है। कल्सियम एसेटेटसे एसेटिक-एसिड और एसीटोन मिलता है। युद्धके समय देशमें प्रति वर्ष ८०० टन तक एसेटिक-एसिडका खर्च था। इस कारखानेके सारे कल्सियम-एसेटेटको अरुवनकाड़्का कोर्डाइट कारखाना ले लेता था, जहाँ उससे वह अपने कामके लिये एसीटोन तैयार करता था। एसीटोनकी कमीको पूरा करनेके लिये अल्काहलसे एसीटोन बनानेके वास्ते यहाँ ३०० टनकी क्षमतावाली एक फैक्टरी स्थापित की गयी। भद्रावतीका प्लान्ट ६० टन फार्मल्डहाइड तैयार करता है, जो प्लास्टिक गोंदका उपादान है। युद्धके समय ८ लाख टन काष्ठ-कोयला मोटरोंकी उत्पादक-गैसके लिये इस्तेमाल होता था। देशमें ९० लाख टन काष्ठ-कोयलेसे आनुषंगिक उपजके साधनोंके अभावके कारण ९,८९,००० टन काली तथा १५,८८० लाख गैलन मूल्य-वान प्राणिज चुवान बेकार जाती है।

१० चर्म-उद्योग

१. सिझाई–

चर्म भारतका एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथा विशाल उद्योग है। भारतका पशु-धन २५ करोड़ ढोर, और ८.८० करोड़ भेड़-बकरी है, जो कि विश्वके पशु-धनका एक तिहाई है। हमारी वार्षिक उपज २.१ करोड़ गो-चर्म, ५५ लाख महिष-चर्म, २.५ लाख भेड़-बकरी-छाला है। चर्मोमें भैंसका चर्म बहुत मोटा होता है, और उसे जूतेके तल्लेके लिये इस्तेमाल किया जाता है। शूकर छाला बहुत ही दृढ़ होता है और यह जीन आदि बनानेमें काम आता है। और उपयोगी छालोंमें कुत्ता, मगर, घड़ियाल, मृग आदिके हैं। सरीसृपोंके छालोंकी बड़ी माँग है, उनसे मंहगे जूते और बैग बनाये जाते हैं। ढोर-चर्मकी उपजमें भारत प्रथम है, यु० रा० अ० द्वितीय। छालामें चीन प्रथम चला आया है। युद्धसे पूर्व हमारा ४०%

चर्म तथा ५५% छाला बाहर भेज दिया जाता था। आधा चर्म अधसिझा **ही भेजा** जाता था। हमारा चर्म निर्यात निम्न प्रकार था–

सन्	चर्म		कच्चा चमड़ा	
	परिमाण (टन)	हजार रुपया	परिमाण (टन)	हजार रु०
१९२९-३०	२५,२२०	७८,२२५	४८,८९१	७०,२७६
१९३५-३६	३७,९३३	५४,९२३	४२,२६३	३८,७०९
१९३७-३८	५५,९६९	७१,७६५	३९,७२९	४५,९७१
१९३९-४०	५३,९२२	७५,९५९	३०,५३९	३८,८०८

द्वितीय विश्वयुद्धके समय हमारे यहाँ चर्म-उद्योगकी बड़ी प्रगति हुई। भारतीय और दूसरे सैनिकोंके जूते, जीन तथा दूसरी चर्मिक वस्तुओं-की माँग बहुत बढ़ गयी। युद्धसे पहिले काफी जूते बाहरसे–विशेषकर चेकोस्लावाकियासे आते थे। सन् १९३९ ई० में १० लाखके मूल्यके ४,५०,००० जूते बाहरसे मंगाये गये, जिनमें ७० प्रतिशत चेकोस्लावाकिया के थे। युद्धके कारण आयात बंद हो गया, और दूसरी ओर देशमें माँग बढ़ **गयी।** युद्धसे पूर्व सेनाके लिये १ लाख जूतोंकी आवश्यकता होती थी, किंतु सन् १९४२ ई० में यह माँग ५९ लाख और सन् १९४३ ई० में ६६ लाख थी। एकाएक उद्योगका विस्तार करना पड़ा। कानपुरकी कूपर और एलेन कंपनियोंने अपने कामको बढ़ाया, और यह दोनों विश्वके वृहत्तम आत्म-निर्भर जूता कारखाने बन गये। जीनका उद्योग भी दस गुना हो गया। इस प्रकार भारत अपनी विशाल चर्म उपजको तैयार मालके रूपमें परिणत करने लगा। दो लाखसे ऊपर संगठित मजूर चर्म-उद्योगमें काम करते थे, गाँवके चमारों तथा छोटे-मोटे कारखानोंके कमकर इस संख्यामें सम्मिलित नहीं हैं। देशका कपड़ेके बाद यह सबसे बड़ा उद्योग है। इसमें मशीनी, उद्योग और ग्रामके उद्योगका भाग निम्न प्रकार है–

	चर्मसंख्या	प्रतिशत
ग्राम सिझाई	९१ लाख	४३.८
पुरानी ,,	८६ ,,	४१.३
आधुनिक,,	३१ ,,	१४.९
	२०८ लाख	१००

(१) थैला-सिझाई–यह पुरानी प्रक्रिया है, जलंधर इस प्रक्रियासे भैंसके चमड़ेकी सिझाईका भारी केंद्र है। कुछ वृक्ष-छालों और बूटियोंकी सहा-यतासे बिना रंगकी यह सिझाई होती है। ऐसे सिझे चमड़ेसे चप्पल,

मशक, चरसा आदि बनते हैं। चमड़ेको थैलीकी शकलमें सीकर उसमें सिझाईका तरल मसाला रख दिया जाता है, इसलिये इसे थैला-सिझाई कहते हैं। इस चमड़ेमें अप्रीतिकर गंध आती है।

(२) **गड्ढा-सिझाई**—यह कुछ सुधरी हुई सिझाई है, जिसका प्रचार दक्षिण-भारतमें काफी समयसे है। इसमें सिझाईका मसाला प्रायः वही होता है, किंतु थैलेकी जगह चमड़ेको गड्ढेमें रखे मसालेमें डालकर सिझाया जाता है; जिससे चमड़ा अधिक नरम और लचीला हो जाता है, और कड़ी दुर्गंध भी नहीं आती।

(३) **आधुनिक-सिझाई**—इस प्रक्रियासे सिझानेवाले कारखाने वनस्पतिज, प्राणिज तथा खनिज मसालोंको इस्तेमाल करते हैं। खनिज मसाले हैं क्रोमलवण, फार्मलडेहाइड, फिटकरी और क्षार। तितानियम, लोहा, सेरियम और पोटास-क्षार भी सिझाईके उपकरण हैं। पुराने समयके सिझाईके मसाले थे—बबूल और अवारम्की छाल। बबूलकी छालमें १२ से १८ प्रतिशत सिझाऊ तत्त्व है, अवारम्की छालमें १८ प्रतिशत, बहेडेमें ३३ प्रतिशत और दक्षिण-अफ्रिकासे आनेवाले वट्टलमें ३३ से ३५ प्रतिशत।

आधुनिक ढंगकी चमड़ा-फैक्टरियाँ अधिकतर उत्तर भारतमें हैं। इसका कारण है (१) कच्चे चमड़ेकी अधिकतासे प्राप्ति, (२) देशी सिझाव मसालेकी सुलभता, और (३) तैयार मालके लिये बड़ा बाजार। युद्धके समय चर्म-कारखानोंकी संख्या बढ़कर ३० के करीब हो गयी, जिनमें आधे उत्तर-प्रदेशमें हैं। कुछ कारखाने वनस्पति तथा क्रोम दोनोंसे सिझाई करते हैं। ऐसे कारखानोंमें कूपर ऐलन कारखाना सबसे बड़ा है। वनस्पति-सिझाई जलंधर, कानपुर, कलकत्ता, और बंबईमें होती है। क्रोम-सिझाईके केंद्र कानपुर तथा मद्रासमें हैं—मद्रास अधिकतर अपने मालका निर्यात करता है। कलकत्ताके चीनी लोग क्रोम-सिझाईको कुटीर-शिल्पके रूपमें करते हैं।

२. **जूता**—

कानपुरमें कूपर एलेनकी स्थापना सन् १८८१ ई० में हुई। उसकी वार्षिक उपज ६ लाख जोड़ें हैं, जिनमें १ लाख सेनाके लिये जाते थे। बाटा जूता फैक्टरी (बाटानगर, बंगाल) दूसरी बड़ी जूता-कंपनी है। कूपर एलेन युद्धसे पहिले प्रतिदिन २,००० जोड़े जूते बनाते थे, जिसे युद्धके समय उन्होंने ९,००० कर दिया। बाटाने अपना उत्पादन दूना कर दिया।

युद्धसे पूर्व भी रबरके सस्ते बूटका उत्पादन भारतमें बहुत अधिक होता था—हमारी उत्पादन-क्षमता १२० लाख जोड़ा प्रति वर्ष थी। जूतेकी एड़ी-पंजा, आँख-फीता बहुत अधिक परिमाण में बाहरसे आते थे, किंतु युद्धके समय देशमें बनानेके लिये प्रोत्साहन मिला, जिसका परिणाम एड़ी-पंजाकी निम्न उपज है:—

१९४१ से पूर्व	नहीं
१९४१	६९,२०,००० जोड़ी
१९४२	२,४१,७०,००० ,,
१९४३	२,८१,१४,००० ,,

—(I. B. pp. 303-31)

कूपर एलेन तथा बाटाकी भांति दक्षिणमें क्रोम लेदर कंपनी, बड़ी कंपनी है, जिसकी फैक्टरी पल्लावरमके पास क्रोमपेटमें ३०० एकड़ में है। क्रोमसे चमड़ा सिझानेमें इस कंपनीका नंबर प्रथम है।

११ रबर

१. उपज—

परा रबर-वृक्ष संसारके स्वाभाविक रबरके ९०-९५ प्रतिशतका उद्गम है। रबर वृक्षको छेदकर वृक्षमे दूध जमा किया जाता है। घोलकर छाने दूधमें १५से २५ प्रतिशत रबर होता है। भारतका रबर अधिकांश ट्रावनकोर से आता है। पहिले रबरके बाग युरोपियनोंके हाथमें थे, किंतु अब वह अधिकांश भारतीयोंके हाथ में हैं। ट्रावनकोरके अतिरिक्त कोचीन, मलाबार तथा आसाममें भी रबरके बगीचे हैं। रबरके बागोंके क्षेत्रफल तथा उपज की वृद्धि निम्न प्रकार हुई:—

	क्षेत्रफल (एकड़)	उपज (सेर)
१९३०-३५ (औसत)	९२,९००	५९,३५,७५०
१९३५-३६	१,२२,६००	१,३७,७६,९००
१९३८-३९	१,३०,१००	१,५५,३२,९००
१९३९-४०	१,३४,०००	१,५६,९५,३५०

द्वितीय महायुद्धसे पूर्व भारतमें १० से २५ हजार टन रबर पैदा होता था, जिसमें ७,००० टन देशमें खर्च होता, बाकी बाहर भेज दिया जाता था।

२. रबरकी चीजोंका निर्माण—

सन् १९३९ ई० से पहिले ही रबरकी चीजोंका बनानेका काम शुरू हो गया था। भारतमें उपयुक्त होनेवाले रबरका ८०-९० प्रतिशत मोटर-टायर

बनानेमें खर्च होता था। पहिली रबर टायर कंपनी डनलप थी, जिसकी स्थापना सन् १९३५ ई० में (कलकत्ता) में हुई थी। सन् १९३९ ई० में फायर-स्टोनने अपनी फैक्टरी बंबईमें बनायी। युद्धसे पूर्व यह दो कंपनियाँ भारतके लिये आवश्यक सभी टायरोंको बनानेकी क्षमता रखती थीं। सन् १९४८ ई० में इन दोनों कंपनियोंने ३,८०,००० ट्रक-टायर तथा ५०,००० कार-टायर उत्पादित किये। इनके अतिरिक्त उन्होंने १८,७०,००० साइकिल-टायर भी बनाये। विमान-टायरके निर्माणके लिये भी कारखाना खोल दिया गया है। भारतमें छोटे-बड़े ११५ रबर-कारखाने हैं, जिनमेंसे अधिकांश ट्रावनकोर, कलकत्ता और बंबईके आस-पास हैं।

कृत्रिम रबर भारतमें नहीं बनता। सन् १९३९ ई० में सोवियत-रूसमें कृत्रिम रबरकी वार्षिक उपज ५०,००० टन, जर्मनीमें २०,००० टन, यु० रा० अ० ३,००० टन थी। यु० रा० अ० ने सन् १९४४ ई० में अपने उत्पादनको ७,७५,००० टन तक बढ़ाया।

—(I. B. pp. 315-18)

१२ सिमेंट, चीनी मिट्टी

१. सिमेंट

सन् १९१४ ई० में भारतमें केवल ९८५ टन सीमेंट बना था, जो दस साल बाद २,५०,००० टन वार्षिक हो गया। देशमें सीमेंटका उत्पादन निम्न प्रकार बढ़ा—

	उत्पादन (टन)	आयात (टन)
१९३४-३५	७,८१,०००	४९,१८०
१९३८-३९	१५,१२,०००	२१,२१४
१९४०-४१	१७,२७,०००	..
१९४२-४३	२१,८३,०००	..
१९४३-४४	२१,१२,०००	..
१९४४-४५	२०,४८,०००	..
१९४५-४६	२०,७५,०००	

—(I. B. pp. 332-24)

सन् १९४८ ई० की प्रथम तीन तिमाहियोंमें सीमेंट-उत्पादन (टन) निम्न प्रकार हुआ था:—

प्रथम	द्वितीय	तृतीय
३,७५,५३२	३,७४,७५३	३,५६,२५४

—(I and S. P. S.)

(इस प्रकार हमारी वार्षिक उपज १५ लाख टनके बराबर है, जब कि पिछली सरकारने देशकी आवश्यकता ३० लाख टन बतलायी थी ।)

इस समय देशमें निम्न सीमेंट कंपनियाँ काम कर रही हैं–

बंबई	एसोसियेटेड सीमेंट कंपनी,
दालमियानगर	दालमिया सीमेंट कंपनी,
कलकत्ता	आसाम बंगाल सीमेंट कंपनी,
,,	सोन उपत्यका, पोर्टलैंड सीमेंट कंपनी,
विजयवाडा	आंध्र सीमेंट कंपनी ।

अधिकांश सीमेंट फैक्टरियाँ उत्तरी भारतमें हैं । सन् १९३९ ई० में १६ सीमेंट-कार्य थे, जिनमेंसे विहारमें ३, कोसलमें ३, मद्रासमें ३, बंगालमें १ और राज्योंमें ६ थे । हमारे कारखानोंकी क्षमता निम्न प्रकार थी–

ए० सी० के०		
सूरजपुर (अम्बाला)	१,००,०००	टन
द्वारका (सौराष्ट्र)	१,८०,०००	,,
पोरबंदर (,,)	४२,०००	,,
लखेरी (वूंदी, राजस्थान)	२,२०,०००	,,
बनमोर (ग्वालियर)	६०,०००	,,
कैमूर (मध्यप्रदेश)	३,५५,०००	,,
खलाड़े (बिहार)	१,००,०००	,,
चाईबासा (,,)	१,००,०००	,,
शाहाबाद (हैदराबाद)	२,१०,०००	,,
कृष्णा (आंध्र)	८०,०००	,,
मधुकराय (मद्रास)	१,८०,०००	,,
दालमिया[1]		
दबिना ददरी (जिंद)	७०,०००	,,
दालमिया नगर (बिहार)	१,५०,०००	,,
दालमियापुरम् (मद्रास)	७०,०००	,,
दूसरे–		
सोन उपत्यका (बिहार)	२,००,०००	,,
आसाम, बंगाल, सीमेंट (छटक, आसाम)	७०,०००	,,

१ डंडोत (पंजाब, ७०,००० टन) और ट्रीगरोड (सिंध, २,००,००० टन) की दो मिलें पाकिस्तानमें चली गयीं ।

कल्याणपुर लाइन सीमेंट (मद्रास)	४०,००० टन
आंध्र सीमेंट (विजयवाड़ा)	३०,००० ,,
मैसूर लौह-फौलाद, भद्रावती	२०,००० ,,
	२३,७७,००० टन

पिछली सरकारने अविभाजित भारतमें सीमेंटकी उपज ३० लाख तक बढ़ानेकी योजना को निम्न प्रकार बांटा था—

पंजाब	४,५०,००० टन
युक्त प्र देश	१,००,००० ,,
मध्य-प्रदेश	१,००,००० ,,
बिहार	४,५०,००० ,,
सिंध	२,५०,००० ,,
मद्रास	५,३०,००० ,,
आसाम	१,७५,००० ,,
बंगाल	१,२०,००० ,,
भोपाल राज्य	१,००,००० ,,
गंगपुर ,,	१,००,००० ,,
टेहरी ,,	१,००,००० ,,
सिरमोर ,,	१,००,००० ,,
मैसूर ,,	३०,००० ,,
पटियाला ,,	१,००,००० ,,
पोरबन्दर ,,	१,००,००० ,,
वालासिनार ,,	१,००,००० ,,
ग्वालियर ,,	१,००,००० ,,
ट्रावनकोर ,,	५०,००० ,,
जामनगर ,,	१,००,००० ,,
	३१,५५,००० टन

सीमेंट उत्पादनके लिये चूना-पत्थर बहुत अच्छी किस्मका देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें मौजद हैं, अधिकांश कारखाने चूना-पत्थरकी खानोंके पास बने हैं। १०० टन सीमेंट तैयार करनेके लिये १६० टन चूना-पत्थर, ३८ टन कोयला ४ टन जिप्समकी आवश्यकता होती है।

बिहारसे ग्वालियर तक फैली सीमेंट-कक्षा है, जहां ४५ प्रतिशत सीमेंट फैक्टरियां स्थापित हैं ।

—(I. pp. 322-26, I. L. pp. 257-287)

२. **चीनी मिट्टी आदि**—

कुम्हारकी मिट्टीका उपयोग हमारे यहां मोहनजोदड़ो कालसे चला आता है । नये ढंगकी लाल टायल बनानेका काम मंगलोर (कर्नाटक) से आरंभ हुआ, फिर वह मालाबार-तटपर बहुत जगहमें फैल गया । उधर बंगालमें हुगली तट उसका दूसरा केन्द्र बना, जहां बर्फ कम्पनीके कारखानेकी क्षमता ५०,००० टायल प्रतिदिन है । जबलपुर, कटनी, रानीगंज, (बंगाल) आदिमें मोरीके पाइपकी फैक्टरियाँ हैं । धातु गलानेवाले भट्ठोंके लिये आवश्यक अग्निमृत्तिका भारतके बहुतसे भागोंमें मिलती है । रानीगंज, झरिया, जबलपुर, मैसूर, काठियावाड़, हैदराबाद दक्षिण-भारतमें यह मिट्टी पाई जाती है । सबसे अच्छी अग्निमृत्तिका बराकर नदी (बिहार) की धारामें मिलती है, जिससे बहुत अच्छी अग्नि-ईंट तैयार होती है ।

चीनी मिट्टी निम्न स्थानोंमें पायी जाती है—

आसाम—गारो पर्वत,

बिहार—सिंहभूम तथा सरईकेलामें कई स्थान,

बम्बई—केरलगी, बेलगाम,

हैदराबाद

मद्रास—नेलोर जिला,

मैसूर राज्य ।

लड़ाईसे पहिले बहुत सी चीनी मिट्टी विदेशसे मंगाई जाती थी, किंतु द्वितीय महायुद्धमें जब आयात बंद हो गया, तो देशकी मिट्टीपर निर्भर रहना पड़ा । चीनी मिट्टीके आयातके आंकड़े निम्न प्रकार हैं—

	क्वार्टर (१४ सेर)	मूल्य (रुपया)
१९३९-४०	६,६६,४८१	१९,२६,०६८
१९४०-४१	२,७१,५३७	९,२०,८२८
१९४१-४२	१,२३,१५१	६,०२,०२९
१९४२-४३	२३,१५१	६,०२,०२९
१९४२-४३	६३,४३८	३७९,०३०
१९४३-४४	५,४२०	४४,०३७
१९४४-४५	१,८७७	१९,३७५

—(I. B. pp. 123-26)

सन् १९४८ ई० की प्रथम तिमाहियोंकी उपजमें भिन्न-भिन्न प्रकारके भांड निम्न प्रकार थे–

प्याला, प्लेट आदि	२२५ टन
सेनीटरी पात्र	१७५ ,,
पाषाण पात्र	३,८०० ,,
दूसरे	४६५ ,,
	४८० टन

चीनी बरतनके लिये नयी मशीनें मंगायी गयी हैं। विदेशी विशेषज्ञ-भी लाये जा रहे हैं। मोरवीके परशुराम पाटरी वर्कके लिये एक जर्मन विशेषज्ञ मंगाया जाने वाला था।

आधुनिक जगतकी भीतरी सभ्यताके विकासमें फौलाद, सीमेंट और काचके उपयोगका भारी हाथ है। किसी देशकी समृद्धिको उसके काच-उपभोग द्वारा जाना जा सकता है।

१३ कांच-उद्योग

१. उत्पादन–

आधुनिक ढंगके कांच-कारखाने हमारे देशमें सन् १८९० ई० के बाद शुरू हुए। सन् १९१८ ई० में २० फैक्टरियां काम कर रही थीं, जिनमें फिरोजाबादकी चूड़ियोंवाली भी थीं। सन् १९३२ ई० में ५९ कारखाने थे, जिनमें २६ चूड़ियां बनाते थे। उत्तर-प्रदेशकी दो फैक्टरियां कांचकी चादरें बनाती थीं। सन् १९३७-३८ ई० में कांचकी चीजोंका उत्पादन निम्न प्रकार था:–

	उत्पादन	मूल्य (रुपया)
चूड़ियां	१८०००	८० लाख
बोतल,शीशी	४००००	१० ,,
लैम्प चिमनी आदि	,,	२० ,,
मेज के बरतन		८ ,,
कांच चादर	४० लाख व फुट	
औषध-पात्र		२ ,,
वैज्ञानिक साधन	नहीं सा	

काच-उद्योग देशकी ही आवश्यकताकी पूर्ति नहीं करता, बल्कि काफी माल बाहर भी भेजता है। सन् १९३७-३८ ई० में १.२९ लाखका भांड बाहर गया। चूड़ियां बर्मा, सिंहल और ईरान तक गईं। फिरोजा-

बाद चूड़ियोंका केंद्र है। हालमें कुछ ऐसी छोटी फैक्टरियाँ कायम हुई हैं, जो कांच-पिंडको खरीदकर उनसे चीजें बनाती हैं। हमारे यहाँ कांचकी टिकियाँ, मणिका, बोतल, शीशी, मेजके बरतन आदि बनते हैं। बनारसके कांच-अनुसंधान-प्रतिष्ठानने कांचके गुणोंको बढ़ानेमें बहुत काम किया है और अब नये प्रकारकी नकली मोती, अलंकारिक कांच प्लेट, नल, पाइप, आदिका निर्माण होने लगा है। सन् १९३८-३९ ई० में देशमें १०१ कांच कारखाने थे:–

उत्तर-प्रदेश	३८ कारखाने
बंगाल	२८ ,,
रियासतें	११ ,,
बंबई	१९ ,,
पंजाब	३ ,,
मद्रास	१ ,,
दिल्ली	१ ,,
	१०१ कारखानें

द्वितीय महायुद्धने कांच उद्योगको आगे बढ़ानेमें बड़ी सहायता की। विदेशी आयात जहाँ सन् १९३९-४० ई०में एक करोड़ रुपयेका था, वहाँ वह सन् १९४०-४१ ई० में ८६ लाख और सन् १९४१-४२ ई० में ६५ लाखका रह गया। भारत जब युद्धका केंद्र बन गया, और सैनिक माँग बहुत बढ़ी, तो यहाँ वैज्ञानिक कांच-पात्र, सिगनल कांच आदि भी बनने शुरू हुए।

२. **कांच-चादर**–

खिड़कियों, दरवाजों आदिका शीशा युद्धसे पूर्व मुख्यतः बाहरसे आया करता था। बहजोई (उत्तर-प्रदेश) कारखाना ही एसियामें ऐसा कारखाना था, जो कांच-चादर बनाता था। सन् १९३७ ई० के बाद इसकी उपज १,००० टनसे ५,५०० टन हो गयी। इस कंपनीने कंदरामें एक दूसरा कारखाना स्थापित किया, जिसके लिये मशीनें यु० रा० अ० से आईं। नैनीका इलाहाबाद-कांच-कारखाना तसवीरों वाले खिड़कीके कांचको बनाता है।

३. **खोल-चिमनी**–

दो वर्षोंके भीतर हमारे कांच-कारखानोंने इन नयी तरहकी वस्तुओंको बनाना शुरू किया और वह लड़ाईके समय देशकी माँगको पूरा करते रहे।

४. बोतल–

पहिले इस उद्योगका विकास बहुत कम हो पाया था, इसलिये मूल्य और गुणमें वह विदेशी मालका मुकाबिला नहीं कर सकता था, किंतु युद्धकी छायामें हमें आगे बढ़नेका मौका मिला। सन् १९४१ ई० में रामनगर (बनारस) में विभूति-कांच-कारखाना आरंभ हुआ, जिसकी मशीनें आधुनिक थीं, और बहुत सा काम यंत्रोंसे होता था। दूसरा नया कारखाना गाजियाबाद (मेरठ) में कैपिटल-कारखाना है। यहाँ तरह-तरहकी सुन्दर बोतलें बनने लगीं। रामनगर फैक्टरी प्रतिवर्ष ३,५०० टन बोतलें बनाती और गाजियाबादकी २,००० टन। सासनी, हरनगौ और शिकोहाबादकी फैक्टरियोंमें प्रत्येककी उपज २,००० टन बोतल वार्षिक है। नैनीकी दो कांच-फैक्टरियाँ (इलाहाबाद ग्लास वर्क्स और नैनी ग्लास वर्क्स) बोतल बनानेकी पुरानी फैक्टरियाँ हैं। बंबई ग्लास वर्क्स आधुनिक ढंगकी बड़ी फैक्टरी है। बिजनौर जिलेमें ३५ छोटे-छोटे बोतल बनानेके कारखाने कुटीर-शिल्पके रूपमें काम कर रहे हैं और उनके माल बहुत सस्ते होते हैं। केवल उत्तर-प्रदेश प्रति वर्ष १०,००० टन बोतल बनाता है।

हाथरसके पासके कितने ही कस्बोंमें ५० छोटे-छोटे कारखाने मणिका आदिको कुटीर-शिल्पके रूपमें बनाते हैं।

वैज्ञानिक सामान तथा थर्मस-फ्लास्क भी देशमें बनने लगा है। बलवलीकी गंगा-ग्लास फैक्टरी तथा बंबईकी विक्टोरिया फैक्टरीने विशेष तौरसे इस ओर ध्यान दिया है।

बलवलीके गंगा वर्क्स और शिकोहाबादके कैसी कांच वर्क्स बिजलीके लट्टुओंको बड़े पैमानेपर बनाते हैं। हमारे यहाँकी १७४ फैक्टरियोंमें १०५ पुराने ढंगसे काम करती हैं। —(I. pp. 329-36)

आगराके पास फिरोजाबादसे शिकोहाबाद तथा उत्तरी उत्तर-प्रदेशमें बहजोई और बलवलीसे पूर्वमें नैनी (प्रयाग) तक भारतका प्रधान कांच-क्षेत्र है। केवल आगरा जिलेमें उत्तर-प्रदेशके मजूरोंका ३३% काम करता है और उत्तर-प्रदेशमें सारे भारतका ४७ प्रतिशत। इसका मुख्य कारण है, लोघडा, बडगढ़ (नैनीके पास) तथा पन्हई (बाँदा जिले) में उच्च श्रेणीके बालूका मिलना, और पहिलेसे ही शीशगर जैसी कांच-शिल्प-निपुण जातिका वहाँ होना। उत्तर-प्रदेशके अतिरिक्त चौबीस-परगना (बंगाल) तथा ओखा-मंडल (सौराष्ट्र) कांच-उद्योगके केंद्र हैं। —(I. L. p. 358)

सन् १९४८ ई० के प्रथम तिमाहियोंमें कांचकी उपज निम्न प्रकार हुई:—

प्रथम	द्वितीय	तृतीय
१७,०००	१३,०००	२०,०००

हमारी सोडा-भस्मकी उपजका ३० प्रतिशत या ७,००० टन कांचके बनानेमें खर्च होता है। बंगालमें एक बड़े कांच-कारखानेके लिये स्वयं चालित मशीनें लग गयी हैं। बंबईकी एक कंपनीने कांचके अम्पूल बनानेके लिये अमेरिकासे मशीनें मंगायी हैं, मध्यभारतमें वैज्ञानिक कांच-पात्र बनानेवाली एक फैक्टरी काम करने लगी है।

भारत अब अपने कांचको बाहर भेजने लगा है। पश्चिमी भारतकी एक कंपनीने सन् १९४८ ई० में ३९,००० रुपयेके कांच-पात्र आस्ट्रेलिया भेजे। इंगलैंडसे भी पूछ-ताछ होने लगी है।

—(I. and S. pp. 37-88-61)

कलकत्ताकी वैज्ञानिक भारतीय कांच कंपनीने सफलताके साथ वैज्ञानिक यंत्रोंके निर्माणके लिये आवश्यक प्रतिरोधक कांच बनाना शुरू किया है। उच्च कोटिके बोरो-सिलिकेट कांच बनानेका भी तजरबा सफल रहा। सोदपुर कांच कंपनीने कांच-चादर बनानेके कारखानेमें नयी मशीनें लगवाई हैं, और वह नये ढंगका कांच बनाने लगी है। लेकिन हमारे कारखाने देशकी ४० प्रतिशत आवश्यकताको ही पूर्ण करते हैं। बिहारमें एक कांच कारखाना तैयार हुआ है, दो और नये कारखाने निष्पक्ष कांच-नली तथा वैज्ञानिक कांच-पात्र बनाने लगे हैं। एक कंपनीने स्कूलोंकी प्रयोगशालाओंके लिये कांचके त्रिपार्श्व तथा लेन्स भी बनाने शुरू किये हैं। एक कंपनीने दर्शक कांचके बनानेका सफलतापूर्वक तजरबा किया है।

१४ वस्त्र-उद्योग

१. सूती—

१ जनवरी सन् १९४५ ई० को भारतकी मिलोंमें लगाये तथा लगाये जानेवाले तकुओंकी संख्या निम्न प्रकार थी:—

		बारीक	मोटे
सिंध (पाकिस्तान)	२,२१६	..	१,००,०००
पंजाब-दिल्ली	२,२४,०२३	१,१४,०००	४,२३,०००
उत्तर-प्रदेश	७,७३,२८८	१,१४,०००	१,७५,०००
बिहार	२५,०४०	३८,०००	१,७५,०००
बंगाल-आसाम	४,८०,९२४	१,२५,००० +१,००,०००	२,२५,०००

		(मिश्रित)	
उड़ीसा	..	१९,०००	१,२५,०००
मध्य-प्रदेश	३,७४,०३०	७६,०००	१,००,०००
राजपूताना	५,१९,२२२	३८,०००	१,००,०००
बंबई	५९,४१,१६४	१,७१,०००	७५,०००
दक्षिण भारत	१९,५५,५३८	१,९०,०००	३,७५,०००
	१०२९५४४५	८,८५,०००	१८,७३,०००
		+१,००,०००	
		२८,५८,०००	

—(I. L. p. 288)

वस्त्र-व्यवसाय—भारतकी पहिली कपड़ा-मिल सन् १८१८ ई० में बौरिया (बंगाल) में स्थापित हुई, किंतु बंगालको इस काममें सफलता पानेके लिये एक शताब्दीकी प्रतीक्षा करनी पड़ी। सन् १८५१ ई०में पहिली सफल मिल कावसजी नानाभाई दावरने बंबईमें स्थापित की, जिसका कोयला इंगलैंडसे आता था। सन् १८६० ई० में दो और मिलें बंबईमें खड़ी हुईं। यह मिलें देशकी आवश्यकताकी पूर्तिके लिये नहीं, बल्कि चीनके बाजारोंको मूत देनेके लिये कायम हुईं थीं। अमेरिकाके गृहयुद्धके कारण चीनका बाजार खाली पड़ा था। भारतीयोंने उसे दखल करना चाहा। इस अल्पारंभसे बढ़ते हुये सन् १८९० ई० में ७० मिलें हो गयीं। सन् १९२१ ई० से सन् १९३७ ई० तक भारतमें मिलोंकी संख्या २८० से ४९९ हो गयी। यह प्रायः ११७ नगरोंमें बिखरी हुई हैं:—

क्षत्र	१९२१ की संख्या	१९३७	प्रतिशत
पश्चिम-भारत—			
बंबई नगर	८१	७३	५६.३
,, उपनगर		५	
अहमदाबाद	६८	९०	
शोलापुर	७	११	
बाकी बंबई प्रदेश	२६	२६	
बड़ोदा	५	१६	
सिंध (पाकिस्तान)	१	१	

क्षेत्र	१९२१ की संख्या	१९३७	प्रतिशत
राजस्थान, मध्य-भारत–			४.६
अजमेर	२	४	
राजस्थान	–	१	
मध्य-भारत	६	१४	
मध्य-प्रदेश, हैदराबाद–			५.९
नागपुर	४	७	
बाकी मध्य-प्रदेश	१०	१२	
हैदराबाद	..	६	
दक्षिण-भारत–			१७.७
कोयम्बुतूर	३	२६	
मदुरा	२	६	
मद्रास	३	२	
बाकी मद्रास-प्रदेश	११	१२	
राज्य–		२	
मैसूर		२३	
फ्रेंच-उपनिवेश		३	
उत्तर-भारत–			१५.५
पंजाब	४	१०	
दिल्ली	३	५	
कानपुर	६	१३	
बाकी उत्तर-प्रदेश	१२	१०	
बिहार	.	१	
बंगाल	१२	२६	
	२८०	४१९	१००·०

—(I. L. p. 28)

(रेलोंसे पहिले) गंगा और सिंधु नदी-परिवार उत्तर भारतके वणिक्-पथ थे। अमरावती और नागपुर तकका यातायात गंगा होकर बंगालके बंदरगाहोंमें जाता था। "नागपुर और अमरावतीका कपास पाँच सौ मील दूर मिर्जापुरमें बिकनेके लिए आता था। यह माल बैलोंके पीठपर ढोया जाता था, जो दोमनका बोझ ले दिन भरमें औसतन् सात मील

चलते थे। उनकी १ टनकी ढुलाईका खर्च १७ पौंड १० शिलिंग पड़ता था। यदि पानी पड़ गया, तो भींगे कपासके नीचे बैलोंको दबकर कच्ची सड़कपर मरना पड़ता था।" इसी प्रकार गंगा-तटका व्यापार सूरत और बंबईके बंदरोंको आगरा, अजमेर, अहमदाबादके रास्ते और मध्यभारतका बुरहानपुरके रास्ते बैलों या बैलगाड़ियोंपर होता था। ये सार्थ (कारवाँ) १० से १२ हजार बैलों अथवा सौ से दो सौ बैलगाड़ियोंका होता था। उनकी चाल भी बहुत मंद थी। सन् १८३६ ई० में कलकत्तासे दिल्लीकी सड़क चालू हुई, जिसे आगे पेशावर तक बढ़ा दिया गया।

प्रथम विश्वयुद्धसे पूर्व, भारतीय मिलें मोटे सूतके सादे कपड़े बनाया करती थी। उसके बाद उन्होंने बारीक और सुंदर रंगवाले कपड़ोंकी और कैसी प्रगति की, इसके लिए निम्न तालिका देखिये –

केंद्र तथा सूत्रांक	१९२१-२२ सूक्ष्म सूत (लाखपौंड)	प्रतिशत	१९४१-४२ सूक्ष्म सूत (लाखपौंड)	प्रतिशत
बंबई				
३१ से ४० सूत्रांक	६०	१.७	५४४	११.५
४० से ऊपर	९	०.३	३०२	६.४
अहमदाबाद				
३१से४०	५६	६.५	३४६	१७.३
४० से ४०	७	०.९	३६९	१८.३

२. वस्त्र

बंबई	१९२१-२२ उपजका	१९४१-४२ उपजका
सादा	६३.६%	७१.८%
रंगीन	३६.४%	२८.२%

पहिले बारीक सूतकी ओर झुका, फिर बंबईने भी उसका अनुकरण किया। अहमदाबाद और बारीक सूती कपड़ोंको बना रहा है, इस बारेमें वह सारे भारतका अगुआ है। बारीक सूतके लिये उपयोगी लंबे रेशोंका कपास पंजाब, सिंध, मध्य-भारत, बरार, हैदराबाद, गजरात, दक्षिण-महाराष्ट्र और मद्रासमें पैदा होता है।

—(I. L. pp. 51-52)

राष्ट्रीय योजनाका एक लक्ष्य था, भारतमें कपड़ेका खर्च प्रतिव्यक्ति

१६ की जगह ३० गज हो, इसके लिये ११०० करोड़ गज और मोटे कपड़ेकी आवश्यकता होगी। युद्धसे पहिले भारतमें मिलका कपड़ा प्रतिवर्ष ४२०से ४२४ करोड़ और कर्घेका १३०से १४० करोड़ गज पैदा होता है; अर्थात् उपरोक्त लक्ष्यकी पूर्तिके लिये कपड़ेकी उपजको दूना करना था। (साथ ही हर साल जो ५० लाख नये पहननेवाले आ जाते हैं, उनके लिये १५ करोड़ गज और चाहिये।)

—(I. L. p. 60)

सन् १९४८ ई० की प्रथम तीन तिमाहियोंमें सूत तथा कपड़ेकी उपज थी–

	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
सूत सेर	१६५५५५ हजार	१७,९७,५ हजार	१९,१४,३८ हजार
कपड़ा गज	१०१६०५ हजार	१०९०६२ हजार	१,१५,१६,८० हजार

और १९५० में

सूत १५११५० ह० १५१६० ह० कपड़ा ९२७५०० ह० ९७९१०० ह०

—(I. and S. P. S.)

३. ऊनी कपड़ा–

ऊनके स्रोत देशमें बहुत हैं, और हमारा सभी ऊन "गलीचा ऊन" कहा जानेवाला निम्न कोटिका नहीं है। भारतके भीतर सबसे अच्छा ऊन कश्मीरमें पैदा होता है। मैसूरके कुछ भागों तथा बीकानेरका ऊन भी उसी श्रेणीका है, इससे अच्छी किस्मकी लोई और दुशाले बनते हैं। इसके अतिरिक्त तिब्बत, चीनी-तुर्किस्तान, ईरान और इराक तकसे ऊनका आयात होता है, यद्यपि वह भारतसे फिर निर्यातित कर दिया जाता है। भारतीय ऊनकी उपज निम्न प्रकार है:–

वर्गीकरण	प्रतिवर्ष (लाख सेर)	उत्पादनका प्रतिशत	
उत्तर भारतीय परिधान–			
उत्तम (श्वेत)	२१	४.९%	अधिक भाग पाकिस्तानमें
उ० भा० परि. (श्वेत)	१९०	४४.७%	कुछ भाग पाकिस्तानमें
उ० भा० रग (श्वेत)	५२.५	१२.४%	
उ० भा० "गलीचा"	४२.५	१०%	
दक्षिण भारतीय कम्बल	१००	२३.५%	
द० भा० टैनरी	१९	४.५%	
	४२५	१००.०%	

— (I. L. p. 63)

सन् १९३८-३९ ई० में बाहरसे ऊनी माल निम्न प्रकार आया था—

परिधानका कपड़ा	१२,४९,१०० सेर
शाल, लोई	२,३९,३९४ ,,
कम्बल और रग	२०,४१,०१६ ,,
मिश्रित	११,६०,३५३ ,,

(सन् १९४८ ई० की तृतीय तिमाहीमें २८,९७,८५० सेर ऊनी माल तैयार हुआ, और सारे बरसकी उपजका अंदाजा था ६२,५०,००० सेर।)

—(I. and S. P. 80)

युद्धके पहिले सस्तेपनके कारण ऊनमें कम किंतु देखनेमें सुंदर जापानी कंबलके साथ मुकाबिला करना हमारे लिये मुश्किल था। कस्टमने एक जापानी कम्बलकी परीक्षा करके देखा, तो उसमें ऊन, कपास आदिका प्रतिशत भाग निम्न प्रकार निकला—

ताना—कपास	१९ प्रतिशत
बाना—ऊन	२४ ,,
कपास	३७ ,,
कृत्रिम रेशम	७ ,,
सन	१३ ,,
	१०० ,,

सन् १९३८-३९ ई० में बटे ऊनी सूतका आयात १०,८०,२१२ सेर तथा बनियानके सूतका ५,९७,७१४ सेर था।

भारतीय ऊनकी अच्छी मंडी फाजिल्का (पंजाब) है, और तिब्बती ऊनकी तनकपुर, हल्दवानी, (कुल्लू और कलिम्पोंङ)।

पंजाबमें धारीवाल, लुधियाना और अमृतसर ऊनी-मिलोंके केंद्र ह, किंतु सबसे पहिले आधुनिक ऊनी-मिल कानपुरमें सन् १८७६ ई०में सैनिक वर्दीके लिये स्थापित हुई। कानपुर और धारीवाल ऊन-उद्योगके अखिल भारतीय महत्त्वपूर्ण केंद्र हैं। बटे हुए सूतके लिये अधिकांश ऊन आस्ट्रेलिया से आता है। ऊनी-मिलोंका देशमें वितरण निम्न प्रकार है:—

क्षेत्र	मिल संख्या	मजूर संख्या	प्रतिशत मजूर
पश्चिम भारत—			२५.६%
बंबई	३	१०२५	
ठाणा	१	७५९	
बड़ोदा	१	३३२	
राजस्थान	३	९५	१.२%

क्षेत्र	मिल संख्या	मजूर संख्या	प्रतिशत मजूर
दक्षिण भारत–			२८.१%
बंगलोर	१	६४	
बेलारी (आंध्र)	१	११६	
उत्तर भारत–			७१.९%
श्रीनगर (कश्मीर)	१	३४७	
धारीवाल (पू० पंजाब)	१	१,९६०	
अमृतसर (,,)	१	७०१	
कानपुर	१	२,३११	
मिर्जापुर	१	५१	
भागलपुर (बिहार)	१	४१३	
ढाका (पाकिस्तान)	१	१६१	
	१७	८३३५	

—(I. L. p. 73)

अब दो नयी मिलों इंडियन वूलन-सिल्क मिल्स (कलकत्ता) तथा हिन्दुस्तान वूलन मिल्स (कलकत्ता) ने भी काम शुरू कर दिया है।

(४) **रेशम**

सन् १९४८ ई० की तीसरी तिमाही (जुलाई-सितंबर) में कच्चे रेशमकी उपज २,४५,७५० सेर हुई थी, जब कि साल भर पहिलेकी तिमाहीमें वह २,६१,४५० सेर थी।

भारतवर्षका वार्षिक खर्च २० लाख सेर है, इसमें १०.५ लाख सेर ही (सन् १९४८ ई० में) देशमें पैदा हुआ, जिसमें चर्खे और परेतेके रेशमका ब्योरा निम्न प्रकार है:—

	चर्खा (सेर)	परेता (सेर)	योग (सेर)
कश्मीर	..	७०,०००	७०,०००
पश्चिम बं०	१,७५,०००	२५,०००	२,००,०००
मद्रास	५०,०००	२५,०००	७५,०००
मैसूर	५,५०,०००	१,५०,०००	७,००,०००
आसाम	७,५००	७,५००	
बंबई	-	५००	५००
	७,८२,५००	२,७०,५००	१०,५३,०००

रेशमकी मिलें कलकत्ता, भागलपुर, बनारस, अमृतसर, इंदोर, अहमदाबाद, भावनगर, सूरत, ठाणा, बंबई और बंगलोरमें हैं। कर्वेसे रेशम बुनाईके केंद्र पश्चिमी बंगालमें मुर्शिदाबाद और विष्णुपुर, उत्तर-प्रदेशमें बनारस और आजमगढ़, गुजरातमें सूरत तथा अहमदाबाद हैं।

देशके खर्चका आधा ही रेशम भारतमें पैदा होता है, बाकी दूसरे देशोंसे विशेषकर इताली और जापानसे आता है। जापानसे सन् १९४८ ई० में २ लाख सेर परेतेका रेशम और १४ लाख सेर कृत्रिम रेशम मंगवाकर केंद्रीय सरकारने रेशम बुननेवालोंमें बाँटा। सरकार रेशम तथा रायोन (कृत्रिम रेशम) की मशीनोंके मंगानेमें प्रोत्साहन दे रही है।

सिल्क-पेनलकी सिफारिशके अनुसार सरकारने सिल्क-बोर्ड स्थापित किया है। पेनलकी कुछ सिफारिशें थीं—(१) तूतकी खेतीमें सुधार, (२) उसके नीरोग बीजका वितरण, और (३) कृषिके पोषण तथा अंडेकी ओटाईमें सुधार, (४) रेशमकी उपजको २० लाख सेर तक बढ़ाना।

तूतकी खेती ४४,००० से १ लाख एकड़ हो गयी है।

—(I. and S. P. 78)

कृत्रिम रेशम (रायोन)

(काष्ठ-पल्पसे बननेवाला) रायोन भारतमें नहीं बनता और उसे इंगलैंड, इताली, युक्त-राष्ट्र तथा जापानसे मंगाया जाता है। हमारा वार्षिक व्यय १ करोड़ सेर है। सन् १९४७ ई० में ६० लाख सेर बाहरसे मंगाया गया था, जिसका कपड़ा साढ़े सात करोड़ गज हुआ।

—(I. and S. P. 79)

पेरुम्बवूरकी (अलवयेके समीप ट्रावनकोरमें) विस्कोस रायन फैक्टरीको एक अंग्रेजी कंपनीकी सहायतासे बढ़ाया जा रहा है।

—(I. L. p. 293)

५. जूट (पाट)–

जूट विदेशी विनिमय, विशेषकर डालरकी प्राप्तिका बहुत बड़ा साधन है। सन् १९४६-४७, १९४७-४८ और १९४८-४९ई०के वर्षोंमें हमने क्रमशः १९,१२,११,७०१—२५,२३,१६,५३५ और २३,८९,३२,९७६ रुपयोंका जूट भेजकर विदेशी विनिमय प्राप्त किया।

—(A. C. p. 23)

बंगालके निर्यातका ५० प्रतिशत जूटका सामान है, जो सारे भारत के निर्यातका २५ प्रतिशत है।

—(P. C. p. 57)

अविभाजित भारतका ८० प्रतिशत कच्चा जूट पूर्व-बंगाल पैदा करता था, लेकिन उसकी खरीदार सारी जूट-मिलें पश्चिम बंगालमें हैं, जिनमें ४६,००० हेसियन कर्घे तथा २५,००० बोरेके कर्घे काम करते हैं। यह संख्या विश्वके जूट-कर्घोंकी ५७ प्रतिशत है। अविभाजित भारतमें जूटका उत्पादन और व्यय हजार गांठोंमें निम्न प्रकार था:—

	उत्पादन	निर्यात	ग्राम-खर्च	मिल-खर्च	योग
१९३८-३९	९०७२	३,९७८	२९८	५,६४७	५,९४५
सालाना औसत					
१९४५-४६	७,९९१	२,२१३	६००	६,५१८	७,११८

कच्चे जूटका निर्यात सारे जूटका २५ प्रतिशत से ४० प्रतिशत तक होता है, और जूटके मालका सन् १९४३-४४ ई० में ६ लाख टन था।

—(P. T. p. 32)

"यदि काफी मोटी मिट्टी तथा उसे तर रखनेके लिये पर्याप्त जल हो, तो जूटकी खेती किसी भी मिट्टीमें की जा सकती है। ...ढाकाका सर्वोत्तम जूट ऐसे खेतोंमें पैदा होता है, जो कभी पानीमें नहीं डूबते। ढाका, मैमनसिंह, टिपरा और फरीदपुरमें अधिक वर्षा और नमी है, और वहीं जूटकी सबसे अच्छी फसल होती है।"

बंगालके जूटवाले कुछ जिलोंकी वार्षिक वर्षा (इंच) निम्न प्रकार है—

क्षेत्र	फरवरी-मई	जून-अगस्त	क्षेत्र	फरवरी-मई	जून-अगस्त
१-ढाका	१८.७	३९	५-बर्दवान	९.०	३३.३
२-मैमनसिंह	२४.०	४७	६-मिदनापुर	९.६	३५.४
३-टिपरा	२०.७	४५.८	७-मुर्शिदाबाद	८.५	३३
४-फरीदपुर	१७.६	३७.६	८-दीनाजपुर	१०.०	४३

६. जूट मिल—

भारतमें पहिली जूट-मिल १८५५ ई० में रिशरा (बंगाल) में स्थापित हुई। १८७५ तक कलकत्ता-क्षेत्रमें जूट-मिलोंकी संख्या १६ हो गयी। १८७५ और १८८५ के बीच भारतीय जूट-मिलोंने बृटिश-उपनिवेशों और अमेरिकन बाजारोंपर अधिकार कर लिया। चिलीके नाइट्रेटके थैलोंका बाजार १८८९ ई० में प्राप्त हुआ और क्यूबाके चीनीके बोरोंका १८९६ ई०

में। लेकिन अभी यह सारा व्यापार तथा जूट-उद्योग अंग्रेज कंपनियोंके हाथमें था—यद्यपि जूट-मिलोंका ६० प्रतिशत शेयर भारतीयोंके हाथमें था, किंतु उनका प्रबंध अंग्रेजोंके हाथमें था, और वह भारतीय दलालोंके द्वारा जूट नहीं खरीदते थे।

प्रांतोंमें जूटकी खेतीके एकड़ोंका प्रतिशत इस प्रकार था:—

प्रांत	१९३५-३६	१९३६-३७	१९३८-३९
बंगाल	८७	७७	७८
बिहार	६	१६	१०
आसाम	५	५	१०
उड़ीसा	१	१	१
रियासतें	१	१	१

जूट-मिलोंके कर्घोंका वितरण १९४० ई० में निम्न प्रकार था:—

प्रांत	करघा-संख्या	प्रतिशत
बंगाल	६५,५२१	९५.५
बिहार	१,१४४	१.७
मद्रास	९९१	१.४
उत्तर-प्रदेश	८७०	१.२
मध्य-प्रदेश	१५०	०.२
	६८,६७६	१००.०

—(I. L. pp. 74-86)

१५ वनस्पति-तेल

वनस्पति-तेल बहुतसे उद्योगोंका आधार है। चंदन-तेल, युक्लिप्ट्स-तेल, जवाइन-तेल, गुलाब-तेल, नीमू-तेल, खस-तेल, जैसे तेल **सत्तिक** तेल हैं। तेलमें उपरोक्त वस्तुओंके सत्तको डालकर ये सुगन्धित तेल तैयार किये जाते हैं। अलसी, तिल, मूंगफली, रेंड़ी, नारियल, महुआ, विनौलाके तेल स्थिर तेल हैं। १९३९ ई० में कुछ सत्तिक तेलोंकी उपज (टन) निम्न प्रकार थी:—

नीबू घास-तेल (२७०), चदन (७०-८०), युक्लिप्ट्स (२०), अदरकघास (२-३), और खस (३ टन)। १९३८-३९ ई० में सत्तिक तेलों तथा बीजोंका निर्यात ४६.५ लाख रुपयेका था, उसी समय २२ लाखका कृत्रिम सत्तिक तेल बाहरसे आया।

स्थिर तेल भारतके लिये अधिक महत्त्व रखते हैं, उनमेंसे कुछ खानेके काम आते हैं। तेलके दूसरे उपयोग हैं, साबुन, ग्लेसरिन, रंग, वार्निश, वनस्पति घी आदिके बनानेमें उपयोग। रेंड़ीका तेल दवा और जलानेके काम आता है। नारियल, तिल और सरसोंके तेल खाने तथा शरीरमें लगाये जाते हैं। कोल्हूसे तेल निकालना पुराना ढंग है, जिसमें वर्धा-"घानी" ने कुछ सुधार किया है। तेल निकालनेके लिये देशमें बहुत सी मिलें खड़ी हो गयी हैं। १९३४-३५ ई० से १९३८-३९ ई० तक यंत्र-चालित तेलकी मिलोंकी संख्या निम्न प्रकार थी:—

आसाम	१५	बड़ोदा	१६
बंगाल	४४	बंबई रियासतें	५
बिहार-उड़ीसा	३८	मध्य-भारत	४
बंबई	७८	कोचीन	३५
कासल-बरार	६४	हैदराबाद	८१
मद्रास	४३	कश्मीर	७
पंजाब	६१	मैसूर	१२
उत्तर-प्रदेश	६१	ट्रावनकोर	६३

१९३६-३७ ई० के अंतमें एक करोड़ रुपयेसे अधिक पूंजीकी ६२ युक्त-पूंजीवाली कंपनियाँ तेल-उद्योगमें लगी हुयी थीं।

कच्चामाल—देश के २२० लाख एकड़ से अधिक खेत अथवा कुल खेती का ७.५ प्रतिशत तेलहन पैदा करने में लगे थे, जिनकी उपज ७० लाख टन और मूल्य २४० करोड़ रुपया था। भिन्न-भिन्न तेलहनों की उपज तथा आयात-निर्यात निम्न प्रकार था—

औसत वर्ष	तेलहन	उत्पादन (टन)	आयात (टन)	निर्यात (टन)	कुल पेरा तेल
१९३४–३५से३६–३७	अलसी	४७,६०००	१०,०००	२,३३,०००	२,००,०००
१९३३–३४से३७–३८	मूंगफली	२८,२२,०००	नहीं सा	११,१२,०००	१२,००,०००
१९३४–३५से३८–३९	तिल	४,१६,०००	–	७,५१०	३,४६,०००
१९४१–४२से४३–४४	रेंडी	१,१६,०००	–	२३,०००	८७,२००
१९३४–३५से३८–३९	नारियल	२,००,०००	४६,०००	–	२,०३,०००
१९३२–३३से३६–३७	बिनौला	१९,६१,०००	–	नहीं सा	१,२०,०००
१९३४–३५से३८–३९	राई-सरसों	९,९७,०००	–	२७,४४५	८,२०,००५

युद्धके समय कुछ भक्ष्य तेलोंका उत्पादन तथा निर्यात निम्न प्रकार था:—

	मूंगफली (१००० टन)		राई-सरसों (१००० टन)		तिल (१००० टन)	
	उत्पादन	निर्यात	उत्पादन	निर्यात	उत्पादन	निर्यात
१९३९–४०	३,२२२	५,४९	१,११६	२५	४,१५	३.५
१९४०–४१	३,७०२	३,३९	१,१०३	३९	४,३३	३.९
१९४१–४२	२,५८६	४,००	१,०८९	३५	४,१४	८.६
१९४२–४३	२,८२१	२,५८	१,०७०	३७	४,५७	१०.२
१९४३–४४	३,२६३	२,४१	९,५५	१९	४,५५	६.२

१९४० में मूंगफलीका निर्यात युद्धके कारण बंद हो गया। इसका उपयोग वर्तमान वनस्पति-घी उद्योगमें होने लगा। घी के मूल्यके बढ़नेके कारण वनस्पतिकी माँग बढ़ी। इस प्रकार १९३७-३८ ई० में अन्त होनेवाली पंचवार्षिकीकी औसत जो ३-४ लाख टन थी, वह ५ से ५.५ लाख टन हो गयी। तेल निकालनेकी मशीनें देशके भीतर बनने लगीं, जिनसे उद्योगके बढ़नेमें बड़ी सहायता मिली। मद्रास, हैदराबाद और पश्चिम भारतीय रियासतोंने अपने फाजिल तेलको पेरकर दूसरे प्रान्तोंमें भेजना शुरू किया।

राई–सरसों तेल का उत्पादन युद्धके समय ढाईसे तीन लाख टन वार्षिक था, और अलसीके तेलका १९३६-३७ ई० में ६७,००० टन।

हमारे यहाँ १८.५ लाख टन खली प्रतिवर्ष पैदा होती है, जिसमें कुछ पशुओंके खाने तथा कुछ खादके काममें आती है।

१९४४ ई० में भारतमें खाद्य-तेलका खर्च प्रति व्यक्ति ढाई सेर था, १९३० ई० के आसपास इंगलैंडमें वह २२.२ सेर तथा यु० रा० अ० में २२.६५ सेर था। साबुन बनानेका तेल प्रतिव्यक्ति इंगलैंडमें जहाँ ९ सेर है, वहाँ भारतमें वह आध सेरसे भी कम (०.४५५) है।

वनस्पति–हिन्दुस्तान वनस्पति निर्माण कंपनी (बंबई) सबसे बड़ी वनस्पति-उत्पादक कंपनी है। इसका "दालदा" सर्वत्र प्रसिद्ध है। आजकल देशमें वनस्पतिका उत्पादन १,४०,००० टन है, जो शीघ्र ही २,५०,००० टन होनेवाला है।

१९४४ ई० में तेलका उपयोग निम्न प्रकार था:–

खानेमें	९,००,०००	टन
जलाने-लगाने आदिमें	१,००,०००	,,
साबुन-निर्माण	१,००,०००	,,
वनस्पति घी बनानेमें	१,३०,०००	,,
रंग, वार्निश	२५,०००	,,
दूसरे उपयोग	५०,०००	,,
	१३,०५,०००	,,

—(I. B. pp. 242-86)

१६ स्टार्च

स्टार्च पुष्टिदायक खाद्य और हमारी शारीरिक शक्तिका स्रोत है। कपड़ोंसे मांडीके तौरपर इसका सदासे इस्तेमाल होता आया है। कपड़ेकी छपाईमें भी इसका उपयोग होता है। गुलकोस तथा डेक्सट्रिन (गोंद) बनानेमें भी इसे काममें लाया जाता है। मक्का, गेहूँ, चावल, आलू तपिओका, आदि कंदसे स्टार्च निकाला जाता है। यु० रा० अ० में मक्केसे स्टार्च निकालते हैं, जिससे साथ ही मक्कातेल भी प्राप्त होता है, जो कि अच्छा खाद्य है। जर्मनीमें आलूसे स्टार्च निकालते हैं। ट्रावनकोरमें तपिओका बहुत पैदा होता है, यदि उससे स्टार्च निकाला जाये तो प्रतिवर्ष ३० से ३५ हजार टन स्टार्च प्राप्त हो सकता है। युद्धके समय वहाँ स्टार्च निकालनेका उपक्रम हो भी गया था, किंतु तपिओका गरीबोंका प्रधान खाद्य है, इसलिये इसे सरकारने निषिद्ध कर दिया है।

स्टार्च-उद्योग भारतमें १९३५ ई० से आरंभ हुआ। १९४५ ई० में ११ ऐसी फैक्टरियाँ काम कर रही थीं, जिनकी उत्पादन-क्षमता १३,२०० टन थी। इनके अतिरिक्त निम्न चार बड़ी फैक्टरियाँ हैं–

	क्षमता (टन)
(१) अहमदाबाद–अनिल स्टार्च उपज	७,२००
(२) बड़ोदा–हिन्दुस्तान रंग रासायनिक निर्माण कं०	६,०००
(३) रामपुर (उ० प्र०)-रामपुर मक्का उपज	४,८००
(४) जगाधरी (पंजाब)-भारत स्टार्च और रासायनिक	४,८००
	२२,८०० टन

१९४४ ई० में उपज २१,००० टन थी।

परिशिष्ट-अध्याय ७

वैयक्तिक पूंजीकी सीमा हो

१. फैक्टरियोंमें क्षमतासे कम उत्पादन–

सीमेंटका उत्पादन क्षमताका ७० प्रतिशत ही हो रहा है –१२ लाख (टन) की क्षमता रखने पर भी हमारे कारखाने ८॥ लाख टन ही लोहा-फौलाद पैदा कर रहे हैं। २९० लाख टन की क्षमता रखने पर भी कोयला २२३ लाख टन ही निकल रहा है।

—(P. C. p. 131)

२. मुद्रास्फीति–

वैयक्तिक-पूंजी-संचालक अपनी फैक्टरियोंका स्थान निश्चित करते समय केवल अपने पैसे की बचत और लाभका खयाल करते हैं, चूंकि बड़े औद्योगिक केंद्रमें बाहरी खर्चमें कमी करनेका सुभीता होता है, इसलिये वह वहीं फैक्टरीका स्थान नियत करते हैं। वह प्रधानतया पैसेकी मित-व्ययिताका खयाल रखते हैं।

–(P. I. L. p. 271)

मारवाड़ी सेठ—मूलतः ये लोग शेखावाटी (राजस्थान) के नवलगढ़ तथा पिलानीके कस्बोंके आसपासके रहनेवाले हैं। ब्रिटिश-शासन की स्थापनाके बाद ये लोग व्यवसायकी खोजमें भारतके प्रायः सारे भागोंमें विशेषतः कलकत्ता जैसे औद्योगिक तथा व्यापारिक केंद्रोंमें पहुँचे। इनमें से अधिकांश के पास कोई पूंजी नहीं थी, किन्तु वह अपने चाल-व्यवहारमें इतने सादे थे, कि कुछ ही वर्षोंमें उन्होंने समृद्ध व्यवसाय तथा औद्योगिक गद्दियाँ स्थापित करनेमें सफलता प्राप्त कीं। आज वह देशके सभी स्थानोंमें बिड़लापुर (कलकत्ताके पास) से बंबई और डालमिया-दादरी (पंजाब) से डालमियापुरम् (मद्रास) तक पाये जाते हैं। बिड़ला, डालमिया, पोद्दार, सेकसरिया, सिंहानिया, गोयेनका जैसे उनके प्रमुख परिवारोंका नाम आज भारतमें ही नहीं विदेशोंतक में प्रसिद्ध है। आजकल मारवाड़ी सारे उत्तरी और केंद्रीय भारतमें साहूकारा, व्यापार, व्यवसाय, और उद्योगका परिचालन करते हैं। वह नगरों और निगमों (कस्बों)

में ही नहीं गावों तकमें छा गये हैं। उनके पास औद्योगिक अध्यवसायोंके प्रारंभ तथा प्रबन्ध करनेके लिये आवश्यक अनुभव तथा उत्साह है। शायद यहूदियोंको छोड़कर इतने व्यापक कार्यों की क्षमता दिखलानेवाली कोई दूसरी जमात नहीं है।

—(I. L. p. 277)

राष्ट्रीय संकट का खयाल करते हुए व्यवसायी वर्ग को दायित्वमें भाग लेनेके लिये आगे बढ़ना चाहिये। इसका अर्थ यह है, कि जिस विकराल लाभके वह पिछले वर्षोंमें आदी हो गये हैं, उसे कम करना होगा। अपने दीर्घकालके स्वार्थके लिये उन्हें थोड़े लाभसे सन्तुष्ट होना चाहिये। लाभ-विभाजनको सीमित करनेका सरकारी समादेश ठीक कदम है। मूल्य-नियन्त्रणका ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये, कि ६ से १०% के लघु लाभ सुलभ रहें। इससे एक ओर हालमें बहुप्रचलित लाभ-लूटकी बुराईसे रक्षा होगी और साथ ही उद्योग के लिये एक अच्छा लाभ होना भी निश्चित हो जायेगा।

—(P. C. pp. 135-136)

३. नियंत्रण—

लूट—क्रमशः अनियन्त्रणकी नीति स्वीकार करके ग्रामों तथा नगरोंसे थोड़े-थोड़े अन्तरके साथ राशनिंग हटा दी गयी, और बंबई जैसे कुछ महत्त्व-पूर्ण नगरोंमें उसे रहने दिया गया। मूल्य-नियंत्रण तथा राशनिंगके हटते ही खाद्य-द्रव्योंका मूल्य प्रकांड रूपमें बढ़ा, जैसा कि नीचेकी तालिकासे मालूम होगाः—(यहाँ आधार है अगस्त १९३९ के अंतका—१०० सूच्यंक)

नियंत्रणसे पूर्व	**सूच्यंक**	**वृद्धि**
दिसम्बर १९४७ ई०	३२१	
नियंत्रणके बाद		
मार्च १९४८ ई०	३४७	+२६
जून ,,	३७७	+३०
अगस्त ,,	३९८	+२१

आहारके मूल्यमें यह वृद्धि नियंत्रणकी हानियोंके तर्कको झूठा सिद्ध करती है।

—(E. C. p. 36)

जनवरी १९४८ ई० में कपड़ेके आंशिक अनियंत्रणकी नीति स्वीकार की गयी। इस नीतिका आरंभ करते समय सरकारने आशा की थी, कि कपड़ा-

उद्योग उचित मूल्य निश्चित कर देगा और उसी कीमतपर उपभोक्ताओंके लिये कपड़ा प्राप्य होगा। लेकिन यह आशा पूर्ण नहीं हुई, और कीमतें बहुत ऊपर चढ़ती गयीं। राशनिंगके हटाते ही कपड़ा मुहर लगे दामसे बहुत ही अधिक दामपर बिकने लगा, और कपड़ा-उद्योग तथा व्यापारने अचिंत्य लाभ उठाया। राशनिंग के बिना मुहर लगी कीमतों को लागू नहीं किया जा सकता था। उससे बड़े पैमानेपर टैक्स देनेसे बचनेकी कोशिश ही संभव थी, इसलिये अप्रेल १९४८ ई०में सरकारने दामकी मुहर लगाना छोड़ दिया, यद्यपि तिथिकी मुहर लगाना तथा गमनागमनपर नियंत्रण जारी रखा। तुरंत ही मिल-मालिकों और थोकफरोशोंने कीमतोंको ५० प्रतिशत बढ़ा दिया। सरकारने उचित मूल्यकी दूकानें खोलकर सीधे चढ़ती कीमतोंको रोकनेका प्रयत्न किया, किंतु सफलता नहीं हुई; क्योंकि सरकारके पास कपड़ेका स्टाक नहीं था। अगस्त १९४८ ई० में सरकार ने फिरसे कच्चे कपास तथा कपड़ोंपर नियंत्रण करनेका निश्चय किया, मिलोंके स्टाकको अचल कर दिया और थोक फरोशोंको एक निश्चित तिथि तक माल बेंच डालनेके लिये कहा। ऊपरका विश्लेषण बतलाता है कि नियंत्रणके सारभूत सिद्धान्तको—अर्थात् रसदकी कमीके समय आवश्यक पण्योंकी निश्चित कीमतके साथ राशनिंग करना—शासन-प्रबंधीय अयोग्यता, भ्रष्टाचार और चोरबाजारीने मिलकर गट्टबट्ट कर दिया।

यदि छिपाया हुआ माल अनियंत्रित बाजारमें पर्याप्त नहीं आता, तो कीमतें बढ़कर रहेंगी; क्योंकि यह आशा नहीं रखी जा सकती, कि पूंजीवादी उन्मुक्त व्यवस्थाके भीतर व्यापार करते हुए कोई व्यापारी जान-बूझकर अपने मालको कम दामपर बेचेगा, जब कि उसकी माँग भारी है, साथ ही भारी क्रय-शक्ति भी मौजूद है, चाहे वह थोड़े ही हाथोंमें क्यों न हो।

यह आशा रखना केवल भ्रम सिद्ध होगा कि मिल-मालिक तथा व्यापारी उपभोक्ताओंके हित अथवा अपने ही दीर्घकालीन हितका खयाल करेंगे। चीनीपरसे नियंत्रण हटाते देर नहीं लगी, कि भारतीय सूगर सेंडिकेट जैसी अर्धसरकारी संस्थाने चीनीका मूल्य २१ से ३५ रुपया मन कर दिया। इस प्रकार अनियंत्रणने केवल कानूनी अपराधोंकी संख्या कम जरूर कर दी, किंतु इससे उसने व्यवसायी वर्गके सदाचारको नहीं बढ़ाया। चाहे कीमतोंका नियंत्रण किया जाये या न किया जाये, उचित मूल्यसे अधिक लेना अनाचारिक, असामाजिक और असत्कर्मिक है।

—(E. C. p. 36-40)

२६ अप्रेल १९४८ ई० के सरकारी कम्युनिकेमें कहा गया–"जिस समय आंशिक अनियंत्रणके बारेमें निश्चय किया गया, उस समय कपड़ा-उद्योगने वचन दिया था, कि हम उचित बहिर्मिल कीमतोंको निश्चित करने तथा उन्हीं कीमतोंपर मिलसे कपड़ोंके बेचनेके प्रबंधकी जिम्मेवारी लेते हैं। (लेकिन) सरकारको बहुत दुःखके साथ कहना पड़ता है, कि बहुत ही थोड़ेसे अपवादोंके साथ न कपड़ा-उद्योग हीने न व्यापारियोंने ही जनताके प्रति अपनी जिम्मेवारीको पूरा किया।"

—(I. P. p. 131)

प्रयागमें ४ सितंबर १९४९ ई० को पंडित जवाहरलाल नेहरूने कहा–"अन्न-वस्त्र जैसी अत्यावश्यक वस्तुओंके संबंधमें सरकारको बहुत कड़वा अनुभव हुआ है। व्यापारियों और व्यवसायियोंने उनकी कीमतोंको बहुत बढ़ा दिया और प्रकांड लाभ उठाया। ...मैं नियंत्रण हटानेके पक्षमें नहीं हूँ, क्योंकि वह भ्रष्टाचारका अवसर देता है।

—("Nation" 6-9-49)

नियंत्रण और जनताका सहयोग–यह सच है, उसी नियंत्रण-व्यवस्थाके सफल होनेकी अधिक संभावना है, जिसे सफल बनानेकी कोशिशमें जनताके सभी वर्ग–उत्पादक, व्यापारी, उपभोक्ता–अपना सहयोग दें। ऐसी व्यवस्थाका सफलतापूर्वक कार्यरूपमें परिणत करना बहुत हद्दतक, शासन-प्रबंधों की कार्यक्षमता तथा ईमानदारी पर निर्भर करता है। नियंत्रण और राशनिंग-व्यवस्थामें कुछ आशाओंकी पूर्ति न होनी अवश्यम्भावी है। समाजका अधिक धनी वर्ग जीवनकी कुछ चीजोंका आदी है, जिसके लिये वह काफी अधिक मूल्य दे सकता है। जब तक ऐसे खरीददार तैयार हैं, व्यापारीको बड़े लाभकी प्राप्तिकी संभावना है। जिस कीमतपर ऐसा व्यापारी ऐसे मालको उक्त प्रकारके खरीददारके हाथमें बेंचता है, उसे "चोर बाजार" कहते हैं। चोरबाजार की कीमत उस साधारण कीमतसे अधिक होगी ही, जोकि नियंत्रण न होनेपर होती। कीमत अधिक इसलिये होती है, कि व्यापारी उस खतरेकी क्षति-पूर्ति भी कर लेना चाहता है, जो कि वह कानून-विरोधी कार्य करनेसे अपने ऊपर लेता है। खरीददार भी इस कीमतको देनेके लिये तैयार होता है, क्योंकि संभवतः उसने स्वयं उसी तरह अवैध ढंगसे पैसा पैदा किया है, और कानूनके होनेपर भी बहुत अधिक पैसा देनेकी परवाह नहीं करता।

—(E. C. pp. 24-29)

जो सरकार आर्थिक योजना और कमसे कम उद्योगोंके बारेमें राष्ट्रीकरणकी नीतिकी ओर बढ़ रही है, और समाजवादी ढंगपर उचित वितरणके लिये उत्सुक है; उसे नियंत्रणके लिये लड़नेसे हिचकिचाना नहीं चाहिये। उसे अपनी आर्थिक नीतिके अनुसार उचित प्रबंध तथा व्यवस्था करना होगा, जिससे कि नियंत्रणको कार्यान्वित किया जा सके।

आयात-नियंत्रणमें भूल—युद्धके बादके समयमें आयात-नियंत्रणका मुख्य प्रयोजन था, आवश्यक उपभोगीय माल, तथा आवश्यक कच्चे माल और यंत्रोंको निश्चित रूपसे प्राप्त करना। यह विचार सामने रखकर खुले साधारण लाइसेंसमें सूची-बद्ध चीजोंकी संख्याको अक्तूबर १९४५ ई० और फिर जनवरी १९४६ ई० में बढ़ा दिया गया, तथा डालर-क्षेत्रसे आयातको काफी खोल दिया गया। इस प्रकार साम्राज्यके देशोंसे बहुतसी वस्तुओंके बेरोक-टोक और दूसरे देशोंसे कुछ सीमित संख्यामें मालके आयातकी आज्ञा दे दी गयी। परिणाम-स्वरूप जो आयात वस्तुएं आयीं, उनमेंसे अधिकाँश अनावश्यक तथा शौकीनीकी थीं। कुछ बातोंमें तो आयात माँगसे भी अधिक था, इस प्रकार देशका सीमित विनिमय-स्रोत निर्दयता-पूर्वक उड़ा दिया गया।

जो विदेशी विनिमय पूंजीमालके मंगानेके लिये अलग रख दिया गया था, वह बिना उपयोग किये ही पड़ा रहा, क्योंकि विदेशों में उस माल के प्राप्त करने में कठिनाई हुई और भारतीय उद्योगपतियोंने कारखानोंको काफी बढ़ानेमें अनिच्छा प्रकट की।

—(E. C pp, 41-43)

साधारण लाइसेंसकी कृपासे आयातके क्षेत्रमें खुले हर एक तरहके ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे घुस पड़े, और उन्होंने देशको ऐसे माल और पण्यसे भर दिया, जिन्हें जहाजसे उतारना भी आसान नहीं था और यह ऐसे समय जब कि कारखानोंकी पुरानी घिसी-टूटी मशीनोंको बदलने तथा नये उद्योग के आरंभ करने के लिये आवश्यक पूंजीमाल तथा यंत्रों की बड़ी आवश्यकता थी।

—(P. C. p. 7)

(सन् १९४५ और १९४६ ई० में ही नहीं अब भी अनावश्यक शौकीनीकी चीजें करोड़ों रुपयोंकी आ रही हैं:—)

आयात

शराब—	१९४६-४७ ई०	१९४८-४९ ई०
ऐल, वियर, पोर्टर	४१,३५,४९७	७१,६३,४१४
स्पिरिट	१,७७,८८,६७४	८८,०६,५५०
वाइन	४७,७०,४११	६,८२,८७९
तंबाकू—		
अ-निर्मित	२,७७,३५,२३१	२,९५,०१,४०७
सिगरेट	७३,४४,२२०	६४,०३,९००
रत्न, मोती	३,६७,६३,५२२	७८,१५,०७४

—(A. C. p. 20)

(सूखे मेवोंके बिना क्या काम नहीं चल सकता था, जो कि वे करोड़ोंके निम्न देशोंसे मंगाये गये)—

देश	१९४६-४७ ई०	१९४८-४९ ई०
पश्चिम-पाकिस्तान	-	५१,७३,४५५
मस्कत	३८,१३,०५०	३५,००,४७९
इराक	१,७६,६८,९३६	१,०६,५८,५७१
दूसरे कुछ देश	१,७२,२२,६७९	२,३६,८५,५९७

—(A. C. p. 53)

४. औद्योगिक नीति—

भारत सरकार का और औद्योगिक नीति पर वक्तव्य (१६ अप्रैल १९४८ ई०)।

... देशकी आर्थिक स्थितिका कोई भी सुधार निर्भर करता है, राष्ट्रीय सम्पत्तिकी वृद्धिपर। मौजूद धनका पुनर्वितरण जनताके लिये कोई मौलिक भेद नहीं पैदा करेगा, उसका अर्थ तो केवल दरिद्रता का वितरण करना होगा। इसलिये एक गतिशील राष्ट्रीय नीतिका काम है सभी उपायोंसे उत्पादनको लगातार बढ़ानेके साथ-साथ ऐसा उपाय करना, जिसमें (धनका) उचित वितरण हो। राष्ट्रकी वर्तमान आर्थिक अवस्था में—जब कि जन-समुदायका जीवनतल जीवित रहनेके तलसे भी नीचा है—कृषि तथा उद्योग-संबंधी उत्पादनके विस्तारपर जोर देना चाहिये...

... सरकार महसूस करती है, कि आनेवाले कितने ही समय तक चालू मौजूदा उद्योग इकाइयोंको लेकर चलानेकी जगह यदि हम अपने वर्तमान कारबारको उसी क्षेत्रमें न फैलायें, जहाँ वह अभी तक चल रहा

था, बल्कि दूसरे क्षेत्रोंमें नयी उत्पादन-इकाइयों पर ध्यान दें, तो राष्ट्रीय सम्पत्तिकी वृद्धि अधिक शीघ्रतासे हो सकती है।

इन बातोंपर विचार करके सरकारने निश्चय किया है, कि हथियार तथा गोला-बारूदका निर्माण, परमाणुशक्तिके उत्पादन तथा नियंत्रण और रेलवे यातायातके स्वामित्व तथा प्रबंधका पूरा एकाधिपत्य केंद्रीय सरकारको रहे...

निम्नलिखित उद्योग-शाखाओंमें राज्य ही एकमात्र...नये कारखानोंकी स्थापनाके लिये जिम्मेवार होगा...(१) कोयला (भारतीय कोयला-क्षेत्र कमीटी का प्रस्ताव आमतौरसे माना जायेगा), (२) लोह-फौलाद, (३) विमान-निर्माण, (४) पोतनिर्माण, (५) टेलीफोन, टेलीग्राफ, बेतारयंत्र, रेडियो-ग्राहकको छोड़कर, (६) खनिज तेल।

... सरकारने निश्चय किया है, कि इन क्षेत्रोंमें आजकल विद्यमान उद्योग-इकाइयोंको दस वर्षोंतक विकास करने दिया जायेगा, उन्हें उक्त समयके भीतर योग्यतापूर्वक कार्य करने तथा उचित विस्तारके सभी सुभीते दिये जायेंगे। ...जब किसी उद्योग इकाईको सरकार ले लेना चाहेगी, तो न्याय और औचित्यके आधारपर क्षतिपूर्ति दी जायेगी।

बाकी औद्योगिक क्षेत्र साधारणतया निजी व्यवसाय, वैयक्तिक या सहयोगी व्यवसायके लिये खुले रहेंगे।

भारत सरकार आशा करती है कि औद्योगिक नीति के मूलभूत सिद्धान्तके सम्बन्धमें अपने अभिप्रायोंके इस स्पष्टीकरणसे सभी दुराशंकायें दूर हो जावेंगी और उसे विश्वास है, कि अब मजूर, पूंजीपति तथा साधारण जनता मिलकर पूरा प्रयत्न करेंगी, जिसमें देशके शीघ्रतासे उद्योगीकरणके लिये रास्ता तैयार हो।

—(P. I. pp. 161-168)

(सरकारकी) औद्योगिक नीतिके महत्त्वपूर्ण रूपकी बारीकीसे छानबीन करनेपर हम इस निष्कर्षपर पहुँचनेके लिये बाध्य होते हैं :—

बड़े पैमानेके उद्योगके राष्ट्रीकरणके संबंधमें सरकारका मनोभाव बेमना, गतिशून्य तथा निर्जीव सा है। वैयक्तिक तथा सरकारी उद्योगोंके काम करनेके क्षेत्रोंकी सीमाका निर्धारण जिस तरह किया गया है, उससे वैयक्तिक उद्योग कमसे कम दस वर्षके लिये जैसेके तैसे रह जायेंगे।... आर्थिक योजनाके प्रकांड विद्वान् प्रोफेसर के० टी० शाहने पार्लियामेंटमें बहसके समय कहा था : "यह वैसी नीति नहीं है, जिसे अपनेको प्रगतिशील

कहनेवाली, देशके कल्याणको चरम सीमातक आगे बढ़ानेकी इच्छा रखनेवाली सरकार अपना सके। किये हुए पापों ही नहीं बल्कि छोड़े हुए पापोंके लिये भी मैं इस प्रस्ताव (की नीति) से हताश हुआ हूँ। इसमें सबसे बुरी चीजें राज्यके लिये छोड़ दी गयीं और सबसे अच्छी चीजें लाभ और केवल लाभ चाहनेवाले पूंजीपतियोंको दे दी गयीं। इसके कहनेकी क्या आवश्यकता थी, कि दस वर्षके लिये पूंजीपतियोंको 'शोषणका चार्टर' दे दिया गया, जिसके अनुसार वह सारा सार अपने लिये ले लें और भूसी आनेवालोंके लिये छोड़ दें।"

—(P. I. pp. 139-140)

(सरकारकी औद्योगिक नीतिपर पूंजीपति-वर्गका उद्गार सुनिये)

यह साफ है, कि सन् १९४७ और १९४८ ई० के उस गड़बड़-घोटालासे, सरकार बहुत दूर आ पहुंची है, जबकि निजी उद्योग-धन्धेका अबुद्धिपूर्ण विरोध शत्रुता तक पहुंच गया था। सरकार केवल वर्तमान व्यवसायोंको ही चालू रहने देनेकी इच्छुक नहीं है, बल्कि नये व्यवसायोंकी स्थापनाके लिये भी उत्सुक है।

विदेशी पूंजी के सम्बन्धमें प्रधानमंत्रीका वक्तव्य इस बारेमें कोई शंकाकी गुंजाइश नहीं रहने देता, और यह माना जा सकता है, कि सरकार ऐसी भोली नहीं है, जो आशा रखे, कि निजी व्यवसाय तथा निजी पूंजी लगानेके अनुकूल वातावरणको पैदा करनेके लिये कदम उठाये बिना विदेशी उद्योगपति उसके निमंत्रणको स्वीकार कर लेंगे।

—(R. S. p. 63)

स्वतंत्रताकी प्राप्तिके बाद तुरंत ही हमारी अर्थनीतिके समाजीकरण तथा उद्योगोंके राष्ट्रीकरणकी बातें कही जाने लगीं।

—(P. C. p. 47)

उत्पादन ह्रास—

औद्योगिक उपजका सूच्यंक	**(अगस्त १९३९-१००)**
१९३९-४०	११०.३
१९४१-४२	१२३.२
१९४३-४४	१२६.८
१९४४-४५	१२१.७
१९४६-४७	१०५.०
१९४७-४८	१०५.३

प्रायः सारे प्रधान उद्योगों के उत्पादन में ह्रास हुआ है। बहुत से उद्योग अपनी क्षमतासे कम उत्पादन कर रहे हैं।

—(E. C. p. 7)

औद्योगिक और खनिज उत्पादन (१ क्वार्टर=१४ सेर)

	१९३९-४५ का औसत	१९४५-४६	१९४७-४८
कपड़ा (करोड़ गज)	४४१.४	४६७.६	३७५.६
जूट, निर्मित (हजार टन)	१,१०३	९७३	१,०५९
सीमेंट (हजार टन)	२,००४	२,१४६	१,००४
गंधकिक तेजाब (हजार क्वार्टर)	७८१	४८१	५८८
अमोनिया सल्फेट (हजार टन)	२५	२१	२२
गेहूं आटा (करोड़ मन)	१.५७	१.४७	.४७
चीनी (करोड़ क्वार्टर)	२.१८	१.६९	१.५३
कागज (हजार क्वार्टर)	१,८००	१,६८२	१,४४३
दियासलाई (करोड़ ग्रोस)	१.८६	२.००	१.८०
लोहा (हजार टन)	१,७६८	१,४०६	१,५२३
फौलादसिल्ली (हजारटन)	१,२७५	१,३००	१,२१०
फौलाद तैयार (हजार टन)	१,२५९	१,३३८	७८८
पेट्रोल (करोड़ गैलन)	२.६४	२.२९	१.५७
केरासिन (करोड़ गैलन)	२.७३	१.२९	१.३८

—(E. C. p. 8)

उत्पादन (१९४८)

उद्योग	क्षमता	उत्पादन	क्षमताका प्रतिशत
(१) कोयला (हजार टन)	३०,०००	२९,७३०	९९.१०
(२) फौलाद (")	१,२६४	८५४	६७.५६
(३) नमक (हजार मन)	४८,०००	५९,३००	१२३.५४
(४) बिजली लैम्प (हजार)	१४,३५०	९,१३०	६३.६२
(५) सूखी बैटरी (करोड़)	१४.२	१२.३	८६.४३
(६) ट्रन्सफार्मर (हजार क्वार्टर)	१७५	८०	४५.७१
(७) बिजली पंखा (हजार)	२५०	१८०	७२.००
(८) बेल्ट (टन)	१,६००	६६१	४१.३१
(९) डीजेल इंजन (संख्या)	१,२००	९६४	८०.३३
(१०) मशीनटूल („)	३,०००	१,६९१	५६.३७

उद्योग	क्षमता	उत्पादन	क्षमताका प्रति०
(११) बाइसिकल (,,)	६०,०००	५१,६८८	८६.१५
(१२) कास्टिक सोडा (,,)	१३,५००	४,३८३	३२.४७
(१३) सोडा भस्म (,,)	५४,०००	२८,२००	५२.२२
(१४) क्लोरिन (तरल) (टन)	२,१००	१,८००	८५.७१
(१५) ब्लीचिंग पौडर (,,)	६,०००	२,८३६	४२.२७
(१६) धातु—			
अलुमिनियम (टन)	५,०००	३,३५४	६७.०८
सुरमा (,,)	७००	३७०	५२.८६
ताँबा (,,)	७,०००	६,०३१	८६.१६
सीसा (,,)	७,२००	५४५	७.५७
मिश्र (,,)	३०,०००	१५,७३२	५२.४४
अर्द्धनिर्मित (,,)	५०,०००	२६,५११	५३.०२
(१७) टायरट्यूब (हजार)	९,०००	७,१६०	७९.५६
साइकल-भिन्न (,,)	२,०००	१,५२०	७६.००
(१८) कपड़ा मिल—			
सूत (करोड़ सेर)	१०२ तकुआ	७२.१	
कपड़ा (करोड़ गज)	..	४३३.८	
(१९) सीमेंट (हजार टन)	२,११५	१,५१०	७१.६९
(२०) चीनी (,,)	१,४००	१,०००	७१.४३
(२१) कागज, दफ्ती (,, ,,)	११०	१००	९०.७०
(२२) सिगरेट (करोड़)	३,०००	२९६५.८	९८.८६
(२३) दियासलाई (ह० बक्स)	८००	५००	६२.४५
(२४) प्लाईवूड (१० लाख व० फी०)	६३	३९	६१.३२
(२५) अगिन-ईंट आदि (ह० टन)	२२५	१८६	८२.४५
(२६) पल्प आदि (ह० रीम)	१२१	४१	३३.३७

—(R. S. p. 26)]

यूरोपमें उत्पादन-वृद्धि

सोवियतसंघमें सन् १९४६ से १९४७ ई० में २७% वृद्धि, और सन् १९४७ से १९४८ ई० में २७% हुई, जो कि १९४० ई० की उपजसे १८% अधिक है ।

—(R. S. p. 24)

भारतमें उत्पादनके ह्रासके कारण हैं—(१) पूंजीमाल (मशीनों) के मिलनेमें कठिनाई, (२) मजूरोंमें अशान्ति, (३) यातायातकी कठिनाई, (४) कोयलेकी कमी, (५) कच्चेमालकी अपर्याप्तता, (६) पूंजी लगानेमें हिचकिचाहट।

—(E. C. p. 9)

अधिक धनिक-वर्गने (सन् १९३६-३७ ई० में) ६२ करोड़ कर दिया, और ८८ करोड़का लाभ उठाया, अधिक गरीब-वर्गने ८० करोड़ कर दिया, और ३६ करोड़का लाभ पाया।

—(P. C. p. 36)

परिशिष्ट-अध्याय ८

औद्योगिक अशान्ति

१. मजूर—

प्रान्त	प्रान्तोंमें कारखानेके मजूर				
	सरकारी फैक्टरी	कपड़ामिल	इंजीनियरिंग	धातु, खनिज	खानपान तम्बाकू
अजमेर मेरवाड़ा प्रथमार्द्ध १९४८	७,२७१	६,१३५	४५	६०	..
आसाम प्र० १९४८	२,६११	५१	२,१००	१,६४१	१,६२३
बिहार प्र० १९४८	१९,७११	९,०११	११,६६२	४१,५५४	१०,७९६
बम्बई प्र० १९४८—	६२,६१२	४,३९,५७७	५४,०९०	६,८८८	२६,८७६

प्रान्त	सरकारी फैक्टरी	कपड़ामिल	इंजीनियरिंग	धातु, खनिज	खानपान तम्बाकू
मध्यप्रदेश					
प्र० १९४८	१४,३०७	२७,४८९	३,१०६	७६	५,८९२
दिल्ली					
प्र० १९४८	८,२३८	१३,७१६	३,६०४	'५५४	१,१६६
मद्रास					
प्र० १९४८	२४७,८८	९५,५४४	२४,४७८	५,०७०	४६,४३६
उड़ीसा					
प्र० १९४८	१,१९३	..	११६	१७०	६,७६७
उत्तर-प्रदेश					
प्र० १९४८	५०,७१६	७०,२६३	५,४३९	४,३३६	१७,८४१
बंगाल					
प्र० १९४८	४९,८८७	३,४५,१३४	१,०७,९४९	२९,०१५	३७,६५१

प्रान्त	रासायनिक रंग	कागज, प्रेस	काष्ठ, पत्थर	कपास-गांठ	चर्म	फुटकर	योग
अजमेर मेरवाड़ा							
प्रथमार्द्ध १९४८	..	२२७	..	९४८	..	८५	१४,७७१
आसाम							
प्र० १९४८	१,५७८	२८३	१,४१०	..	..	..	११,३०१
बिहार							
प्र० १९४८	५,१८३	२,७९९	११,७२९	..	१,२९८	..	१,१३,७७३
बम्बई							
प्र० १९४८	३३,०१७	१६,७२४	१९,७६५	..	१,७४३	११,८८७	६,७३,१९२
मध्य-प्रदेश							
प्र० १९४८	५,०३५	१,२६४	८,३२८	..	..	२०७	६५,७०४
दिल्ली							
प्र० १९४८	१,०६९	१,८७१	५७५	..	..	१,२८६	३२,०७९
मद्रास							
प्र० १९४८	१९,५३३	१०,९९८	२०,३८१	५,५४१	८,४४२	३,०५२	२,६४,२६३
उड़ीसा							
प्र० १९४८	१३०	१,४७७	४९९	..	..	१८	१०,४५०
उत्तर-प्रदेश							
प्र० १९४८	१०,७२७	५,८९९	१०,४४२	१,२६७	७,०२९	३२३	१,९०,२७९
बंगाल							
प्र० १९४८	२३,७४४	१८,८४५	१६,९५४	७,३३७	९,७६९	१५,८७२	६,५२,०९७

खानोंके कमकर:—

खनिज	१९३९	१९४५	१९४६	१९४७
कोयला	१,९८,७५४	२,८८,२७६	३,१६,०१८	३,२१,५३७
अबरक	३२,१११	३८,२०८	३२,९४०	३१,६५६
मंगानीज	२७,४५२	९,५८०	१०,६५९	१५,०९२
लौह-पाषाण	८,८५५	६,८८३	७,०४३	६,६५५
अन्य	३२,१५१	३०,३५१	२३,७१६	३२,३२३
	२,९९,३२३	३,७३,२९८	४,००,३७६	४,०७,२६३

प्रान्तोंके अनुसार खान-कमकर:—

प्रान्त	१९३९	१९४५	१९४६	१९४७
बिहार	१,७०,३८४	२,४५,०२०	२,५९,१८६	२,५४,७७४
बंगाल	६०,९६५	७५,५४३	८०,३७३	८९,६८२
मध्य-प्रदेश	४१,६६६	३२,३२९	३६,४९१	३९,८११
मद्रास	१४,५४९	११,७६४	१३,१०३	१२,५०४
अन्य	११,०८६	८,६४२	११,२२३	१०,४९२
	२,९८,६५०	३,७३,२९८	४,००,३७६	४,०७,२६३

बगानोंके दैनिक कमकर:—

सन्	चाय	काफी	रबर
१९३९	९,२५,२३७	९८,५७०	३२,९४७
१९४२	९,२६,४६१	१,६२,४९३	४६,८८७
१९४५	८,७४,७५३	१,५१,८३२	४३,९३१
१९४६	१०,८४,०३०	१,४५,३२६	४८,१८६
१९४७	९,८०,०६७	..	४७,४३५

—(R. S. pp. 42-43)

औद्योगिक कमकरोंकी दैनिक औसत

फैक्टरी	१९३९	१९४१	१९४३	१९४५
सरकारी	१,३२,४४६	२,२०,०८६	३,५५,८७८	४,७५,०१३
अन्य	१६,१६,११५	१९,३६,२९१	२०,८०,४३४	२१,८५,९६४
योग	१७,४८,५६१	२१,५६,३७७	२४३६,३१२	२६,४२,९७७

—(I. P. p. 22)

युद्धकालमें जीवनोपयोगी चीजोंकी महंगाईके कारण मजूरों और वैतनिक कर्मचारियोंने महंगाईकी मांग की। मिल-मालिकोंने बहुत हदतक उसे स्वीकार किया। युद्ध-समाप्तिके बाद चीजोंके भावके गिरनेका कोई चिह्न दिखाई नहीं पड़ा, बल्कि वह और चढ़ता गया। लगातार भावोंके बढ़नेके कारण कमकरोंकी आमदनी गिरती गयी, उदाहरणार्थ सितम्बर १९४५ तथा जून १९४८ के दो वर्ष नौ महीनेमें जीवन-सामग्रीपर व्ययका सूच्यंक बंबईमें २१३ से २९२ और कानपुरमें ३२० से ४६२ हो गया, अर्थात् व्यय-भारमें ६१ और १४२ विंदुओंकी वृद्धि हुई (अगस्त १९३९ का खर्च यहां १०० माना गया है।) इसलिये जीवन-व्ययके भारको कम करने के लिये कमकरोंकी ओरसे संगठित रूपसे मजूरीकी वृद्धि, महंगाई और बोनसकी मांग लगातार होने लगी। लेकिन, मालिकोंने उसे देनेसे आना-कानी की, क्योंकि उन्हें भावके गिरने तथा लाभके कम होनेकी आशंका थी। इसीका परिणाम था १९४६-४७ की व्यापक मजूर अशांति, औद्योगिक झगड़े, जिनकी संख्या निम्न प्रकार थी:—

सन्	झगड़ोंकी संख्या	शामिल मजूर (१०००)	काम-दिन नष्ट (लाख)
युद्धकालमें:—			
१९३९	४०६	४०९	५०
१९४०	३२२	४५३	७६
१९४१	३५९	२९१	३३
१९४२	६९४	७७३	५८
१९४३	७१६	५२५	२३
१९४४	६५८	५५०	३४
१९४५	८२०	७४८	४१
युद्धोपरांत:—			
१९४६	१,६२९	१,९६२	१२७
१९४७	२,२५१	२,३५२	१६५

—(E. C. pp. 10-11)

इसमें संदेह नहीं कि चीजोंके भावोंके लगातार ऊपर चढ़नेने कितने ही कमकरोंको अधीर बना दिया है। पिछले दो सालों (१९४६-४७) में जीवन-व्ययके सूच्यंकके १०० विंदु बढ़ जानेसे मुद्रा-स्फीतिके कारण जो कठिन परिस्थिति उत्पन्न हुई है, उसमें परिवारके व्ययका संतुलन करना आसान काम नहीं है।

–(P. C. p. 112)

कमकरोंके प्रति सरकारका रुख—सरकारको (मजूरोंके प्रति) अपनी ढुलमुली तथा खुशामद करनेकी वर्तमान नीतिको त्यागना होगा। सबसे पहिले आवश्यक बात यह है, कि उसे युद्धकालकी भांति संकट-कालीन अधिकारोंका उपयोग करना चाहिये। दायित्त्वहीन तथा छिटफुट हड़तालोंको निषिद्ध घोषित कर देना चाहिये, और दूसरे महत्त्वपूर्ण आर्थिक क्षेत्रोंमें हड़तालके खतरोंको बलपूर्वक दबा देना चाहिये। कुछ मजूर-नेताओंके साथ कड़ाईका बरताव तथा सख्त दंड देना चाहिये।

–(P. C. pp. 133-35)

आर्थिक संकट पूजीवादी दृष्टिसे—श्रीघनश्यामदास बिड़लाने ३ अगस्त को लंदनमें कहा था। "देशकी आर्थिक अवस्थाको सुधारे बिना कितने समयतक भारत साम्यवादसे बचा रहेगा ? ...मैं सदासे मानता रहा हूँ, कि उत्पादनका रुकना ही बढ़ते भावोंका मूलकारण है, नियंत्रण और मुद्रासंकोच समस्याको हल नहीं कर सकते। समस्या तो उत्पादनको ही पर्याप्त बढ़ानेसे हल होगी। यह बात इससे सिद्ध हो गयी, कि यद्यपि जून १९४८ और जून १९४९ के बीच नोटोंका संचार ५२ करोड़, और बंक-डिपोजिट ६५६ करोड़ कम हो गये, अर्थात् २०८ करोड़ रुपयोंके चलनको कम कर देनेपर भी भावोंपर प्रभाव नहीं पड़ा। यद्यपि इससे रुपयोंके बाजारमें ठाला पड़ गया।

भारतके संपत्ति-स्रोत यदि पूरी तरह विकसित किये जायें, तो वह इतने अधिक हैं, कि प्रतिव्यक्ति आवश्यक अन्न और वस्तुएं प्रस्तुत की जा सकती हैं। भारतके संपत्ति-श्रोत यद्यपि अविकसित हैं, किंतु वह अमेरिकाके पंचमांशके करीब हैं। आजकल एक अमेरिकनकी आय १,२०० डालर है, और भारतीयकी ६० डालरके करीब।

—(H. T. Aug. 4. 1949)

२. **चीजोंका भाव**—

चीजोंके भावोंके सूच्यंक (युद्धका भाव=१००)

चीजें	१९४७-४८ (प्रथम तिमाही)	१९४८-४९ (द्वि० तिमाही)	१९४९-५० (प्र० तिमाही)
१-अन्न	२९१.४	३९७.१	३८४.८
२-औद्योगिक कच्चामाल	३६६.९	४५२.८	४५६.०
३-अर्द्धनिर्मित वस्तु	२५२.५	३३०.८	३२४.८
४-निर्मित वस्तु	२७४.०	३६७.२	३४६.६

चीजें	१९४७-४८ (प्रथम तिमाही)	१९४८-४९ द्वि० तिमाही	१९४९-५० प्र० तिमाही
५-फुटकर	५००.७	५२०.६	४९६.५
६-थोकभावका साधारण-सूच्यंक	२९७.४	३८३.६	३७७.४
७-चल-उपज सेक्युरिटी	२००.३	१६८.०	१३५.५
८-जीवन-व्यय (बंबई)	२६५	२९२	२९०
९-प्रिफेंस शेयर	१६९.६	१६०.६	१४१.६
१०-सरकारी सेक्युरिटी	११७.९	११४.५	११४.२
११-निर्यात (घोषित मूल्य)	२०६	२३६	..
१२-आयात	१७८	२३३	..
१३-सोना (स्थाने)	३०५.२	३०९.८	३१७.६
१४-चांदी (स्थाने)	३५९.३	३६७.४	३८१.८

उत्पादनका रुख (अगस्त १९३९=१००)

१-कपड़ा	९३.७	११४.४
२-ईंधन और शक्ति	१२९.२	१४३.५
३-अन्य	१०७.०	११०.८
४-साधारण सूच्यंक	१०१.१	११५.८

—(R. S. p. 8)

खाद्य-वस्तुओंके भाव-वृद्धिका सूच्यंक—

२ अक्तूबर	१९४८	३९७.४
जनवरी	१९४९	३८५.३
फरवरी	,,	३८३.८
मार्च	,,	३७६.५
अप्रेल	,,	३७३.८
मई	,,	३७७.०
जून	,,	३८१.४

मजूरोंके जीवन-व्ययमें वृद्धि (अगस्त १९३९=१००)

समय	बंबई	कलकत्ता	कानपुर	मद्रास
१९३९ (अ.दि.)	१०३	..	१०५	१०६
१९४६	२४६	२७५	३२८	२३९
१९४७	२६५	३०९	३७८	२७७

समय	बंबई	कलकत्ता	कानपुर	मद्रास
१९४८	२८८	३३९	४७१	३१५
,, जनवरी	२५८	३१५	४०५	३१२
,, मई	२७८	३४०	४४२	३११
,, सितंबर	३०८	३६०	५५८	३१७
१९४९ जनवरी	३०१	३३३	५०६	३३१
,, अप्रेल	२९०	३४३	४६८	३२७

—(R. S. p. 12)

मजूर-नेता शिकायत करते हैं, कि युद्धारंभसे मजूरीमें वृद्धि केवल २५०% हुई, जबकि जीवन-व्यय ४००% के करीब बढ़ गया है। इस प्रकार कमकरोंके साथ बुरा बरताव हुआ है, और वास्तविक वेतनकी दरमें उनकी अवस्था बदतर हो गयी है।

—(P. C. p. 55)

मजूरीका सूच्यंक–

१९४७-४८	२९७
१९४८-४९	३१८

—("Republic" 3. 9. 49)

३. मजूरोंकी क्षमता–

भूतत्त्वीय सर्वे-विभागके भूतपूर्व डाइरेक्टर टामस हालेंडने लिखा था:–"जिस किसीने भी ताता लौह-फौलाद कारखानेको अपनी आंखों देखा है, वह इस निष्कर्षपर पहुंचे बिना नहीं रह सकता, कि भारतीय मजूरों द्वारा देशके लिये उपयुक्त किसी उद्योगको चलाया जा सकता है। मैंने साकची (तातानगर) में ऐसे मजूर देखे, जो कुछ ही साल पूर्व अशिक्षित तथा संथाल-जंगलोंमें रहते थे। आज वह उतनी ही योग्यतासे प्रज्ज्वलित लाल फौलादके छड़ोंको पकड़ते हैं, रेलके लोहों, चक्कों, लौह-कोणोंको तैयार करते हैं, जैसे कि अंग्रेज मजूर।"

कुमारधोबी (बंगाल) इंजीनियरिंग वर्क्सके मैनेजरने कहा है–"अब हमारे पास कमसे कम २० ऐसे आदमी हैं, जो कि इंगलैंडके आदमियोंकी भांति मिक्रोमीतर (सूक्ष्ममापक) को इस्तेमाल कर सकते हैं, और जानते हैं कि मशीनके लिये इंचके १।१००० वें से १।१३००० वें भागका होना क्या अर्थ रखता है?"

—(I. L. p. 200)

४. **मजूरोंका स्वास्थ्य–**

मजूरोंका घर–यह सोचना भी क्षोभकर है, कि बंबईके सारे निवासियोंके ७४% कानपुरके ६२.५% और नागपुर के ६०% एक कोठरीके बासेमें रहते हैं। जबकि लंदनमें ६%, एडिनबरामें ५%, डंडीमें ९% और ग्लासगोमें १३% ही ऐसे आदमी मिलेंगे। बंबईमें प्रतिकोठरी औसतन् ४.०१ आदमी रहते हैं।

–(N. P. p. 109)

नगरों और गांवोंमें प्रतिसहस्र मृत्यु

नगर	सन्	मृत्यु-प्रतिसहस्र		शिशुमृत्यु-प्रतिसहस्र	
		नगर	ग्राम	नगर	ग्राम
कलकत्ता	१९३५–३७	३१	२२	२४५	१८८
हवड़ा	,,	३९		२७	
बम्बई	१९३७–३९	२८	३०	२४२	
अहमदाबाद	,,	६७		२७७	२१०
शोलापुर	,,	४०		२१०	
मद्रास	१९३५–३७	३९	२४	२२३	२९०
कानपुर	१९३८–३९	३७	२९	३१२	१९८
नागपुर	१९३७–३९	४६	३३	२४०	२२२

–(C. I. L. p. 236)

भोर कमेटीकी रिपोर्ट कहती है–"कानपुर और कलकत्तामें जो गंदगी और जघन्यता हमने देखी, उसका वर्णन नहीं हो सकता। एक आठ वर्गफीटकी कोठरी इस तरह बनायी हुई थी, जिसमें न प्रकाश न हवा ही जा सकती थी। उसके भीतर आठसे दस आदमी कभी-कभी नहीं बल्कि बराबर रहते हैं। इन जनाकीर्ण उद्योग-केंद्रोंमें मजूरोंको कैसे घरोंमें रहना पड़ता है, यह कोठरी इसका नमूना है। नहाने-धोनेका ही नहीं बल्कि प्रायः पाखानेका भी वहां कोई प्रबन्ध नहीं है। ...इन नगरोंकी सड़कोंपर सोनेवाले लाखों आदमियोंकी अवस्थाके बारेमें हम सोच भी नहीं सकते।

–(I. L. p. 270)

परिशिष्ट-अध्याय ६

आहारकी समस्या

१. देशमें भूमि (लाख एकड़) १९३८-३९—

	भारत	कश्मीर	पाकिस्तान	सारा
बोई भूमि	२३,१०	२०	४३०	२७,७०
	४३%	२४%	३७%	६१.३
पलिहर	५००	३	११	६१३
	९%	४%	१०%	
सारी जोती भूमि	२८,१०	२३	५४०	३३,७६३
	५२%	२४%	४७%	
जंगल	८००	२०	५०	८७०
	१५%	२४%	४%	
कृषि अनुपयुक्त	९००	३०	३००	१२३०
	१७%	३६%	२६%	
दूसरी बेजोती	८८०	१०	२६०	११५०
	१६%	१२%	२३%	
सारी बेजोती भूमि	२५,८०	६०	६१०	३२,५०
	४८%	७२%	५३%	
महायोग	५३,९०	८३	११,५०	६६.२३
	१००%	१००%	१००%	१००%

१९३८-३९ में सिंचाईकी भूमि (लाख एकड़)

	जोती भूमि	सिंचाई भूमि	प्रतिशत सिंचाई
भारत	२८,१०	४९०	१७%
कश्मीर	२३	१०	४३%
पाकिस्तान	५,४०	२००	३७%

१९४५-४६ में क्षेत्र (लाख एकड़) और उपज (लाख टन)

फसल	क्षेत्र			उपज		
	भारत	पाकिस्तान	योग	भारत	पाकिस्तान	योग
चावल	५,८१	२,२६	८,०७	१,८५	८२	२,६७
गेहूँ	२,४५	१,०४	३,५०	५९	३१	९०
दूसरी	९,५८	७९	१०,३७	१,६६	१९	१,८५
योग	१७.८५	४,०९	२१,९४	४,१०	१,३३	५,४२
	८१.३%	१८.७%		७५.५%	२४.५%	

–(P. T. pp. 11-13)

२. बे-खेत मजूर–

१९३१ में भारतके ३१५ लाख खेतिहर मजूरोंमें २३० लाख बे-खेतके थे।...बिहारमें प्रति २५ खेती न करनेवाले जमींदारोंपर ७२५ मजूर हैं। बिहार और उड़ीसाके अधिकांश भागमें अधिकांश खेतिहर मजूरोंकी स्थिति प्रायः दासों सी है। "(डाक्टर राधा कमल मुकर्जी)

–(I. L. p. 208)

हालके वर्षोंमें उत्तर-प्रदेशके राजपूत अपने काफी खेतोंको खो बैठे हैं, और लोध, मुराव (कोइरी), चमार और पासी लोगोंके हाथमें अधिक खेत चले गये। यह होना उचित ही था। राजपूत ही नहीं, बल्कि खेत रखने, हल जोतनेसे परहेज करनेवाले ब्राह्मण, कायस्थ तथा दूसरे ऊँची जातिवाले भी छोटी खेतिहर जातियोंकी होड़में हार रहे हैं।

–(N. P. p. 80)

कृषिज वस्तुओंके मूल्यमें वृद्धि (अगस्त १९३९ = १००)

	सन्	सूच्यंक	वृद्धि
अगस्त	१९४५	२६८	-
,,	१९४६	३०४	+३६
,,	१९४७	३५२	+४८
,,	१९४८	४४४	+९२

–(E. C. p. 31)

३. बेकार पशु अधिक–

पशु-गणनाके आंकड़े बतलाते हैं, कि मनुष्य-संख्याके साथ-साथ

उससे भी बढ़कर पशु-संख्याकी समस्या है। चीन और जापानमें कृषिमें शक्ति-संचालित यंत्रोंका प्रयोग नहीं होता, तो भी वहां प्रतिएकड़ उपज हमसे ज्यादा है। हमारी जोतवाली भूमिके अनुसार पशुओंकी संख्या बहुत अधिक है। प्रति सौ एकड़ जोती भूमिपर जहां चीनमें १५ तथा जापानमें ९ ढोर हैं, वहां हमारे यहां उनकी संख्या ६९ है। भूमिसे प्राप्त होनेवाले पोषण तत्त्वोंको लेनेमें एक ओर ढोर हमारे प्रतिद्वन्द्वी हैं, दूसरी ओर वह अपने उपयोगके अनुसार हमारे आहारमें वृद्धि नहीं करते।

–(I. P. p. 38)

२० करोड़ ढोरमें १२.५ करोड़के करीब फाजिल तथा आर्थिक तौरसे भार-स्वरूप हैं। हालैंड और जर्मनीमें सरकार जहां अच्छी नसलके पशुओंके पैदा करनेका नियमन करती है, वहां बछड़ोंकी संख्यापर भी नियंत्रण करती है।

–(N. P. pp. 64-65)

४. आहारकी कमी–

१९३९ में भारतमें प्रतिव्यक्ति प्रतिवर्ष आहारका खर्च १९४ सेर, १९४३-४४ (अकालके समय) १८९.५ सेरसे १९४५-४६ में १७० सेर हो गया। डाक्टर एकरायडके अनुसार दक्षिण-भारतके कुछ गरीब ग्रामीणोंका दैनिक आहार १७०० कलोरी, और मद्रास-नगरके कुछ गरीब परिवारोंका १८०० कलोरी था। कृषि या दूसरे साधारण शारीरिक परिश्रम करनेवाले व्यक्तिको प्रतिदिन २५०० से २६०० कलोरी आहार चाहिये। उस वक्त भी औसतन प्रतिव्यक्तिके आहारमें ४२३ कलोरीकी कमी थी। तबसे स्थिति और खराब हो गयी है। इसका अर्थ यह हुआ कि हमारे पास अपनी १५ से २०% जनसंख्याके लिये अन्न नहीं है। यह भी तब, जब कि १९३९-४० में हमारी जोती भूमि १६६० लाख एकड़ थी, वह १९४७-४८ तक १८५० लाख एकड़ हो गयी। इससे यह भी पता लगता है, कि कृषि-भूमि निःसत्व होती जा रही है।

—(P. C. p. 120)

अविभाजित भारतकी २०% जनसंख्या पाकिस्तानको मिली, जब कि अनाजमें उसका भाग २५%, गेहूँमें तो ३४% है। इसी कारण पाकिस्तानके पास खानेसे अधिक अनाज है, जब कि भारतके पास उसकी कमी है। भारतकी आहारकी कमी ३०, से ४० लाख टन आंकी गयी हां, फाजिल अन्न पश्चिम पाकिस्तानमें है, पूर्वी-पाकिस्तानमें आहारकी

कमी है। लेकिन इस कमीको पश्चिम-पाकिस्तानके फाजिल गेहूँसे नहीं पूरा किया जा सकता, क्योंकि उसका भोजन गेहूं नहीं चावल है।

अखाद्य-फसल—

	क्षेत्र (लाख एकड़)			उपज (५ मनवाली लाख गांठ)		
	भारत	**पाकिस्तान**	**योग**	**भारत**	**पाकिस्तान**	**योग**
कपास	१,१३	३३	१,४६	२१	१४	३५
जूट	५	१८	२४	१६	६२	७८

पाकिस्तानकी स्थिति कपास और जूट दोनोंके संबंधमें भारतसे बेहतर है। कपासके क्षेत्रका चौथाई तथा उपजका २।५ पाकिस्तानके पास है। प्रति-एकड़ उपज भी वहां हमसे ६०% अधिक है। १९३०-४० से १९४५-४६ के बीच जहां भारतमें कपास-क्षेत्र ३८% कम हो गया, वहां पाकिस्तानमें १०% ही कम हुआ। सिंध और पंजाबमें पैदा होनेवाले कपासका ३।४ लंबे रेशेका अमेरिकन कपास है। विभाजनसे पहिले लंबे रेशेके कपासकी उपज दस लाख गांठ थी, जिसमें ८ लाख भारतीय मिलें खर्च करती थीं।

जूटमें भी यही बात है—अधिक क्षेत्र तथा जूट पाकिस्तानके हाथमें है।

—(P. T. pp. 14-15)

दुर्भाग्यसे भारतमें आहारकी स्थिति युद्धकी समाप्तिके बाद और बिगड़ती गयी। युद्धके आरंभिक वर्षोंमें चावलकी उपज युद्धकी पहिलेवाली औसतसे कम थी, जो पीछे काफी बढ़ी और १९४६-४७ में २८१ लाख टन तक पहुँच गयी। यह सबसे अधिक धानवाले वर्षसे २५ लाख टन कम थी। गेहूंकी उपज १९४२-४३ में सबसे अधिक अर्थात् ११० लाख टन थी, वह गिरती हुई १९४६-४७ में ३२ लाख टन कम हो गई। १९४५-४६ में अन्नकी उपज युद्धपूर्वकी औसतसे १० लाख तथा अधिकतम् उपजवाले वर्षसे ६० लाख टन कम थी। "अधिक अन्न उपजाओ" आन्दोलनका कोई प्रभाव होता नहीं दिखाई पड़ा।

भारतमें अन्नकी उपज (लाख टन)

सन्	चावल	गेहूं	दूसरे	योग
१९३६-३९ (औसत)	२,६५	१,०३	१,८५	५,५३
१९३९-४०	२,५७	१,०८	१,८५	५,४८
१९४०-४१	२,२१	१,००	१,९९	५,२०

सन्	चावल	गेहूँ	दूसरे	योग
१९४१-४२	२,५३	९०	१,९५	५,३८
१९४२-४३	२,४८	१,१०	२,१३	५,७१
१९४३-४४	३,०६	१,०८	१,९१	६,०५
१९४४-४५	२,८२	१,०६	२,११	५,९९
१९४५-४६	२,६७	९०	१,८५	५,४२
१९४६-४७ (अंदाज)	२,८१	७८	..	..

युद्धके बाद भी अपने ५० लाख अनाजकी कमीको हम आयातसे पूरा नहीं कर सके, कारण–(१) यूरोप तथा दक्षिण-पूर्व एसियामें अनाजके उत्पादनकी अस्त-व्यस्त अवस्था, (२) मुद्रास्फीतिके कारण दूसरे देशोंमें अनाजके भावका चढ़ जाना, (३) विदेशी विनिमय (सिक्के) की भारतके पास कमी। भारतको १९४५-४६ में २४ करोड़, १९४६-४७ में ८९ करोड़, और १९४७-४८ में ११० करोड़ रुपया बाहरसे अनाज खरीदनेमें खर्च करना पड़ा।

—(E. C. pp. 21-23)

१९४९ के प्रथमार्द्धमें निम्न मात्रा (हजार टन) में अनाज बाहरसे आया:–

गेहूं	१,२०३.८	जौ	१५५.५
आटा	२८.१	मक्का	११४.८
चावल	५४०.५	सूजी	६.१
बाजरा	२७.६	कठिया गेहूं	७.६
बाजरी	१९२.८		
			२,२७६.८

—(R. S. p. 11)

प्रतिवर्ष अनाजकी आवश्यकता हमारी इतनी बढ़ती जा रही है, कि इस वर्ष (१९४९ में) हमें ४० लाख टनके करीब अन्न खरीदनेके लिये १५० करोड़ रुपयोंकी आवश्यकता है, जो अगले साल २०० करोड़के पास पहुंचेगी। वर्तमान दरसे हम अपने कमाये विदेशी विनिमयके सिक्केका आधा अनाजके आयातपर खर्च कर रहे हैं। यदि यही स्थिति आगे भी रही, तो हमारा प्रायः सारा विदेशी विनिमय (सिक्का) अनाजके खरीदनेमें चला जायेगा।

—(P. C. pp. 22-23)

५. **कृषि-उपज—**

यदि हम खेतीके बेहतर ढंगका उपयोग करें, जब और जहां आवश्यक हो वहां पर्याप्त सिंचाईका प्रबंध करें, अच्छी खाद, उपयुक्त हथियार और औजार काममें लायें, तो अपने अन्न-उत्पादनको दूना ही नहीं तिगुना भी कर देना कठिन नहीं है।

—(N. P. p. 26)

कुछ फसलोंकी उपज (सेर प्रति-एकड़)

फसल	१९३१-३३	१९३४-४६	१९३७-३९	१९४०-४२	१९४३-४५
चावल	४२६	४०३	३८८	३६५.५	३८९.५
गेहूं	३५३.५	३१९.५	३३५.५	३३७	३१२
कपास	३९	४५.५	४४.५	५१	५२.५
मूंगफली	४६९.५	४३४	४२८.५	४३५	३९९.५
अलसी	१३६	११९	१२०.५	१३०	१०८
चीनी (कच्ची)	१,४९५	१,२२१	१,४१६	१,४५७.५	१.५३०.५
जूट	६३१.५	६५४.५	५४७	४९१	५६९.५

दूसरे देशोंमें उपज (सेर प्रति-एकड़)

	चावल	गेहूं
चीन	७१७.५	४९४.५
मिश्र	१०३९.५	७४८
जापान	११५३.५	६५९
इताली	१५००	४५०
यु० रा० अ०	७४०.५	४९५

हमारे यहां १९४१ में औसतन् प्रतिव्यक्ति बोई भूमि ०.७२ एकड़ थी, जिसमें अन्नवाली भूमि केवल ०.५७ एकड़ थी। आवश्यक पुष्टिकर आहारके लिये यह भूमि अत्यन्त अपर्याप्त है। डाक्टर ओ० ई० बार्करने अमेरिकाके लिये—जहां फसलकी उपज हमारे यहांसे बहुत अधिक है—आहारके भिन्न-भिन्न तत्त्वोंके लिये प्रतिव्यक्ति आवश्यक फसलका क्षेत्र निम्न प्रकार बतलाया है:—

(क) संकटकालीन संयत भोजन	१.२ एकड़
(ख) अल्पतम् मूल्यमें पर्याप्त भोजन	१.८ ,,
(ग) साधारण मूल्यमें ,, ,,	२.३ ,,
(घ) यथेष्ट भोजन	३.१ ,,

जोती या जोतने लायक भूमिमें प्रतिशत–

भारत		पाकिस्तान		विभाजित	
प्रदेश	प्रतिशत	प्रांत	प्रतिशत	प्रांत	प्रतिशत
बिहार	९९	सीमांत प्र.	४९	बंगाल	८३
उ० प्र०	८०	सिंध	४०	पंजाब	६९
मद्रास	७८				
बंबई	९७				
उड़ीसा	७०				
आसाम	३४				
कोसल-विदर्भ	६७				

—(I. P. pp. 16-17)

६. भारतका क्षेत्रफल और जनसंख्या–

१९५१ में सारे भारत-संघका क्षेत्रफल १२.२०,०११ वर्गमील, नगर २,४२९, ग्राम ५,६०,०२०, घर ६,३८,१५,०००, व्यक्ति ३६,१८,२२,००० कश्मीर और आसाम जनजाति क्षेत्र को निकाल देने पर क्षेत्रफल ११,३८,८१४ वर्गमील और जनसंख्या ३५,६८,११००० (पुरुष १८,३३,८४,००० और स्त्री १७,३५,०६,०००) थे। इसका प्रांत-वार ब्योरा अगले पृष्ठ पर है:–

	क्षेत्रफल	नगर	ग्राम	१९४१में (हजार)	१९५१में (हजार)	प्रतिशत वृद्धि
भारतसंघ	१२,२०,०११	२,४२९	५,६०,०२०	३,१८,८९८	३,५६,८९१	२०.२%
क. राज्य–						
१. आसाम[1]	५४,०८४	३४	३२,२१२	७,५९३	९,६९०	..
२. प० बंगाल	२९,४७६	९३	३४,२४९	२१,८३७	२४,७८६	१३.५%
३. बिहार	७०,३६३	८९	६९,७३३	३६,५४६	४०,२१४	१०.१%
४. बंबई	१,१५,५७०	३३२	३३,८६७	२९,५०६	३५,९४३	२१.३%
५. मध्य-प्रदेश	१,३०,३२३	१३४	४८,२१८	१९,६३१	२१,३२७	८.६%
६. मद्रास	१,२७,७६८	४२०	३५,९३२	४९,८४७	५६,९५२	१४.३%
७. उड़ीसा	५९,८६९	२९	४५,३८७	१३,६६७	१४,६४४	६.४%
८. पंजाब	३७,४२३	९६	१५,६९८	१२,५९३	१२,६३३	०.४%
९. उ० प्रदेश	१,१२,५२३	४५६	१,०५,७७३	५६,५१६	६३,२५४	११.९%
ख. राज्य–						
१. हैदराबाद	८२,३१३	१३८	२२,३६०	१६,३३९	१८,६५२	
२. कश्मीर	८२,२५८	३९	८,७४०	४,०२०	४,३७०	
३. मध्य-भारत	४६,७१०	७९	१९,६३६	७,१४२	७,१५२	
४. मैसूर	२९,४५८	१०८	१६,३४९	७,३२९	९,०७२	
५. पंजाब-राज्य	१०,०९९	३८	६,१६६	३,४२४	३,४६३	

१ जन जाति क्षेत्र सहित है। ६८१३८ वर्गमील।

	क्षेत्रफल	नगर	ग्राम	१९४१ में (हजार)	१९५१ में (हजार)	प्रतिशत वृद्धि
६. राजस्थान	१,२३,४२४	१४७	३१,१८२	१३,२८२	१५,२९७	
७. सौराष्ट्र	२१,०६२	६५	५,५४३	३४,३०	४,१३६	
८. ट्रावनकोर-कोचीन	९,१५५	६१	४,१७९	७,४९३	९,२६५	
ग. राज्य–						
१. अजमेर मेरवाड़ा	२,४००	५	७०६	५,८८	५,९२	१७.५%
२. भूपाल	६,९२१	१७	२,९४६	७,८५	८३८	६.८%
३. विलासपुर	४५३	१	९४९	१,१०	१,२७	१६.४%
४. कुर्ग	१,५९३	२	३०१	१,६८	२,२९	३५.५%
५. दिल्ली	५७४	९	३०५	९,१८	१७,४३	९०%
६. हिमाचल प्रदेश	१०,६००	८	७,०८९	९,३५	१०,३५	..
७. कच्छ	८,४६१	८	९४३	५,००	५,६७	१३.४%
८. मणिपुर	८,६२०	..	..	५,१२	५,७९	१३.१%
९. त्रिपुरा	४,००	..	..	५१३	६४९	२६.७%
१०. विंध्य प्रदेश	२४,६००	२१	११,२६४	३,३५३	३,५७३	६.७%
घ. भूभाग तथा अन्यक्षेत्र–						
अंडमन-नागद्वीप	३,१४३	..	३४	३१		८.३%
सिकिम	२,७४५	९९	१,२१	१,३५		११.५%
महायोग	११,३८,८१४		३,१४,८३०	३५६८९१		१३.४%

७. जनवृद्धि—

१९०१ से १९५१ तक भारतमें जनसंख्याकी वृद्धि—

सन्	व्यक्ति	वृद्धि या ह्रास	प्रतिशत
१९०१	२३,५५,००,०००	..	+५.८%
१९११	२४,९०,५०,०००	+१,३५,५०,०००	—०.३%
१९२१	२४,८१,८०,०००	—८,७०,०००	+११%
१९३१	२७,५२,२०,०००	+२,७३,४०,०००	+११%
१९४१	३१,४८,३०,०००	+३,९३,१०,०००	+१४.३%
(१९५१	३५,६८,९०,०००	+४,२०,००,०००)	+१३.४%

१९०१ से १९५१ के बीच कुछ राज्योंमें जनवृद्धि—

राज्य	१९०१	१९४१	वृद्धि या ह्रास	प्रतिशत
मद्रास	३६६८३०००	५६९५२३२३	+२०१६९०००	५४.९%
बिहार	२८३९३०००	४०२१३११६	+११८२०२००	४१.६%
म०-प्र०	१३४७४०००	२१३२७३९८	+७८५३००००	५८.२%
उ०-प्र०	४८४०५०००	६३२५४११८	+१४८४९०००	३०.६%

—(C. I. pp. 2-6)

प्रति-सहस्र जन्म और मृत्युकी संख्या—

भारतमें

काल	जन्म प्रति-सहस्र	मृत्यु प्रति-सहस्र
१९०१-१०	३८	३४
१९११-२०	३७	३४
१९२१-३०	३५	२६
१९३१-३५	३४.७	२३

जापानमें

काल	जन्म प्रति-सहस्र	मृत्यु प्रति-सहस्र
१९००-१०	३२.२५	२०.०
१९११-२०	३३.२५	२१.७
१९२१-३०	३४.१	२०.६
१९३१-३५	३१.७	१७.२

इसे देखनेसे मालूम होगा, कि भारत और जापानमें जन्मसंख्या प्रायः एक-सी है। जापानमें सबसे अधिक संतानोत्पत्तिकी आयु १९ और २० वर्ष है, जब कि प्रति-सहस्र स्त्रियोंको ५४५ संतानें उत्पन्न होती हैं। २० बरसके बाद प्रसव-शक्ति कम होते-होते ४० बरसकी आयुमें हजार स्त्रियोंपर ११९ संतानें पैदा होती हैं। भारतकी प्रसव-क्षमता जापानसे

अधिक मालूम होती है। भारतमें औसतन् प्रति-विवाहित स्त्रीके ४ बच्चोंमें २.९ जीवित रहते हैं। यहां हर १०८ लड़कीपर १०० लड़का पैदा होता है, जब कि जापानमें १०१ पर १००।

—(N. P. p. 52)

अधिक जनसंख्या–

"अपने वर्तमान औद्योगिक तथा कृषि संपत्तिके विकासकी अवस्थाको देखते हुए भारतकी जनसंख्या आवश्यकतासे अधिक है। जनसंख्याका दबाव सभी प्रान्तोंमें एक-सा नहीं है। ....पता .... लगता है, कि जहां पहिले भारत अनाज बाहर भेजता था, वहां एक पीढ़ीके भीतर ही वह बाहरसे अनाज मंगानेके लिये मजबूर हुआ। जोतके आकारके छोटे होने, उसके टुकड़े-टुकड़े हो जाने तथा बे-खेतवाले मजूरोंकी संख्या-वृद्धि, यही बतलाते हैं, कि खेतोका क्षेत्रफल उसी परिमाणमें नहीं बढ़ा, जिस परिमाणमें कि जनसंख्या। इसीलिये प्रति-व्यक्ति खेत कम हो गये।"

–(The Famine Eujuiry Commission Einal Report)
(1945 p. 90)

आबादीकी घनता–१९४१ की जनगणनाके अनुसार भारतवर्षमें प्रति वर्गमील २४६ आदमी बसते थे। प्रांतोंकी घनता निम्न प्रकार थी:–

भारत		**पाकिस्तान**		**विभक्त**	
प्रदेश	घनता	प्रदेश	घनता	प्रदेश	घनता
बिहार	५२१	सीमान्त प्रान्त	२१३	बंगाल	७७९
उत्तर-प्रदेश	५१८	सिंध	२१३	पंजाब	२८७
मद्रास	४९१	बलूचिस्तान	९		
बंबई	२७२				
उड़ीसा	२७१				
आसाम	१८६				
मध्य-प्रदेश	१७०				

पूर्वी-बंगालमें १९३१ में प्रति-वर्गमील ६८८ और पश्चिम बंगालमें ६१८ आबादी थी। इसकी तुलना कीजिये दुनियाके और देशोंकी घनतासे।

देश	**घनता**	**देश**	**घनता**
बेल्जियम	७१०	इताली	२५९
इंगलैंड	७०३	फ्रांस	१९७
जापान	४८२	यु. राष्ट्र	४३
जर्मनी	३७३	न्यूजीलैंड	१६

१८७२ में भारतकी जनसंख्या २० करोड़ ३० लाख थी, जो शताब्दीके अंत तक २८ करोड़ पहुंच गयी और ४० बरस बाद ३९ करोड़के करीब ।

—(I. P. pp. 23-25)

अविभाजित भारतका ४।५ जनसंख्या भारत-संघमें है, जिसका क्षेत्रफल ७।१० है। पाकिस्तानकी जनसंख्या सारे भारतका १।५ और क्षेत्रफल १।५ से जरा अधिक है। कश्मीर ५% क्षेत्रफल रखता है, किंतु उसकी जनसंख्या केवल १% है। इस प्रकार भारत-संघकी प्रति-वर्गमील आबादी २७९, पाकिस्तानकी १९५ और कश्मीरकी ४९ है। लेकिन पाकिस्तानकी ६४% (२।३) जनसंख्या पूर्वी-बंगालमें है, जिसके पास सारे पाकिस्तानका १।४ ही क्षेत्रफल है। इस तरह पूर्वी-पाकिस्तान (पूर्वी-बंगाल) की आबादीकी घनता जहां ७१८ है, वहां पश्चिमी-पाकिस्तानकी केवल १३६ ।

—(P. T. p. 7)

८. राज्योंमें उपनिवेशन—

आसाम, पंजाब, मध्य-प्रदेश, और मद्रासमें खेती लायक काफी नयी भूमि प्राप्य है। ऐसी भूमि आसाममें १०%, पंजाब, मध्य-प्रदेश और मद्रासमें ९% है। कुल १६.२० करोड़ एकड़ ऐसी भूमिमेंसे तीन चौथाई या १२.२० करोड़ एकड़में खेती की जा सकती है। आसाममें ब्रह्मपुत्र-उपत्यकाके बसानेका काम पिछली तीन शताब्दियोंमें बड़ी तेजीसे हुआ। यह काम सन् १९११ ई० में शुरू हुआ, जब कि बंगाली उपनिवेशी ग्वालपाड़ामें उस साल आकर बसे। १९२१ तक ग्वालपाड़ाकी खाली भूमि आबाद हो गयी। १९२१-३० में नौगांवपर भी उन्होंने अधिकार कर लिया। कामरूपके बरपेटा सबडिवीजनमें भी उपनिवेशी आने लगे और फिर उत्तरी लखीमपुर की ओर बढ़े। १९४१ की जनगणनाकी रिपोर्टमें कहा गया है:— "दूसरे प्रदेशसे आनेवाले उपनिवेशियोंने ब्रह्मपुत्रके दक्षिण-तटके घने जंगलोंको साफ किया और वहांकी आबाद होने लायक प्राय: सारी भूमिको आबाद कर लिया। ...उन्होंने जंगल काटकर यहांके प्रदेशको स्वस्थ बनाया और निर्जन भूमिको समृद्ध गांवोंमें बदल दिया। खेतीमें उनका परिश्रम अद्वितीय है। वह खेतसे अधिकसे अधिक फसल पैदा करते हैं। उनका पशुओंका पालन और प्रेम देखनेकी

चीज है। उनके आनेसे सरकारकी लगान बढ़ी है, वाणिज्य-व्यापारकी उन्नति हुई है। स्थानीय आसामी पहिले उपनिवेशियोंको पसन्द नहीं करते थे,...किंतु धीरे-धीरे वह घृणा और पक्षपात दूर होने लगा।"

१९०१-११ में आसाममें ७७,७९९ उपनिवेशी आये और १९११-२१ में ४,११,९४१, किंतु १९२१-३१ के बीच केवल १,२१,६४८। पूर्वी बंगालसे आकर आसाममें बस गये लोगोंकी संख्या ५ लाखसे ऊपर है।

—(N. P. pp. 55-56)

९. **देशोंकी औसत आयु**–

भारतवर्षके निवासियोंकी औसत आयु केवल २७ बरस है, जब कि दूसरे देशोंमें वह बहुत अधिक है:–

देश	काल	प्रत्याशित आयु (वर्ष)
न्यूजीलैंड	१९३१	६५.४
हालैंड	१९३१-३५	६५.१
यु० रा० (श्वेतांग)	१९४०	६३.८
नार्वे	१९२१-३०	६१.०
जर्मनी	१९३२-३४	६०.०
आस्ट्रिया	१९३०-३३	५४.५
बुलगारिया	१९२५-२८	४६.०
जापान	१९२६-३०	४९.०
सोवियत रूस (यूरोप)	१९२६-२७	४२.० वर्ष
सोवियत रूस (साइबेरिया)	१९२६-२७	३९.२ "
भारत	१९२१-३०	२७.० "

—(I. p. 32)

यदि प्रसवकी उर्वरता और मृत्युका क्रम आज जैसा ही रहा, तो, १९६१ तक भारतकी जनसंख्या ५१ करोड़ ३० लाख हो जायेगी।

—(N. P. p. 125)

१९३१-४१ के दस वर्षोंमें भारतके कितने ही प्रांतों और रियासतोंमें ३ से २२.४% तक वृद्धि हुई—कुर्गमें ३%, बंगालमें २०.३%, पंजाबमें २०.५%। इस रीतिसे तो १९४७ में भारत (अविभक्त) की जनसंख्या ४५ करोड़ होनी चाहिये।

कुछ देशोंकी प्रति-सहस्र जन्म-मृत्यु-संख्या निम्न प्रकार हैः—

देश	१९११-१३		१९३१-३५		१९४१-४३.	
	जन्म	मृत्यु	जन्म	मृत्यु	जन्म	मृत्यु
इंगलैंड	२४.१	१३.९	१५.०	१२.०	१६.३	१२.१
हालैंड	२८.१	१३.१	२१.२	८.९	२३.०	१०.१
जापान	३४.१	२०.२	३१.६	१७.९	..	..
आस्ट्रेलिया	२८.[illegible]	१०.९	१६.९	९.०	२०.७	१०.३
भारत	३८.६	१९.९	३४.४	२३.५	३२.०	२२.०

आयुके अनुसार प्रति १० हजार पुरुषों और स्त्रियोंकी भारतमें संख्या—

आयु-समुदाय—	१९२१		१९३१	
	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
०—१०	२,६७३	२,८१०	२,८०२	२,८८९
१०—२०	२,०८७	१,८९६	२,०८६	२,०६२
२०—३०	१,६४०	१,७६६	१,७६८	१,८५६
३०—४०	१,४६१	१,३९८	१,४३१	१,३५१
४०—५०	१,०१३	९६७	९६८	८९१
५०—६०	६१९	६०६	५६१	५४५
६०—७०	३४७	३७७	२६९	२८१
७० से ऊपर	१६०	१८०	११५	१२५
मध्यम आयु	२४.८	२४.७	२३.२	२२.८

५० से ऊपर आयुवाले व्यक्ति हमारे यहां ९.५ पुरुष और ८.५ स्त्रियां हैं, और २० बरससे कम अवस्थाके व्यक्ति ४७ हैं। इस प्रकार भारतमें केवल २।५ जनसंख्या ही ऐसे बयस्क लोगोंकी है, जो कि उत्पादन और दूसरे कामोंको कर सकते हैं।

—(N. P. pp. 18-21)

जोती भूमि और जनसंख्या—१९४०-४१ ई० में ब्रिटिश भारतमें २९.५८ करोड़ व्यक्तियोंके लिये २१.४ करोड़ एकड़ खेतीकी भूमि थी। इस प्रकार खेत प्रतिव्यक्ति .७ एकड़ था।

—(P. I. p. 30)

कार सौंडरने कहा हैः—"प्रत्येक नया मुख दुनियामें आते समय अपने साथ हाथोंका एक नया जोड़ा लाता है, लेकिन कुछ ही अवस्थाओंमें

वह नया हाथका जोड़ा अपने मुंहके खाने भरके लिये अन्न पैदा करने पाता है।"

—(I. P. p. 8)

जनसंख्याका विश्लेषण करनेपर मालूम होता है, कि ४०% व्यक्ति अनुत्पादक हैं, जो कि अपना आहार बाजारसे खरीदते हैं और सिर्फ ६०% उत्पादक हैं।

देशमें कृषिज वस्तुओंका मूल्य दूसरी वस्तुओंकी अपेक्षा अधिक बढ़ा है, जैसा कि (१९३९=१००) सितम्बर १९४६ के सूच्यंकसे मालूम होता है:–

चावल	३२२	लोहा	११७
गेहूँ	३७३	चर्म	२००
चीनी	१६९	केरासिन	१५१
कपास	१९२	कपड़ा	२६१
जूट	२२७		

—(P. I. p. 83)

९. नयी भूमि और प्रवासन–

ब्रिटिश भारतके ५१.२० करोड़ एकड़ क्षेत्रफलमेंसे १६ करोड़ एकड़में जंगल, नदी, सड़क, नगर आदि हैं। १५ करोड़ एकड़ बंजर और खाली पड़ी है, जिसका खेत बनाया जा सकता है। जुती भूमि २१.३ करोड़ एकड़ है। यदि इस खेती लायक बंजर भूमिको जोत लिया जाये, तो खेतीकी भूमि ६०% बढ़ जायेगी और इससे अन्नकी उपज भी अधिक नहीं तो ५०% बढ़ सकती है।

— (N. P. pp. 25-26)

बाहरके देशोंमें ब्राजीलकी जनसंख्या प्रतिवर्गमील, १२ यु० रा० की ४०, कनाडा और आस्ट्रेलियाकी तो २ या ३ ही है। अर्जन्तीना और अफ्रीकाके दूसरे देशोंमें आबादीकी घनता इससे थोड़ी अधिक है। इधर भारतमें प्रतिवर्गमील २४६ आदमी रह रहे हैं। ब्राजील या अफ्रीकाके भागों और आस्ट्रेलियामें भारतीयोंके बसनेके अनुकूल काफी भूमि है, लेकिन अधिक उन्नत और शिक्षित देश समझते हैं, कि उपरोक्त देश केवल उन्हींकी संपत्ति हैं, वहां वही रहनेका अधिकार रखते हैं। चाहे जनसंख्याकी कमीसे वह उस भूमिको अधिक विकसित करनेमें असमर्थ ही क्यों न हों, तो भी वह ऐसा चाहते हैं। अफ्रीका,

आस्ट्रेलिया और अमेरिकामें भी रंगीन जातियोंके प्रवेशके विरुद्ध कानून बने हुए हैं। जब तक पृथ्वीके चारों कोनोंकी प्राकृतिक संपत्तिको मानवी शक्तिके अनुसार संतुलित न किया जायेगा, तब तक भारत और चीन जैसे देशोंकी जनसंख्या-संबंधी समस्या हल नहीं हो सकती। इन देशोंके भाग्यमें युद्ध, महामारी, अकाल जैसी आफतोंका लगातार आना बदा है, जिससे संख्या कम या नियंत्रित हो सकती है।

—(N. P. 29-30)

१०. जनसंख्या-नियंत्रण—

(कांग्रेसकी) राष्ट्रीय योजना समितिने अपने एक प्रस्तावमें कहा है—"सामाजिक अर्थनीति, पारिवारिक सुख और राष्ट्रीय योजनाकी सफलताके लिये पारिवारिक योजना तथा बच्चोंकी संख्या निर्धारित होनी आवश्यक है। राज्यको इसे प्रोत्साहन देनेकी नीति स्वीकार करनी चाहिये। जरूर आत्म-संयमपर जोर दिया जाय, किंतु साथ ही संतति-नियंत्रणके सस्ते और अहानिकर तरीकोंके ज्ञानका भी प्रसार किया जाना चाहिये। संतति-नियंत्रण-चिकित्सालयोंकी स्थापना होनी चाहिये। ...जनन-शास्त्रीय प्रोग्राममें पागलपन या मिरगी जैसे गंभीर तथा वंश-परम्परासे चलनेवाले रोगोंसे पीड़ित व्यक्तियोंके अजनकीकरणको भी शामिल कर लेना चाहिये।"

—(N. P. p. 22)

गर्भ-निरोध-प्रक्रियाका ज्ञान कैसे फैलाया जाय, इसके लिये व्यवहार और उपयोगी तरीके हैं:—

(१) भारतके सभी मेडिकल-कालेजोंमें गर्भ-निरोध-विधि पाठ्य-क्रममें होनी चाहिये।

(२) गर्भ-निरोधके संबंधमें महिला डाक्टरों और नर्सोंको शिक्षा देनी चाहिये।

(३) संतति-निरोध-चिकित्सालयोंकी स्थापना होनी चाहिये, जहांसे मुफ्तमें सहायता और सामग्री दी जाये.......।

(४) गर्भ-निरोधके लिये इस्तेमाल होनेवाली रबर, कपास, रसायनकी सामग्रीके स्थान-स्थानपर निर्माणको प्रोत्साहन देना चाहिये, जिसमें कि वह सस्ती और पास होनेसे जनताके लिये सुलभ हों।

(५) २-४ वर्षके फरकसे संतानोत्पत्ति तथा परिवारमें ४ बच्चों

तक सीमित रखनेके बारेमें म्युनिसिपैलिटियों, जिला-बोर्डों और पंचायतों द्वारा साधारण जनतामें प्रचार किया जाय।

—(N. P. p. 81)

युक्त-राष्ट्र-अमेरिका, कनाडा, स्विट्जरलैंड, डेनमार्क, फिनलैंड और जर्मनी जैसे बहुतसे देशोंमें बंध्याकरणका सुव्यवस्थित रूपसे व्यवहार हो रहा है। युक्तराष्ट्रमें १९३१ तक १२,१४५ वैध बंध्याकरण किये गये, जिनमें सबसे अधिक संख्या अर्थात् ७,५४८ कलिफोर्नियामें थी। जर्मनीमें तो पहिले ही वर्षमें जननशास्त्रीय उच्चन्यायालयके निर्णयके अनुसार ५६,२४४ व्यक्तियोंका बंध्याकरण हुआ। फिनलैंड (१९३५) के कानूनको भारतमें स्वीकार किया जा सकता है। इस कानूनके अनुसार निर्बुद्धि, निर्बल-मस्तिष्क या पागल व्यक्तिका बंध्याकरण हो जाना चाहिये। अंधे-गूंगे, मिरगी-रोगी, आनुवंशिक अंध जैसे रोगियोंका प्रार्थना करनेपर बंध्याकरण किया जा सकता है। कई और भी रोगोंमें मेडिकल-बोर्डकी आज्ञा प्राप्त होनेपर यह काम हो सकता है।

भारतमें २,३१,७३० साधु,-साधुनी और धार्मिक भिखारी हैं, जिनमेंसे बहुतेरे मानसिक रोग या दूसरी व्याधिसे पीड़ित हैं,। साधुओं और धार्मिक भिखारियोंका बंध्याकरण अच्छा है, इससे अवैध संतानोत्पत्तिमें कमी होगी। यहां यह कह देना जरूरी है, कि बंध्याकरणका मतलब यौन-संभोगसे वंचित होना नहीं है, और वह प्रसव-निरोधको छोड़कर और किसी तरह शारीरिक या मानसिक स्थितिमें हानि नहीं पहुँचाता।

—(N. P. p. 102)

विधवापन भारतीय स्त्रियोंके एक बड़े भागको संतानोत्पत्तिसे विरत कर देता है—भारतमें संतानोत्पादन अवस्थावाली स्त्रियोंमेंसे १५% विधवा होनेके कारण संतान नहीं पैदा करतीं।

भारतके भिन्न-भिन्न प्रांतोंमें संतानोत्पादनावस्था या १५-४० वर्षकी विधवाओंकी संख्या प्रति-सहस्र निम्न प्रकार है:—

	१९०१	१९११	१९२१	१९३१
भारत	१३७	१२४	१३८	११२
बंगाल	२४०	२२४	२३२	१५५
बिहार-उड़ीसा	१२०	१२५	१३८	११६

	१९०१	१९११	१९२१	१९३१
बंबई	१४८	११७	१३६	१०८
मध्य-प्रदेश	१२५	७८	१०४	१६१
मद्रास	१३१	१२०	१३१	१३२
पंजाब	८८	१०६	९८	६७
उत्तर-प्रदेश	१०२	१०४	१११	९४
राजपूताना	१५२	१०८	१४१	१०३

—(N. P. pp. 39-40)

परिशिष्ट अध्याय १०

आधारिक उद्योग

१. खाद–

(१) **अमोनियम-सल्फेट**–कोयलासे कोक बनाते समय कोलतार तथा दूसरी आनुषंगिक उपजें प्राप्त होती हैं, जिनमें एक अमोनियम-सल्फेट भी है। यह भारतमें कोक किये जाते कोयलेपर प्रति-टन १२५ सेर पैदा होता है। इसके उत्पादक हैं:–

झरिया–बरारी कोक कंपनी।
झरिया–बेवराकर कोल कंपनी।
गिरिडीह–ई० आई० आर०।
हीरापुर–इंडियन आइरन स्टील कंपनी।
जमशेदपुर–ताता आइरन स्टील कंपनी।

—(I. B. p. 256)

(२) **सिंदरी**–अमोनिया सल्फेटके बनानेके लिये सल्फूरिक-एसिड (गांधक्कि अम्ल) या जिप्समकी आवश्यकता होती है। सल्फूरिक एसिड इताली, जापान, यु० रा० जैसे गंधककी खानवाले देशोंसे आता है, किंतु सौभाग्यसे हमारे यहां पर्याप्त मात्रामें जिप्सम प्राप्य है। जिप्समका स्थान नित्रोचाक (नित्रीय खड़िया) ले सकती है, जिसे जर्मनीमें इस्तेमाल किया जाता है। इसका उत्पादन भी बहुत सस्ता है, किंतु अभी इसका तजरबा भारतमें नहीं हुआ।

१९४३ में सरकारी सदस्यों और उद्योगपतियोंका इसी संबंधमें एक सम्मेलन हुआ था। उसके निर्णयानुसार नियुक्त मिशनने साढ़े तीन लाख टन प्रतिवर्ष अमोनिया-सल्फेट पैदा करने लायक एक प्लांट स्थापित करनेकी सलाह दी। कोयला नजदीक होनेसे सरकारने बिहारमें धनवादके पास सिंदरीमें प्लान्ट स्थापित करनेका निश्चय किया। उसके लिये मशीनें यु० रा० से आयी हैं। सरकार एक और प्लान्ट विन्ध्य-पर्वतके दक्षिणमें कहीं स्थापित करना चाहती है। ३५०,००० टन अमोनिया-सल्फेट पैदा करनेके लिये ५,३६,०००

टन जिप्सम, १,७८,००० टन कोक और २,४९,००० टन कोयलेकी आवश्यकता होगी। देहरादून (लछमनझूला), जोधपुर, बीकानेरमें जिप्सम मौजूद है। सिंदरी प्लान्टमें १५५ अफसर तथा २,२८३ कमकरोंको काम मिलेगा।

(३) **अलवये**—ट्रावनकोरकी फर्टलाइजर और केमिकल कंपनीने अलवये में अमोनिया-सल्फेट पैदा करनेके लिये एक बड़ा प्लांट खड़ा भी कर दिया, जिसने जून १९४७ में काम शुरू कर दिया। इसकी क्षमता ५०,००० टन वार्षिक है। इसका सल्फूरिक-एसिड प्लांट भारतमें सबसे बड़ा है, और प्रतिदिन १०० टनकी क्षमता रखता है। अलवये, बेलगुला, और सिंदरी मिलकर ५ लाख टन अमोनिया-सल्फेट प्रतिवर्ष पैदा कर सकेंगे। किंतु, वह हमारी कृषिके लिये अपर्याप्त है। उपजको पूरी-पूरी तौरपर बढ़ानेके लिये प्रतिवर्ष ५० लाख टन अमोनियम-सल्फेट तथा १० लाख टन सुपरफास्फेट-की आवश्यकता होगी। हमारे यहांके सिंचाईवाले २ करोड़ एकड़ धानके खेतोंके लिये ही एक क्वार्टर=(१४ सेर) प्रति-एकड़के हिसाबसे १० लाख टन रासायनिक खादकी आवश्यकता होगी। इन दोनों प्रकारकी रासायनिक खादोंके लिये हमें दस लाखकी उपजका प्रोग्राम बनाना चाहिये। मिश्र जैसा एक छोटा-सा देश भी प्रतिवर्ष ५ लाख टन रासायनिक खाद तैयार करता है। खली, मछलीखाद, हड्डी-खाद आदिका भी इस्तेमाल करना चाहिये।

—(I. B. pp. 264-65)

२. अन्नकी उपज—

(१) फसलका क्षेत्रफल और उपज, क्षेत्रफल १००० एकड़

फसल	**१९४८-४९ क्षेत्रफल**	**१९४७-४८ से प्रतिशत ह्रास वृद्धि**	**१९४७-४८ (अंतिम)**
खाद्य अनाज—	—	—	—
चावल	६,०४,८०	–.०६	६,०८,१८
गेहूँ	१,९३,५८	–५.०	२,०२,०९
ज्वार	३,२२,१०	–३.४	३,५६,६५
बाजरा	१,९६,०४	–५.३	२,०६,९३
मक्का	७४,६२	–४.१	७७,७७
रागी (मड़ुवा)	५०,९५	–१.०	५१,४८
जौ	७६,५२	–२.८	७१,२७

फसल	क्षेत्रफल	से प्रतिशत ह्रास वृद्धि	१००० एकड़
चना	१,९०,५५	–७.९	१,७४,९८
ऊख	३६,४५	–९.९	४०,४७
योग	१७,४५,६२	–१.५	१७,८९,८२
तेलहन–			
(क) खाद्य			
तिल	३४,२४	–११.१	३७,०४
मूंगफली	९०,७८	–९.९	१,००,७९
(ख) अखाद्य–			
अलसी	३२,७७	–०.८	३३,३८
रेंड़ी	१४,०६	–०.६	१४,१४
राई-सरसों	१६,४६	–३.६	..
योग			१,८५,८३
रेशा–			
कपास	१,०८,७३	–२.६	१,०६,०२
जूट	७,६६	–१७.७	६५१

फसल

अनाज	१९४८-४९ (हजार टन)	१९४७-४८ से अंतर	१९४७-४८ (हजार टन)
चावल	१,८८,६३	–३.७	१,९५,३४
गेहूँ	..	..	५३,४८
ज्वार	३५,३८	–२.००	५७,३०
बाजरा	२२,४७	–१८.७	२७.६४
मक्का	१७,६२	–१७.२	२१,२७
रागी (मँडुवा)	१३,५६	–६.८	१४,५५
जौ	..	..	२४,८८
चना	..	..	४३,१०
ऊख	४९,८४	–१४.१	५८,०३
योग	..	..	४९,५५९

तेलहन–			
(क) खाद्य–			
तिल	२,७८	–१७.८	३,३८
मूंगफली	३०,७३	–९.९	३४,११
(ख) अखाद्य–			
अलसी	..	..	३,६४
रेंडी	१,०९	–७.६	१,१८
राई सरसो	..	..	..
योग	..	..	४२,३१
रेशा–			
कपास	१७.५०	–१७.८	२१,१६
जूट	२०,७२	–२२.२	१६.९६

—(R. S. p. 16)

हमारे यहां चावलकी उपज ४९९ सेर (दस मन १९ सेर) प्रति एकड़ है, जब कि चीनमें वह १२१६.५ सेर है। गेहूँकी उपज भी हमारे यहाँ जहां ४०५.५ सेर है, चीनमें ४९४.५ सेर।

—(P. C. p. 150)

(२) भारतमें फसलोंकी उपजें प्रति-एकड़ (सेर)

फसल	१९३१-३३	१०३७-३९	१९४०-४२	१९४३-४५
चावल	४२६	३८३	३६५.५	३८९.५
गेहूं	३०३.५	३३५.४	३३७	३१२
कपास	३९	४४.५	५१	५२.५
मूंगफली	४६९.५	४२८.५	४३५	३९९.५
अलसी	१३६	१२०.५	१३०	१०८
चीनी (कच्ची)	१४९२.५	१,४१६	१,४५७.५	१,५३०.५
जूट	६३१.५	५४७	४९६	५६९.५

दूसरे देशोंमें उपज प्रति-एकड़ (सेर)

देश	चावल	गेहूं
चीन	७६७.५	४९४.५
मिश्र	१,०३९.५	७४८

देश	चावल	गेहूं
जापान	१,१५३.५	६५९
इताली	१,५००	४५०
यु० रा०	७४०.५	४९५

अथवा १९३९-४० में उपज प्रति-एकड़ टन—

	चावल	गेहूं	कपास (सेर)
युक्त राष्ट्र	१.०१ टन	०.३७ टन	१२३
जापान	१.६१ ,,		
कनाडा		०.५२	
आस्ट्रेलिया		०.४२	
भारत		०.३५	५०
मिश्र			२५७.५

यदि ठीकसे खाद आदि दी जावे, तो भारतमें उपज दुगुनी-तिगुनी बढ़ सकती है। पूसा मद्रास, बिहार आदिमें अनेक तजरबे हुए हैं, जिनसे मालूम हुआ, कि फास्फेट या सुपरफास्फेटके उपयोगसे फसलकी उपज विशेषकर चावलकी बहुत बढ़ाई जा सकती है।

—(I. B. p. 260)

घाघरा, गंडक, कोसी, सोन, सुवर्णरेखा, अजय, दामोदर, तिस्ता, ब्रह्मपुत्र, महानदी, गोदावरी—यह सभी नदियां भारी बाढ़ लाती हैं, जो अधिकतर पहाड़ोंमें जंगलोंके काट डालनेके कारण हैं। बाढ़से रक्षाके लिये जंगल लगाना, नदी-प्रबंध, कृषि तथा नहरकी इंजीनियरीकी आवश्यकता है। अंदाज लगाया गया है, कि मिसिसिपीकी अपेक्षा गंगा आठ गुना अधिक मिट्टी बहाके लाती है, जब कि उसका जलागम-क्षेत्र तिहाई ही है।

—(N. P. p. 70)

परिशिष्ट-अध्याय १३

नौकरशाही

१. कांग्रेस-जनोंके दखल देनेसे न्यायालय अपने कर्तव्यको पालन करनेमें असमर्थ हैं, इसके बारेमें हाईकोर्टने कांग्रेसियोंकी निंदा की। पटना हाईकोर्टके चीफ जस्टिस अग्रवालाने कई बार इधर ध्यान आकर्षित किया है। इससे इनकार नहीं किया जा सकता, कि युद्धके कारण सरकारी अफसरों में अनैतिकता और भ्रष्टाचार बहुत बढ़ गया है। उनमें कार्य-क्षमता और प्रबंध-कौशलकी भी कमी है। सरदार पटेलने भी उनकी क्षमताकी कमी, चारों ओर फैली दीर्घ-सूत्रता और लाल-फीतेशाहीका उल्लेख किया है।

–(P. C. pp. 78-79)

केंद्र और प्रान्तोंमें युद्धके समय तथा बादमें भी भिन्न-भिन्न विभागोंमें कर्मचारी बढ़ाये गये। आजकल जैसे मनसे उनके कम करने की कोशिशकी जा रही है, उसकी जगह अधिक व्यापक जांच तथा उनके कम करनेकी कोशिश करनी चाहिये, जिसमें कि काफी बचत की जा सके।

–(E. C. pp. 75-76)

हैदराबादमें अर्थशास्त्र सम्मेलनमें भाषण देते हुए प्रोफेसर सिंहने बतलाया, कि चोरबाजारी तथा कर न चुकाके ३ अरब रुपया हड़प लिया गया है।

–(P. C. 41)

२. प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक श्री किशोरलाल मशरुवालाने "सर-कारी नौकरोंसे" साफ शब्दोंमें कहा है:–

"कांग्रेस बुजुर्गोंने वैसी रद्दोबदल नहीं की और पुरानी पद्धतिको करीब-करीब ज्योंका त्यों कायम रखा। पदग्रहण करनेके बाद नेताओं-में गम्भीरता आ गयी और अपनी जिम्मेदारीको समझकर उन्होंने पुरानी पद्धतिको ज्योंका त्यों रखना तय किया। ...अंग्रेजोंने हिन्दुस्तानमें जो परम्परा चलायी है और आपने पचा ली है, उसमें और नेताओंके दृष्टिकोणमें कुछ विशेष फर्क नहीं था।...मुझे अफसोसके साथ कहना

पड़ता है, कि विविध सरकारोंके मंत्री लोग आपकी कार्यकुशलतासे, आपके काम और बरतावसे कितने ही संतुष्ट क्यों न हों, आपके बारेमें लोकमत बिलकुल उलटा है। इतना ही नहीं, ऐसी भी शिकायतें आती हैं, कि लोगोंके साथ आपका बरताव अंग्रेजी हुकूमतसे भी ज्यादा असन्तोषकारक है। आप ज्यादा रूखे, ज्यादा रिश्वतखोर, कम-कुशल, पैसेके सामने ज्यादा ढील-पोल करनेवाले हो गये हैं, और आपका शासन-प्रबंध आपके ही हाथसे ज्यादा चलनेवाले ज्यादा दबनेवाले और पक्षपात करनेवाले १९४७ के पहलेके शासन-प्रबंधसे लोगोंको ज्यादा दुःखदायी मालूम हो रहा है। अंग्रेजी हुकूमतमें भी नौकर लोग रिश्वतखोरीसे बिलकुल बरी थे, सो नहीं। ...विलीन हुई रिया-सतोंसे अब मेरे पास किस तरहकी खबरें आती हैं? उनका कहना है, कि वहांका शासन-प्रबंध आपके हाथोंमें आनेसे रिश्वतका नाप और ऊंचा हो गया। ....आप समझते हैं, इसका परिणाम क्या होगा? आप सरकार और जनताके बीचमें हैं। सरकारी कीमत आपके आधारपर आंकी जाती है और आपके ही बलपर वह सफल और असफल होती है। जनता मान बैठी है, कि सरकारका आपपर पूरा काबू है। इसीलिये यदि आपकी शासन-व्यवस्था असन्तोषकारक हुई, तो आपके दोषोंके लिये सरकारको दोष देना वाजिब ही है। यदि सरकारपर कांग्रेसका काबू माना जाय, तो आपकी हर बुराई अनिवार्य रूपमें कांग्रेसके सिर चली जाती है। अलबत्ता आप कहेंगे-और यह उचित भी है,—कि सिर्फ आपमें ही नहीं, खुद कांग्रेसमें भी रिश्वतखोरी वगैरह बुराइयां फैली हुई हैं। उसके लिये यदि कांग्रेस सुधरेगी नहीं, तो उसे सरकारसे हटकर प्रायश्चित करना होगा। लेकिन कांग्रेस सरकारको हटा देनेपर ही मौजूदा अनीति और दुराचार के परिणाम नहीं रुक जायेंगे, उनका असर आपपर भी होगा। ... अर्द्धजागृत जनताके पास जुल्मका प्रतिकार करनेका एक ही तरीका है और वह है फ्रांसकी राज्यक्रांतिको दोहराना। हमारे देशके मुकाबले में फ्रांस बहुत ही छोटा है। हम आधे दर्जन फ्रांसोंसे भी बड़े हैं, इसलिये हमारे यहांकी दुःखद घटनायें चीनको छोड़कर और किसी भी देशकी घटनाओंसे बहुत ही ज्यादा भयानक और करुण होंगी। १९४६-४७ के कत्लेआममें हमने उनका स्वाद पहले ही चख लिया है, क्या आप चाहते हैं, कि वह फिर दुहराई जायें।

जब तक आप नहीं सुधरेंगे, आप जनताको सुखी नहीं कर पायेंगे और सतायी हुई जनता आपके जुल्मोंसे ऊब जानेपर आपको छोड़ेगी नहीं। याद रखिये जब आग लगनेके लिये सब चीजें एकत्रित हो जाती हैं, तब उसे भड़कानेके लिये एक चिनगारी ही काफी है ..... ।"

—("हरिजन"से)

३. गवर्नर जेनरलका शाही ठाट (जो अब शायद राष्ट्रपति का है) गवर्नर-जेनरलके आफिसर थे ।

वैयक्तिक—

(१) श्रीमती नमगिरि,
(२) नरसिंहम्, सी० आर०,

सेक्रेटरी कार्यालय—

(३) लाल, शाबख्श ए०—सेक्रेटरी,
(४) कृष्णमूर्ति, एस्०—प्राइवेट सेक्रेटरी,
(५) चारी० टी० आर० वी०—प्रेस-अटेची,
(६) मूर० वी० जी०—सहायक सेक्रेटरी, ग० जे० एस्टेट,
(७) होपक्राफ्ट० ए० डब्लू,—सुपरिन्टेंडेंट, साधारण शाखा,
(८) बनर्जी० बी० एन्०,—सुपरिन्टेंडेंट, वेलफेयर शाखा,
(९) अय्यर० बी० डी०,—द्रुतलेखक,
(१०) ...वैयक्तिक सहायक-सेक्रेटरी का

सैनिक-सेक्रेटरी कार्यालय—

(११) चटर्जी० बी० (कर्नल),—सैनिक सेक्रेटरी,
(१२) बनर्जी० एन्०,—सहायक-सेक्रेटरी,
(१३) दर० एम्० एन्०,—सुपरिन्टेंडेंट, ग० जे० का बाग,

नियंत्रण कार्यालय-(टेलीफोन ४२९०७, ४३४०१।२७)—

(१४) डा० जे०—मोटरखाना और अस्तबल,
(१५) " केम्प डाकघर,
(१६) शरीर-रक्षक-कमरा (टेलीफोन ४३४०१।९, ०।१०, ४२९१४)

नियंत्रक कार्यालय—

(१७) विल्सन, ए० एस्०—नियंत्रक घर-बार,
(१८) नियंत्रक-सहायक,
(१९) बेनलो, केटरिंग-सुपरिन्टेंडेंट, शासन-भवन,
(२०) केन्० डब्लू० डी०—सर्किल राशनिंग आफिसर, ग० जे० एस्टेट ।

डिस्पेन्सरी–

(२१) बकलर एफ्० ई० (डाक्टर),–सर्जन ग० जे० एस्टेट।
(२२) डोगरा, आर० के० (डाक्टर)

पुलिस-गार्ड–

(२३) कृपलानी० आई० पी०,–इन्स्पेक्टर,
(२४) इन्क्वायरी आफिस, शासन-भवन,
(२५) पुलिस-लाइन, ग० जे० एस्टेट,

शरीर-रक्षक–

(२६) सिंह, ठाकुर गोविंद (मेजर),–कमांडेंट,
(२७) सिंह, एस्० के० भरत (कप्तान)–अडजुटेंट, ग० जे० एस्टेट,
(२८) वेटर्नरी आफिसर (शरीर-रक्षक और वैयक्तिक स्टाफके घोड़ों के लिये)

इंजीनियर–

(२९) सेल्बम० एल० जी०–एक्जीक्युटिव इंजीनियर,
(३०) महाजन० एल्० आर्०,–एस्० डी० ओ० ग० जे० एस्टेट,
(३१) सिंह देवेन्द्र ,, ,,
(३२) अग्नि-स्टेशन– शासन-भवन (गवर्नमेंट हाउस),
(३३) भंडारी, ग० जे० एस्टेट,
(३४) बिजली-वर्कशाप (एयर-कंडीशनिंग)
(३५) टेलीफोन विनिमय,
(३६) जान० एस्० (कुमारी),–आई० सी० शासन भवन ग० जे० एस्टेट,
(३७) मोहनलाल,–टेलीफोन इन्स्पेक्टर,
(३८) लाइन्समैन, शासन-भवन,

गवर्नर भी पीछे नहीं–बंगाल गवर्नरका खर्च (१९४९-५०) देखिये–

	रुपया (वार्षिक)
गवर्नरका वेतन	६६,०००
भत्ता	३०,०००
सैनिक-सेक्रेटरी	१,२१,०००
सेक्रेटरी	१,५०,०००
डाक्टर	१६,०००
फर्नीचर	३५,५००
नौकर-चाकर	१,३४,०००
यात्रा-व्यय	९०,०००
योग	६४२५००

परिशिष्ट-अध्याय १५

भाई-भतीजे-भांजे

१. **कश्मीरी पंडित-वंशीय-शासक**[1]–

(१) आगा, ए० सी० (लेफ्टीनेंट कर्नल)–इंजीनियरिंग स्टोर और प्लांट।

(२) " आई० जी० (कप्तान)।

(३) " , कैलाशनाथ–असिस्टेंट डाइरेक्टर, (डिस्पोजल)।

(४) अटल, हीरालाल–मेजर-जेनरल।

(५) " , जे० के०–प्रथम सेक्रेटरी, ब्राजील दूतावास, (१०-११-३७ को नियुक्ति मध्यप्रांतमें, वेतन ७५०-३५० रुपया)।

(६) कचरू, डी०–(मृत) प्राइवेट-सेक्रेटरी, प्राइम-मिनिस्टर।

(७) काटजू, के० एन्–(डाक्टर), गवर्नर-बंगाल,

(८) " , ज्ञाननाथ (कप्तान), शरीर-रक्षक, बंगाल-गवर्नर।

(९) काटजू, आर्०, एन्–प्रिंसिपल, असैनिक वायुयान स्कूल, प्रयाग।

(१०) किचलू, एस्० एन्०।

(११) " , शैला (कुमारी)–सम्पादक "प्लैनिंग", सूचना-विभाग।

(१२) " , जगमोहन–डाइरेक्टर-जेनरल (?) डिस्पोजल।

(१३) कौल, ए० के०–विशेष-कर्तव्य-आफिसर (कृषि-अनुसंधान-प्रतिष्ठान)।

(१४) " , ए० एन्०–अंडर-सेक्रेटरी (अर्थ-विभाग), (नियुक्ति १८-४-४४, भारतीय एकौंट विभाग, डेपुटेशनमें)।

(१५) " , एस्० एल्० एन्०।

(१६) " , एस्० पी०–अंडर-सेक्रेटरी, सूचना-विभाग।

(१७) " , एन्०–सिविल सप्लाई और राशनिंग आफिसर।

(१८) " , एम्० एन्०,–सेक्रेटरी, संविधान सभा और लेजिस्लेटिव एसेंबली।

(१९) " , एम्० के०–(नियुक्ति २२-२-२७), डिप्टी जे० मैनेजर।

१ सूची तीन वर्ष पुरानी है, बीचमें और वृद्धि अधिक

(२०) कौल, एम० जी० ।
(२१) " , एल्० एम्० (लिटल मोहन)—असिस्टेंट कलेक्टर, केंद्रीय आबकारी, जोरहाट, (आसाम) ।
(२२) " , एल्० एन्०, (नियुक्ति १९-५-२८, वेतन ४१० रु०)—स्थानापन्न सहायक एकाउन्ट आफिसर, आसनसोल ।
(२३) " , एस्० एन्०,—सुपरिन्टेंडेंट, यातायात मंत्रालय ।
(२४) " , एस्० एन्०,—सर्जन ।
(२५) " , के० एन्०,—डिप्टी-सेक्रेटरी, (अर्थ-विभाग),
(२६) " , कैलाशनाथ,—प्रोफेसर, वनस्पतिशास्त्र, कृषि-कालेज, कानपुर, (वेतन ७४० रु०) ।
(२७) " , जे० के०—सहायक यातायात सुपरिन्टेंडेंट, (नियुक्ति १३-२-२९, वेतन ५७५ रु०) ।
(२८) " , त्रिलोकीनाथ, आई० सी० एस्०—(नियुक्ति ४-१२-३७) प्रथम सेक्रेटरी, मास्को दूतावास ।
(२९) " , पी० एम्०,—(मेजर) ।
(३०) " , पी० के०, आई० सी० एस्०—(नियुक्ति १०-१२-२३, वेतन ३५०० रु०) ।
(३१) " , परदुमन किशन, (जस्टिस)—जज, प्रयाग हाईकोर्ट (वेतन ४००० रु०) ।
(३२) " , वी० एन्०—मेडिकल आफिसर, महामारी-निवारक अभियान, अलमोड़ा, (वेतन ३०० रु०) ।
(३३) " , वी० एन्०—मंत्रिमंडल-सेक्रेटरी ।
(३४) " , वी० एन्०—डाइरेक्टर, औद्योगिक सांख्यिकी ।
(३५) " , (शरगा), वी० एम०, ए० डी० ई०—इंजीनियरी शाखा, ई० पी० आर्०, (नियुक्ति २-११-३९) डिस्ट्रिक ट्राफिक सुपरिन्टेंडेंट, बी० बी० सी० आई०आर्० (आयकर अनुसंधानको सेवायें प्रदत्त) ।
(३६) " , ब्रह्मकुमार, आई० सी० एस्०, (नियुक्ति १८-११-४१, वेतन ११८०)—उ० प्रदेश, वस्त्र-नियंत्रक ।
(३७) " , रामनाथ, रायबहादुर ।
(३८) गंजू, डी० एन्० फ्ला-लेफ्टीनेंट,—एकाउन्ट-डाइरेक्टर, भारतीय वायु-सेना हेडक्वार्टर ।

(३९) गुर्टू, आई० एन्०,

(४०) '' , आर्० एन्०—एस्० डी० ओ०, एयर-कंडीशन-डिवीजन गवर्नर ।

(४१) चक, एस० एन० (कप्तान)—शरीर-रक्षक उ० प्रदेश गवर्नर

(४२) '' , चन्द्रमोहन नाथ—डिप्टी-डाइरेक्टर, शिक्षा-विभाग, उत्तर-प्रदेश ।

(४३) '' , बृजलाल—अंडर-सेक्रेटरी, पब्लिक वर्क्स, उत्तर-प्रदेश ।

(४४) जुत्शी, पी० एन्०, (नियुक्ति २०-४-३६)—सीनियर इंजीनियर, बी० बी० सी० आई० आर्० ।

(४५) टिक्कू, डी० के०—मैनेजर, सबरेजिनल एक्सचेंज ।

(४६) '' , पी० के०, स्थानापन्न, सहायक मिंट-मास्टर, बंबई-टकसाल ।

(४७) टोपा, प्रताप कृष्ण, (डाक्टर)—सुपरिन्टेंडेंट, गवर्नमेंट वेक्सीन, डिपो पटवा डांगर, नैनीताल (वेतन ३००-५०रु०) ।

(४८) दर, आई० एन्०—ट्राफिक-सुपरिन्टेंडेंट (यातायात) ।

(४९) '' , आर्० एन्०—संपादक "आवाज", आल-इंडिया-रेडियो ।

(५०) '' , ए० के०—द्वितीय-सेक्रेटरी, दूतावास, वाशिंगटन ।

(५१) '' , एम्० एन्०—सुपरिन्टेंडेंट, गवर्नर-जेनरल बाग, दिल्ली ।

(५२) '' , एस्० एन्०

(५३) '' , के० के०—डिप्टी-डाइरेक्टर, डिस्पोजल ।

(५४) '' , टी० एन्०—स्थानापन्न, सुपरिन्टेंडेंट, ट्रांस्पोर्ट, (वेतन ७५० रु०) ।

(५५) '' , मुकुटविहारीलाल—सेक्रेटरी, स्थानीय स्वायत्त शासन, उ० प्र० ।

(५६) '' , श्यामसुंदरलाल, आई० सी० एस्०—(नियुक्ति १८-३-२१, वेतन ३००० रु०) ।

(५७) नाटू , पी० एन्०—रिजिनल इम्प्लायमेंट आफिसर (लेबर) .

(५८) नेहरू, आर्० एन्०—बिग्रेडियर, पश्चिम-कमांड ।

(५९) '' , ब्रजकुमार, आई० सी० एस्०—(नियुक्ति २३-११-३४, वेतन ३००० रु०) ।

(६०) '' , रतनकुमार, आई० सी० एस्०—(नियुक्ति ५-१२-२५, वेतन १९००+३००+४००=२६०० रु०)—मिनिस्टर वाशिंगटन दूतावास ।

(६१) नेहरू, शांतिधर।
(६२) " , श्री श्रीधर, आई० सी० एस्० (नियुक्ति, १-१२-१९१३)
(६३) बकाया, सुशीला (कुमारी)–शिक्षा-आफिसर (भारत शिक्षा-मंत्री)
(६४) मुल्ला, आनन्द नारायण–चेयरमैन, पेंशन अपील-ट्रिब्यूनल, लखनऊ।
(६५) " , आर्० एन्०–(नियुक्ति १-३-४८) सुपरिन्टेंडेंट जेल, लखनऊ।
(६६) मुट्टू, आर्० एन्०।
(६७) " , के० के०–निजी असिस्टेंट, उ०प्र० इनकमटैक्स कमिश्नर, लखनऊ।
(६८) राजदान, के० एन्०–अंडर-सेक्रेटरी (अर्थ-विभाग)।
(६९) " , डी० पी०
(७०) रैना, एच्० एन्०
(७१) " , टी० एन्०–(मेजर) मिलिटरी ओपरेशन डाइरेक्टरेट।
(७२) " , पी० के०–इनकम-टैक्स आफिसर, आगरा।
(७३) " , पी० एन्०, डी० ए० ओ०–(ई० पी० आर्०)
(७४) वंचू, आर० पी०, (नियुक्ति ७-८-२८)–स्थानापन्न एकाउन्टेंट आफिसर, बंबई।
(७५) " , कैलाशनाथ (जस्टिस), आई० सी० एस्०, (नियुक्ति १-१२-२६)–जज, प्रयाग हाईकोर्ट, (नियुक्ति १२-७-४७, वेतन ४००० रु०)।
(७६) " , निरंजननाथ, आई० सी० एस्० (नियुक्ति १२-११-३४, वेतन १६००+४०० रु०)–डिप्टी-सेक्रेटरी, रक्षा-विभाग, (नियुक्ति २४-१२-४७)।
(७७) शरगा, एच्० के०
(७८) " , बी० एन० कौल०
(७९) " , ए० एन्०, आई० सी० एस्० (नियुक्ति २३-१२-४२, वेतन २२५०-२५० रु०)–सेक्रेटरी, शिक्षा-विभाग, उ० प्र०।
(८०) " , एस्० एन्०–चेयरमैन, दिल्ली-इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट।

(८१) शरगा, डी० एन्०—कमिश्नर विक्रयकर, लखनऊ।
(८२) " , पी० एन्०—(जस्टिस) जज, प्रयाग हाईकोर्ट (वेतन ४०००)।
(८३) " , हृदयनाथ—स्पेशल मैनेजर, हैंडीक्राफ्ट, उ० प्र० सरकार।
(८४) हक्सर, सुंदरनारायण, (नियुक्ति १५-११-३३), कौंसल, मिश्र।

२. मेनन-वंशिक शासक[1]

(१) नायर, आर्० एल्०—संचार-अफसर, (व्यापार-मंत्री)।
(२) " , आर्० जी०—निजी सहायक, सेना-सेक्रेटरी।
(३) " आर्० पी०—डिप्टी चीफ इंजीनियर, वेलिंगटन हवाई अड्डा, दिल्ली।
(४) नायर, उन्नीकृष्णन् (रावसाहेब)—व्यापारिक कर-कलेक्टर, उड़ीसा (कर्तव्यापन्न)
(५) नायर, ए० आर्० (रमुनी)—स्थानापन्न द्वितीय अतिरिक्त सेक्रेटरी, मुख्य-सेक्रेटरी, (मद्रास)।
(६) " , ए० ए०
(७) " , ए० एन्० कृष्ण—सांख्यिक अफसर, (लेबर)।
(८) " , ए० एस्० एम्० (मन्नाड़ी), डाक्टर (एम्० बी० बी० एस्०, पी० एच्० डी०)—प्रोफेसर मेडिकल कालेज, मद्रास।
(९) " , ए० एन्० के०—सांख्यिक-अफसर, पुनर्बन्दोबस्त, डाइरेक्टेरेट-जेनरल।
(१०) " , ए० के०
(११) " , ए० के० कुन्हीरामन—ए० आई० जी०, पुलिस (नियुक्ति १३-२-३५, वेतन ९००+२०० रु०)।
(१२) " , ए० गोपालन्—सुपरिन्टेंडेंट, पोस्ट-आफिस, मलाबार (कालीकट डिबीजन)।
(१३) " , एन्० जी०
(१४) " , एन्० एम्०—संचार-सुपरिन्टेंडेंट, बंगलोर।
(१५) " , एन्० एल्०
(१६) " , ए० पी० बी०
(१७) " , एम्० आर्०

१. सूची तीन वर्ष पुरानी है।

(१८) नायर, एम्० के० (कप्तान) तोपखाना।
(१९) " , एम्० के० (कोसबमुन्नी) आई० सी० एस्० (नियुक्ति ९-११-२३, वेतन १३५०+४०० रु०)–जंगल कन्सर्वेटर, सेलभ।
(२०) " , एम्० के०, (मेजर)–डी० ए० एम्० जी० ओ० (ए)
(२१) " , एम्० के०–इन्स्पेक्टर टेलीग्राफ, कालीकट।
(२२) " , एम्० के०–डिप्टी रिजिनल खाद्य-कमिश्नर, दक्षिण, रिजन।
(२३) " , एम्० बी०
(२४) " , एल्० सी० (नियुक्ति १-५-४४, भारतीय आडिट विभाग, वेतन ८५०+१०० रु०)–डिप्टी चीफ-आडिटर, ई० पी० आर्०, दिल्ली।
(२५) " , एस्० एम्०, एन्० सी० ओ० आई० सी०–विधान-शाखा, वायु-हेडक्वार्टर।
(२६) " , कृष्णकुट्टी।
(२७) " , के० आर्० (रमुनी)–सहायक-सेक्रेटरी (अर्थमंत्री)।
(२८) " , के० आर्०–भारतीय आडिट डिपार्टमेंट (नियुक्ति १२-३-४८, वेतन ५००+७०+१००+७५० रु०)।
(२९) " , के० आर्० डाक्टर।
(३०) " , के० आर्० (रमुनी)–सहायक डाइरेक्टर, इम्प्लायमेंट एक्सचेंज, मद्रास।
(३१) " , के० ए० (अचुतन)–असिस्टेंट-कमिश्नर, इनकमटैक्स कोयमबुतूर।
(३२) " , के० ए०–संचार-सुपरिन्टेंडेंट।
(३३) " , के० एम्०–अंडर-सेक्रेटरी, खाद्य-डिवीजन (अर्थ०)।
(३४) " , के० एन्०–गोविंदन्, लेक्चरर, फिजियालोजी, वेटरनरी-कालेज, मद्रास।
(३५) " , के० एस्०–कार्यवाहक डाइरेक्टर, पशुपाल मद्रास।
(३६) " , के० के० आई० ओ० (सूचना),
(३७) " , के० के०–सुपरिन्टेंडेंट, (स्वदेश-विभाग)।
(३८) " , के० के० (कृष्णकुमार करुणाकरन्)–(नियुक्ति २-११-३०, वेतन २००० रु०), आबकारी कमिश्नर, उत्तर-प्रदेश।

(३९) नायर, के० के०—सूचना-आफिसर, प्रेस सूचना ब्युरो।
(४०) ", के० के० राज।
(४१) ", के० गोविंद—मेम्बर, सेंट्रल रेवेन्यू बोर्ड।
(४२) ", के० जी० (रावसाहेब)—रजिस्ट्रार।
(४३) ", के० पी० एस्०—स्थानापन्न सहायक केमिस्ट और मेटर्लजिस्ट, कचरापाड़ा।
(४४) ", के० बी०—प्रोफेसर, बेटर्नरी कालेज, बंबई।
(४५) ", के० रमनी।
(४६) ", के० बी०—स्क्वाड-लीडर०, वायु-हेडक्वार्टर।
(४७) ", के० बी० एन्०—(ननुकुट्टी), रावसाहेब, जिला मेडिकल आफिसर, (वेतन ६७५+७५ रु०)।
(४८) ", के० शंकरन्—डी० एस्० पी०, (नियुक्ति ३०-४-४३, वेतन ६०० रु०)।
(४९) ", " " —आफिसर, विशेष-कर्तव्य, मैसूर।
(५०) ", टी० एम्०।
(५१) ", टी० एन्०।
(५२) ", टी० एस्०—संचार-सुपरिन्टेंडेंट, विशाखपटनम्।
(५३) ", टी० एस्० आर्० रिकार्डिंग आफिसर, भारतीय-वायुसेना।
(५४) ", टी० जे०—के०, आई० ए० ओ० सी०, कलकत्ता।
(५५) ", डी० पी०।
(५६) ", पी० आर्०—सुपरिन्टेंडेंट, वायुमार्ग (व्यापार-मंत्री)
(५७) ", पी० एम्०—इंजीनियर, (व्यापार-मंत्री)।
(५८) ", पी० एन्०—सहायक डाइरेक्टर, औद्योगिक-सांख्यिकिक, शिमला।
(५९) ", पी० एस्०।
(६०) ", पी० टी० आर० (रामन्), आई० सी० एस्०, —रजिस्ट्रार हाईकोर्ट, मद्रास।
(६१) ", पी० टी० के०।
(६२) ", पी० टी० रामन्०।
(६३) ", पी० डी० (रावसाहेब)—डाइरेक्टर, कृषि-विभाग, मध्य-प्रदेश।

(६४) नायर, पी० गोविंदन्, आई० सी० एस० (नियुक्ति १७-१०-३८, वेतन १२७५ रु०)—प्राइवेट सेक्रेटरी, मद्रास-गवर्नर।
(६५) ", पी० माधवन्—इंज-आफिसर, मद्रास।
(६६) ", पी० रामन्।
(६७) ", बालकृष्णन्।
(६८) ", बी० एम० एम०, आई० सी० एस०—डिप्टी सेक्रेटरी, विदेश-विभाग।
(६९) ", बी० एम० एम०, (नियुक्ति ८-११-४३)—अंडर सेक्रेटरी, विदेश-विभाग २-८-४६ से वेतन ७०० रु०)।
(७०) ", बी० एस० पी०, (फ्लाइट लेफ्टीनेंट)—डाइरेक्टर इक्विपमेंट, वायु-हेडक्वार्टर।
(७१) ", बी० जी०, ट्रेडमार्क-परीक्षक, बंबई (वेतन ३७५ रु०)।
(७२) ", वी० जी०।
(७३) ", श्री कुमारन्—डिप्टी सहायक डाइरेक्टर, (कंट्रोल शाखा
(७४) ", सी० एन० राघवन्०।
(७५) ", सी० के०—डिप्टी-डाइरेक्टर, डिस्पोजल।
(७६) ", सी० के०—अतिरिक्त डिप्टी अर्थ-परामर्शदाता, (रक्षा-विभाग)।
(७७) ", सी० के०—सहायक-डाइरेक्टर-प्रबन्धक, (उद्योग-विभाग)
(७८) ", सी० के०—डिप्टी एकाउन्टेंट-जेनरल (युद्ध)
(७९) ", सी० के० गोविंदन्।
(८०) ", सी० जी०।
(८१) ", सी० पी० (मेजर)।
(८२) ", सी० पी० (डाक्टर आनरेरी मेजर)—सहायक मलेरिया प्रतिष्ठान, दिल्ली।
(८३) ", सी० बी०।
(८४) पनिक्कर, अच्युत—भारतीय आडिट (नियुक्ति २१-२-२३, वेतन २३५० रु०)।
(८५) ", के० एम० (सरदार)—चीनमें राजदूत।
(८६) ", पी० के०—डाइरेक्टर प्रदर्शनी, (व्यापार-मंत्री)।

(८७) पनिक्कर, पी० टी० ।
(८८) मेनन, आई० पी० के० ।
(८९) " , आई० पी० के०—संचार-सुपरिन्टेंडेंट, सेंट-टामस गिरि ।
(९०) " , आई० पी० एम्०—एजेंट भारत सरकार, लंका ।
(९१) " , आई० बी० ।
(९२) " , आर० राघव ।
(९३) " , ई० आर्० के०—सुपरिन्टेंडेंट (अर्थ-मंत्री) ।
(९४) " , ए० के० ।
(९५) " , ए० जी०—डाइरेक्टर कृषि मशिनरी (केंद्रीय ट्रैक्टर संगठन)
(९६) " , एन्० पी० ।
(९७) " , एन्० बी०—सहायक एरोड्राम आफिसर, कोयम्बुतूर ।
(९८) " , एफ्० बालकृष्ण—असिस्टेंट-सेक्रेटरी (शिक्षा-मंत्री)
(९९) " , एम्० आर्०
(१००) " , एम्० ए०—इन्कमटैक्स-आफिसर, बंबई ।
(१०१) " , एम्० कुमार (डाक्टर)—सहायक मलेरिया प्रतिष्ठान (दिल्ली) के डाइरेक्टरके सहायक (वेतन ३४५ रु०) ।
(१०२) " , एम्० के०—बिजली और मशीन इंजीनियर, गिरिडिह (उत्पादन) ।
(१०३) " , एम्० गोपालन्०—प्रथम-सेक्रेटरी, राष्ट्रसंघमें भारतीय प्रतिनिधि-मंडल (वेतन ७००+२००+१५०+२० रु०) ।
(१०४) " , एम्० नारायण ।
(१०५) " , एम्० पी० एस्०—सेना-हेडक्वार्टर ।
(१०६) " , एम्० बालकृष्ण—डी० एस्० पी०, विशाखपटनम (नियुक्ति ४-३-३८, वेतन ८०० रु०) ।
(१०७) " , एम्० बी०,—सुपरिन्टेंडेंट, वेक्सीन-विभाग, पशुचिकित्सा, बंगाल ।
(१०८) " , एस्० एम्० ।
(१०९) " , के० आर्० के०—सेक्रेटरी (अर्थमंत्री) ।
(११०) " , के० आर्० जी०, (लेफ्टीनेंट कर्नल)—सैनिक-शिक्षा-डाइरेक्टरी ।

(१११) मेनन, के० एम्० के०—अतिरिक्त इन्स्पेक्टर, तार-आफिस, कालीकट ।
(११२) " , के० एन्० ।
(११३) " , के० एस्०, (दीवान बहादुर)—चेयरमैन, विमान-यातायात-लाइसेंस-बोर्ड ।
(११४) " , के० के० (कप्तान)—सैनिक सूचना-डाइरेक्टरेट ।
(११५) " , के० के० (रावबहादुर)
(११६) " , के० जनार्दन—विमान-परीक्षक, सान्ताक्रुज, बंबई ।
(११७) " , के० जी० (कप्तान)—सेना-हेडक्वार्टर) ।
(११८) " , के० जी०—सेक्रेटरी विकास-विभाग, मद्रास, (नियुक्ति २-११-३३, वेतन, १७००+२५० रु०) ।
(११९) " , के० पी० एस्०, आई० सी० एस्०—सेक्रेटरी (विदेश-विभाग) ।
(१२०) " , के० पी० गोविंद—प्रिंसिपल गवर्नमेंट आर्ट कालेज, राजमेहंद्री, (नियुक्ति १-७-२५, वेतन ८००+५० रु०)
(१२१) " , के० पी० पी०—उपयोग-मेंबर (कार्य-मंत्री) ।
(१२२) " , के० पी० राघव ।
(१२३) " , के० यु० ।
(१२४) " , के० बी०—एक्सक्युटिव-इंजीनियर, खाद-फैक्टरी, सिंदरी ।
(१२५) " , के० माधव ।
(१२६) " , के० यु०—सुपरिन्टेंडेंट, कपड़ा-कमिश्नर, बंबई ।
(१२७) " , के०यु० इन्स्पेक्टर—तारघर, द्वितीय सर्किल, कोयम्बुतूर ।
(१२८) " , के० रमुनी—चीफ सेक्रेटरी, मद्रास सरकार (नियुक्ति २७-१२-२०, वेतन ३७५०)
(१२९) " , के० राम—जिला मेडिकल-आफिसर (वेतन ६००+७५ रु०) ।
(१३०) " , कोजीपुरथ माधव—मंत्री, मद्रास-सरकार ।
(१३१) " , जी० यु०—डी० ई० टी०, विकास-शाखा, डाक-तार-विभाग ।
(१३२) " , जे० एन्० ।
(१३३) " , टी० ।
(१३४) " , टी एन्० ।

(१३५) मेनन, टी० गोपाल—सहायक मार्केटिंग अफसर।
(१३६) " , टी० जी० (डाक्टर)
(१३७) " , टी० भास्कर—प्रिंसिपल मेडिकल कालेज, विशाखपटनम् (वेतन ६००+२००+५०+१०० रु०)।
(१३८) " , डी० बी० (संचार-विभाग)।
(१३९) " , थारावुनत अच्युत—मद्रास-बंगाल सिविलियन, (स्पेंशनमें), (नियुक्ति ३१-१२-३६)।
(१४०) " , पी०—सहायक-मैनेजर रिजिनल एक्सचेंज।
(१४१) " , पी० आर्० के०—सेक्रेटरी (अर्थमंत्री)।
(१४२) " , पी० ए०, आई० सी० एस्०—ज्वाइंट-सेक्रेटरी, (विदेश-विभाग)।
(१४३) " , पी० एम्०।
(१४४) " , पी० एम्० (माधव), आई० सी० एस्०, (नियुक्ति ७-११-३०)—सेक्रेटरी (स्वास्थ्य-मंत्री)।
(१४५) " , पी० एन्०—सहायक-मैनेजर, सबरिजिनल इम्प्लायमेंट एक्सचेंज डाइरेक्टरेट।
(१४६) " , पी० एन०—द्वितीय सेक्रेटरी भारतीय दूतावास, फ्रांस।
(१४७) " , पी० एस्०—सहायक भारतीय एजेंट-जेनरल, लंका।
(१४८) " , पी० एस्०।
(१४९) " , पी० के० एम्०—डिप्टी-डाइरेक्टर (ई० एस्० एच्०)
(१५०) " , पी० गोविंद—सहायक-सेक्रेटरी (शिक्षा), मद्रास।
(१५१) " , पी० गोविंद—सरकारी वकील, मद्रास।
(१५२) " , पी० गोविंद—ज्वाइंट डाइरेक्टर (उद्योग-मंत्री) मद्रास, (नियुक्ति ३०-७-४७, वेतन १०००-१०० रु०)
(१५३) " , [1]पी० गोविंद कुट्टी—डिप्टी-प्रेसीडेंसी पोस्टमास्टर, मद्रास।
(१५४) " , [1]पी० गोविंद कुट्टी—पोस्टमास्टर, जबलपुर (छुट्टीमें)।
(१५५) " , पी० जे०—सुरिपन्टेंडेंट, यातायात-शाखा (व्यापार-मंत्री)।
(१५६) " , पी० बी०—इन्टेमोलोजी शाखा, आइजट नगर।
(१५७) " , पी० बी०—आई० सी० एस्०, ज्वाइंट-सेक्रेटरी।
(१५८) " , पी० बी० बी०—सहायक-इन्चार्ज (व्यापार-मंत्री)।
(१५९) " , बालकृष्ण—सुपरिन्टेंडेंट, वायु-यातायात लाइसेंस बोर्ड (व्यापार-मंत्री)।

१. दोनों एक ही हैं, छुट्टी ले प्रदेशांतर दो पटवृद्धि।

(१६०) मेनन, वी० के० अंडर-सेक्रेटरी--(संचार-मंत्री)
(१६१) " , वी० के०—सुपरिन्टेंडेंट, वायु-यातायात लाइसेंस बोर्ड ।
(१६२) " , वी० के० आर्० (लेफ्टीनेंट) ।
(१६३) " , वी० के० आर्० (वडुक्के कुरपत रमुन्नी), आई० सी० एस्०—सेक्रेटरी (संचार-मंत्री), (नियुक्ति २२-११-२६, वेतन ४००० रु०) ।
(१६४) " , वी० के० एम्०—अनुसंधान अफसर (व्यापार-मंत्री) ।
(१६५) " , वी० के० एस्०—(दीवान बहादुर) ।
(१६६) " , वी० के० कृष्ण ।
(१६७) " ' वी० के० कृष्ण—हाई कमिश्नर, लंदन ।
(१६८) " , वी० के० नारायण (डाक्टर)—डाइरेक्टर स्टाफ ट्रेनिंग स्कूल (AIR)
(१६९) " , वी० के० नारायण (डाक्टर) ..
(१७०) " , वी० के० नारायण, (डाक्टर)—प्रोफेसर जीवरसायन मेडिकल कालेज विशाखपटनम्, (वेतन ९००+५०+१०० रु०) ।
(१७१) " , वी० के० नारायण, (पी० एच्० डी०) ।
(१७२) " , वी० गोविंद—विशेष-कर्तव्य, त्रिवेंद्रम् ।
(१७३) " , वी० पी० (रायबहादुर)—सेक्रेटरी (राज्य-मंत्री) ।
(१७४) " , वी० वी० (मेजर)—सैनिक-चर-डाइरेक्टरेट ।
(१७५) " , सी० आर्० बी०—अंडर-सेक्रेटरी (व्यापार-मंत्री) ।
(१७६) " , सी० एस्०—डिप्टी-सेक्रेटरी (अर्थमंत्री) ।
(१७७) " , सी० एस्०, (नियुक्ति २३-३-३१)—भारतीय आडिट विद्याग (डेपूटेशनमें) ।
(१७८) " , सी० जी०—सहायक, (व्यापार-मंत्री) ।
(१७९) " , सी० पी० एम्० ।
(१८०) " , सी० पी० एस्०—डिप्टी-डाइरेक्टर (स्वदेश-विभाग) ।
(१८१) " , सी० पी० के०—डाइरेक्टर-जेनरल (खाद्य) ।
(१८२) " , सी० पी० के०—(डाक्टर, दीवानबहादुर), डाइरेक्टर ट्रान्सफर आफिस ।
(१८३) " , सी० पी० माधव ।　　　—(civil list)

परिशिष्ट-अध्याय १७

समस्यायें टाली नहीं जा सकतीं

१. समस्यायें—

नोठोंकी भरमार—सितंबर १९४५ और जून १९४८ के बीच नोट-परिचारमें १८३ करोड़ रुपयोंकी वृद्धि हुई, जिसमें १५० करोड़ देश-विभाजनके बादके नौ महीनोंके हैं। इसे अस्थायी या तात्कालिक कहकर टाला नहीं जा सकता, क्योंकि जून १९४९ में नोट-परिचार १२२९ करोड़ था, जब कि जून १९४८ में वह १३३० करोड़ हो गया, अर्थात् १०० करोड़ अधिक। इस सारे समयमें स्वर्ण-निधि ४४ करोड़ रु० रही, और जून १९४६ से ही पौंड-जमानत भी रु० ११३५ करोड़ बराबर बनी रही। सितम्बर १९४५ में जहां सोना और पौंडकी जमानत सारे परिचारित नोटोंकी ९३.५% थी, वहां वह जून १९४८ में ८७.४% रह गयी। इसका अर्थ यह हुआ कि अतिरिक्त नोट-परिचारका बोझ रुपये की जमानत पर पड़ा।

—(E. C. pp. 62-63)

आर्थिक संकट—द्वितीय विश्वयुद्धके अंतसे आर्थिक संकट—जिसे संक्षेपमें कीमतोंका चढ़ना तथा उत्पादनका गिरना कह सकते हैं—बढ़ रहा है।

—(ibid Preface)

२. मध्य-वर्ग—

मध्य-वर्ग सदा प्रगतिशील जनतंत्रताका मेरुदंड रहा है। आज वह प्रायः सर्वनाश और आर्थिक दीवालियापनके खड्डपर खड़ा है। उसे क्षितिजपर कहीं कोई प्रकाश-किरण या अच्छे बिहानका चिह्न नहीं दिखलाई पड़ता। "१९३० के आसपास जर्मन मध्यम-वर्ग आर्थिक संकटके नीचे पिस गया, जिसका परिणाम हुआ, राजनीतिक स्वतंत्रताकी विदाई और उसकी जगह हिटलरीय तानाशाहीकी स्थापना। प्रथम विश्वयुद्धके बाद इतालीको भी उसी तरहका अनुभव हुआ। पिछले कुछ सालोंमें चीनमें आर्थिक संघर्ष अधिकाधिक तीव्र

होता गया, लेकिन शासक उसे रोकनेमें समर्थ नहीं हुए। एक समय एसियाका नेतृत्व चांग्-कैशकके हाथमें था। इसी आर्थिक संतुलन तथा संकट-निवारणमें असफल होना ही चांग्के पतनका कारण हुआ। आर्थिक क्षोभ तथा असमर्थतासे जनतामें जो असंतोष पैदा होता है, उसीसे लाभ उठाकर साम्यवाद भी आगे बढ़ता है। चाहे आज साम्यवादका खतरा तुरंत न दिखलाई पड़ता हो, लेकिन यदि वर्तमान अवस्था देर तक इसी तरह रही, तो खतरे का चिह्न क्षितिजपर प्रकट होके रहेगा।

घड़ीने ११ बजा दिया है, खतरेका चिह्न सबके सामने दिखलाई पड़ रहा है; यदि हम अपनी भाग्याक्षरकी उपेक्षा करते हैं, तो हमारे लिये सर्वनाशके सिवा और कुछ नहीं है।

—(P. C. pp. 189-90)

मध्य-वर्गपर प्रभाव—मुद्रास्फीतिकी स्थितिमें औद्योगिक कमकरोंको संतुष्ट रखनेके लिये उनकी ओर तो ध्यान जाता है, लेकिन मध्यवर्गकी विपदाकी ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता। इस देश या दूसरे देशोंमें भी मध्यवर्ग समाजका मेरुदंड है। वह साधारणतया शिक्षित है। नियमेन उसकी आय स्थिर होती है। मध्य-वर्गके लोग अधिकांश सरकारी दफ्तरों, निजी व्यापार कार्यालयों या दूसरी ऐसी ही जगहोंमें काम करते हैं। उनकी आय आमतौरसे स्थिर वेतन है। समाजके ये ही दृढ़ ईंटें हैं। यदि कोई देश मध्य-वर्गकी उपेक्षा करता है, तो उसकी कार्य-क्षमता और प्रगति मारी जाती है।

पांच वर्षसे लगातार देशमें चीजोंके भाव बढ़ते जानेके कारण मध्य-वर्गकी स्थिति बराबर दयनीय होती गयी है। इस वर्गकी आय चीजोंके महंगे होनेके अनुसार नहीं बढ़ी। महंगाई-भत्ता जो मध्य-वर्गको सरकार या कंपनियोंकी ओरसे मिलता है, वह चीजोंकी चढ़ती हुई महंगाईसे तुलना करने पर बहुत कम है। अधिकारियोंको महंगाईके बारेमें निश्चय करनेमें बहुधा बहुत समय लगता है। एक निश्चित कीमतके अनुसार जब तक निश्चय हो पाता है, तब तक कीमत और भी काफी ऊपर चढ़ जाती है, जिससे महंगाई-भत्ता असामयिक हो जाता है। मध्यवर्गीय परिवारोंमें कमानेवाले थोड़े और आश्रित व्यक्ति अधिक होते हैं। चीजोंकी चढ़ती महंगाईके समय कमानेवाला जब चीजोंके दाम के अनुसार आय नहीं कर पाता, तो

परिवार चलाना उसके लिये भारी आफत हो जाती है। ऐसी अवस्थामें वह अन्न-वस्त्र जैसी आवश्यक चीजों के खर्चको कम करनेके लिये मजबूर होता है। ऐसे परिवारके व्यक्ति इस प्रकार लगातार क्षमता खोते जाते हैं, और उनमें असन्तोष बढ़ चलता है। ऐसी स्थितिमें खर्च चलानेके लिये चोरबाजारी या दूसरे ढंगसे पैसा कमानेके लोभका संवरण करना मुश्किल हो जाता है।

दूसरी कठिनाई इस वर्गकी यह है, कि यदि किसीने कुछ पैसा बचा पाया, तो रुपयेके मूल्य गिरनेसे उसका मूल्य बहुत कम रह जाता है। उनकी बचा पाई रकम बीमा-पालिसी, प्राविडेंट-फंड या सेविंग-बैंक हिसाब और सरकारी ऋणके रूपमें होती है। लम्बे अर्सेमें गाढ़के दिनोंके लिये जो पैसा इस तरह उन्होंने जमा कर पाया था, उसे चीजोंकी महंगाईने घटाकर बहुत कम कर दिया। जब आदमी पेंशन प्राप्त करके विश्राम लेता है, तो देखता है कि वह अपनी पालिसी, प्राविडेंट-फंड या दूसरे जमा किये रुययेसे आवश्यक चीजें बहुत कम प्राप्त कर सकता है।

मध्यवर्गकी कठिनाइयोंको हटानेके लिये अधिक प्रयत्न करना होगा, उसके साथ आज जैसा बरताव नहीं करना होगा। यदि उसकी शिकायतोंकी ओर गंभीरतापूर्वक ध्यान नहीं दिया गया, तो इसका परिणाम हमारे सामाजिक जीवनके लिये भयंकर होगा। यदि देशके भाग्य-विधाता मध्यवर्गकी इस बिगड़ती अवस्थाको और जारी रहने देते हैं, तो इसे रोकनेके लिये जो आवाज और कदम उठेगा, उसे संभालना उनकी शक्तिसे बाहरकी बात होगी।

सभी जानते हैं कि प्रथम विश्वयुद्धके समय जिस महंगाईने जर्मन-परिवारोंका सत्यानाश किया, उसीने नाजियोंके लिये रास्ता साफ किया। हालके वर्षोंमें चीनमें महंगाई जिस सत्यनाशी सीमा तक बढ़ी, वह और उसका परिणाम भी सबको ज्ञात है।

—(E. C, pp. 69-73)

बात बनाना—लंबी-लंबी बातोंके होते भी दीख पड़ रहा है, कि अभी तक योजनाको वास्तविक कार्यरूपमें परिणत करनेका काम नहीं आरंभ हुआ।

—(I. L. p. 289)

अपने देशके बारेमें अमेरिकाके प्रसिद्ध पत्रोंके प्रभावशाली लेखकों द्वारा लिखी बातें याद आती हैं। उन्होंने लिखा था, इस देश में इतने

बड़े-बड़े व्याख्यान, विशेषकर जाड़ेके दिनोंमें, झाड़े जाते हैं, जो उन धुंआंधार भाषणोंसे भी बढ़-चढ़कर होते हैं, जो कि अमेरिकामें राष्ट्रपतिके चुनाववाले वर्षमें सुने जाते हैं।

—(P. C. p. 18)

जब मुद्रास्फीति (महंगाई) की समस्या जनमतके दबावके कारण सामने आ जाती है, तो सरकार वक्तव्यों द्वारा महंगाई कम करनेके बारेमें अपनी उत्सुकता प्रकट करती है। जब व्यवसायी-वर्ग अपनी दयनीय अवस्थाको सामने रखता है, तो सरकारी वक्तागण मुद्रासंकोच-की गतिको रोकनेका राग अलापने लगते हैं। यह बात सरकारकी ढुलमुल नीति और नरम कार्यपथके अनुकरण करनेकी इच्छाको अच्छी तरह प्रकट करती है। साधारण अवस्थामें मध्यम-मार्ग सुरक्षित मार्ग है, किंतु जब देश "न भूतो न भविष्यति" जैसे आर्थिक संकटमें पड़ा हो, उस समय इस मनोभावका अर्थ है, सारे देशका आर्थिक सर्व-नाश।

कोरी सद्भावनाके प्रकट करने और भिन्न-भिन्न वर्गोंको हृदय-परिवर्तन करनेके लिये कहनेसे कुछ बननेवाला नहीं है। ऐसे उपायोंपर विश्वास करना मानव-स्वभावकी निर्बलताओंको समझनेमें असमर्थताको प्रकट करता है।

उच्च आदर्शके उपदेशों द्वारा कृषि और उद्योगके ठोस उत्पादनमें कोई वृद्धि नहीं की जा सकती। संकटको तभी हटाया जा सकता है, जब कि ऐसी आवश्यक स्थितियां पैदा कर दी जायें, जिनमें उत्पा-दक-शक्तिको अपना पूरा पार्ट अदा करनेका मौका मिले।

—(P. C. pp. 24-25)

सरकार द्वारा (विदेशमें विशेषज्ञता प्राप्त करनेके लिये) भेजे गये विद्यार्थियोंने जब अपनी शिक्षा समाप्त कर ली, तो उन्हें यह देखकर बड़ी निराशा और आश्चर्य हुआ, कि उन्हें अपने लिये जीविका ढूंढ़नी होगी। राष्ट्रीय आयके दुगुना-तिगुना करनेकी योजनायें खाली सपना मात्र हैं।

—(P. C. p. 81)

हमारी आजकी समस्याओंको हल करनेके लिये सबसे पहिली आवश्यकता यह है, कि हम आजके संकटकी गुरुता और गंभीरताको अच्छी तरह और ईमानदारीसे महसूस करें। पिछले डेढ़ वर्षोंमें एक

निश्चित मात्रामें राजनीतिक प्रगति हुई है, किंतु बिना आर्थिक कल्याणके राजनीतिक स्वतंत्रताका मूल्य बहुत कम है। वर्तमान परिस्थितियोंमें यह आवश्यक होगा, कि आर्थिक समस्याओंको युद्ध-कालके आधारपर हल करनेके लिये संकट-कालकी घोषणा की जाये। अवस्था काफी बिगड़ चुकी है, इसलिये बेमन काम करनेसे कुछ नहीं होगा। चीन और दक्षिण-पूर्व-एसियाकी स्थितिकी गंभीरताको देखकर इसकी ओर अधिक ध्यान देनेकी आवश्यकता है।

—(P. C, p. 121-22)

जमींदारी उठाना :— इसके लिये भारी रकम क्षतिपूर्तिके तौरपर देनी होगी। यह एक बड़ी समस्या है। मद्रासको बारह करोड़, बिहारको ६० से ८० करोड़, उत्तर-प्रदेशको १०० करोड़ रुपये क्षतिपूर्तिमें जमींदारोंको देने होंगे। सब मिलकर २०० करोड़ रुपये प्राप्त करने हैं, तब जमींदारी उठायी जा सकती है।

—(E. C. p. 50)

परिशिष्ट-अध्याय १९

शोषितोंका समाजवाद

१. पंचायतें—

(मंत्री अ० ग० खेरने उत्तर-प्रदेशकी ग्राम-पंचायतोंके बारेमें लिखा है)—ग्राम-पंचायत-विधानके बारेमें देश-विदेशमें बहुत चर्चा हुई है। हमने गांवोंमें जनतांत्रिक संस्थायें स्थापित कर दीं, जिनमें साक्षात् रूपेण जनतांत्रिकता तथा उसके प्रतिनिधि-स्वरूपका अच्छा सम्मिश्रण है। सारे प्रान्तमें कुछ गांवोंके समूहोंके लिये **गांव-सभायें** स्थापित हुई हैं। वयस्कोंकी यह बड़ी सभायें वर्ष में दो बार बैठा करेंगी, जब कि वह अपनी कार्यकारिणीके कामकी पड़ताल तथा बजट पास करेंगी, एवं कर लगानेके बारेमें भी स्वीकृति देंगी। दिन-प्रतिदिनके कामोंके लिये वह अपनी कार्य-समिति चुनेंगी, जिसका नाम है **गाँव-पंचायत**। सारे वयस्कोंकी साधारण सभा—**गांव-सभाका गांव-पंचायत**के साथ वहीं संबंध है, जो कि प्रान्तीय या केंन्द्रीय धारा सभाओंका प्रान्तीय या केंन्द्रीय मंत्रि-मंडलोंके साथ

है। इन गांव-पंचायतोंको प्रायः वह सारे अधिकार प्राप्त हैं, जो कि नगर-पालिका (म्युनिसिपैलिटी) को है। उनके करणीयोंमें कुछ है--स्वास्थ्य-रक्षा, ग्रामकी सड़कों और बस्तीकी गलियों, प्राइमरी पाठशालाओं, औषधालयों, व्यायाम-केंद्रोंकी देख-भाल, प्रकाश-प्रबंध, जल-रक्षा। जमींदारीके उठ जानेके बाद परतियों तथा आकृष्ट भूमियोंका प्रबंध पंचायतोंके हाथमें दे दिया जायेगा। सहयोगी व्यवस्थाके आधारपर भूमिके सुधार और विकासकी सरकारी योजनाओंके साथ पंचायतोंका घनिष्ट संबंध रहेगा।

प्रबंधीय पंचायतके अतिरिक्त हर पांच गांव-सभाओंके क्षेत्र पर एक **अदालत** या न्याय-पंचायत होगी। इस अदालती पंचायतके लिये प्रत्येक गांव-सभा अपने भीतरसे पांच पंच चुनकर भेजेगी। अदालतके लिये चुने गये पंचोंका एक पंचायत-मंडल होगा, जो खुद अपना सरपंच चुनेगा। मुकदमोंको देखनेके लिये पंचायतोंकी एक गोष्ठी होगी। ये पांच पंच बारी-बारीसे आयेंगे, इस प्रकार किसी पंचको वर्षमें चार माससे अधिक काम नहीं करना होगा। अदालती पंचायतोंको छोटे छोटे दीवानी, फौजदारी और मालके मुकदमोंको सुननेका अधिकार है।

इस तरह मालूम होगा, कि पंचायतें अपने प्रबंध तथा न्यायके कामों द्वारा ग्रामीण जीवनके सारे सामाजिक, आचारिक, आर्थिक और राजनीतिक अंगोंपर प्रभाव रखती हैं। वह गुटका-रूपमें ग्रामके गण-राज्य हैं।

पंचायत राज कानून १९४७ में पास हुआ। सांप्रदायिक झगड़ोंके कारण एक सालके करीब कुछ नहीं किया जा सका। फिर गांवमें रहनेवाले सारे परिवारोंका रजिस्टर और वहां रहनेवाले सारे वयस्कों (२१ बरससे अधिक आयुवालों) का दूसरा रजिस्टर तैयार किया गया। इस काममें प्रायः छः महीनें लगे। रजिस्टरोंके प्रकाशित करनेके बाद लोगोंके बाद-प्रतिवादको सुनकर उन्हें अंतिम रूप दिया गया। ग्राम-पंचायतोंको इस बातकी जिम्मेवारी दी गयी है, कि वह इन दोनों रजिस्टरोंको समय-समय पर संशोधन करके उन्हें आधुनिकतम् रूपमें अपने पास रखें। वयस्क-रजिस्टरमें जिन व्यक्तियोंका नाम दर्ज हैं, उन्हें गांव-सभाका सदस्य घोषित कर दिया गया। ये लोग गांव पंचायत के पंचोंके चुननेके लिये वोटर भर ही नहीं है, बल्कि उस गांव-सभाकी साधारण बैठकोंके भी सदस्य हैं, जो कि गांवके मामलोंमें कानूनी हैसियत और अधिकार रखनेवाली संगठित प्रधान संस्था है। हमारे प्रान्तमें ५,४०,००,००० जनसंख्यावाले ११४२१५ गांव हैं। गांव-

सभाके लिये ३ या ४ गांवोंको जोड़ दिया गया है। इस प्रकार हमने ३५००० के करीब गांव-सभायें स्थापित कीं, जिनके सदस्यों—वयस्क स्त्री पुरुषों—की संख्या २७०२०७९० है। हालमें चुनी गईं **गांव-पंचायतों** की संख्या ३४७५५ है, और चुने हुए पंचोंकी १३ लाखसे कुछ ऊपर। प्रत्येक पंचायतके ३० से ५१ तक सदस्य हैं। तीनसे पांच गांवोंको मिलाकर बने हल्कोंके लिये चुनी गई **अदालतोंकी** संख्या ८१९० है।

अदालतोंके पंचोंकी संख्या सवा लाखसे कुछ ऊपर है। प्रबंध पंचों तथा अदालती पंचोंकी संख्या सवा चौदह लाखसे कुछ ऊपर है। पैदानी ४६ जिलोंका चुनाव फरवरी और मार्च (१९४९) में हुआ और पहाड़ोंमें मई और जूनमें। निर्वाचनमें गांवोंकी दलबंदीका खयाल करके झगड़ेकी आशंका हो रही थी, किंतु वह निर्मूल सिद्ध हुई। ३७७५५ पंचोंमेंसे २०१३३ दो तिहाई निर्विरोध चुन लिये गये। बाकी स्थानके लिये सिवाय ३३ जगहोंके और कहीं कोई भारी झगड़ा नहीं हुआ।

पंचायतके सदस्योंमें १२६४२ मुसलमान, २६०८०० अछूत, १००० स्त्रियां भी चुनी गईं। कुछ जगहोंमें उच्च और पिछड़ी जातियोंमें झगड़ा हुआ, और वोटरोंको जातिके नामपर वोट देनेके लिये कहा गया। इसे जरूर प्रोत्साहन देना नहीं चाहिये, लेकिन यह बात ध्यान देनेकी है, कि इस प्रकार जातिके नाम पर वोट देनेकी अपील उन्हीं जगहोंमें की गई, जहांपर कि उच्च-जातियोंने पीढ़ियोंसे निम्न जातियोंके साथ ठीक बरताव नहीं किया।...हो सकता है जाति-पांतिके तुच्छ विचारोंने इस वक्त कहीं-कहीं सफलता प्राप्त की हो...

हमने प्रत्येक अदालती हल्केमें पूरे समयके लिये एक सेक्रेटरीके हिसाबसे ८१९० सेक्रेटरी नियुक्त किये। वह पंचायती अदालतके सेक्रेटरी तथा हल्केकी सारी गाँव-पंचायतोंके सेक्रेटरीका काम करेंगे। गांव-पंचायतों तथा अदालती-पंचायतोंके निरीक्षण तथा पथ-प्रदर्शनके लिये हमने पांच सौ विशेष निरीक्षक (इन्स्पेक्टर) नियुक्त किये हैं। इन्स्पेक्टरोंके कामको जिला पंचायत-अफसर एकता-बद्ध करेगा, जिसके ऊपर प्रान्तीय पंचायत संचालक (डाइरेक्टर) का अनुशासन रहेगा।....

उनके कार्य आरंभ करनेसे पहिले सरकारने निरीक्षकों, सेक्रेटरियों और अदालती सरपंचों की शिक्षाके लिये प्रत्येक जिलेके केंद्रमें प्रबंध किया। यह भी सोचा जा रहा है, कि समय-समय पर गांव-पंचायतके

सभापतियों तथा उपसभापतियों एवं कुछ पंचोंकी भी इसी तरह शिक्षाका प्रबंध किया जाये। हमने पंचोंको बड़े पैमाने पर साक्षर बनानेका भी प्रबंध किया है।

लेकिन यह याद रखना होगा, कि पंचायतका सारा ढांचा गांवके रहनेवाले सीधे सादे अनुभवहीन जनोंके कंधोंपर है।

—(H. T., 15-8-49)

परिशिष्ट-अध्याय २०

भाषा और प्रदेश

१. भाषानुसार प्रदेश–

भाषाके आधारपर प्रान्तोंके बनानेकी मांगका एक कारण है, भिन्न-भिन्न प्रदेशोंका एक-सा आर्थिक विकास न होना। बिहारके पास कोयला, लोहा-फौलाद, सीमेंट, (अबरक) और कागज जैसे महत्त्वपूर्ण उद्योग हैं, तो भी वह बहुत गरीब प्रदेश है, और जितनी वहांकी जनता भूखकी मारी है, उतनी भारतके किसी भागमें नहीं होगी। प्रान्तके धनसे कलकत्ता और बंबईके उद्योग-स्वामी मालामाल हो गये, लेकिन उस समृद्धि का बहुत कम अंश बिहारियोंको मिला।

—(P. C. pp. 89-90)

२. भाषाएं–

(१) भारतके सबसे पुराने निवासी निग्रायित (हब्शी जाति के) थे, जो अपना प्रभाव छोड़े बिना लुप्त हो गये। उनकी भाषाका अवशेष अंदमन में बच रहा है (संख्या १९३१ में ५०० से कम)।

(२) फिर प्राग्-आस्ट्रेलायित संभवतः पश्चिमसे आये। इनका शिर गोल, रंग सांवला, नाक चिपटी थी। हमारे देशका छोटा वर्ग इन्हींका वंशज है। वह उसी भाषाको बोलते थे, जिससे आस्ट्रिक परिवारकी भाषायें निकलीं। मैदानमें रहनेवाले इनके वंशजोंने अपनी भाषा छोड़कर १५०० ई० पू० में आनेवाले आर्योंकी भाषा स्वीकार कर ली। आस्ट्रिक भाषा केंद्रीय तथा उत्तर-पूर्वीय भारतके कुछ पर्वतों,

जंगलों, दुर्गम स्थानोंमें ही बच रही है। इसके बोलनेवालों की संख्या ५० लाखके करीब है। भारतीय आस्ट्रिक भाषाओं (जिनमें बर्माकी मोन तथा हिन्दी-चीनकी ख्मेर भाषा संमिलित हैं) के तीन समुदाय हैं–(१) कोल या मुंडा समुदाय, जिसमें संताली (जिसके बोलनेवाले सबसे अधिक, २५ लाखसे ऊपर हैं), मुंडारी (६,५०,०००), हो (४,५०,०००), खडिया (१,८०,०००), भूमिज (१,१३,०००), कुछ और, तथा (२) कोरकू (१,६०,०००), शबर (१,९६,०००) और गडबा (४४,०००), आसामके खासी (२,३४,०००), और (३) निकोबारी (१०,०००) हैं।

(३) आस्ट्रिकोंके बाद ३५०० ई० पू० में पहिले द्रविड़-भाषा-भाषी क्षुद्र-एसिया तथा एसियन द्वीपोंसे आये, और यह उसी जातिके थे, जिसके कि हेलनोंसे पूर्वके ग्रीस-निवासी। इन्होंने (३२५०-२७५० ई०पू० में) सिंध और दक्षिण पंजाबकी नगरसंस्कृतिका निर्माण किया। आजकल द्रविड़ भाषायें उत्तर और केंद्रीय भारतमें कुछ अवशेषोंको छोड़कर मुख्यतः दक्षिण भारतमें बोली जाती हैं इनके बोलनेवालोंकी संख्या ७.१० करोड़ है। इनमें चार बड़ी तथा साहित्यिक भाषायें हैं। (१) तेलगू, (२६० लाख), (२) कन्नड़ (११० लाख), (३) तमिल (२०० लाख भारत+२० लाख लंकामें), (४) मलयालम (९० लाख)। इनके अतिरिक्त द्रविड़-भाषाकी बोलियां मध्य-प्रदेश, हैदराबाद और मद्रास प्रदेशमें तुलू (१,२५,०००), कोडगू (४५,०००) टोडा (६००) और गोंडी (१८,६५०००), उड़ीसामें कांध या कुई (५,८६,०००), बिहारमें कुरुख या उरांव (१०, ३८,०००) और राजमहलकी पहाड़ियोंमें मल्तो (७१,०००) हैं। बलूचिस्तानकी बर्हुई (२,०७,०००) भी द्रविड़-भाषाका अवशेष है।

(४) चीनी–तिब्बतीय या तिब्बती-चीनी भाषाभाषी मंगोलायित-लंबे या छोटे शिरवाले–आर्योंसे पीछे भारतमें पहुँचे। ईसापूर्व द्वितीय सहस्राब्दीके मध्यमें ये अपने मूल-निवास पश्चिमोत्तर चीनसे तिब्बतमें पहुँचे, जहांसे पीछे हिमालय और आसाममें फैलते आगे भी बढ़े। इनकी भाषा बोलनेवाले नेपाल और आसामके पहाड़ोंमें ४० लाख आदमी हैं। इसकी शाखा-भाषाओंमें मणिपुरी (३,९२,०००), लूशेई (६०,०००) और गारो (२,३०,०००) हैं।

(५) पुराने आर्य-भाषा-भाषियोंने ऊराल पर्वतके दक्षिणवाले युरेसिया खंडमें ३००० ई०पू० के करीब अपनी भाषा विकसित की।

हिन्दी-आर्यभाषा कई लहरोंमें भारत आई। इस भाषाके बोलनेवाले २५.७ करोड़ व्यक्ति हैं। हिन्दी-आर्यभाषा परिवारकी भाषायें और बोलियां निम्न प्रकार हैं–

१. पश्चिमोत्तर समूह–(१) हिंदकी या लँहदा (पश्चिमी पंजाबी) ८५ लाख, सिंधी (कच्छी-सहित) ४० लाख।

२. दक्षिणी समूह–(३) मराठी २१० (कोंकणी १५ लाख और हलबीके साथ)।

३. पूर्वी समूह–(४) उड़िया ११०, (५) बंगला ५३५, आसामी २०, बिहारी भाषायें ३७०, जिनमें (क) मैथिली १००, (ख) मगही ६५, (ग) भोजपुरी (सदनी या छोटा नागपुरी सहित) २०५ लाख।

४. पूर्व-केंद्रीय समूह: (८) कोसली (अवधी, बघेली, छतीसगढ़ी) २५०।

५. केंद्रीय समूह–हिन्दी (बांगरू, कौरवी, ब्रजभाषा और बुंदेली सहित) ४१० लाख, (१०) पंजाबी १५५, राजस्थानी-गुजराती-(क) गुजराती ११०, (ख) राजस्थानी–मारवाड़ी, मालवी, जयपुरी, मेवाती, मेवाड़ी–१४० और (ग) भीली २० (इनके अतिरिक्त मदुराकी सौराष्ट्र और कश्मीर तथा पंजाबकी गूजरी)।

६. पहाड़ी समूह: (१२) पूर्वी पहाड़ी (खस-कुरा या नेपाली) ६०, (१३) मध्यपहाड़ी–गढ़वाली और कमाऊनी १० और (१४) पश्चिमी पहाड़ी–चम्पेयाली, कुलुई, मंडियाली, क्यूंथली, सिरमोरी आदि १० लाख।

इस प्रकार भारतमें चार बड़े भाषा-परिवार हैं–आस्ट्रिक, द्रविड़, हिन्दी-युरोपीय (आर्य) और चीन-तिब्बतीय।

हिन्दी–निश्चय ही हिंदी प्रतिनिधिक आधुनिक भारतीय भाषा है। यह २५.७० करोड़ लोगोंकी स्वाभाविक व्यवहार-भाषा है, और दूसरे भी इसे समझते हैं। यह १४ करोड़ आदमियोंकी साहित्यिक भाषा है। उत्तरी चीनी और अंग्रेजीके बाद यह विश्वकी तीसरी बड़ी भाषा है। द्रविड़ भाषा-भाषियोंके लिये हिन्दीको अन्तर्प्रान्तीय भाषा स्वीकार करनेमें बहुत-सी कठिनाई नहीं होगी, क्योंकि हिन्दीने वाक्य-विन्यास और भाषणमें बहुत द्राविड़ी आदतें स्वीकार कर ली हैं। द्रविड़-भाषाओंमें भारी परिमाणमें संस्कृत और प्राकृतके शब्दोंका होना हिन्दीसे उनका संबंध और घनिष्ट कर देता है।

—(L. g. pp. 6-15)

नागरी लिपि—उर्दू लिपि अन्-अरब भाषाओंके लिखनेके लिये अत्यन्त अपूर्ण लिपि है। ह्रस्व स्वरोंके संकेत का अभाव, आवश्यक स्वर-वर्णोंकी कमी, कितने ही व्यंजनोंके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंगोंके संकेतके लिये केवल विंदु द्वारा संकेत और अक्सर सिमटे अक्षरोंकी पेबंद बंदी—उर्दू लिपिके ये कुछ बड़े-बड़े दोष हैं। भाषाको बिना अच्छी तरह जाने इस लिपिको नहीं पढ़ा जा सकता। व्न्द् को बंद-बेंद, बिद और बुंद पढ़ा जा सकता है।

—(L. g. p. 25)

परिशिष्ट-अध्याय २१

शिक्षा

१. "राष्ट्रीय शिक्षा प्रणालीको अपने राष्ट्रकी परम्परा, संस्कृति, आदर्श और आकांक्षाओंसे उद्गत होना चाहिये, क्योंकि राष्ट्रीयता ठीक तौरसे विचारने पर उसी तरह जनताके जीवन और संस्कृतिका व्यक्तीकरण है, जिस तरह आदमीके लिये उसका व्यक्तित्व।"

—(P. I. p. 42)

परिशिष्ट-अध्याय २४

नव-एसिया

१. नवीन चीनका स्वागत—

चीन और भारतका संबंध दो हजार वर्षोंका है, और वह इतना घनिष्ट है, जिसका पता बहुत कम भारतीय नेताओंको है। चीनके साहित्य, कला, और दर्शन सभी क्षेत्रों पर भारतका गहरा प्रभाव पड़ा है। चीनसे फाह्यान, स्वेनचांग्, ईचिग् जैसे महान पर्यटक ही हमारे देशमें नहीं आते थे, बल्कि हजारों भारतीय एकके बाद

एक वहां जाते रहे। काश्यप मातंग और अन-सीने भारतीय ग्रंथोंके चीनी अनुवादका जो क्रम ईसाकी पहिली शताब्दीमें आरंभ किया, वह अगले हजार वर्षों तक चलता रहा। आज इन्हीं अनुवादोंकी कृपासे हमारे कितने ही अनमोल ग्रंथ सर्वथा लुप्त होनेसे बच गये। एक समय चीनकी राजधानीमें तीन हजार भारतीय संस्कृतिके दूत निवास करते थे।

भारतीय प्रभावको दूर करनेके लिये कितनी ही बार वहांकी संकीर्ण राष्ट्रीयताने घोर प्रयत्न किये, कितने ही हत्याकांड भी हुए, किंतु वह प्रभाव नष्ट नहीं हो सका और कुछ दबता फिर उठता वह आजतक चला आया। सबसे पीछे हमारे दोनों देशोंके मधुर सांस्कृतिक संबंध पर प्रहार पश्चिम द्वारा हुआ। पश्चिमी साम्राज्यवादियोंने चीनको आर्थिक और राजनीतिक तौरसे ही पद-दलित नहीं करना चाहा, बल्कि वहांकी संस्कृतिपर प्रहार करते हुए भारत और चीनके सांस्कृतिक संबंधको तोड़ फेंकनेकी कोशिश की। पश्चिमी साम्राज्यवादियोंके हाथोंकी कठपुतली चीनी राजनीतिक नेता इस काममें सबसे आगे बढ़े हुए थे। चांग्-केशक जैसे चोटीके नेता जब व्याहके लिये ईसाई धर्म स्वीकार कर लेते हैं, तो और रंगे स्यारोंसे क्या आशा रखी जा सकती थी। पिछली एक शताब्दी चीनके सार्वत्रिक अवसादकी शताब्दी थी, जिसने हमारे सांस्कृतिक संबंधपर भी प्रभाव डाला।

लेकिन, चीन अब राजनीतिक तौरसे ही स्वतंत्र और शक्तिशाली नहीं बन रहा है, बल्कि एक शदाब्दीके भीतर ही वह आर्थिक क्षेत्रमें एशियामें अग्रणी होगा, इसमें संदेह नहीं जो सबसे बड़ी बात हम भारतीयोंके सोचनेकी है, वह है चीनमें होनेवाली बहुमुखी सांस्कृतिक प्रगति। नवीन चीन के अंतर्राष्ट्रीयतावादी नेता उस मधुर सांस्कृतिक संबंधके महत्त्वको अच्छी तरह जानते हैं, जो भारत और चीनके बीच पिछली दो सहस्राब्दियों तक रहा। आज वह संबंध हमारे दोनों महान देशों को एकताके घनिष्ट सूत्रमें बांधनेके लिये तैयार है। बुद्धके पौरोहित्यमें हमारे दोनों देशोंका जो गठबंधन हुआ, उसे अब और भी दृढ़ तथा चिरस्थायी होना है। ऐसे समय हमारी ओरसे कोई ऐसी गलती नहीं होनी चाहिये, जिससे आपसी मनोमालिन्य बढ़े।

भारतको किसीका मुंह न देखकर नवीन चीन और उसकी सरकारको अविलंब स्वीकृति देनी चाहिये थी, और वह किया गया। ऐंग्लो अमेरिकन गुट फूटी आंखों भी देखना नहीं चाहेगा, कि भारत और चीन एक दूसरेसे

नजदीक होवें। पिछले कई वर्षोंसे बड़ी तत्परताके साथ अमेरिकन चर तिब्बतमें दौड़-धूप लगा रहे हैं। अंग्रेज तो अपने पुराने राजनीतिक अफसर रिचार्डसन्–जिसे दुर्भाग्यसे हमारी सरकारने भी अपना लिया है–के रूपमें वहां बैठे ही हुए हैं। ऐंग्लो-अमेरिकन गुट तिब्बतके बारेमें चाहे जो भी दुर्लक्ष्य रखें, किंतु हमें परिस्थितिको साफ समझना है। तिब्बत शताब्दियोंसे चीनकी छत्रछायामें रहा है। अंग्रेजोंने दक्षिणसे भीतर घुसनेकी कोशिश की, तो उत्तरमें रूसने भी पीछे नहीं रहना चाहा। तिब्बत और इंगलैंडके बीचमें हुई १९०४ की संधिमें कहा गया था,कि तिब्बत बिना ग्रेटब्रिटेनकी सहमतिसे किसी विदेशी शक्ति या उसके प्रतिनिधिको तिब्बतके भीतर दखल देनेकी आज्ञा नहीं देगा, और न कोई रियायतपर विशेष सत्व प्रदान करेगा। यह संधि जापान-रूस युद्धके अंधकारमें हुई थी, जिसे १९०७ में ग्रेटब्रिटेन और रूसकी संधि कीं धारा १ के अनुसार बदलके कहना पड़ा-"दोनों संधि करने-वाले पक्ष तिब्बतकी भौमिक अखंडताको मान्य करते हैं और उसके भीतरी शासनमें सभी तरहके हस्तक्षेपसे बाज आनेकी प्रतिज्ञा करते हैं।"

चीनमें किसी पक्षने कभी नहीं स्वीकार किया, कि तिब्बत चीनके बाहर है। पिछले २० सालोंसे तिब्बतके साथ मेरा घनिष्ट संपर्क रहा है। मैंने वहां साधारण जनसे लेकर प्रकांड पंडित लामाओं तथा अधिकारियों तक को भी इसमें संदेह करते हुए नहीं पाया, कि तिब्बत चीनसे अलग नहीं है, यद्यपि अंग्रेज कूटनीतिज्ञोंकी चाल हमेशा तिब्बतको भ्रममें डालनेकी रही। अंग्रेजी साम्राज्यवादका सूक्ष्म प्रचारक और समर्थक "स्टेट्समैन" हांग्कांग्के साथ तिब्बतको भी जोड़कर भारतको उनकी अक्षुण्णता कायम करनेकी शर्तके साथ ही पेकिंग् सरकारको स्वीकृत करनेकी सलाह देता रहा।

प्रसिद्ध अमेरिकन रेडियो व्याख्याता लोवेल टामसने तीर्थ-यात्राके लिये ल्हासाकी यात्रा नहीं की थी। चीनके और इलाकोंको न बचा पानेके बाद अमेरिकन साम्राज्यवाद तिब्बतको अलग करनेकी कोशिश करता रहा है, और अपनी इस दुश्चेष्टामें वह भारतको भी घसीटना चाहता है। टामस नवीन चीनके अपने हार्दिक दुर्भावोंको तिब्बती नागरिकोंके मुंहसे कहलवाना चाहता है। तिब्बतमें प्रतिगामियोंका अभाव नहीं है, लेकिन उनकी संख्या बहुत कम है, और शक्ति तो और भी कम। किस बलपर ऐंग्लो-अमेरिकन साम्राज्यवाद तिब्बतको चीनसे अलग करनेका मंसूबा रखता है? माउ-चे-तुंगने कह दिया

है, कि तिब्बत को वह स्वतंत्र किये बिना नहीं रहेंगें। ऐंग्लो-अमेरिकन चरोंकी तिब्बतमें सरगर्मी केवल कुछ तिब्बती लोगोंमें भ्रमपूर्ण आशा पैदा कर सकती है, लेकिन ऐसे भ्रममें पड़नेवाले तिब्बतके उच्च वर्गमें भी बहुत कम हैं। वह जानते हैं, कि माउ-चे-तुंगकी सेनाको रोकनेके लिये पचासों हजार पलटन और आधुनिक ढंगके अस्त्र-शस्त्रकी आवश्यकता होगी, जिसका खर्च करोड़ों डालर होगा। जहां इस सेनाको हिमालयके उच्च दुर्गम पथोंसे ले जाना होगा, वहां उत्तरसे आनेवाली माउकी सेना ल्हासाके पांच दिनके रास्ते नकछुका तक मोटरमें आ सकती है और आगे भी उसके लिये मोटरका रास्ता बनाना बहुत कठिन नहीं है। यदि कोई आशा होती, तो अमेरिका दो चार करोड़ डालर खर्च करनेमें कोताही नहीं करेगा, किंतु पलटन कौन भेजेगा? शायद वह भारतसे आशा रखता होगा। विशेषकर, कश्मीरके पाकिस्तानके हाथमें गये भागकी सीमा जब चीनसे मिलती हो, क्या लियाकत अलीको माउ-चे-तुंगके साथ घनिष्टता स्थापित करने देना भारतके हितकी बात होगी?

भारतने दाय-भागमें अंग्रेज कूटनीतिका जो अंश पाया है, उसमें एक यह तिब्बतकी आजकी समस्या भी है। आज पूंजीवादी देशोंके अखबार तिब्बतमें उरानियमकी बात कहकर अमेरिकाके मुंहमें पानी लानेकी कोशिश कर रहे हैं, किंतु किसने तिब्बतमें इस खनिज निधिकी जांच-पड़ताल की? हमारे लिये तो तिब्बतका ऊन मूल्यवान निधि है, जो लाखों मन प्रतिवर्ष, कलिम्पोंग, तनकपुर, अलमोड़ा, कुलूके रास्ते हमारे देशमें आता है। कश्मीरके महार्घ दुशालोंका ऊन (पशम) तिब्बतकी बकरियां देती हैं। हम निश्चय ही किसी तरह भी तिब्बतको चीनी प्रजातंत्रके भीतर जानेसे रोक नहीं सकते। हां, अपनी भूलसे अपने कितने ही व्यापारिक स्वार्थोंको हानि पहुँचा सकते हैं।

फिर यह भी खयाल रखें, कि नये चीनके साथका वैमनस्य हमारे लिये और भी कई उलझनें पैदा करेगा। १९०४ तक भूटान, तिब्बतके अधीन माना जाता था। १९१० में अंग्रेजोंने उसे पीटपाट कर अपने साम्राज्यमें मिला लिया। चीन फिरसे इस प्रश्नको खड़ा कर सकता है। १९०७ की रूस-इंगलड संधिके अनुसार तिब्बती भूभाग-को अलग करनेका अंग्रेजोंको अधिकार नहीं था।

आप नये नकशे उठाकर देख लें, वहां मालूम होगा, कि कमाऊँसे लेकर लँदाख तककी भारत और तिब्बतकी सीमा चिह्नित नहीं की गई है, यद्यपि उन स्थानोंके आदमियोंसे पूछने पर आप जान सकते हैं, कि सीमा निश्चित है। अंग्रेज सीमाको चिह्नित नहीं करना चाहते

थे, क्योंकि वह उसके रास्ते पश्चिमी तिब्बतको हड़पना चाहते थे। पश्चिमी तिब्बतसे निकली सतलज और सिंधु नदियां भारतकी ओर आती हैं और बिना दुर्गम डांड़ोंको पार किये वहां पहुँचा जा सकता है, साथ ही वहांसे उत्पन्न होनेवाले सोना तथा बहुमूल्य पशम, ऊन और महार्घ चर्म भी कम आकर्षक नहीं थे। आज यह अचिह्नित सीमा झगड़ेका कारण बन सकती है, क्योंकि हमारी सीमाके भीतर भी कितनी ही दूर तक तिब्बती-भाषाभाषी लोग बसते हैं। अंग्रेजोंके लगाये इस झगड़के कारणोंको मित्रतापूर्ण तरीके से निपटाया जा सकता है, इसके लिये भी भारतको चीनसे द्वेष मोल नहीं लेना चाहिये।

द्वेष मोल लेनेपर हमारे सैनिक बजट को आजसे ड्योढ़ा करना पड़ेगा, क्योंकि तब सीमाके पास जगह-जगह सैनिक दुर्ग, छावनियां और अड्डे स्थापित करने पड़ेंगे। ऐसा खर्च हमें दीवालिया बना देगा। अभी तक हमें उत्तरी सीमापर कोई खर्च नहीं करना पड़ता था, और अब गलती करनेपर वह संभालमें न आने लायक बोझ हो जायेगा। कम्युनिज्मसे द्वेषान्ध हो दुनिया भरमें ताली ठोंकनेके लिये अमेरिकाको ही छोड़ देना चाहिये और चीनमें नवीन चीनको अपने रास्तेपर जाने देना चाहिये। वह कभी अपने राजनीतिक विचारोंके लिये हमारे देशमें हस्तक्षेप करनेकी कोशिश नहीं करेगा। लेकिन "आ बैल मुझे मार" की नीति यदि हमने अपनायी, तो भारी घाटेमें रहेंगे, व्यापार और कच्चे-मालसे हाथ धो बैठेंगे और साथ ही करोड़ों रुपये सेनापर खर्च करने पड़ेंगे।

यह प्रसन्नताकी बात है, कि भारत सरकारका रुख चीनसे पूरा मित्रतापूर्ण रहा।

२. कम्युनिस्ट चीन—

हांग्कांग् जुलाई ३१—उत्तरी चीनमें चीनी कम्युनिस्टोंने शासन और व्यवस्था कायम कर दी है। कम्युनिस्ट शासित क्षेत्रोंसे आनेवाले विदेशियोंके कथनानुसार वहां बहुत कम अपराध होते हैं। सैनिक अब भी वैसे ही सुंदर बरताव वाले हैं, जैसे कि आनेके दिन थे। चीनी नागरिक अब अफसरों और सैनिकोंकी मनमानीसे मुक्त हैं। यात्रियोंका कहना है, कि कम्युनिस्टोंने कूमिन्तांग्-अधिकारियों द्वारा नृत्यशालाओंके ऊपर लगाये प्रतिबंधको हटा दिया, तियेन-चीनमें यही निशीथ-जीवन है, नहीं तो दस बजेके बाद नगरमें सन्नाटा छा जाता है। सिनेमोंमें पुराने फिल्मोंको फिर फिर दुहराया जाता है, जिनमें सेंसर किये कुछ अमेरिकन फिल्म भी हैं। रूसी फिल्मोंकी संख्या बढ़ रही है।

भोजन अपेक्षाकृत सस्ता है।

—(Renter Hongkoug 31-7-49)

परिशिष्ट-अध्याय २५

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान

१. विभाजन–

१९४१ की जनगणनानुसार भारतकी जनसंख्या ३८.९ करोड़ थी। विभाजनके बादका व्योरा इस प्रकार है:–

	जनसंख्या (करोड़)	क्षेत्रफल (हजार वर्गमील)	आबादीकी घनता (प्रति-वर्गमील व्यक्ति)
भारत-संघ	३१.८	१२,०९	२७३
पाकिस्तान	७.१	३,६५	१९५

–(P. T. p. 6)

विभाजनके पूर्व २ करोड़ अमुस्लिम पाकिस्तानमें थे और ३.९ करोड़ मुस्लिम भारतमें। पंजाबके उपद्रवोंके कारण ५० लाख अमुस्लिम भारत चले आये और करीब उतने ही मुस्लिम भारतसे पाकिस्तान चले गये। (इसी तरह २० लाख हिन्दू पूर्व-पाकिस्तानसे बंगालमें चले आये), इतना होनेपर भी अभी ३.४ करोड़ मुस्लिम भारतमें हैं। १.३ करोड़ अमुस्लिम पाकिस्तानमें-अधिकतर पूर्व पाकिस्तानमें हैं। हिन्दू-मुस्लिम समस्याको पूरा हल करनेके लिये पाकिस्तानमें बाकी बचे अमुस्लिमोंको भारत और भारतमें बचे मुस्लिमोंको पाकिस्तान भेजना पड़ेगा। लेकिन यह संभव नहीं मालूम होता।

—(P. T. p. 10)

भारतसे निर्यात होनेवाले माल

माल	मूल्य (लाख रुपया)	
	१९३८-३९	१९४५-४६
कोयला, कोक	१,३६	२५
काफी	७५	२६
मंगनीज और	१,०७	६५
चंदन तेल	१०	१६
सूत	१,८७	१,४८

माल	मूल्य (लाख रुपया)	
कपड़ा	३,२४	२९,५२
जूटमाल	२६,२६	५७,१२
तंबाकू (तैयार)	७४	४८
रबर	७२	३७
चाय	२३,४२	३५,५२
योग	५९,५३	१,२५,८१

केवल पाकिस्तानसे निर्यात

गेहूँ आटा	७८	३
जूट (कच्चा)	१३,३९	१५,८४

आय–१९४८-४९ की बजटके अनुसार भारतकी आय २२५ करोड़ रुपया है और पाकिस्तानकी ३५ करोड़। भारतके प्रान्तोंकी आय १५६ करोड़ रुपया है और पाकिस्तानके प्रान्तोंकी ४६ करोड़। पाकिस्तानका ७५% बजट सेनापर खर्च होता है, और भारतका करोड़ रुपया।

	१९५०-५१	१९५१-५२ (बजट)
आय	३८७.२१	३६९.८९
सैनिक व्यय	१७०.४७	१८०.०२
शासन व्यय	५२.७५	५६.०२

आय (लाख रुपया)

	केंद्रीय	**प्रान्तीय**	**योग**
भारत	२,००,४४	१,५५,६९	३,५६,१३
पाकिस्तान	३५,२९	४५,६३	८०,९२

कर्ज–भारतका पाकिस्तानपर ४०० करोड़ रुपया कर्ज है, जिसे विभाजनसे पांच बरस बाद (१९५२) से लेकर ५० वर्षोंमें देना पड़ेगा।

—(P. T., 45)

(१९४८ के बजटमें) पाकिस्तानके अर्थमंत्रीने आयका अंदाजा ३१.२० करोड़ लगाया, सेनाका सैनिक व्यय ३७ करोड़ माना गया। बहुत सी निर्यात ड्यूटियां लगा तथा प्रान्तोंके अधिकारके विक्रयकरको भी लेकर घाटा पूरा करनेकी जी-तोड़ कोशिश की गयी है।

—(P. T. 80)

भारतसे पाकिस्तानमें आयात

माल	परिमाण	मूल्य (करोड़ रुपया)
चीनी	१.७५ लाख टन	१९.४
सीमेंट	१ ,, ,,	.६५
कपड़ा	५०,०० ,, गज	३७.५
कोयला	३० ,, टन	५
फौलाद, चमड़ा काच आदि	प्राय:	१२
		७४.५५

पाकिस्तानसे भारतमें आया

जूट (कच्चा)	५ लाख गांठ	८५
कपास	८ ,, ,,	१८.८
गेहूं	५ लाख टन	१७.७
		१२१.५

इस प्रकार (१९४९ ई० में) पाकिस्तानने आयातसे ८७ करोड़का माल अधिक भारतमें भेजा।

–(P. T. p. 109)

यातायत

रेल-लाइनें–

भारत	मील	पाकिस्तान	मील
नार्थ वेस्टर्नका भाग		नार्थ वेस्टर्नका भाग–	
व्यापारिक	१६१०	सैनिक	१,८१७
		व्यापारिक	३,११०
बंगाल आसामका भाग–		बं० आ० का भाग–	
बड़ी लाइन	३७६	बड़ी लाइन	५०३
छोटी लाइन	१,३९९	छोटी लाइन	९९९
विभाजनसे अछूती	२१,१८०	जोधपुर-हैदराबाद	३१९
योग	२४,५६५		६,७४८

अविभक्त भारतकी रेलवे लाइनोंका २०% पाकिस्तानके हाथमें है। मुगलपुरा (लाहोर) की बड़ी फैक्टरी पाकिस्तानको मिली, कंचड़ापाड़ा, दोहद और अजमेरकी भारतको। पाकिस्तान कोयलेके लिये भारतपर निर्भर करता है।

पोत-यातायात :—विभक्त भारतके पास १,५०,००० टनके ७० पोत थे, जिसमेंसे पाकिस्तानके पास ४०,००० टनके ८ पोत हैं, यदि मुगल-लाइन अपने २६,५४५ टनके ६ पोतोंको पाकिस्तानमें स्थानान्तरित कर दे। सामुद्रिक पोतोंके ढाई लाख मल्लाहोंमें २ लाख मुसलमान हैं।

विमान-यातायात — अविभाजित भारतके पास १९४७ में १०० डकोता, २० वाइकिंग्, और ६९ विभिन्न प्रकारके विमान यात्राके लिए थे। ये सारे भारत संघके हैं। मुस्लिम ओरियंटल एयरवेज अपने केंद्रको कलकत्तासे कराची बदलनेवाली थी, फिर ९ डकोता और २ दूसरे विमान पाकिस्तानके होंगे। भारतमें १० विमान-यात्रा-कंपनियां हैं।

—(P. T. pp. 52-56)

२. **औद्योगिक साधन—**

कारखाने—१९४३ में भारत और पाकिस्तानमें फैक्टरियों **और** कमकरोंकी संख्या तथा अखंड-भारतका प्रतिशत निम्न प्रकार था:—

	फैक्टरियां	प्रतिशत	कमकर (हजार)	प्रतिशत
भारत	११,४९५	९०.६%	२६,०९	९३.५%
पाकिस्तान	१,१८८	९.४%	१,८३	६.५%

—(P. T. pp. 24-25)

कोयला — भारतमें कोयलेका उत्पादन २९० लाख टन वार्षिक था, जिसमें पाकिस्तानका भाग सिर्फ ३ लाख टन था और उसकी आवश्यकता है ३० लाख टनकी।

चीनी—१९४३-४४ में स्थिति निम्न प्रकार थी।

	खेत (हजार एकड़)	फैक्टरियां	चीनी (ह० मन)
भारत	३६,६०	१४६	११,९१
पाकिस्तान	६,१८	८	२५

सीमेंट—भारतकी वार्षिक उपज ३१ लाख टन है और पाकिस्तान साढ़े पांच लाख टन सीमेंट पैदा कर सकता है।

लौह-फौलाद—का पाकिस्तानमें कोई कारखाना नहीं है ।

—(P. T. pp. 34-35)

इस प्रकार विभाजनके बाद भारत कम या बेशी उद्योग प्रधान राष्ट्र है ।

—(P. C. p. 106)

विदेशी विनिमय – पाकिस्तानका व्यापार भारत और दूसरे देशोंके साथ लाभका होगा, जब कि भारतकी स्थिति पाकिस्तान और दूसरे देशोंके साथ भी इससे उलटी होगी। किंतु, भारतका व्यापार पाकिस्तानकी अपेक्षा बहुत विशाल है, इसलिये उसे घटा-बढ़ाकर ठीक किया जा सकता है।

पौंड-पावना –अप्रैल १९४६ में पौंड पावना रुपयोंमें १९३३ करोड़ था। १९४७ तक वह १६१२ करोड़ और जुलाई १९४७ तक १५४७ करोड़ रह गया। जुलाईसे नवंबर १९४७ तक उसमें सिर्फ २१ करोड़की कमी हुई।

पाकिस्तानके भाग और दूसरे खर्चोंको काटकर भारतका पौंड पावना ८० करोड़ है।

—(P. T. pp. 47-51)

खनिज पदार्थ—खनिज पदार्थोंके सम्बन्धमें पाकिस्तानकी स्थिति अत्यन्त निर्बल है। जो खनिज पदार्थ भारतमें बड़े पैमानेपर पैदा होते हैं, उनका पाकिस्तानमें पता नहीं, जैसे लोहा, तांबा, मंगानीज, बक्साइट, अबरक, सोना, चांदी आदि। पाकिस्तानमें पेट्रोलका उत्पादन (१९४४) भारतका १५.५% होता है। हां, उसकी संभावना पाकिस्तानमें अधिक जरूर है। क्रोमाइट वह भारतका ४७.५% पैदा करता है। जिप्सम-उत्पादन अखंड-भारतका ७/१० पाकिस्तानमें है। एक सुरमाको ही केवल पाकिस्तानका खनिज कह सकते हैं, किंतु उसका उत्पादन अभी बहुत कम है।

—(P. T. pp. 20-21)

बिजली-शक्ति – खनिज पदार्थोंकी भांति बिजली-शक्तिमें भी भारतसे पाकिस्तानकी स्थिति बहुत हीन है। पनबिजलीमें उसका भाग नहीं-सा है। तापशक्ति प्रायः सारी भारतके पास है, क्योंकि कोयलेपर उसका एकाधिकार है। सिंध नदीसे पाकिस्तान बिजली अधिक निकाल सकता है, किंतु भारतकी क्षमता उससे भी अधिक है।

दोनोंकी शक्तिकी तुलनाः–

	वाष्प (ताप)		**तेल**	
	क्षम०	युनि०	क्षम०	युनि०
भारत–	६२४	१५१६	९१	१०७
पाक–	५९	११७	२७	४८

	पानी		**योग**	
	क्षम०	युनि०	क्षम०	युनि०
भारत–	४६९	२०३८	११८४	३६६१
पाक–	१०	१५	९६	१८०

नोट–क्षम०–लगी मशीनोंकी क्षमता हजार किलोवाटमें ।
युनि०–जनित युनिट दस लाख किलोवाट घंटोंमें ।

—(P. T. pp. 22-23)

परिशिष्ट-अध्याय २६

तृतीय विश्व-युद्ध

१. परमाणु-शक्ति और परमाणु-बम—

अमेरिकाके परमाणु-बमके बारेमें आजकल बहुत शोर सुननेमें आता है। शायद ही कोई दिन जाता हो, जब कि परमाणु बमके बारेमें अखबारोंमें कुछ न आता हो। कम्युनिज्म और रूस से घबड़ाई पुरानी दुनियाके लिये परमाणु बम सबसे बड़ा सहारा है। सत्ताधारी उसके भरोसे निश्चिन्त बैठना चाहते हैं। यद्यपि परमाणु बमके रहते रहते भी ४७ करोड़ निवासियोंका चीन कम्युनिज्मके हाथमें चला गया। जापानकी मंचूरियामें हार पर हार हो रही थी और जर्मनीके आत्म-समर्पणके बाद उसका आत्म-समर्पण निश्चित था, किंतु तो भी अमेरिकाने हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु-बम गिराये ही, जो केवल नृशंसता थी। हिरोशिमाके ६० हजार बच्चों-स्त्रियों, नर-नारियोंको तुरंत और उतनों हीको कुछ महीनोंके भीतर मार डालना मानवताका चरम पतन था। अमेरिका जानता था, कि जापानसे अमेरिका बहुत दूर है, वहां तक उसके विमानोंका पहुँचना असंभव-सा है; इसीलिये निर्द्वन्द्व हो उसने जापानके दोनों नगरों पर परमाणुबम गिराये। यदि जापानसे अमेरिका उतना ही नजदीक होता, जितना जर्मनी से इंगलैंड, तो हिरोशिमा और नागासाकी पर ये बम कभी नहीं गिराये जाते, क्योंकि तब जापान परमाणुबमके अभावमें उससे भी घातक विषैली गैसों और रोग—कीटाणुओंके बम अमेरिका पर फेंकता। वस्तुतः जर्मनी और जापानके साथ युद्ध करनेमें इंगलैंड और अमेरिकाकी सेनायें जितनी ही कच्ची सिद्ध हुई थीं, उतनी ही रूसकी सेनायें अधिक मजबूत मालूम पड़ीं। इस लज्जाको धोने और भविष्यमें अपने राजनीतिक महत्त्वको कायम रखनेके लिये परमाणु-बमों द्वारा जापानियोंको मारा गया, उनके दो नगरोंको ध्वस्त कर दिया गया। आज अमेरिका चाहे कितनी ही सहृदयता दिखलाये, किंतु क्या जापानी कभी उसकी उस नृशंसताको भूल सकते हैं?

परमाणु-बमके गिरानेसे पश्चिमी युरोपके प्रतिगामियोंको सांस लेनेकी हिम्मत हुई। रूस परमाणु-बमसे नहीं डरता (अब तो उसके पास भी परमाणु-बम है, यह बात मान ली गयी है) उससे भी भयंकर हथियार रूसके पास मौजूद हैं। हां, दुनियाके बहुजनोंका हितैषी होनेसे रूस हिरोशिमाके नृशंसतापूर्ण हत्याकांडका कारण नहीं बन सकता।

नोबुल पुरस्कार विजेता पी० एम० एस्० ब्लैक्ट परमाणु गर्भीय भौतिक-शास्त्रके महान आचार्य हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक "परमाणुशक्ति के सैनिक और राजनितिक परिणाम" (Military and Political Consequences of Atomic Energh, London 1949) में अमेरिकाकी उस दुर्नीतिपर अच्छा प्रकाश डाला है, जिसके कारण हिरोशिमा और नागासाकीके लाखों निरीह नर-नारियोंका संहार परमाणु-बम द्वारा किया गया।

योरोपीय युद्ध ८ मई (१९४५ ई०)को समाप्त हुआ। (जापानपर) सोवियत आक्रमण ८ अगस्तको आरम्भ होनेवाला था। पहिला परमाणु-बम ६ अगस्तको गिराया गया और दूसरा ९ अगस्तको (पृ० १२०) ....६अगस्त को हिरोशिमापर परमाणु-बम गिराया गया और ९ अगस्तको(रूस जापानके विरुद्ध) युद्धमें शामिल हुआ।...यह स्पष्ट था, कि बिना परमाणु बम— आक्रमणके भी, जापानके ऊपर (अमेरिकाका) जो हवाई प्राबल्य था, उसके कारण जापान बिना शर्तके आत्मसमर्पण करनेके लिये मजबूर होता, और वहां जहाजी सेना उतारकर आक्रमणकी आवश्यकता नहीं पड़ती। (पृ० १२२......जहां तक वस्तुस्थितिके विश्लेषणका संबंध है, हम उसी परिणाम पर पहुंचते हैं, कि सैनिक कारण कोई ऐसा नहीं था, जिससे मजबूर होकर ६ अगस्तको ही परमाणु-बम गिराया जाता, और आगे के छः सप्ताहोंमें नहीं। हां, यह एक कूटनीतिक कारण अवश्य दिखलाई पड़ता है, जिसमें कि युद्धके बाद (रूसके साथ)शक्ति संतुलन रखा जा सके। (पृ० १२३).....। यदि हम (अमेरिका) रूससे अधिक शक्ति संपन्न दीखते युद्धके बाहर नहीं आते, तो इसके प्रसारको रोक नहीं सकते। (पृ० १२५) हिरोशिमा और नागासकीपर, हड़बड़ीमें परमाणु-बम गिरानेसे निश्चय सफलता मिली, उससे अमेरिकाके सारे मनोरथ सफल हुए, आज जापानपर अमेरिकाका पूरा प्रभुत्व है, वहां रूसकी कुछ नहीं चलती (पृ० १२५)। ... हिरोशिमा और नागासाकीको उनकी जनकीर्णता और कार्याकीर्णताके कारण लक्ष्य बनाया गया (पृ० १२७)।.........

लेखक (ब्लेकेट) यही सच मानता है, कि परमाणु-बमके गिरानेका एक बिलकुल वास्तविक और बाध्यकर कारण था, किन्तु वह सैनिक नहीं बल्कि कूटनीतिक था (पृ० १३०)।

परमाणु बमकी शक्ति– परमाणुबम बहुत भयंकर हथियार है, इसे कोई इनकार नहीं कर सकता। तेरहवीं शताब्दीमें आदमीने बारूदके हथियारोंका प्रयोग आरंभ किया। उससे पहिले लकड़ी, कोयला और तेलको जलाकर आदमियोंने तापशक्तिका उपयोग किया था। तेल और कोयलेमें छिपी रासायनिक शक्तिको जलाकर इंजन और मोटर चलाई जाती है। यह रासायनिक शक्ति वस्तुतः परमाणुके एलेक्ट्रनोंसे भी नहीं आती, बल्कि समानधर्मा पर-माणुओंको बांधकर उन्हें अणुके रूपमें परिणत करनेवाली शक्तिका ही यहां उपयोग लिया जाता है। इस शक्तिको परमाणुके बाहरवाले एलेक्ट्रन एक दूसरेसे उलझकर पैदा करते हैं। यह रासायनिक शक्ति भी बहुत जबरदस्त है, इसमें शक नहीं, किंतु कोयला और पेट्रोलसे लेकर बारूद तकका प्रयोग करते हुए आदमीने परमाणुके ऊपरी शक्तिके तलका ही अभी तक उपयोग किया था। परमाणु-बममें परमाणुके भीतरी नाभिकणमें निहित अपार शक्तिका प्रयोग किया जाता है। वह शक्ति कितनी है, यह इसीसे मालूम हो जायेगा, कि एक छोटेसे गेंदके बराबरके उरानियममें अनेक अरब उरानियम परमाणु होते हैं, जिनमेंसे हरएकके भीतर बीस करोड़ वोल्ट शक्ति छिपी हुई है। इस छोटेसे गेंदमें कितनी शक्ति निहित है, इसका अन्दाज आसानीसे लगाया जा सकता है। टीएनटी आजकल का जबरदस्त विस्फोटक है। हिरोशीमापर जो परमाणु-बम गिराया गया था, उसमें २० हजार टन टीएनटीकी शक्ति थी।

परमाणु-गर्भ[1]–साइन्स-वेत्ताओंने ९२ परमाणुओंका पता लगाया। उनमें ४३,६१,८५ और ८७ तो प्रकृतिमें स्वाभाविक तौरसे मिलते भी नहीं। उनके नाभिकण इतने भंगुर होते हैं, कि वह क्षण भरके लिये भी ठहर नहीं सकते। कितनी ही बार लोगोंने उनके आवि-ष्कारका दावा किया, लेकिन वह सत्य नहीं साबित हुआ।

परमाणुके बाहरी भागमें एलेक्ट्रन बड़ी तेजीसे चक्कर काटते हुए, किसी भी नजदीक आने वाले पराये पदार्थको धक्का देकर बाहर

१. विशेषके लिये देखिये "विश्वकी रूपरेखा।

करते हुए पहरेदारी करते हैं। उनसे बहुत दूर परमाणुके गर्भमें नाभिकण है, जो प्रोटन और न्यूट्रनसे बना है। एलेक्ट्रन यदि ऋण-बिजली है, तो प्रोटन धन बिजली, किंतु न्यूट्रन न धन बिजली है और न हीं ऋण-बिजली। न्यूट्रन और प्रोट्रनकी भूतमात्रा प्रायः समान है। प्रथम परमाणु हाइड्रोजन सबसे छोटा और बनावटमें सरल अर्थात् उसके बाहर पहरा देनेके लिये सिर्फ एक एलेक्ट्रन और गर्भमें एक प्रोटन होता है। विशेष हाइड्रोजन दो और तीन प्रोटनवाले भी होते हैं। हाइड्रोजनके बादका अगला परमाणु हेलियम है, जिसके बाहर दो एलेक्ट्रन होते हैं और गर्भमें दो प्रोटन, किंतु हेलियमकी भूतमात्रा चार है। इस भारीपनका कारण उसके गर्भमें अवस्थित दो न्यूट्रन हैं। सबसे हल्की धातु लिथियमके भीतर तीन धन बिजली है, लेकिन उसकी भूतमात्रा सात है, बाकी चार भूतमात्रा चार न्यूट्रनोंके कारण है। एक प्रोटनकी भूतमात्रा एलेक्ट्रनसे १८०० गुनी होती है।

नाभिकणमें अपार शक्ति है, यह बात तो पहिलेसे मालूम थी, किंतु उस शक्तिको हस्तगत करनेका कोई साधन मालूम नहीं था, जब तक कि १९३० में चडविकने न्यूट्रनको खोज नहीं निकाला। न्यूट्रन धन और ऋण दोनों बिजलियोंसे वर्जित है, इसलिये किसी परमाणुके नाभिकणमें पहुँचनेमें उसे बाधा नहीं होती। यदि कोई दूसरे हथियारको इस्तेमाल करना पड़ता, तो करोड़ों एलेक्ट्रन वोल्टकी शक्ति भरनेपर "गोली" प्रोटन तक पहुँचानेमें सफलता पाती। न्यूट्रन एक या दो एलेक्ट्रन वोल्टकी शक्तिसे फेंककर नाभिकणमें पहुँचाया जा सकता है। हां, न्यूट्रनको इतनी शक्ति से फेंकनेकी जरूरत है, जिसमें कि वह नाभिकणके आगे नहीं निकल जाये। इसीलिये न्यूट्रनको बड़ी धीमी गतिसे भीतर फेंकनेका ढंग निकाला गया है। प्रोटनकी भूतमात्रा १.००७६ और न्यूट्रनकी १.००९० है। दोनों मिलकरके जब नाभिकणका निर्माण करते हैं, तो दोनोंके योगकी थोड़ी-सी मात्रा कम उतरती है। दोनोंका योग २.०१६६ है, किंतु प्रोटन और न्यूट्रनसे मिलकर बना ड्यूटेरोन २.०१४२ के बराबर होता है। यह कमी उस शक्तिके निर्माणमें व्यय हुई, जो कि प्रोटन और न्यूट्रनको बांधके रखती है। बाकी .००२४ भागसे ड्यूटेरोनको बांधकर रखनेवाले २२ लाख एलेक्ट्रन वोल्टकी शक्ति पैदा हुई। यदि दोनों टुकड़ोंको अलग किया जाये, तो फिर उक्त कमीको पूरा करना पड़ेगा।

रेडियोक्रिया वाले परमाणुओंका महत्त्व—थोरियम, उरानियम

आदि रेडियो क्रियावाले परमाणु हैं, जिनके नाभिकणकी कणिकायें स्वतः निकलती रहती हैं, जिनकी कमीके कारण परमाणुका द्रव्यान्तर होता रहता है। अपार शक्ति लगाकर नाभिकणको बांध रखा गया है। इसीलिये नाभिकणको तोड़ना आसान काम नहीं था। लेकिन, रेडियोक्रियावाले तत्त्वोंने कामको कुछ आशाप्रद बना दिया। न्यूट्रनके हाथ लग जानेपर तो काम और आसान हो गया। उरानियम ९२ परमाणुओंमें सबसे भारी और अंतिम परमाणु है। इसकी भूतमात्रा २३८ है, और इसके बाहरी ९२ एलेक्ट्रनोंके संतुलनके लिये भीतर ९२ प्रोटन तथा उन्हें बांधकर रखनेवाले १४५ न्यूट्रन हैं। लेकिन परमाणु बम जिस उरानियमसे बनाया गया, वह २३८ भूतमात्रावाला साधारण उरानियम परमाणु नहीं, बल्कि २३५ भूतमात्रा रखनेवाला समस्था-नीय उरानियम है, जो दो न्यूट्रन कम होके २३५ का बना होता है, अर्थात्—वह १४३ न्यू+९२ ए+९२ प्रोटन है।

उरानियमकी खानें विश्वमें बहुत अधिक नहीं हैं युक्तराष्ट्र अमे-रिका, कनाडा तथा दूसरे देशोंने उरानियम ही नहीं अपने यहांकी सभी रेडियोक्रियावाली धातुओंकी खानोंको राष्ट्रीय संपत्ति बना लिया। निश्चय ही यदि भावी-युद्धमें परमाणु-बमका इस्तेमाल हुआ, तो इन खानोंपर सबसे पहिले आक्रमण होगा। अभी तक जो खानें प्रकट हैं उनका स्थान-निर्देश निम्न प्रकार है—

नाम	देश
बिहार, मध्य प्र०	भारत
फरगाना उपत्यका	सोवियत रूस
योआखिम्स्ताल	चेकोस्लावाकिया
उत्तरी भाग	जर्मनी
दक्षिणी भाग	स्वीडन
कार्नवाल	इंगलैंड
-	पोर्तुगाल
टंगानिका	अफ्रीका
मदगास्कर	मदगास्कर द्वीप
बेल्जियम कांगो	अफ्रीका
दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका	,,
गोर्डोनिया	दक्षिण-अफ्रीका

नाम	देश
ब्राजील	ब्राजील
-	मेक्सिको
कोलोरेडो	युक्त राष्ट्र
ओंटारियों	,,
ऊटा	,,
एलडोरेडो	कनाडा

लेकिन द्वितीय विश्व-युद्धके बाद रेडियोक्रियावाले तत्त्वों की विशेषकर उरानियमकी खानोंको गुप्त रखनेकी बड़ी कड़ाई कर दी गई। सोवियत मध्य-एसियाकी उरानियम खान बाहरके लोगोंको मालूम है, क्योंकि द्वितीय युद्धसे पहिले इसे छिपानेकी कोशिश नहीं की जाती थी। सोवियत रूसमें और कई उरानियम खानें हैं, जिनमें कुछ तो ध्रुवकक्षीय प्रदेशमें है।

११५ धातुयें हैं, जिनके साथ उरानियम पाया जाता है। जहां कहीं भी संगखारा चट्टान मिलती है, वहां उरानियमकी साथी धातुयें भी पाई जाती हैं। पहिले हमारे बिहारकी उरानियम या ट्रावनकोरके थोरियमकी कोई पूछ न थी, किंतु अब उनका मूल्य बहुत बढ़ गया है। उरानियमकी खानें अब सोने और हीरेकी खानोंको मात करने लगी हैं। एलडोरेडो (अमेरिका) में मनुष्यद्वारा उरानियम भेदन के पहिले प्रतिमास ५ लाख डालर (२० लाख रुपया) का चांदी, सोना और रेडियम निकलता था। द्वितीय युद्धसे पहिले वहां जिसे कूड़े करकटमें फेंक दिया गया था, उससे करीब करीब उतना ही मूल्य प्राप्त हुआ। ऊटा, कोलोरेडोके वनाडियम, उरानियम और लेशमात्र रेडियमवाली खानोंका भी मूल्य बढ़ गया है। पश्चिमी कोलोरेडोके पथराये (फोसिल) वृक्ष संसारमें उरानियम और रेडियमके लिये बहुत ही समृद्ध स्रोत हैं। १९२० में सानमर्गुल नदीमें दो विशाल फोसील वृक्ष मिले, जिनसे ३० हजार डालर (१३ लाख रुपये) का बनाडियम, उरानियम और रेडियम निकला था—उरानियम-ओषिदका मूल्य २७ हजार बनाडियमका २८ हजार और १.७५ ग्राम रेडियमका १७५ हजार डालर (१९२० के मूल्यसे) था। उरानियम और रेडियमके धातु-पाषाण कोई-कोई ६४ से ८९% उरानियम-ओषिद प्रदाने करते हैं। यह धातु साधारण तौरसे ग्रेनाइट (संगखारा) चट्टानोंमें

मिलती है, जो कि पृथ्वीके गर्भसे आदिकालमें पिघले लावाके रूपमें बाहर निकलकर ठंडे और स्फटिक बन गये।

यह निश्चय ही है, कि उरानियम और उसके बाद थोरियम तथा दूसरी रेडियोक्रियावाली धातुओंका महत्त्व और मूल्य अब सभी धातुओंसे अधिक माना जाने लगा है। जब तक उनका प्रयोग केवल संहारके लिये किया जा रहा है, तब तक उन्हें गुप्त रखनेकी भी पूरी कोशिश की जायेगी।

आजकल परमाणु-बम राजनीतिक धमकीका हथियार बन गया है। ऐंग्लो-अमेरिकन साम्राज्यवादी अपने प्रभावित देशोंमें इस बातका बहुत जोरसे प्रचार कर रहे हैं, कि परमाणु-बम और परमाणु-शक्तिकी कुंजी केवल उन्हींके हाथोंमें है। लेकिन यह बहुत कुछ गाल बजाने-की-सी बात है। उरानियम परमाणु तोड़नेका काम अमेरिका नहीं, बल्कि जर्मनीके दो वैज्ञानिकोंने किया। उरानियमके नाभिकणके स्वतः विदरणकी बात १९४० से पहिले ही दो रूसी वैज्ञानिकोंने खोज निकाला था, जिसका विवरण १९४० में अमेरिकाकी प्रमुख भौतिक-विज्ञान-पत्रिका "फिजिकल रिव्यू" में छपा था। उक्त विद्वानोंने दिखलाया था, कि किस तरह बिना न्यूट्रनके प्रहारके स्वतः उरानियमका नाभिकण विदरित होता है। यह विदरण बहुत कम पाया जाता है। १९४० में प्रकाशित रूसी ग्रंथोंसे पता लगा था, कि एक किलो-ग्राम (सवा सेर) साधारण उरानियमसे एक सेकंडमें ५५० न्यूट्रन स्वतः निकलकर बाहर हो जाते हैं।

उरानियमका विदरण— परमाणुके गर्भमें अवस्थित अपार शक्ति यदि किसी तरह मुक्त की जा सके, तो उससे कोयला, तेल और पानीसे भी अधिक सस्ती तथा भारी परिमाणमें विद्युत्-शक्ति मिल सकती है। सभी परमाणुओंके नाभिकणोंको तोड़कर शक्ति बाहर करनेकी बात मुश्किल थी, लेकिन स्वतः विदरित होनेवाले (रेडियोक्रियावाले) परमाणुओंसे विशेषकर न्यूट्रनके आविष्कारके बाद अधिक आशा हो चली और वैज्ञानिकोंने उनके ऊपरका ध्यान भी आकृष्ट किया। जर्मनीके विज्ञानवेत्ता हानने १९३८ में सबसे पहिले सफलतापूर्वक उरानियमके नाभिकणका विदरण किया। १९३० में न्यूट्रनके आविष्कारके बाद न्यूट्रनोंको बढ़ा—घटाकर ९२ तत्त्वोंके कितने ही विभेद—समस्थानीय—तैयार किये गये। प्रोफेसर अटो हान

इसी तरह नाभिकणको प्रहार करके नये-नये समस्थानियोंके निर्माणका प्रयोग कर रहे थे—यह याद रखना चाहिये कि अभी तक इस प्रक्रियासे ३०० से ऊपर समस्थानीय परमाणु निर्मित किये जा चुके हैं। प्रोफेसर हान अपने प्रयोगमें उरानियम परमाणुके नाभिकणपर न्यूट्रनकी गोली दाग रहे थे। न्यूट्रन कभी नाभिकणको तोड़नेका काम करते हुए निकल जाता है और कभी नाभिकण इस आक्रमण-कारीको पकड़के अपने पास रख लेता है। यदि उरानियमका नाभि-कण न्यूट्रनको पकड़ लेता है, तो उसकी भूतमात्रा २३८ की जगह २३९ हो जाती। ऐसा पहले भी देखा गया था और पकड़नेकी प्रक्रियासे ही उरानियममें एक न्यूट्रन बढ़ाकर नेप्चूनियम समस्थानीय बनाया गया, जो ९३ वां रासायनिक तत्त्व है। यह समस्थानीय भी रेडियोक्रियावाला है, और अपने भीतरसे बीटा-कणको निकालकर ३.३ दिनमें प्लूतोनियम-समस्थानीय (पू० २३९) के रूपमें परिणत हो जाता है। यह उतना जल्दी-जल्दी परिवर्तित नहीं होता और उरानियमकी तरह विदरणके लिये काममें लाया जा सकता है। परमाणु-बमके बनानेमें भी इसका उसीकी तरह उपयोग हो सकता है। प्लूतो-नियमका आविष्कार १९४० में हुआ था। उरानियमसे बने प्लूतोनियम का वही महत्त्व है जो कि उरानियम २३५ का। जापान पर गिराये गये दो परमाणु बमोंमें एक प्लूतोनियमका था।

हां, तो प्रोफेसर हानने जिस वक्त न्यूट्रनसे उरानियमके नाभि-कणपर प्रहार किया, उस वक्त वह यही आशा रखते थे, कि नाभि-कणमें पकड़ा जाकर वह इस परमाणुको दूसरे रूपमें परिणत कर देगा। लेकिन उनको जो दृश्य देखनेमें आया, वह उस पर सहसा विश्वास नहीं कर सकते थे। २३८ भूतमात्राका उरानियम टूटकर (विदरित) प्राय: दो समान भागोंमें बंट गया और उनमेंसे प्रत्येककी भूतमात्रा बारियम (१३७ भूतमात्रा) के बराबर थी। प्रोफेसरको विश्वास करना मुश्किल था, किंतु अंतमें धर्मकीर्तिके शब्दोंमें मानना ही था "यदिदं स्वयमर्थानां रोचते तत्र के वयम्"। हानने फिर और प्रयोग करके देखा, किंतु परिणाम वही निकला। रासायनिक परीक्षाने बतलाया कि वह न्यूट्रन द्वारा प्रहार करके उरानियम परमाणुओंको बरियम परमाणुके रूपमें बदल रहे हैं। १९३८ के उत्तरार्द्धको हानने इसी परीक्षामें बिताया। उन्होंने अपने परीक्षणकी व्याख्याके लिये एक

महिला वैज्ञानिक डाक्टर लीज माइट्नेरकी सहायता ली, जो कि सैद्धान्तिक भौतिक-शास्त्र तथा उच्च-गणित एवं परमाणु-संयोजन-संबंधी सिद्धान्तोंकी पण्डिता थीं। यहूदी होनेके कारण कुमारी माइट्नेर थोड़े ही समय बाद हिटलरी-जर्मनीसे भागनेके लिये मजबूर हुईं और आजकल वाशिंगटनके कैथोलिक विश्वविद्यालयमें भौतिक-शास्त्रका अध्यापन करती हैं। उन्होंने हानको बतलाया, कि उनके प्रहारसे उरानियम परमाणु विदरण द्वारा द्विधा विभक्त हो गया। यह विदरणकी प्रक्रिया ठीक उसी तरहकी थी, जिससे कि प्राणियोंके सेल बढ़ते-बढ़ते विदरित हो जाते हैं। डाक्टर माइट्नेरने विदरण होनेकी ही बात नहीं बतलायी, बल्कि यह भी कहा, कि जहां टीएन्टी जैसे परमशक्तिशाली विस्फोटक वस्तुका प्रत्येक अणु तीन या चार शक्ति एकाई देता है, वहां उरानियम परमाणु विदरण द्वारा द्विधा विभक्त होते समय बीस करोड़ शक्ति-एकाई प्रदान करता है। यहां वह संकेत मिला, जो कि आगे परमाणु-बम-निर्माण करनेमें सहायक बना। डाक्टर माइट्नेर जर्मनीसे भागकर डेनमार्कमें नोबुल पुरस्कार-विजेता भौतिकशास्त्री प्रोफसर बोरकी प्रयोगशालामें शरणागत हुईं। वह अपने साथ उरानियम-विदरणकी गणित-शास्त्रीय गणनाको भी लेती गई थीं। प्रोफेसर बोर १ जनवरी १९३९को कोपनहेगन (डेनमार्क) से अमेरिकाके लिये प्रस्थान कर रहे थे, जहां उन्हें प्रिन्स्टोन विश्वविद्यालयमें महान् वैज्ञानिक प्रोफेसर अलबर्ट आइन्स्टाइनसे मिलना था। इसी समय हानके प्रयोगको डाक्टर माइट्नेर तथा डाक्टर र० फ्रिश दोहरानेकी तैयारी कर रहे थे। उन्हें बरियम बनानेकी चिन्ता नहीं थी, बल्कि वह २० करोड़ शक्ति-एकाईकी खोजमें थे।

प्रोफेसर बोर प्रयोगके देखनेकी प्रतीक्षा नहीं कर सकते थे, अमेरिका में जनवरीके मध्यमें पहुँचकर उन्होंने प्रिस्टोनके भौतिक-शास्त्री डाक्टर जान वीलर और कोलंबिया युनिवर्सिटीमें उस समय अध्यापक मुसोलिनीके कोपसे निर्वासित इतालियन वैज्ञानिक एन्रिको फेर्मीसे उसका जिक्र किया।

अभी द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ा नहीं था। इसी समय वाशिंगटनके विश्वविद्यालय और कार्नेगी प्रतिष्ठानने सैद्धान्तिक भौतिकशास्त्रके संबंधमें एक सम्मेलन बुलवाया था। २८ जनवरीको सम्मेलन जुटा। पहिले वक्ताने अपना भाषण शुरू ही किया था, कि इसी समय

फेर्मी और बोर बहुत उत्तेजित स्वरमें बात करते सभागारमें पहुँचे। उनका ध्यान वक्ताकी ओर बिलकुल नहीं था। कितने ही उनसे परिचय रखनेवाले विद्वान् उनके पास जमा हो गये। प्रोफेसर बोर प्रोफेसर फेर्मीसे एक पत्रके बारेमें कह रहे थे, जिसमें उनके भांजे डाक्टर फ्रिशने माइटनर-संबंधी गणनाओंके बारेमें लिखा था, और यह भी बतलाया था, कि हान और उनके सहकारी स्ट्रासमानके प्रयोगोंका पूरा विवरण जर्मन वैज्ञानिक पत्रिका नातुर-विजेन्शाफ्टेन् के फरवरी (१९३९) अंकमें निकल रहा है।

बोर और फेर्मी पत्रिकाके उस अंकके लिये अधीर हो उठे। अभी उसके अमेरिका पहुंचनेमें देर थी, किंतु उसका प्रूफ वाशिंगटन की राष्ट्रीय साइंस एकडेमीके कार्यालयमें मौजूद था। बोर और फेर्मी उस ऐतिहासिक लेखको पढ़ने लगे, जिसने परमाणु-युगका आरंभ कराया। प्रयोग दुरूह नहीं था। कई प्रयोगशालाओंमें उसे तुरंत दोहराया गया और कुछ ही घंटोंके भीतर पता लग गया, कि उरानियम-परमाणुके टूटनेसे अपरिमित शक्ति निकलती है। उसी शामको बोर और फेर्मीने दूसरे मेहमानोंके साथ स्वयं अपनी आंखों इस प्रयोगको देखा। यह आसानीसे समझा जा सकता था, कि जैसे उरानियम परमाणुको तोड़कर बरियम और क्रिपटोनके परमाणुओंमें बदलते हुए अपरिमित शक्ति मुक्त की जा सकती है, उसी तरह पास-पास रखे दूसरे उरानियम परमाणुओंका भी विदरण कराया जा सकता है और उनसे अपार शक्ति बाहर निकाली जा सकती है। इसी समय पेरिससे भी सूचना मिली, कि वहां उरानियमके विदरणसे एक विदरण-श्रृंखला करानेका तजरबा सफल रहा। एक उरानियम परमाणु टूटते वक्त अपरिमित शक्तिको मुक्त करते हुए अपने न्यूट्रनका दूसरे उरानियम-परमाणु पर प्रहार करता है। यह श्रृंखला आगे भी चलाई जा सकती है। १९३९ की गर्मियोंसे १९४० के जाड़ेके महीनों तक परमाणु-भेदन संबंधी बहुत तरहकी विचित्र-विचित्र कथायें अखबारोंमें छपती रहीं। वैज्ञानिक अभी परमाणु-शक्तिके औद्योगिक उपयोगको दशाब्दियोंकी बात समझ रहे थे, किंतु सेनाके वैज्ञानिक उसके तुरंत उपयोग करनेकी धुनमें थे।

जर्मनी द्वितीय विश्वयुद्धको छेड़ चुका था। हिटलरकी सेनायें अव्याहत गतिसे सब जगह आगे बढ़ रही थीं। जर्मन वैज्ञानिक भी परमाणु-

शक्तिके सैनिक उपयोगके उपाय ढूंढ़ रहे थे। ७ दिसम्बर १९४१ को जापानने पर्ल-हार्बरपर आक्रमण करके अमेरिकाको भी युद्धमें ढकेल दिया। अमेरिकन सरकारने परमाणु तथा उरानियम-धातु संबंधी सभी अनुसंधानों और आविष्कारोंको गोपनीय घोषित कर दिया। तबसे परमाणु-संबंधी अनुसंधानोंकी कोई बात बाहर छपने नहीं पाई, लेकिन अनुसंधान जारी रहा तथा पर्लहार्बर-काण्डके चार सालके भीतर ही अमेरिकाने हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणुबम गिरा दिये।

उ० २३५-उरानियमके वस्तुतः तीन भेद हैं, जो अपनी भूतमात्राके अनुसार उ०-२३४, उ०-२३५ और उ०-२३८ के नामसे प्रसिद्ध हैं। इन तीनों उरानियम समस्थानीयोंमें उ०-२३५ ही ऐसा है, जो परमाणुशक्तिके मोचनमें सहायक हुआ। लेकिन वह बहुत दुर्लभ द्रव्य है। जितनी धून (ओर) से उ०-२३८ का १४० पौंड प्राप्त होता है, उससे उ०-२३५ का एक पौंड ही हस्तगत होता है। उ०-२३५ पर न्यूट्रन द्वारा प्रहार करनेपर विदरण होते देखा गया। उ०-२३८ प्रहार करनेपर विदरित नहीं होता, बल्कि वह न्यूट्रनको पकड़कर मानव-निर्मित प्लूतोनियमके बनानेमें सहायक होता है, जो परमाणु-बम का एक महत्त्वपूर्ण उपादान है।

१९४२ में अमेरिकाने परमाणु-बमके निर्माणके लिये दौड़-सी लगा दी। उसे यह मालूम था, कि उरानियमके विदरणका आविष्कार जर्मनोंने किया और वह परमाणु-बमके पीछे पड़े हुए हैं। २ दिसम्बर १९४२ से बहुत तत्परताके साथ काम होने लगा। पहिले दिनके प्रयोग में केवल आधी वाट-शक्ति उत्पन्न हुई, जिससे एक छोटा-सा बिजलीका लट्टू भी जलाया नहीं जा सकता; १२ दिसम्बर तक वह २०० वाट-शक्ति पैदा करनेमें सफल हुआ लेकिन, वैज्ञानिकोंने काम रोक दिया, क्योंकि इस विदरण द्वारा रेडियम जैसी घातक किरणें पैदा हो रही थीं। इन तजरबोंसे पता लग गया, कि प्लूतोनियमको बनाया जा सकता है और इस क्रियामें जो भयंकर किरणें उत्पन्न होती हैं, उनसे रक्षाका प्रबंध किये बिना आगे बढ़ना वैज्ञानिक कर्मियोंके लिये भारी खतरा है।

समस्या चाहे कितनी ही कठिन हो, लेकिन उसका समाधान भी निकालना आवश्यक था। अमेरिकन सरकार पानीकी तरह डालर

बहानेके लिये तैयार थी। उसने बड़े-बड़े वेतन दे देश-विदेशके बहुतसे महान् वैज्ञानिकों और यंत्र-शास्त्रियोंको इस काम पर भिड़ा दिया। न्यूमेक्सिको (युक्तराष्ट्र अमेरिका) की बालुका-भूमिके एक कोनेमें नगरों और घनी बस्तियोंसे बहुत दूर लास-अलमोस स्थानमें परमाणुबम-प्रयोगशाला बनायी गयी। प्रिंसटोन, शिकागो, कलिफोर्निया, विस्कोन्सिन और मिन्नेसोताके विश्वविद्यालयोंके विज्ञान-विशारद वहां पहुँचे। प्रिंसटोनसे तीन लारी वैज्ञानिक यंत्र आये। हारवर्डका विशाल साइक्लोट्रोन उखाड़कर लॉस अलमोस पहुँचाया गया। विस्कोन्सिन-ने वान-डी-ग्राफ नामक दो परमाणु भेदकयंत्रोंको भेजा। हारवर्डका साइक्लोट्रोन १४ अप्रैल १९४३ को वहां पहुँचा, लेकिन लगानेका कार्य इतनी तत्परतासे हुआ, कि जुलाईके आरंभसे ही उसमें प्रयोग किया जाने लगा।

परमाणु-बमका निर्माण अमेरिकाका परम गोपनीय रहस्य है। वह अपने सहकारी तथा अनुगामी इंगलैंड और कनाडाको भी वह रहस्य बतलाना नहीं चाहता। लेकिन परमाणुबमके निर्माणका ढंग अमेरिकासे बाहर किसी देशको मालूम नहीं है, अब यह नहीं कहा जा सकता। उ०-२३५ तथा प्लूतोनियम पहिलेसे ही प्रसिद्ध हो चुके थे। विदरणोंकी शृंखला भी वैज्ञानिकोंको सर्वत्र विदित हो चुकी थी। अमेरिकाने विदरण-शृंखला द्वारा अधिक शीघ्र तथा भयंकर विस्फोटनवाले बमको तैयार करनेका कार्य आरंभ किया। प्रयोग द्वारा देखा गया, कि उ०-२३५ या प्लूतोनियम के डले तभी अभीष्ट कार्य करनेमें सफल हो सकते हैं, जब कि वह एक निश्चित परिमाण में हों। छोटा परमाणुबम बेकार होता, क्योंकि वह फूट नहीं सकता। एक ऐसा बड़ा बम बनाना था, जिसके भिन्न-भिन्न भाग इस तरह एक दूसरेके साथ संबंद्ध हों, कि वह निश्चित और इच्छित कालमें ही विस्फोट करें। यदि उसके भीतरके परमाणु धीरे-धीरे विस्फोटित होने लगे, तो बमके कितने ही भाग टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे और बमके भीतरकी सारी सामग्रीका उपयोग नहीं हो सकेगा। बिना फूटा हुआ टुकड़ा जमीनपर गिरेगा और उ०-२३५ या प्लूतोनियमका यह महार्घ डला शत्रुके देशमें गिरकर उसके हाथ लगेगा। अमेरिकाने देशी-विदेशी वैज्ञानिकोंकी सहायतासे समस्याको हल करके परमाणुबम बनाया, और न्यू-मेक्सिकोके अलमोगोरदो नामक स्थानमें प्रथम परमाणु-बमके विस्फोटका तजरबा किया गया।

युद्धोपरान्त परीक्षायें—परमाणुबम विश्वका सबसे शक्तिशाली हथियार है, किंतु उसके निर्माणमें खर्च भी उसी तरह बहुत अधिक पड़ता है। उसकी उत्पादन-सामग्री उरानियम जैसी अत्यन्त महार्घ धातुका दाम चुकानेके लिये अमेरिका तैयार है, लेकिन उसका यह अर्थ नहीं है, कि उसका प्रतिद्वन्द्वी रूस इस दौड़में पीछे या उदासीन है। अमेरिकासे उसकी नीति बिलकुल उलटी है। जहां अमेरिका परमाणुबमका मौके-बेमौके हर वक्त सभी जगह ढिंढोरा पीट रहा है, वहां रूससे इतना ही मालूम हो सका, कि उसने भी परमाणुबम बना लिया। रूसने ढिंढोरा नहीं पीटा, किंतु अमेरिका और उसके साथी देशोंने भूकम्प-मापक यंत्रों द्वारा पता लगा लिया कि रूसके पूर्वी भागमें कई बार परमाणु बमके प्रचंड विस्फोट हो चुके हैं। रूस भी उसी तरह हजारोंकी संख्यामें बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंको परमाणु-शक्तिके सैनिक और असैनिक उपयोगकी गवेषणामें लगाये हुए हैं। अमेरिकाकी होहल्ला मचानेवाली विशाल प्रोपेगंडा मशीन ज्यादा प्रभावशाली है या रूसका गम्भीर मौन, इसके बारेमें निर्णय देनेका यहां स्थान नहीं है।

अमेरिकाने हिरोशिमा और नागासाकीके बाद भी परमाणु-बमके तजरबे किये हैं और उसका कहना है, कि उसके आधुनिकतम् परमाणु बमोंसे हिरोशिमा और नागासाकीवाले बमोंकी कोई तुलना नहीं हो सकती। १ जुलाई १९४६ में प्रशान्त महासागरके बिकिनी द्वीपकी खाड़ीमें अमेरिकाने अपने नये परमाणुबमका तजरबा किया। इसके लिये बिकिनी द्वीपके निवासियोंको वहांसे हटाकर दूसरी जगह भेजा गया। एक प्रत्यक्षदर्शी वैज्ञानिक संवाददाताने बिकिनी खाड़ीके तजरबेके बारेमें लिखा है:—

"(रात्रिके) अंधकारमें (हमसे १८ मीलपर) एक आलपीनके आकारकी लालिमा लिये हुए पीला प्रकाश दिखलाई पड़ा। वह परमाणु बमके विस्फोटकी पहिली ज्वाला थी, जो धीरे-धीरे बढ़ती और फैलती एक महान् अर्द्धगोलके रूपमें परिणत हो गयी।....... प्लूतोनियमके परमाणु टूट-टूटकर यह दृश्य उपस्थित कर रहे थे। ... यह सब कुछ एक सेकंडके दस लाखवें हिस्सेमें हो गया। ...महान् अर्द्धगोलकी ज्वाला फूटती ऊपरकी ओर बढ़ती गयी। उसके मुंडसे परमाणु बमका विशेष चिह्न मक्खन जैसा एक सफेद महान् छत्रक

निकला। वहां चक्कर काटते टकराते बादलोंके छोरोंपर चित्र-विचित्र रंग दिखलायी पड़ रहे थे—यह लाल, पीले और नारंगी रंग सभी एक दूसरेसे मिश्रित होते सदा बदलते दीख रहे थे। ...बम फटकर ज्वाला ऊपर-ऊपर उठती जा रही थी। फिर उसके मुंडसे दूसरा छत्रक निकला। यह परमाणु बमका बादल पहिले २० हजार फीट फिर ३० हजार फीट तक उठा। ...वहां ज्वालाके तीन तल दिखलायी पड़ रहे थे। सबसे निचला तल समुद्र था, जहां बिकिनीकी खाड़ीमें अवस्थित लक्ष्यभूत जहाज चलते हुए धुंवा दे रहे थे। ... बिचले तलमें कुमुलस बादल कपासके परदेकी तरह परमाणु बमके छत्रके डंठलको ढांके हुए था। ...अंतमें सबसे ऊपरका तल सफेद तथा मक्खनके क्रीमकी तरह फूले गेंद जैसा परमाणविक बादलका था, जिसमें हिलती-डोलती गुलाबी, सुनहली आदि कितनी ही आकृतियां दिखायी पड़ रही थीं। इसी बादलके भीतर आदमीके हाथों द्वारा तोड़े गये अरबों परमाणुकी ज्वाला जल रही थी।...मानव-नेत्रोंके लिये यह अत्यन्त अद्भुत दृश्य थे।...

"यह सभी चीजें आंखें देख रही थीं, तो भी कोई बड़ी आवाज नहीं हुई, न तोप जैसी गर्जना सुनायी पड़ी, जिसकी कि इस हृदय-द्रावक दृश्यसे आशा की जा सकती थी। वहां केवल एक दबा-सा धड़ाका सुनायी पड़ा। ...जिस वक्त बम अग्नि-गोलेके रूपमें फटा, उससे डेढ़ मिनट बाद यह धड़ाका सुनायी दिया। आवाज ११०० फीट प्रतिसेकेंड चलती है और पत्रकारोंका जहाज एपलाचियान धड़ाकेकी जगहसे १८ मीलपर था, जहां आवाजको पहुंचनेमें ९० सेकंड लगे। आवाज बहुत हल्की थी। धक्के देनेवाली बलवान लहर भी कोई नहीं आयी। लेकिन अदृश्य रेडियीकरण उन सभी लोगोंके शरीरको पारकर गया, जो कि बम-विस्फोटको देख रहे थे। एपलाचियानके एक साहसी नाविकने दांतके फोटोके लिये इस्तेमाल होनेवाले एक्सरे फिल्मके एक टुकड़ेको अपने हाथके पीछे लगा लिया। जिस वक्त बम विस्फोट हुआ उसी वक्त उसने अपनी हथेलीको बिकिनी खाड़ीकी ओर करके हाथको फैला दिया। फिल्मको प्रयोगशालामें धोया गया। उसकी हड्डियोंका बहुत साफ फोटोग्राफ निकला दिखाई पड़ा, और यह एक्सरे फोटो १८ मीलकी दूरीसे लिया गया था! रेडियीकरण एपलाचियानके ऊपर बैठे हम सभी यात्रियोंको

पार कर गया, तो भी हमारे ऊपर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि हम विस्फोट-स्थानसे दूर सुरक्षित जगहपर थे। हममें कोई भूल नहीं सकता और न भूल सकेगा, कि इस दूरी ही ने हमारी रक्षा की। अब हमने अनुभव किया, कि क्यों हमारे जहाजको एडमिरल ब्लेन्डीने १८ मील दूर रखवाया था।...

"सबेरे एपलाचियान खुले समुद्रसे बिकिनी खाड़ीकी ओर लौटा।... लक्ष्यभूत युद्ध-पोतोंसे केवल चार मीलकी दूरीसे भयंकर ध्वंस-लीला दिखलायी पड़ने लगी। अब भी डूबनेसे बचे विशाल युद्ध पोतोंके ऊपरी ढांचे, मस्तूल, चिमनी, राडर-मीनार आदि चूर-चूर हो गये थे, जिससे मालूम हो रहा था, कि धक्का देनेवाली बमकी अदृश्य लहर भी कितनी जबरदस्त शक्ति रखती थी। विमान-वाहक **इंडीपेंडेंस**, जो एक नवीनतम् पोत था, जल रहा था और उसका ऊपरी ढांचा तथा उड़ान-डेकका बिलकुल पता नहीं था। ...सारी रात **इंडीपेंडेंस** धांय-धांय करके जलता रहा और आग बुझानेवालोंका सारा प्रयत्न व्यर्थ गया। ...अभिमानी जापानी क्रूजर **शकावा** चूर्ण और दग्ध हो चुका था। उसकी चिमनियां और मस्तूलें दोहरे हो गये थे।...अगले दिन शकावा डूब गया। ...**शकावा**के पास ही आक्रमणकारी वाहक कार्लालय और ध्वंसक ऐंडरसन लंगर डाले हुए थे। शकावाके नजदीकके यह दोनों जहाज लुप्त हो चुके थे। लक्ष्यके केंद्रसे दूर ध्वंसक लेमसोन खड़ा था, लेकिन अब एक विशाल ह्वेलकी तरह उसकी चिकनी अंडाकार पेंदी भर दिखलायी पड़ रही थी। जहाज बमके धक्केसे उलट गया था। पीछे वह डूब गया। ...लक्ष्यभूत जहाजोंके मस्तूल तोड़-फोड़कर चूर्ण हुए काले काले दिखलायी पड़ रहे थे। बमके द्वारा उत्पादित रेडियो-क्रियाकी किरणोंसे उनके पास किसी जीवित प्राणीका रहना असंभव था।

"बम-विस्फोट हवामें किया गया था, इसलिये (सबेरे ही) बिकिनीके जलको छोटे पोतोंके लिये सुरक्षित घोषित कर दिया गया और एडमिरल ब्लेन्डी और नौसेना-मंत्री फोरेस्टलका अगिनबोट तुरंत लक्ष्य-क्षेत्रके केंद्रमें अवस्थित **नेवादा** पोतकी ओर दौड़ा। जैसे ही उनका बोट नजदीक पहुंचा, **शकावा** डूब गया। सबेरे एडमिरलका बोट तथा कुछ दूसरे परीक्षक बोट खतरनाक क्षेत्रमें जा पहुंचे। दोपहरको पत्रकारोंके लिये भी आज्ञा मिल गयी। वहां कुछ

डूबे कुछ उलटे सैकड़ों पोत दिखायी पड़ रहे थे। विमान-वाहक इंडीपेंडेंस नये और आधुनिक युद्ध-पोतोंमें एक था। वह भी परमाणु-बमकी सनकका शिकार हुआ।...पीछे पता लगा, कि इंडीपेंडेंस यद्यपि ध्वस्त हो गया था, लेकिन तो भी डूबा नहीं।...पत्रकारोंकी आंखें सभी जहाजोंमें जीवनके चिह्न ढूंढ़ रही थीं और देखना चाहती थीं, कि परमाणुबमके वाताघातसे सूअरों, बकरियों, और चूहोंमेंसे कौन बचा। पहले जीवधारी आक्रमणकारी वाहक फालोनके ऊपर दिखलायी पड़े। यह पोत नेवादासे एक मील दूरपर था। संवाद-दाताओंने वहां दो बकरियोंको देखा।...एक कठघरे पर खड़ी थी। उसकी दाढ़ी हवामें हिल रही थी। दूसरी लेटी हुई थी। उनकी आंखें चौंधियाई-सी थीं और दोनों जानवरोंपर आघातका प्रभाव दिखलायी पड़ रहा था। ...विशाल विमानवाहक सरातोगा परमाणु-बमके वाताघातकी पहुंचसे दूर हटकर था, उसके ऊपरके प्राणी अच्छी अवस्थामें थे। ...प्रथम बिकिनी परीक्षाने सिद्ध कर दिया कि परमाणुबमके पतन-स्थानसे दो मील दूर पर सरातोगा जैसे पोत सुरक्षित रह सकते हैं। युद्धमें सौ फीटपर गिरे गोलेसे बच निकलनेकी आशा रहती है, किंतु परमाणुबमके गिरनेके दो मील तक सुरक्षाकी आशा नहीं। सरातोगा जैसे पोतके डेकपर यदि नाविक रहते, तो वहांपर रख छोड़े सूअरोंकी भांति शायद बम विस्फोटके दूसरे दिन वह जीवित रहते, लेकिन कौन कह सकता है, वह हिरोशीमाके अभागोंकी तरह दस या अधिक दिनमें मर नहीं जाते।...नेवादा दूसरे दिन सारे समय "तप्त" रहा। यह रेडियोक्रिया संबंधी-रेडियी-करणका प्रभाव था। बम-विस्फोटके ७२ घंटे बाद संवाददाता नेवादा के ऊपर जानेकी इजाजत पा सके।..."

"Young peoples book of Atomic energy" by R. D. Potter (New york)

२५ जुलाई १९४६ को बिकिनी खाड़ीमें एक और परमाणु बमकी परीक्षाकी गयी, जिसमें बमको हवामें नहीं जलके भीतर विस्फोटित किया गया। बम-विस्फोटके साथ बिकिनी खाड़ीका जल एक ऊँचे स्तम्भके रूपमें बराबर लंबा होता ऊपर उठता गया। यह जल-स्तम्भ प्रायः एक मील ऊँचा था। उसके ऊपर ४००० फीट तक और उठे गैस-फौव्वारे फूलसे दिखलायी पड़ते थे। इस फूलके डंठलमें १० लाख

टन जल था। यह पुष्पसहित डंठल या छत्रक कितने ही समय तक आकाशमें लटकता रहा। फिर धीरे-धीरे जहाजोंके ऊपर भयंकर रेडियो-क्रियावाली वर्षाके रूपमें गिर पड़ा। बम-विस्फोटके समय सौ फीट ऊँची लहर समुद्रसे निकलकर किनारेकी ओर आगे बढ़नेके साथ कम होती चली गयी, और विस्फोट स्थानसे साढ़े तीन मीलपर अवस्थित बिकिनी द्वीपपर ७ फीट ऊँची रह गयी। उसने सारे बिकिनी द्वीपको धो नहीं डाला, लेकिन पासके एक छोटे द्वीपको डुबा अवश्य दिया। पानीके भीतरसे ५००० फीट प्रति-सेकेंडकी चालसे एक भीषण प्रवाहकी तरंग बढ़ी, जिसने लक्ष्य भूत जहाजोंको सबसे अधिक क्षति पहुंचायी। उसने पेंदियोंको चूर कर दिया, घरोंको तोड़ दिया और जहाजोंको डुबा दिया। युद्ध-पोत अरकन्सस इस आघातके कारण तुरंत डूब गया। सरातोगा और नवादा भी जलके भीतरसे ध्वस्त होकर डूब गये। इस परीक्षामें रेडियो-क्रियाकी बहुत अधिक ध्वंस-लीला देखी गयी। चार दिन तक रेडियो-क्रियाके खतरेके मारे कोई उन जहाजोंके पास तक नहीं जा सकता था, जो कि अब तक तैर रहे थे। रेडियोक्रिया-युक्त "वर्षा" इसका कारण थी। इस परीक्षाने बतला दिया, कि जलके भीतरसे प्रवाहित आघात आध मील दूरके बड़े जहाजोंको ही डुबा नहीं सकता, बल्कि रेडियो-क्रिया युक्त वर्षाके मारे जहाजोंके नाविकोंका बच निकलना मुश्किल था। चाहे कुछ नाविक तुरन्त न भी मरते लेकिन रेडियोक्रियावाली वर्षा उनके लिये थोड़े समयमें घातक सिद्ध होती।

बिकिनीमें परीक्षाके समय दो सौ पोत अपने ३५,००० आदमियों के साथ मौजूद थे। इन पोतोंमें ७७ लक्ष्य-भेदके थे। सब मिलाकर ४२,००० आदमियोंने परीक्षामें भाग लिया था। उनके खानेके लिये प्रतिदिन १३,००० सेर आटा, २०,००० सेर मांस, साढ़े ४४ हजार सेर तरकारी, १९,००० सेर काफी, १८,००० सेर मक्खन, ६,६०० सेर चीनी खर्च होती थी, साथ ही ७०,००० मिश्रीकी सिल्लियां तथा ३०,००० सिगरेटके डब्बे रखे गये थे।

परमाणु-शक्तिका अन्य उपयोगः—परमाणु-शक्तिका ध्वंसके लिये ही अभी तक प्रयोग हुआ है। युद्ध और सेनाके खर्चमें पैसे कौड़ीकी ओर ध्यान नहीं रखा जाता। यदि परमाणु-शक्तिके असैनिक उपयोगकी खोजपर भी उसी तरह प्रयत्न किया जाता, तो

संभवतः अब तक उसके संबंधमें भी कितने ही आविष्कार हो गये होते। गति धीमी चाहे हो, किंतु दुनियाके विज्ञान-वेत्ताओंका दिमाग इस वक्त उसीमें लगा हुआ है। अफसोस यह है, कि परमाणु-शक्तिके सैनिक उपयोगकी ओर अधिक ध्यान होनेसे सभी देश अपने अनु-संधानोंको बहुत गुप्त रख रहे हैं, जिससे दुनियाके सभी वैज्ञानिकोंको एक दूसरेके अनुभवसे लाभ उठानेका मौका नहीं मिल रहा है। अमेरिका रहस्यको गुप्त रखनेके लिये सबसे अधिक सचेष्ट है। लेकिन परमाणु-शक्ति उद्योग-धंन्धोंके लिये बहुत सस्ती विद्युत्-शक्ति प्रदान करेगी, जिससे परमाणु-शक्तिवाले देश इतनी सस्ती चीजें बना सकेंगे, जिनका बाजारमें दूसरे मुकाबिला नहीं कर सकेंगे। भला व्यापारमें ऐसी जबरदस्त प्रतिद्वन्द्वितासे कौन-सा देश शंकित नहीं होगा।

अंग्रेज विज्ञानवेत्ता जे० बी० एस्० हल्डेनने परमाणु बमकी ध्वंस-लीलाके बारेमें कहा है:—

"युक्त-राष्ट्र अमेरिका और सोवियत संघ ही ऐसी दो शक्तियां हैं, जो परमाणुबमके युद्धसे पूर्णतया ध्वस्त नहीं हो सकेंगी। यद्यपि वह न्यूयार्क, सानफ्रान्सिस्को, लेनिनग्राद या अदेस्साको नहीं बचा सकेंगी, किंतु मास्को, मग्नितोगोरस्क, शिकागो और सेंट लुईके बचा पानेकी आशा की जा सकती है। युक्त-राष्ट्रको शायद कुछ सुभीता हो, किंतु उसके समुद्र तटवर्ती नगर पनडुब्बियोंसे छोड़े निश्चित समयपर फूटने-वाले परमाणुबमोंसे ध्वस्त हो जायेंगे, उनकी उठायी भयंकर लहरोंसे बहा दिये जायेंगे। इंगलैंडके बचनेकी तो कुछ आशा ही नहीं है। जो मंडली पश्चिमी युरोपीय गुटके लिये काम कर रही है, उसे इस बातका ध्यान नहीं है, कि दस सालके भीतर ही लंदन और पेरिस सोवियत संघ या किसी दूसरे राज्यसे फेंके जाते उड़न्तू बमकी उड़ानके भीतर खो जायेंगे।"

"Science in the Atomic age."

परमाणु बमकी अपेक्षा परमाणु-शक्तिके औद्योगिक उपयोगकी ओर लोगोंका कम ध्यान नहीं है। लेकिन परमाणु-शक्तिके उन्मोचन और नियंत्रणके लिये जितने बड़े यंत्रोंकी आवश्यकता है, उसके कारण परमाणु-शक्तिका उपयोग मोटरों और रेलवे-इंजनों पर नहीं हो सकता। हां, जहाजोंपर शक्ति-निष्पादक यंत्र लगाये जा सकते हैं। दो सौ टनका विमान शायद परमाणु-शक्तिसे संचालित किया जा सके।

चिकित्सामें परमाणुबमके निर्माणसे पैदा हुए रेडियोक्रियावाले तत्त्वोका बहुत सस्ता प्रयोग अब भी होने लगा है। उसने रेडियमकी अपेक्षा बहुत सस्ते साधन डाक्टरोके हाथोमें दे दिये है। रेडियो-क्रियावाले कार्बन १४ तथा आइडिन कई दु साध्य रोगोमे बड़े सफल सिद्ध हुए है।

कृषिको भी इन सस्ते रेडियो क्रियावाले पदार्थोसे बहुत लाभ होगा। उनके द्वारा बीजोके सुदर जाति-परिवर्तनकी गतिको बढाया जा सकता है। खादमें भी इसका उपयोग अधिक लाभदायक सिद्ध होगा। रेडियो-क्रियावाले उत्पादित पदार्थोसे हमारी सपत्तिको बढ़ाया जा सकता है। हमारी युद्ध करनेकी शक्ति यदि उससे बढ सकती है, तो साथ ही बहुतसे मानवोकी प्राणरक्षा भी की जा सकती है।

२. **परमाणु बमसे भी बड़ा अस्त्र** (लेक्सेस अक्तूबर १४)—विश्व स्वास्थ्य सगठनके डाइरेक्टर ब्रोक चिशोनने कहा, आज बकटीरिया वाले युद्ध-क्रममे इतना विकास हो चुका है, कि उसके सामने सभी हथियार—परमाणुबम भी—बेकार है, और युद्ध वस्तुतः आत्महत्या है। ऐसे युद्ध मे किसी के जीतने की सभावना नही है, और उससे मानव-जातिका अधिकाश जीवित नही बचेगा। बकटीरिया वाले कीटाणुओ को रोकने या उनसे त्राण पानेका कोई उपाय सभव नही है।

—(H. T. 16-10-49 p. 5)

३. **रूसमें परमाणु-बम** (शिकागो अक्टूबर २१)—भारी हाइड्रोजनके आविष्कारक, नोबुल पुरस्कार विजेता तथा परमाणुबमके विकासमे अग्रणी विज्ञानवेत्ता डाक्टर उरेने कहा, कि युक्तराष्ट्रमे परमाणुबमका उत्पादन युद्धके बादसे मद्धिम पड गया है, जब कि रूस युद्धके समय युक्तराष्ट्रकी तीव्रतम् गतिसे काम कर रहा है। युक्तराष्ट्रका परमाणु-आयोजन, क्षमता-हीन तथा निराशापूर्ण हैं। कमूनिस्त झुकावका आरोप लगानेके कारण बहुत-से उत्तम परमाणवीय विज्ञानवेत्ताओने अत्यन्त जुगुप्साके साथ अपना काम छोड दिया। रूसने इतने थोडे समयमे परमाणु बम बना लिया, यह प्रकट करता है, कि वह अमेरिकाकी युद्धकालीन गतिसे आगे बढ रहा हैं। मै कहूगा कि प्राय. दोवर्षके भीतर रूस युद्ध-क्षेत्रमे युक्तराष्ट्रकी प्रगतिको बहुत अच्छी तरह पीछे छोड जायेगा।

इलीनूस विश्व विद्यालयके भौतिक शास्त्रके प्रोफेसर डाक्टर फ्रेडरिक साइट्जने कहा—मुझे विश्वास है, कि रूसी लोग बम उत्पादन तथा परमाणु शक्तिके विकासके दूसरे क्षेत्रोमे अब हमसे आगे बढ जायेगे।

—(Reuter Statesman Cal. 23-10-49)